संस्कृत-भाषाविज्ञान



संस्कृत भाषाविज्ञान

लेखक
प्रो० शिवबालक द्विवेदी एवं प्रो० अवधेशकुमार चतुर्वेदी
प्राध्यापक
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर



ग्रन्थम
रामबाग, कानपुर

पुस्तक : संस्कृत भाषाविज्ञान

लेखक : प्रो० शिवबालक द्विवेदी
: प्रो० अवधेशकुमार चतुर्वेदी

प्रकाशक : ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर २०८०१२

प्रकाशन वर्ष : १९७८

मूल्य : प्रथम संस्करण–३०.००

मुद्रक : आराधना ब्रदर्स, कानपुर २०८००६

समर्पण

विद्वद्वरेण्य आचार्य बदरीनाथ शुक्ल

कुलपति

सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी

को

सादर

समर्पित

प्राक्कथन

भाषा का मानवजीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज के इस वैज्ञानिक युग में तो भाषा का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है। भाषा के बिना मानव-व्यवहार ही अपूर्ण है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि भाषातत्त्व का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन हो। भारत में प्राचीनकाल से ही भाषातत्त्व का अध्ययन होता चला आ रहा है। हाँ, उसके अध्ययन की विधि आज के अध्ययन की विधि से भिन्न रही है। सम्प्रति भाषा तत्त्व का अध्ययन विज्ञान के रूप में किया जा रहा है और इसे 'भाषाविज्ञान' के नाम से अभिहित किया जा रहा है। भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए भारतीय एवं पाश्चात्य विपश्चित् कृतसंकल्प हैं। उन्होंने भाषाविज्ञान की विविध विधाओं पर महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। इस प्रकार भाषाविज्ञान सम्प्रति अध्ययन एवम् अनुसंधान का एक स्वतन्त्र विषय बन गया है। सम्प्रति विश्वविद्यालयों में भाषाविज्ञान का अध्ययन– अध्यापन अनिवार्य रूप में हो रहा है। विषय के गम्भीर एवं दुरूह होने के कारण विद्यार्थियों को कठिनायी अनुभव होती है। अतएव इसी को दृष्टि में रखकर यह पुस्तक प्रस्तुत की गयी है। विद्यार्थियों की कठिनायी को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक में प्रत्येक विषय को यथासम्भव सरल एवं बोधगम्य शैली में उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। आशा है छात्रवर्ग इससे पूर्ण लाभान्वित होगा।

इस पुस्तक के प्रणयन में ब्रील, मैक्समूलर, ह्विटनी, वेबर, येस्पर्सन, ब्लूमफ़ील्ड, टकर, ग्रियर्सन, टर्नर, भण्डारकर, ओझा, गुणे, चटर्जी, तारापूर वाला, श्यामसुन्दरदास, धीरेन्द्र वर्मा, मंगलदेव शास्त्री, प्रभृति मनीषियों की कृतियों से सहयोग लिया गया है, अतएव हम उनके हृदय से आभारी हैं। श्रीमती इन्द्रा चतुर्वेदी, नन्दिता, राहुल एवं मनोज के लेखक कृतज्ञ हैं जिन्होंने लेखन एवं प्रूफ संशोधनादि कार्यों में सहयोग किया है। लेखक अपने उन समस्त मित्रों एवं शुभचिन्तकों के प्रति सादर आभार प्रस्तुत कर रहे हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रणयन में सहयोग किया है।

उपाकर्म, २०३[illegible] वि० सं०

लेखकद्वय

विषय-सूची

१ | भाषाविज्ञान

भाषा किसे कहते हैं ?—साधारणतः भाषा उस साधन का नाम है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने भावों और विचारों को दूसरों पर प्रकट करता है। भाषा मानव के विचार-विनिमय का साधन है। मनुष्य अनेक प्रकार की भाषाओं का प्रयोग करता है; जैसे कोई हिन्दी बोलता है तो कोई अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन या तुर्की आदि। अपने देश में भी कई भाषायें बोली जाती हैं; जैसे—बंगाली, मराठी, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी, तमिल, तेलगू आदि। भिन्न-भिन्न जातियों के विचार-विनिमय का माध्यम अलग-अलग भाषायें हैं। मनुष्य मुखाकृति, आँखों के भाव, हाथ के हिलाने, ताली बजाने, चुटकी बजाने, हाथ दबा कर आदि से भी अपनी इच्छा (भाव) प्रकट करता है। अमेरिका के इण्डियन लोग इंगित भाषा का प्रयोग करते हैं। आस्ट्रेलिया या अफ्रीका के आदिवासीअपने-अपने ढंग से विचार-विनिमय करते हैं। संसार के विभिन्न क्षेत्रों में भाषा शब्द के लिए अनेक शब्द हैं। अंग्रेजी में लैंग्विज, रूसी में यज़िक, फारसी में जबान, जर्मन में स्प्राखे, अरबी में लिस्सान, लेटिन में लिगुआ, फ्रान्सीसी में लॉग, लॉगाज़, ग्रीक में लेइखेइन तथा संस्कृत में वाक् हैं। प्लेटो के अनुसार 'विचार जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होते हैं तो उसे 'भाषा' कहते हैं'। वान्द्रिए के अनुसार 'भाषा चिह्न है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भाव प्रकट करता है।' स्वीट ने 'ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना' ही भाषा माना है। ब्लाक तथा ट्रेगर, एवं स्त्रुतेवां आदि के मत से "भाषा यादृच्छिक ध्वनि चिह्न है जिसके द्वारा समाज परस्पर सहयोग करता है। भाषा विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम होती है। भाषा मनुष्य के उच्चारण अवयवों से निकलती है। भाषा की ध्वनियाँ सार्थक होती हैं। भाषा व्यवस्थित होती है। भाषा का प्रयोग समाज विशेष करता है। वस्तुतः "भाषा उच्चारण अवयवों से निकली यादृच्छिक ध्वनि चिह्नों की व्यवस्था है जिसे मनुष्य परस्पर विचारविनिमय में प्रयोग करते हैं।"

भाषाविज्ञान-नामकरण—मनुष्य द्वारा उच्चरित सार्थक ध्वनि समूह भाषा कहलाती है। भाषा के विषय में प्राचीन काल से अध्ययन होता रहा है। वैदिक वाङ्मय में भाषा के विषय में अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं, जो उस समय

के भाषा सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं–यथा कृष्ण यजुर्वेद तैत्तरीय संहिता में कहे गए ये शब्द द्रष्टव्य हैं–'वाग्वै पराच्यव्याकृता वदन्ते देवा इदमन्न्ब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्वीत, सोऽब्रवीद्वरं वृणै मह्यं चैवेष वायवे च सह गृह्णता इति तस्मादैन्द्रवायवः सह गृह्यते तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्तस्मादियं व्याकृता वागुद्यते ।" इसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कहा है–"वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वा पशवो मनुष्या वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी ।" महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में इस प्रकार लिखा है–"एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति । दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।"

वर्तमान काल में भाषा का व्यापक रूप से वैज्ञानिक विवेचन हुआ है । अतः यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि भाषा का विस्तृत एवं वैज्ञानिक अध्ययन होने पर इसका नामकरण क्या किया जाय ? साधारण रूप से देखा जाय तो भाषा के विस्तृत एवं वैज्ञानिक अध्ययन को अनेक नामों से व्यवहृत किया गया है ; जैसे तुलनात्मक-भाषाशास्त्र, भाषाविज्ञान, भाषा-विचार, तुलनात्मक-भाषा-विज्ञान, भाषातत्त्व, शब्दशास्त्र, शब्द–तत्त्व, भाषालोचन, भाषिकी आदि ।

भाषाविज्ञान के लिए, यूरोप में, सर्व प्रथम कम्परेटिव ग्रामर (Comparative grammar) अर्थात् तुलनात्मक व्याकरण प्रयुक्त किया गया । किन्तु भाषा का विस्तृत अध्ययन केवल तुलनात्मक व्याकरण नहीं है, अतः यह शब्द इसके लिये अनुपयुक्त समझा गया । भाषाविज्ञान में भाषाओं से तुलना की जाने के कारण अंग्रेजी में इसके लिए Philology (फिलालॉजी) शब्द प्रयुक्त किया गया । फिलालॉजी का शाब्दिक अर्थ 'भाषा का साहित्यिक अध्ययन' है । यूरोपीय देशों में फिलालॉजी शब्द किसी जाति के साहित्य के अध्ययन के लिए प्रयोग किया जाता है । जर्मनी के विश्वविद्यालयों में ग्रीक तथा रोमन साहित्य के विद्वानों के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द Klassische Philologen तथा Romanische Philologen हैं । इसके लिए Comparative Philology (तुलनात्मक भाषाविज्ञान) नाम भी प्रयुक्त किया गया है । फ्रान्स में इसको लिंग्विस्टिक (Linguistique) कहा जाता है । एफ० जी० टकर ने अपनी पुस्तक Introduction to natural history of Language में इस विज्ञान को साइंस आफ टंग (Science of Tongue) कहा है । टकर महोदय द्वारा उपर्युक्त नाम अधिक उपयुक्त न होने के कारण प्रचलित न हो सका । फिलालॉजी (Philology) शब्द के अर्थ को ब्रिटैनिका विश्वकोष (Encyclopaedia Britannica) में इस प्रकार बतलाया गया है–

"The word philology is here taken as meaning the Science of language i. e. the Study of the srtucture and development of

languages, thus, Corresponding to linguistics, put differing from philology, as it is generally Understood on the Continent and Sometimes in England where it means literary or classical Scholarship; to the philologist in the latter sense language is one of the means to the Comprehension of the study for its own sake, as it is to the philologist in the Sense in which the word is here used."

अर्थात् फिलालॉजी शब्द का प्रयोग भाषाविज्ञान के अर्थ में यहाँ प्रयुक्त किया है–अर्थात् भाषाओं की रचना और विकास का अध्ययन इस प्रकार इसका वही अर्थ लेना चाहिए जो लिंग्विस्टिक Linguistique शब्द से लिया जाता है। Philology शब्द का वह अर्थ यहाँ गृहीत नहीं जो यूरोप महाद्वीप में कभी-कभी इङ्गलैण्ड में भी 'किसी भाषा का साहित्यिक अध्ययन'के अर्थ में चलता था। इस बाद वाले अर्थ में भाषा किसी जाति की सम्पूर्ण संस्कृति को समझने का माध्यम मात्र है जबकि पूर्व वाले अर्थ में वह स्वयं अध्ययन का विषय है। Philology शब्द का व्यवहार हमने इसी पहले वाले अर्थ में किया है। वेब्स्टर ने फिलालॉजी शब्द से साहित्य का अध्ययन, जिसमें व्याकरण, आलोचना, साहित्यिक–इतिहास, भाषा इतिहास, लेखन-विधि एवं साहित्य तथा भाषा सम्बन्धित अन्य कोई भी वस्तु सम्मिलित है, अर्थ किया है।

भाषाविज्ञान पर भारत में प्राचीन काल से विचार होता आया है। इस विज्ञान को उस समय भिन्न-भिन्न नामों से व्यवहृत किया गया; जैसे–शब्दशास्त्र, शब्दानुशासन, निर्वचनशास्त्र, व्याकरण आदि। वर्तमान काल में पाश्चात्य देशों से भारत में इस विज्ञान का अध्ययन आया। पाश्चात्य देशों में सन् १७१६ ई० में डेवीज ने भाषाविज्ञान के अर्थ में ग्लासोलोजी (Glossology) शब्द का प्रयोग किया था। जर्मनी में इसे 'Sprachwissenschaft' कहते हैं जिसका अर्थ भाषा विज्ञान है। रूसी में यजिकाज्नानिये शब्द प्रचलित है जिसका अर्थ भी भाषाविज्ञान होता है। प्रिचर्ड ने १८४१ में इस विज्ञान के लिए ग्लाटोलोजी (Glottology) शब्द का प्रयोग किया। टकर ने भी इस नाम को सर्वोत्तम बताया था। इसके लिए Linguistic एवं Philology नाम अधिक प्रयोग किए जाते हैं। अर्थ एवं विषय के अनुरूप इसके लिए Philology शब्द अधिक अपयुक्त है। Philology शब्द Phil + Logos शब्दों से बना है। Phil शब्द का अर्थ है = शब्द (Word) तथा logos शब्द का अर्थ है–विज्ञान (Science)। इस तरह Philology का अर्थ हुआ Science of words (शब्दों का विज्ञान)। हिन्दी साहित्य में इस विज्ञान के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया गया है किन्तु सबसे अधिक प्रचलित एवं प्रिय शब्द

भाषा-विज्ञान है। डॉ० बाबूराम सक्सेना के मत में 'भाषाविज्ञान' शब्द ही अधिक उपयुक्त, व्यापक एवं सार्थक है, भाषाशास्त्र आदि शब्द नहीं।

भाषा-विज्ञान की परिभाषा–भाषा-विज्ञान की परिभाषायें विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की हैं उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–

(१) **डॉ० पी० डी० गुणे** ने भाषाविज्ञान को 'Science of Language' माना है। उनके अनुसार "तुलनात्मक भाषाविज्ञान या केवल भाषाविज्ञान 'भाषा का विज्ञान' है। यथार्थत: फिलालॉजी शब्द का अर्थ किसी भाषा का साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन है। जर्मनी में यूरोप के अन्य देशों की भाँति ही, फिलालोजी का अर्थ अब भी किसी भी साहित्य का अध्ययन है।..........सम्प्रति भाषाओं में किसी विशेष वर्ग के तुलनात्मक भाषाविज्ञान का उद्देश्य है, उनकी पारस्परिक समानताओं का अन्वेषण एवं उनकी व्याख्या।" इस प्रकार गुणे के अनुसार, भाषाविज्ञान भाषाओं के विशिष्ट अध्ययन, साहित्यिक दृष्टि से भाषाओं का अध्ययन, किसी भी व्यक्ति के साहित्य का अध्ययन, एवं विभिन्न वर्गों की भाषाओं की वर्गीय समानता तथा असमानता का अध्ययन है।

(२) **डॉ० श्यामसुन्दर दास** ने अपनी पुस्तक 'भाषा-रहस्य' में भाषा विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार की है–"भाषा-विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।"

(३) **डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री**–भाषाविज्ञान की परिभाषा करते हुए लिखते हैं–'भाषा विज्ञान उसको कहते है 'जिसमें'–

(१) सामान्य रूप से मानवीय भाषा का,

(२) किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का, और अन्तत:

(३) भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक विचार किया जाता है।"

डा० भोलानाथ तिवारी के अनुसार–"जिस विज्ञान के अन्तर्गत वर्णनात्मक ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा की उत्पत्ति, गठन प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक् व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिद्धान्तों का निर्धारण हो, उसे भाषाविज्ञान कहते हैं।" **डा० मनमोहन गौतम** ने 'सरल भाषा-विज्ञान' में भाषाविज्ञान की परिभाषा इस प्रकार की है–'भाषाविज्ञान वह शास्त्र है जिसमें ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भाषा की उत्पत्ति, बनावट, प्रकृति, विकास एवं ह्रास आदि की वैज्ञानिक व्याख्या की जाती है।" **प्रो० देवेन्द्र-नाथ शर्मा** के अनुसार "भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलाएगा।" **डा० बाबूराम सक्सेना** ने भाषाविज्ञान की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'भाषा तत्त्वों का अध्ययन भाषाविज्ञान है'

उपर्युक्त परिभाषाओं का अनुशीलन कर हम यह कह सकते हैं कि भाषा-विज्ञान में भिन्न भिन्न भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन होता है। यह अध्ययन ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक रीति से किया जाता है। ऐतिहासिक रीति से भाषाओं की उत्पत्ति, विकास, और भाषा में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक रीति से विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक विवेचन किया जाता है। भाषा में परिवर्तन होता है जो साधारण लोगों की बोलचाल में अधिक दिखाई देता है, अतः भाषाविज्ञान में बोलियों का भी विस्तृत विवेचन किया जाता है। भाषा-विज्ञान में भी विज्ञान की भाँति सिद्धान्त या नियम होते हैं।

भाषाविज्ञान और व्याकरण–भाषाविज्ञान और व्याकरण दोनों ही भाषा के स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत करते हैं। भाषाविज्ञान एवं व्याकरण दोनों में पर्याप्त साम्य तथा अन्तर भी है। भाषा-विज्ञान के प्रारम्भिक समय में यूरोप में इसका नामकरण 'तुलनात्मक व्याकरण' ही किया गया था। व्याकरण और भाषाविज्ञान का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति बताकर उसके स्वरूप का परिचय देता है जबकि भाषाविज्ञान भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि पर भाषाविज्ञान तथा व्याकरण दोनों में विचार किया जाता है। भाषाविज्ञान अनेक भाषाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। व्याकरण किसी भाषा विशेष का अध्ययन करता है। व्याकरण शुद्ध और अशुद्ध का प्रयोग बतलाता है जैसा कि वाक्यपदीय में कहा गया है–'साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणस्मृतिः' व्याकरण शब्द का अर्थ व्याकृति है अर्थात् टुकड़े टुकड़े करके उसकी आकृति को दिखाना (व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्)। प्राचीन काल में व्याकरण तथा भाषाविज्ञान में अधिक अन्तर नहीं माना जाता था इसी से भाषा-विज्ञान को तुलनात्मक भाषा-विज्ञान कहा गया था। वस्तुतः भाषाविज्ञान विज्ञान की कोटि में आता है जबकि व्याकरण शास्त्र है।

समानता–(१) भाषाविज्ञान तथा व्याकरण दोनों ही में भाषा का अध्ययन होता है। (२) समकालिक, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक ये तीन भेद व्याकरण के लिए जाते हैं, यही भेद भाषा विज्ञान पर भी घटित (लागू) होते हैं। समकालिक व्याकरण में सभी भाषाओं के मौलिक सिद्धान्तों और तत्त्वों की मीमांसा की जाती है। ऐतिहासिक व्याकरण में भाषा के अर्थ, रूप आदि में होने वाले परिवर्तनों का ऐतिहासिक रीति से अध्ययन किया जाता है। तुलनात्मक व्याकरण ऐतिहासिक व्याकरण के कार्यों की व्याख्या के लिये उसी भाषा या पूर्ववर्ती भाषा या सजातीय भाषाओं की तुलनात्मक परीक्षा करता है।

वस्तुतः भाषाविज्ञान और व्याकरण में कोई विशेष भेद नहीं है। वर्तमान काल में अध्ययन सुविधा के लिए भाषाविज्ञान और व्याकरण में भेद किया गया है क्योंकि वर्णनात्मक व्याकरण के विना व्याख्यात्मक व्याकरण अपने कार्य को नहीं

कर सकता । व्याख्यात्मक व्याकरण (भाषाविज्ञान) का मूल आधार वर्णनात्मक व्याकरण है । इसीलिए दोनों में साम्य भी है ।

भेद—(१) व्याकरण शास्त्र या कला है जबकि भाषाविज्ञान विज्ञान है । भाषाविज्ञान भाषा की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है । व्याकरण भाषा के शुद्ध रूप के बोलने, लिखने में सहायता करता है । व्याकरण का सम्बन्ध विशेष काल की भाषा से होता है, लेकिन भाषाविज्ञान का सम्बन्ध काल विशेष की भाषा से ही न होकर समस्त काल की भाषाओं से रहता है । व्याकरण 'क्या' का उत्तर प्रदान करता है जबकि भाषाविज्ञान व्याख्यात्मक होने से 'क्या' के साथ साथ क्यों, कब, कैसे आदि का उत्तर प्रदान करता है । भाषाविज्ञान के द्वारा ही हम जान सकते हैं कि संस्कृत आगे चलकर कैसे पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी के रूपों में विकसित हुई । भाषाविज्ञान का क्षेत्र विशाल है जब कि व्याकरण का इतना व्यापक नहीं । भाषाविज्ञान का आधार व्याकरण ही है । धर्म का धम्म, सर्व का सब्ब आदि रूप वैय्याकरणों की दृष्टि से ठीक नहीं हैं । वैय्याकरण पुरातनवादी दृष्टिकोण के समर्थक हैं । धर्म का धरम आदि रूपों को भाषा-विज्ञानी विकार न कहकर विकास या प्रगति कहता है । अतः व्याकरण की अपेक्षा भाषा-विज्ञान व्यापक है । सूक्ष्म रूप में इन दोनों का अन्तर हम इस प्रकार देख सकते हैं—

१. भाषाविज्ञान विज्ञान है, और व्याकरण कला—भाषा-विज्ञान भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने के कारण विज्ञान है । यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि भाषाविज्ञान गणित, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र आदि विज्ञानों की कोटि का विज्ञान नहीं है क्योंकि विज्ञान के नियम प्रायः निश्चित और अकाट्य होते हैं । वहाँ दो और दो मिलाकर चार (२+२=४) होते हैं, तीन या पाँच नहीं । जबकि भाषाविज्ञान में नियम सर्वथा निश्चित और अकाट्य नहीं पाये जाते हैं । कोई शब्द किसी विशेष परिस्थिति से परिवर्तित हो जाता है और कोई उसी की सदृशता रखने वाला शब्द या तो परिवर्तित ही नहीं होता है और या फिर उससे भिन्न रूप में ही परिवर्तित हो जाता है । उदाहरण के लिए संस्कृत भाषा का 'एकदश शब्द' "एकादश" के रूप में परिवर्तित हो जाता है । परन्तु उसी का पड़ोसी शब्द "त्रयोदश" त्रयादश' या त्रादश में परिवर्तित नहीं होता है । इस प्रकार यह फलित होता है कि भाषा-विज्ञान विज्ञान तो है लेकिन वह निश्चित नियामक नहीं है । वह भाषाओं के विशिष्ट विषयों का अध्ययन अनुशीलन स्वरूप ज्ञान से युक्त होने के कारण विज्ञान है । जबकि इसके विपरीत व्याकरण को भाषा की कला माना जाता है । यद्यपि किन्हीं विशिष्ट नियमों—उपनियमों आदि की वैज्ञानिक मीमांसा करने के कारण हम व्यारण को भी विज्ञान के रूप में स्वीकार कर सकते हैं जैसा कि आचार्य स्वीट ने भी कहा है कि व्याकरण को भाषा की कला और विज्ञान दोनों ही कहा जा

सकता है । कतिपय विद्वान् जो कि व्याकरण को केवल कला ही मानते हैं, हम उनसे सहमत नहीं हैं । वस्तुत: यदि देखा जाय तो व्याकरण शास्त्र है जो कि भाषा के ऊपर शासन करने वाला है । जैसा कि उसकी व्युत्पत्ति से स्पष्ट है–

"शिष्यतेऽनेन इति शास्त्रम्" । यद्यपि यह उचित है कि व्याकरणशास्त्र भाषाशास्त्र से भिन्न क्षेत्र को रखने वाला है और भाषाशास्त्र का क्षेत्र व्यापक तथा गहन है । इस कारण से भाषाशास्त्र व्याकरणशास्त्र से भिन्न है । व्याकरण को यदि केवल कला मान लिया जाय तो वह साहित्य जैसे कलात्मक विषय का साथी बन जायेगा । कला शब्द का अर्थ व्यापक रूप में विद्या या ज्ञान का अनुभव है । यह ज्ञान अनुभव और प्रयोजन से युक्त है । व्याकरण अपने अनुभव या प्रयोजनवश नियमों का निर्माण करता है लेकिन ऐसी स्थिति में उसे देशकाल की सीमा में आबद्ध रहना पड़ता है । इस प्रकार व्याकरण कलामूलक होने के नाते विज्ञान जैसी स्वतन्त्रता को नहीं अपना सकता है । विज्ञान उसी वस्तु को स्वीकार करता है जिसकी वह सम्यक् परीक्षा कर लेता है । उसमें निरीक्षण के उपरान्त पुनरीक्षण और परीक्षण की प्रणाली का स्वत्व रहता है । जबकि कला प्राचीन अनुभव प्रधान होने से पुरातनवादी कहलाती है । इस प्रकार व्याकरण में भाषा को पूर्ण मानकर उसके साधु-असाधु स्वरूप का निवर्चन करता है । जबकि भाषाविज्ञान भाषा की पूर्णता को न स्वीकार कर उसके बिगड़ते-बदलते रूपों को मान्यता प्रदान करता है । इस प्रकार भाषाविज्ञान भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करता है ।

२. **व्याकरण भाषाविज्ञान का अनुगामी है**–एक ही भाषा जब देश-काल के कारण परिवर्तित होकर भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है तो उसके भिन्न-भिन्न व्यारण भी बनते हैं । जब किसी भाषा का कोई शब्द नवीन रूप को धारण कर लेता है तो प्रारम्भ में व्याकरण उसे स्वीकार नहीं करता है और अशुद्ध की संज्ञा देकर उसे अपनी जाति से बाहर निकाल देता है। परन्तु भाषाविज्ञान ऐसे शब्द को तत्काल ही स्वीकार कर लेता है और यदि कहीं वह शक्तिशाली हो जाता है अर्थात् अनेक लोगों के द्वारा उच्चरित होने लगता है तो अन्ततोगत्वा भषाविज्ञान व्याकरण को समझा-बुझाकर उसे अपनी भाषा में स्थान दिला ही देता है और व्याकरण ऐसी परिस्थिति में उसे स्वीकार कर लेता है । इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि व्याकरण भाषाविज्ञान का अनुगामी है ।

३. **भाषाविज्ञान व्याकरण का भी व्याकरण है**–व्याकरण किसी भाषा के नियम तथा रूप आदि को सीधे-साधे ढंग से प्रस्तुत कर देता है क्योंकि वह वर्णन प्रधान है । वह व्यवहृत होने वाले शब्दों को अपने नियमों के द्वारा प्रस्तुत कर देता है उसके कारण आदि से उसे कोई तात्पर्य नहीं है; जबकि भाषाविज्ञान उसके स्वरूप की सम्यक् छान-बीन कर ऐतिहासिक रूप से उसके कारण को खोज निका-

लता है। भाषाविज्ञान केवल इतने मात्र से सन्तुष्ट नहीं रहता है कि हिन्दी में 'जाना' क्रिया का सामान्य भूत का रूप 'गया' बन जाता है। व्याकरण तो केवल इतना कहने से सन्तुष्ट हो जायगा, परन्तु भाषाविज्ञान अन्वेषणोपरान्त यह बतलायेगा कि हिन्दी का 'जा' क्रिया से 'गया' सम्बन्ध नहीं है। वह वस्तुतः संस्कृत की 'गम्' धातु 'गतः' का विकसित रूप है। जबकि 'जा' का सम्बन्ध 'या' धातु से है। सम्प्रति 'गम्' धातु का यह एक ही रूप विद्यमान है। अन्य समस्त रूप 'या' धातु के हैं। यही कारण है कि इसे भी 'या' या 'जा' से सम्बन्धित मान लिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्याकरण के भी मूल का विश्लेषण करना भाषाविज्ञान का कार्य है। अतएव भाषाविज्ञान व्याकरण का भी व्याकरण है।

४. भाषाविज्ञान अंगी है और व्याकरण अंग है—भाषाविज्ञान में समस्त भाषाओं का अध्ययन अपेक्षित है। वह विभिन्न भाषाओं के अतीत, वर्तमान एवं भावी रूप का सामान्य रूप से विश्लेषण करता है। उसके नियम समस्त भाषाओं पर लागू हो सकते हैं; जबकि व्याकरण किसी एक ही भाषा के वर्तमान रूप पर विचार करता है और उसी भाषा पर उसकी नियमशक्ति स्थित रहती है। वह किसी दूसरी भाषा के लिए नियम निर्धारित नहीं कर सकता। अतएव प्रधान होने के कारण भषाविज्ञान अंगी है और व्याकरण उसके एक भाग का अध्ययन करने के कारण अंग हैं।

५. अध्ययन सामग्री का अन्तर—भाषाविज्ञान में भाषा मात्र का अध्ययन करना पड़ता है। अतएव उसके अध्ययन की सीमाएँ व्यापक हो जाती हैं जबकि व्याकरण किसी एक भाषा को ही अपने अध्ययन का क्षेत्र बनाता है तो उसकी अध्ययन की सीमाएँ सीमित हो जाती हैं। आधुनिक युग में व्याकरण के मुख्य विवेच्यविषय भाषा की रूपरचना, वाक्यरचना आदि हैं। परन्तु भाषाविज्ञान ध्वनि, अर्थ, व्युत्पत्ति और लिपि आदि की मीमांसा करता है।

उपर्युक्त अध्ययन के सहारे निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि भाषाविज्ञान और व्याकरण दोनों ही अपने अध्ययन का क्षेत्र भाषा रखते हुए भी विशिष्ट गति-विधियों के द्वारा पर्याप्त अन्तर रखते हैं।

भाषाविज्ञान और साहित्य—भाषाविज्ञान तथा साहित्य का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। (१) भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र साहित्य पर ही निर्भर करता है। भाषाविज्ञान में किसी भाषा के जीवित तथा पूर्ववर्ती साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। (२) भाषाविज्ञान शब्दों की उत्पत्ति तथा विकास को समझाता है जबकि साहित्य में शब्दों के सुन्दर प्रयोग, तथा कम से कम शब्दों में अधिकतम सौन्दर्यानुभूति को बतलाया जाता है (३) भाषाविज्ञान में भाषा के स्वरूप का अध्ययन किया जाता है जबकि साहित्य में भाषा पर अर्थ की दृष्टि से अध्ययन

किया जाता है और भावों एवं विचारों को समझा जाता है। भाषाविज्ञान में भाषा के गठन आदि का विचार किया जाता है। (४) भाषाविज्ञान तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन करते समय साहित्य द्वारा रक्षित भाषाओं के प्राचीन रूप की जानकारी करता है। विभिन्न साहित्यों द्वारा ग्रीक, लैटिन तथा संस्कृत के प्राचीन स्वरूप की रक्षा की गई, उन्हीं के आधार पर तुलनात्मक भाषाविज्ञान को प्रोत्साहन मिला। वैदिक संस्कृत का विकास कालान्तर में पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि रूपों में हुआ; यह उन भाषाओं के उपलब्ध साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है। (५) किसी भाषा के रूप, अर्थ वाक्यविधान आदि में होने वाले क्रमिक परिवर्तनों को उस भाषा के साहित्य द्वारा ज्ञात करते हैं, भाषाविज्ञान में इन्हीं पर विचार करते समय रूपविचार, ध्वनिविचार, वाक्यविचार आदि के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। (६) जिन भाषाओं का प्राचीन साहित्य उपलब्ध नहीं है उनका क्रमिक विकास नहीं बताया जा सकता। भाषाओं का प्राचीन रूप जानने के लिए भाषाविज्ञान को भाषाओं के प्राचीन साहित्य पर निर्भर रहना पड़ता है। (७) संसार की प्राचीन भाषाओं संस्कृत, ग्रीक, लैटिन का महत्त्व उनके प्राचीन साहित्य उपलब्ध होने के कारण है जिनके क्रमिक विकास के अध्ययन से अन्य भाषाओं की उत्पत्ति एवं विकास तथा इन तीनों भाषाओं का पारस्परिक सम्बन्ध तथा किसी एक मूल भाषा से उत्पत्ति पर विचार सम्भव हो सका है। भाषाविज्ञान के प्रयत्नों से ही ज्ञात हुआ कि अवेस्ता तथा ऋग्वेद की भाषा में कितना साम्य है तथा प्राणवान् या शक्तिमान् का प्रतीक असुर भारतीय साहित्य में किस प्रकार असुर (दानव) में बदल गया। (८) प्राचीन विस्मृत साहित्यिक निधि को भाषाविज्ञान के प्रयासों से विश्व जान सका है। चित्रलिपि का मिस्र का साहित्य, कीलाक्षर लिपि का असीरी साहित्य तथा 'गिलगिमेश' नामक असीरी महाकाव्य को विश्व के सामने भाषाविज्ञान के कारण प्रस्तुत किया जा सका।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषाविज्ञान तथा साहित्य दोनों ही एक दूसरे के सहायक हैं।

भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान :—भाषाविज्ञान तथा मनोविज्ञान का निकटतम सम्बन्ध है। मनुष्य के मन के भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है। भावों तथा विचारों का सम्बन्ध मनुष्य के मन तथा मस्तिष्क से होता है, जिनका अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान तथा मनोविज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषा से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान मनोविज्ञान के सहारे किया गया है। अर्थविचार तथा वाक्यविचार के अध्ययन में मनोविज्ञान से अत्यधिक सहायता प्राप्त की गई है। भाषा के वैज्ञानिक विवेचन द्वारा हम प्राचीन मनुष्यों के मन के भावों से परिचित हो जाते हैं। महान् सम्राट् अशोक ने शिलालेखों

पर अपने लिए 'देवानां प्रियः' विशेषण को उत्कीर्ण कराया; यही शब्द जो कभी अच्छे अभिप्राय से प्रयुक्त किया गया बाद में 'मूर्ख' शब्द का पर्याय मान लिया गया। इस प्रकार इस शब्द से यह जाना जा सकता है कि जो शब्द बुद्ध धर्म के प्रचारक को अधिक प्रिय था वह ब्राह्मणों द्वारा तिरस्कृत एवं हेय समझा गया। इसी प्रकार 'महापण्डित' शब्द का अर्थ भी बदलकर मूर्ख अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा। अर्थ विचार की दृष्टि से समाज में प्रचलित शब्द 'दुकान बढ़ाना' एवं 'दीपक बढ़ाना' उल्लेखनीय हैं। 'दुकान बढ़ाना' का अर्थ 'दुकान बन्द करना' तथा 'दीपक बढ़ाना' शब्द का अर्थ दीपक बुझाना ग्रहण किया जाता है। इन शब्दों के प्रयोग से अमंगल के विपरीत मंगल कामना कार्य करती है। तमिल लोग 'नान् पोयविट्टु वरुगिरेन्' कहते हैं जिसका अर्थ होता है--मैं जाकर आता हूँ अर्थात् भाव यह है 'मैं जाता हूँ।' इसी तरह बंगाल में जाते समय कहते हैं कि 'आभि आशि' (मैं आता हूँ) जिसमें घर से बाहर जाकर पुनः सकुशल घर लौटने का भाव छिपा है। इसी प्रकार देहावसान के पश्चात् शोक भावना कम करने या उस स्थिति से ध्यान बटाने के लिए देहावसान के लिए 'गोलोकविहारी' या 'स्वर्गीय' जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इन शब्दों के प्रयोग में दुःख की अनुभूति को कम करने की मनोभावना छिपी है। द्रविड़ 'पिल्ले' या पिल्लई' शब्द अपने अर्थ को बदलकर हिन्दी क्षेत्रों में 'पिल्ला' (कुत्ता का बच्चा) हो गया।

ध्वनि परिवर्तन के कारण जानने में भी मनोविज्ञान सहायता करता है।

भाषाविज्ञान और तर्कशास्त्र--भाषाविज्ञान और तर्कशास्त्र में अधिक सम्बन्ध नहीं है। फिर भी भाषाविज्ञान व्याख्या प्रधान है अतः व्याख्या के लिए तर्क का भी आश्रय लिया जाता है। 'निरुक्त' में अर्थविज्ञान पर विचार करते समय यास्क ने तर्कशास्त्र की सहायता ली है। तर्क करते समय उपयुक्त शब्दचयन तथा वाक्य-रचना में भाषा का सहारा लिया जाता है। भाषाविज्ञान में भाषा के स्वरूप, उत्पत्ति तथा भाषा के विकास का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है जबकि तर्कशास्त्र में तर्कों की प्रमुखता होती है। इस प्रकार भाषाविज्ञान तथा तर्कशास्त्र का परस्पर थोड़ा-बहुत सम्बन्ध अवश्य है।

भाषा-विज्ञान और भौतिकशास्त्र :--ध्वनि मुख से उच्चरित होने के बाद शून्य में तरंगों के रूप में चलकर सुनने वाले के कानों तक पहुँचती है। ध्वनि के फैलने, चलने तथा ग्रहण करने से सम्बन्धित अनेक बातों का समाधान भौतिकशास्त्र प्रस्तुत करता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान भौतिकशास्त्र से सम्बन्धित है।

भाषाविज्ञान और शरीर-विज्ञान :--शब्दों की उत्पत्ति मानव शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों की सहायता से होती है। वाग्यंत्र (Mouth cavity), नासिकाविवर, कण्ठमार्ग, स्वरयंत्र, स्वरतन्त्री, तालु, जिह्वा, ओठ, फेफड़े आदि शारीरिक अवयवों की

सहायता से शब्दोच्चारण किया जाता है। इस प्रकार शरीरविज्ञान ध्वनियों की उत्पत्ति के सहायक अवयवों को बताकर भाषा-विज्ञान की सहायता करता है।

भाषाविज्ञान और मानवविज्ञान :—मानव विकास के विविध अंगों का मानव-विज्ञान में अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत मनुष्य की सामाजिक रीतियों, मान्यताओं, मनोदशाओं, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, धार्मिक विश्वासों, तीज-त्यौहारों आदि की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। इन बातों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव भाषाविज्ञान पर पड़ता है। जैसे शव को 'मिट्टी', चेचक को 'माता', मल विसर्जन को टट्टी (आड़) जाना, दिशा या मैदान, निपटने या फराकत, नदी जाना, कहते हैं। जादू-टोने से बचाने के लिए बच्चों के सही नाम के स्थान पर प्रतीक नाम घसीटे, बच्चू, दुखई, गरीबे आदि नामों से पुकारते हैं। इस प्रकार भाषाविज्ञान मानवविज्ञान से अनेक शब्दों के विश्लेषण में सहायता लेता है।

भाषाविज्ञान और भूगोल :—भाषाविज्ञान और भूगोल का परस्पर गहन सम्बन्ध है। किसी भाषा के विकास, ध्वनि उच्चारण तथा प्रसार क्षेत्र पर भौगोलिक परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ता है। 'ऋ' का वास्तविक उच्चारण किस तरह होता है। स के स्थान पर ह तथा ष के स्थान ख का उच्चारण क्यों होने लगा। वैदिक काल में आर्यों का प्रिय पेय 'सोम' की उत्पत्ति कहाँ होती थी ? तथा अब क्यों नहीं होती ? इसका उत्तर भूगोल में निहित हो सकता है। सैन्धव 'अश्व' तथा 'लवण' किस प्रकार कहे जाने लगे ? यह भाषाविज्ञान भूगोल की सहायता से ज्ञात करता है। पहाड़ों तथा वनों, मरुस्थलों में मनुष्य का परस्पर कम सम्पर्क होने से भिन्न-भिन्न भाषायें तथा बोलियाँ विकसित हो जाती हैं। सिन्ध प्रदेश कभी हरा-भरा था—यह प्राचीन साहित्य से जाना जाता है। अब वहाँ की भौगोलिक दशायें बदल गई हैं। मनुष्य को उच्चारण पर पड़ने वाले भौगोलिक प्रभाव को इस प्रकार देखा जा सकता है कि उत्तर भारत के लोग दक्षिण भारत की अनेक द्रविड़ ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं कर सकते। भाषाविज्ञान से भी भूगोल के अध्ययन में सहायता मिलती है।

भाषाविज्ञान एवं समाजशास्त्र :—भाषा का व्यवहार समाज में किया जाता है। समाजशास्त्र में विभिन्न मानव समाजों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान और समाजशास्त्र एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। भाषा के द्वारा सामाजिक मान्यताओं का परिचय होता है। दुकान बन्द करना न कहकर 'दुकान बढ़ाना', दीपक बुझाना न कहकर 'दिया बढ़ाना' सामाजिक मान्यताओं के कारण कहलाता है। पशुओं के स्तन के लिए 'थन' कहते हैं जबकि नारी के स्तन 'स्तन' ही कहलाते हैं। मादा पशु 'गाभिन' कहलाती है जबकि स्त्री गर्भिणी। पशुओं के लिए बियाना या ब्याना (बच्चा उत्पन्न करना) कहा जाता है जबकि स्त्री के लिए बच्चा होना

कहा जाता है। इस प्रकार समाज के परम्परा सूचक एवं मान्यताओं के प्रतीक शब्दों का प्रयोग भाषा में किया जाता है, जिसका भाषाविज्ञान में अध्ययन किया जाता है। भाषाविज्ञान भी समाजशास्त्र की सहायता करता है, क्योंकि अर्थ-भेद सामाजिक कारणों से होता है जिसको भाषाविज्ञान की सहायता से समझने में सहायता मिलती है।

भाषाविज्ञान और इतिहास :—भाषाविज्ञान एवं इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषाविज्ञान में भाषाओं का तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन किया जाता है। भाषा की उत्पत्ति, विकास, भाषा में होने वाले परिवर्तनों को समझने में इतिहास का सहारा लिया जाता है। भाषा में राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक कारणों से परिवर्तन होते हैं। राजनैतिक परिवर्तन राज्य परिवर्तन एवं विजेता लोगों की भाषा के कारण उत्पन्न होते हैं। मुसलमानों एवं अंग्रेजों के कारण भारतीय भाषाओं में हजारों शब्द अंग्रेजी, अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली, फ्रेन्च आदि के पाये जाते हैं, इसके विपरीत अंग्रेजी में भी हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द प्रवेश कर गए हैं। भारतीयों का शासन होने से ही थाईलैण्ड, कम्बोडिया, सुमात्रा, जावा आदि स्थानों की भाषा में संस्कृत शब्द पाये जाते हैं।

धार्मिक कारणों से भाषा के शब्दों पर प्रभाव पड़ता है। हिन्दुओं की भाषा में संस्कृत शब्द अधिक पाये जाते हैं जबकि मुसलमानों की भाषा में अरबी, फारसी के शब्द अधिक होते हैं। भक्तिकाल में ब्रजभाषा तथा अवधी के अनेक शब्द गुजराती, राजस्थानी बंगाली आदि भाषाओं में प्रवेश कर गए।

सामाजिक कारणों से भाषा प्रभावित होती है। हिन्दी में माँ, पिता, भाई, बहिन, साला, बहनोई, मौसा, फूफा, मामा, सास, ससुर शब्द प्रचलित हैं जबकि अंग्रेजी में अलग-अलग शब्द नहीं पाये जाते हैं। इस प्रकार शब्दों की उत्पत्ति समाज व्यवस्था के अनुसार पाई जाती है। भाषा-विज्ञान द्वारा भाषा के होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। इतिहास द्वारा हमें भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्दों के मिश्रण का पता चलता है। भाषाविज्ञान इतिहास की सहायता करता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान तथा इतिहास का निकटतम सम्बन्ध है।

भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र :—भाषाविज्ञान में भाषा से संबन्धित सभी प्रश्नों पर विचार करना पड़ता है। भाषा से जुड़े हुए कुछ प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं तथा कुछ कम महत्त्व के। अतः भाषा से संबन्धित अध्ययन के (क) प्रधान तथा (ख) गौण दो विभाग किए गये हैं। प्रधान विभाग के अन्तर्गत वाक्यविज्ञान (Syntax), रूपविज्ञान (Morphology), ध्वनिविज्ञान (Phonology), अर्थविज्ञान (Semantics) सम्मिलित किए जाते हैं। गौण विभागों में भाषा की उत्पत्ति, भाषाओं का वर्गीकरण, व्युत्पत्तिशास्त्र, शब्दसमूह लिपि, प्रागैतिहासिक खोज आदि आते हैं।

(क) प्रधान विभाग

वाक्य-विज्ञान (Syntax)– भाषा मनुष्य के विचार विनिमय का साधन है। विचार वाक्यों द्वारा प्रकट किए जाते हैं। किन्हीं दो भाषाओं के वाक्यों की तुलना को वाक्य विचार या वाक्यविज्ञान कहते हैं। इसके अन्तर्गत वाक्यरचना पर विचार किया जाता है। वाक्यविचार का अध्ययन ३ प्रकारों से किया जाता है- (१) वर्णनात्मक वाक्यविचार, (२) ऐतिहासिक वाक्यविचार तथा (३) तुलनात्मक वाक्यविचार। इनमें वर्णनात्मक वाक्य विचार में वाक्य का अध्ययन साधारण रूप से किया जाता है। ऐतिहासिक वाक्यविज्ञान में वाक्यरचना का इतिहास तथा तुलनात्मक वाक्य-विज्ञान में दो भाषाओं के वाक्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार वाक्य-विज्ञान में वाक्य का अध्ययन पदक्रम, अन्वय, परिवर्तन आदि की दृष्टि से किया जाता है। वाक्य-विज्ञान को 'वाक्य-विचार' एवं 'वाक्य-रचना शास्त्र' भी कहा जाता है।

रूप-विज्ञान (Morphology) :– इसे पद-विज्ञान या पद-रचना-शास्त्र भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत भाषा का रूपात्मक अध्ययन किया जाता है। इसमें उन बिषयों का अध्ययन किया जाता है जिनसे शब्द-रचना होती है, । इसमें मुख्य रूप से धातु, उपसर्ग, प्रत्यय, शब्द या विभक्ति आदि का विवेचन किया जाता है। पद-विज्ञान का अध्ययन भी वाक्यविज्ञान की ही भाँति वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक इन तीनों प्रकार से किया जा सकता है। रूपविज्ञान को पद विज्ञान, 'पद-रचना-शास्त्र', 'रूप-विचार' आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है।

ध्वनि-विज्ञान :–(Phonology) ध्वनियों की सहायता से ही पद या शब्द की रचना होती है, अतः भाषा-विज्ञान में ध्वनियों का विशेष महत्त्व है। ध्वनि-विज्ञान में ध्वनि-परिवर्तन, ध्वनि-विकास, ध्वनि से संबन्ध रखने वाले अवयव (अर्थात् मुखविवर, नासिकाविवर, स्वरतन्त्री, ध्वनियन्त्र आदि), ध्वनि उत्पन्न होने की क्रिया, ध्वनि लहरों का प्रसरण, ध्वनि का सुना जाना आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। ध्वनि-विज्ञान का अध्ययन सामान्य रूप से, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक रूप से किया जाता है। डा० गुणे के अनुसार ध्वनि-विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनियों का उच्चारण, अक्षर रूप में उनका संयोग, उन अक्षरों का शब्द रूप में संयोग तथा अन्ततः शब्दों से वाक्यों का निर्माण आदि भाषा-विषयक विभिन्न तत्त्वों पर विचार किया जाता है। इसे ध्वनि-विचार भी कहते हैं।

अर्थ-विज्ञान (Semantics)–शब्दों का अर्थ ही विचार-विनिमय के साथ ग्राह्य होता है। अर्थ ही भाषा की आत्मा है। भाषा-विज्ञान में भाषा अध्ययन विषय है, अतः भाषा की आत्मा अर्थ पर आवश्यक रूप से विचार किया जाता है। अर्थ विज्ञान में शब्दों का अर्थ से सम्बन्ध, अर्थ-परिवर्तन, अर्थ-परिवर्तन के कारण, अर्थ-ध्वनि-संबन्ध,

पर्याय, विलोम आदि बातों पर विचार किया जाता है। अर्थ-विचार वर्णनात्मक, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक रूप से किया जा सकता है। किस प्रकार शब्द अपने अर्थ को छोड़कर दूसरा अर्थ ग्रहण कर लेता है, कैसे अर्थ का संकुचन एवं विस्तारण होता है ? आदि का विचार किया जाता है। 'अश्व' का अर्थ घोड़ा ही क्यों हुआ ? 'उपाध्याय' किस प्रकार 'ओझा' या 'झा' हो गए इनका अध्ययन अर्थ-विज्ञान के सहारे प्रस्तुत किया जा सकता है। इसे 'अर्थ-विचार' या 'अर्थ उद्बोधन शास्त्र' भी कहते हैं।

इन चार प्रधान विभागों के अतिरिक्त डा. भोलानाथ तिवारी ने एक अन्य पांचवाँ शब्द-विज्ञान' Wordology भी माना है। 'शब्द-विज्ञान' के अन्तर्गत शब्दों का वर्गीकरण शब्दसमूह में परिवर्तन के कारण, शब्दों का तुलनात्मक विवेचन, कोशविज्ञान, शब्दों की व्युत्पत्ति आदि का अध्ययन किया जाता है।

(ख) गौण विभाग

(१) **भाषा की उत्पत्ति–** भाषाविज्ञान का सबसे अधिक स्वाभाविक तथा आवश्यक अध्ययन 'भाषा की उत्पत्ति' का है। भाषा की उत्पत्ति के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने प्रकार से मत व्यक्त किए हैं। कुछ विद्वान् भाषा की उत्पत्ति पर विचार करना भाषाविज्ञान के अन्तर्गत स्वीकार नहीं करते, किन्तु यह अनुचित है कि हम भाषा का हर प्रकार से विवेचन करें किन्तु उत्पत्ति के विषय पर मौन रहें। भाषा की उत्पत्ति को बताना एक कठिन कार्य है। सभी के मतों में कोई न कोई दोष अवश्य रहा है। भाषा-विज्ञान में भाषा की उत्पत्ति बतालाने का विवेचन किया जाता है।

(२) **भाषाओं का वर्गीकरण–** इस विभाग में भाषाओं का तुलनात्मक तथ ऐतिहासिक अध्ययन करके भाषा का वर्गीकरण किया जाता है तथा यह निश्चित किया जाता है कि भाषा किस कुल की है। भिन्न भिन्न भाषाओं का अध्ययन वाक्य-विज्ञान, रूप-विज्ञान, ध्वनि-विज्ञान तथा अर्थविज्ञान आदि बातों पर विचार करके किया जाता है। भाषाओं को आकृतिमूलक और पारिवारिक वर्गीकरण में बाँटना भाषा-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण कार्य है।

(३) **व्युत्पत्तिशास्त्र** (Etymology)–इसके अन्तर्गत शब्द के पूरे जीवन का इतिहास तथा उसमें होने वाले बाह्य एवं आन्तरिक परिवर्तनों पर विचार किया जाता है। इसमें ध्वनि, अर्थ, रूप आदि पर भी विचार किया जाता है। वस्तुतः व्युत्पत्ति शास्त्र से ही भाषा-विज्ञान का प्रारम्भ माना जाता है।

(४) **शब्द-समूह** (Vocabulary)–इसके अन्तर्गत किसी भाषा के नये शब्दों का निर्माण, शब्द-समूह में परिवर्तन तथा उसके कारण विदेशी शब्दों का प्रचलन आदि बातों पर विचार किया जाता है।

(५) **लिपि** (Script):–भाषा के लिखित रूप के लिए किसी न किसी लिपि की आवश्यकता होती है । लिपि के बिना भाषा-साहित्य सुरक्षित रहना अत्यन्त कठिन है। अत: भाषा का लिपि से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी से भाषा-विज्ञान में लिपि की उत्पत्ति, विकास, लिपि का वर्तमान तथा भविष्य, लिपि की उपादयेता, ध्वनि-विज्ञान की सहायता से लिपि सुधार आदि का अध्ययन किया जाता है।

(६) **प्रागैतिहासिक खोज** (Linguistic Palaeontology) or (Urgeschichte)– इसके अन्तर्गत भाषा के आधार पर प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। भाषाविज्ञान ने मानव को प्राचीन काल के सम्बन्ध में जानने में सहायता दी है। इस पर अभी विस्तृत अध्ययन नहीं हुआ परन्तु भविष्य में अधिक फलप्रद परिणाम निकलने की आशा है।

(७) **भाषाविज्ञान का इतिहास**:–भाषाविज्ञान का किन परिस्थितियों में विकास हुआ ? किस २ देश में किन २ भाषाओं पर कार्य किया गया ? भारत में इस पर किए गए कार्यों को दो भागो में बाँटा गया है- (१) भारतीय विद्वानों द्वारा भाषाविज्ञान पर किए गए कार्य एवं (२) पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किए गए कार्य। ऊपर वर्णित प्रधान एवं गौण विभागों के अतिरिक्त भाषाविज्ञान के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का अध्ययन किया जाता है–

(१) भाषा, भाषा की प्रकृति, विकास तथा उसमें अनेक रूप जैसे बोली, उपभाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, आदि।

(२) भाषा के विकास में रुकावट डालने वाले कारण।

(३) किसी वर्तमान भाषा के अध्ययन तथा अध्ययन वस्तु एकत्र करने की प्रणाली आदि का विवेचन।

(४) सुरविज्ञान (Tonetics), ग्लासे मेटिक्स (Glossematics), नामविज्ञान (Onomatology), शैलीशास्त्र (Stylistics), बोली-विज्ञान (Dialectology), जाति भाषाविज्ञान (Ethnolinguistics) आदि का भी अध्ययन किया जाता है।

भाषाविज्ञान की उपयोगिता तथा प्रयोजन:–भाषा मनुष्य के विचार विनिमय का साधन है। अत: भाषाविज्ञान में सभी की रुचि स्वाभाविक है। सम्प्रति भाषा-विज्ञान का बड़ी तीव्रता से विकास हो रहा है, जो इस बात का द्योतक है कि भाषा विज्ञान की उपयोगिता एवं महत्त्व बढ़ रहा है। भाषाविज्ञान के अध्ययन से कई प्रकार के लाभ होते हैं जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं –

(१) भाषा-विज्ञान द्वारा चिर परिचित भाषा के सम्बन्ध में जिज्ञासा की दृष्टि होती है।

(२) भाषा-विज्ञान द्वारा प्राचीन साहित्य का अर्थ, उच्चारण तथा प्रयोग सम्बन्धी

अनेक समस्याओं का समाधान प्राप्त हो जाता है ।

(३) भाषाविज्ञान द्वारा ऐतिहासिक, विशेषतः प्रागैतिहासिक, संस्कृति और सभ्यता के विषय में ज्ञान होता है ।

(४) भाषा-विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र किसी एक भाषा का न होकर संसार की सभी भाषाओं में है । अतः विभिन्न भाषाओं के अध्ययन से विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास होता है ।

(५) भाषा-विज्ञान किसी जाति अथवा पूरी मानवता के मानसिक विकास की चिन्तन धारा को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करता है ।

(६) भाषा-विज्ञान से अनेक शास्त्र किसी न किसी प्रकार सहायता प्राप्त करते हैं । मनोविज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र; भूगोल, शिक्षाशास्त्र, दर्शनशास्त्र, व्याकरण आदि भाषाविज्ञान से उपकृत होते हैं ।

(७) भाषाविज्ञान की सहायता से किसी भाषा के व्याकरण, कोश अथवा लिपि में सहायता प्राप्त होती है ।

(८) भाषाविज्ञान की सहायता से भाषा तथा लिपि आदि में शुद्धता बनाये रखने में परिवर्तन या सुधार किया जा सकता है ।

(९) भाषा-विज्ञान की सहायता से टंकण मशीन, अनुवाद करने वाली मशीन आदि यंत्र विकसित करने में सहायता प्राप्त होती है ।

(१०) भाषा-विज्ञान के अध्ययन से एक विश्वभाषा (एसपरैंतो) के विकास में सहायता प्राप्त हुई है ।

(११) विदेशी भाषा सीखने में भाषा-विज्ञान सहायक होता है ।

(१२) भाषा-विज्ञान की सहायता से भाषा के भविष्य में विकास, लिपि का विकास आदि का पहिले से ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

(१३) भाषाविज्ञान ध्वनि-उच्चारण, ध्वनि यंत्र के कार्य, ध्वनि विपर्यय, ध्वनि-उच्चरण के दोष तथा उनके निराकरण आदि में सहायता प्रदान करता है ।

(१४) भाषाविज्ञान की सहायता से छात्रों की अन्वेषण प्रवृत्ति में वृद्धि होती है और बुद्धि का विकास होता है ।

२ | भाषा-विज्ञान का इतिहास

भाषा पर अत्यन्त प्राचीन काल से ही अध्ययन होता चला आ रहा है। संसार में सबसे प्राचीन अध्ययन भारतवर्ष की प्राचीन साहित्यिक निधि में पाया जाता है। भारत के अतिरिक्त अरब, चीन, जापान आदि देशों में भाषा का अध्ययन किया गया। वर्तमान समय में यूरोप और अमेरिका में भाषाविज्ञान पर पर्याप्त कार्य किया गया है।

भारत में भाषा पर अध्ययन 'भाषाविज्ञान' के नाम से न होकर अन्य रूपों में होता रहा है। भारतीय प्राचीनतम साहित्य वैदिक साहित्य में भाषा के चिन्तन का मूल प्राप्त होता है। कृष्ण-यजुर्वेद संहिता में देवों के द्वारा इन्द्र से की गयी प्रार्थना कि 'हम लोगों के कथन को टुकड़ों में बांट दीजिए,' यह प्रकट करती है कि वाक्य को विभाजित किया जा सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में व्यावहारिक रूप में भाषा सम्बन्धी कार्य उपलब्ध होते हैं। पदपाठ, प्रातिशाख्य, शिक्षा, निघण्टु, निरुक्त आदि भाषा के रूप की विवेचना करते हैं। 'निरुक्त' अर्थ विचार की दृष्टि से सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसी में यास्क ने उल्लेख किया है कि प्रत्येक संज्ञा की व्युत्पत्ति किसी न किसी धातु से है। प्राचीन समय में भाषा या साहित्य संबन्धी प्रयत्न धार्मिक भावना से प्रेरित होकर होता था। भारत में धार्मिक निधि के रूप में वैदिक मंत्रों को सुरक्षित रखने के कई श्लाघनीय प्रयास किए गए। शनैः शनैः वैदिक भाषा जनभाषा न होकर उससे दूर हो गयी तब उसे समझने के प्रयासों में भाषा-विज्ञान का बीज निहित था। अतः यह कहना कि भाषाविज्ञान का जन्म १९वीं शताब्दी में यूरोप में हुआ, अनुचित है क्योंकि भारत में इस दिशा में शताब्दियों से कार्य होता रहा है।

भारत में भाषा-विज्ञान सम्बन्धी प्राचीन कार्य— भारत में भाषा पर किए गये प्राचीन कार्य वैदिक काल से लेकर १७वीं शताब्दी तक सम्मिलित किए जाते हैं। **वेद**-वेद भारतीय साहित्य की सबसे प्राचीन निधि हैं, जिनमें भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं। वेदों को श्रुति कहा जाता है क्योंकि शताब्दियों

तक वेदों का मौखिक रूप वंश परम्पराया चलता रहा। भारतीय मनीषियों ने वेदों के रूप, वैदिक भाषा तथा ध्वनियों को विशुद्ध रखने के लिये विभिन्न वर्गीकरण किए। शब्दों के पदपाठ बनाये। वैदिक शब्दों के उच्चारण पढ़ने-पढ़ाने आदि प्रयोजनों के लिए 'शिक्षाशास्त्र को बनाया। वेद-पाठ भेद को व्यवस्थित रखने के लिए प्रातिशाख्यों का निर्माण हुआ। शब्दों के क्रम, वाक्य रचना आदि के लिए व्याकरण की रचना की गई। भिन्न-भिन्न शब्दों के समुचित अर्थ को जानने के लिए निरुक्त बनाया गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वेदों के छः अङ्गों-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष में से शिक्षा निरुक्त तथा व्याकरण भाषाविज्ञान से सम्बन्धित तथ्य हैं।

ब्राह्मण तथा आरण्यक– संहिताओं के बाद की कृतियों को 'ब्राह्मण-ग्रन्थ' कहा जाता है। इन ग्रन्थों में कहीं-कहीं शब्दों के अर्थ समझाने के प्रयत्न किए गए हैं, जो अल्पमात्रा में है किन्तु इनसे ब्राह्मण ग्रन्थों में भाषा के अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक अध्ययन का पता चलता है। कृष्ण-यजुर्वेद-संहिता में देवों द्वारा इन्द्र से प्रार्थना करना की हम लोगों के कथन को दो टुकड़ों में विभाजित कर दें, भाषा विश्लेषण का प्रयास कहा जा सकता है; यथा–"वाग्वै पराच्यव्याकृता वदन्ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्वीति, सोऽब्रवीद्वरं वृणै मह्यं चैवेष वायवे च सह गृह्लता इति तस्मादैन्द्रवायवः सह गृह्यते तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्तस्मादियं व्याकृता वागुद्यते।" ब्राह्मण ग्रन्थों में खण्ड आदि का कार्य प्रायः अनुमान के सहारे किया है, जैसे 'अपाप' का खण्ड 'अ+पाप' किया गया। फिर इतना तो कहा जा सकता है कि विश्व में यह वात्वर्थ को समझने का प्रथम प्रयास था। आरण्यकों में भी भाषाविज्ञान से संबन्धित सामग्री मिलती है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में प्रैष, मानुष, जाया तथा तैतरीय ब्राह्मण में अश्व, नक्षत्र आदि शब्दों पर प्रकाश डाला गया है।

पदपाठ– वैदिक काल में पदपाठ के द्वारा भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ हो गया था। पदपाठ के रचयिता शाकल्य ऋषि थे। इन्होंने सर्वप्रथम मंत्रों को पदों (शब्दों) में विभाजित किया था। प्रत्येक पद एक दूसरे से अलग प्रस्तुत किया गया है तथा समास विग्रह और सन्धि भी किया गया है। स्वराघात तथा सन्धियों पर भी विचार किया गया है। शाकल्य ऋषि ने ऋग्वेदीय पदपाठ, गार्ग्य ने माध्यन्दिन यजुर्वेदीय एवं सामवेदीय पदपाठ प्रस्तुत किए। पदपाठ संस्कृत भाषा के विवेचन में प्रमुख प्रयत्न था।

प्रातिशाख्य– वैदिक मन्त्रों की उच्चारण शुद्धता की दृष्टि से प्रातिशाख्य रचे गए। प्रत्येक वेद की शाखाओं के अनुसार हर शाखा के शब्द, ध्वनि आदि का वर्गीकरण प्रातिशाख्यों में प्रस्तुत किया गया। प्रातिशाख्यों के प्रमुख उद्देश्य थे (१) अपनी-

अपनी संहिताओं के मूल उच्चरण को सुरक्षित रखना। इस उद्देश्य के लिए मात्रा काल, स्वराघात तथा उच्चारण सम्बन्धी विश्लेषण हुआ। (२) स्वर और व्यंजन के उच्चारण सम्बन्धी रूप की विवेचना की गई जो लगभग उसी प्रकार वर्तमान काल में प्रचलित है। (३) प्रातिशाख्यों में पदों को नाम (संज्ञा), आख्यात, उपसर्ग और निपात इन ४ चार भागों में बांटा गया। प्रमुख प्रातिशाख्य इस प्रकार हैं– ऋग्वेद पर 'ऋक्-प्रातिशाख्य', कृष्ण-यजुर्वेद पर 'तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य' शुक्ल-यजुर्वेद पर 'वाजसनेयी प्रातिशाख्य' या 'कात्यायनीय-प्रातिशाख्य', सामवेद पर 'ऋक्-तन्त्र व्याकरण' और अथर्ववेद पर 'अथर्व-प्रातिशाख्य'। **शिक्षा**– संस्कृत साहित्य में ध्वनि संबन्धी विश्लेषण प्रातिशाख्यों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी हुआ है, जिन्हें शिक्षा-शास्त्रों के नाम से सम्बोधित करते हैं। इस प्रकार के प्रमुख ग्रन्थ ये हैं– 'पाणिनीय-शिक्षा', 'आपिशलि-शिक्षा', 'भारद्वाज-शिक्षा', 'कौहलि-शिक्षा', 'शैशिरीय-शिक्षा', 'व्यास-शिक्षा', 'याज्ञवल्क्य-शिक्षा' 'सर्वसम्मत-शिक्षा' आदि। 'शिक्षा' छः वेदाङ्गों में से एक है। स्वर, व्यंजन, मात्रा, आदि भाषा सम्बन्धी विवेचना शिक्षाशास्त्रों का प्रतिपाद्य विषय है। अनुमान है कुछ 'शिक्षा-शास्त्र' प्रातिशाख्यों से पहले भी बने थे किन्तु अब जो प्राप्त हैं, वे प्रातिशाख्यों के बाद के हैं।

निघण्टु– वैदिक भाषा से जनभाषा दूर हो गयी तो वैदिक संस्कृत को अधिक बोधगम्य बनाने की दृष्टि से वैदिक शब्दों के संग्रह-ग्रन्थ बनाये गए, इन्हीं को निघण्टु कहा जाता है। इन से वैदिक शब्दों के अर्थ समझने में सहायता प्राप्त होती है। यद्यपि इन संग्रह-ग्रन्थों में शब्दों के अर्थ नहीं दिए गए किन्तु एक ही वस्तु के बोधक शब्दों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया गया है। वस्तुतः इन्हें 'वैदिक कोश' कहा जा सकता है। पहले कई निघण्टु बनाये गए किन्तु अब एक मात्र निघण्टु (यास्क रचित) प्राप्त होता है। यास्क रचित इस निघण्टु में ५ अध्याय हैं। पहले अध्याय में १७ खण्ड, दूसरे अध्याय में २२ खण्ड तथा तीसरे अध्याय में ३० खण्ड, चौथे अध्याय में ३ खण्ड तथा पाँचवें अध्याय में ६ खण्ड हैं। पहले तीन अध्यायों में शब्दों के उपलब्ध पर्यायवाचक शब्द संगृहीत हैं। चौथे अध्याय में अत्यन्त क्लिष्ट वैदिक शब्द हैं। पांचवें अध्याय में वैदिक देवों के नाम संगृहीत हैं। मैकडानेल महोदय के अनुसार यास्क के समय ५ निघण्टु उपलब्ध थे जो अब प्राप्त नहीं होते हैं।

निरुक्त– 'निरुक्त' की रचना यास्क ने की थी। यास्क को कुछ पाणिनि के बाद का बताते हैं किन्तु अब यह निश्चित हो चुका है कि ये पाणिनि के पूर्व हुए थे। यास्क ने निरुक्त में निघण्टु की व्याख्या की है। निघण्टु के हर शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ पर विचार किया गया है। इस प्रकार निरुक्त व्युत्पत्तिशास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ है। प्राचीन तथा कम प्रचलित वैदिक शब्दों को निघण्टु में संगृहीत किया गया फिर निघण्टु के उन शब्दों का वैदिक उदाहरणों द्वारा अर्थ सिद्ध किया गया है।

यास्क ने अर्थ स्पष्ट न होने वाले स्थलों को भी स्वीकार किया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि सभी शब्द किसी न किसी धातु से निष्पन्न हुए हैं। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। शब्द का अर्थ, शब्दों का इतिहास, शब्द की मूल धातु, पदों के नाम, उपसर्ग, निपात, आख्यात आदि का विश्लेषण प्राप्त होता है। निरुक्त के वर्णात्मक योग, वर्ण विपर्यय, वर्ण-विकार, वर्ण-नाश और धातु का अर्थ विस्तार ये ५ भेद माने गए हैं।' वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ। धातोस्वदर्शतिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥' निरुक्त में प्रमुखतया इन बातों पर विचार किया गया है– (१) निघण्टु के शब्दों के अर्थ को वैदिक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है। (२) निरुक्त में समकालीन या पूर्ववर्ती वैयाकरणों जैसे शाकल्य, शाकटायन आदि का उल्लेख किया गया है जिससे उस समय के भाषा सम्बन्धी कार्यों तथा अभिरुचियों का पता चलता है। (३) भाषा की उत्पत्ति, शब्द के इतिहास, अर्थ, अर्थ विस्तार आदि पर विचार किया गया है। (४) शब्दों के विश्लेषण एवं नामकरण को सुन्दर ढंग से समझाया गया है। (५) विभाषाओं की उत्पत्ति का भी उल्लेख हुआ है। (६) पदों के भेदों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। जैसे– 'पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च' आदि। (७) विभिन्न वैदिक शब्दों का तर्कपूर्ण अर्थ–प्रकाशन किया गया है। (८) संज्ञा तथा क्रिया एवं कृदन्त तथा तद्धित आदि का भी संकेत किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'निरुक्त' प्राचीन भारतीय साहित्य में भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का बहुत अच्छा प्रयास है।

पूर्व-पाणिनि वैयाकरण– यास्क मुनि के बाद कई वैयाकरणों के नाम प्राप्त होते हैं किन्तु इन लोगों की रचनायें कराल-काल के गाल में कवलित हो गयी हैं जो अब प्राप्त नहीं होती हैं। आपिशलि तथा काशकृत्स्न प्रमुख वैयाकारण थे। इनके अतिरिक्त ऐन्द्र सम्प्रदाय का भी उल्लेख पाया जाता है जो इन्द्र के नाम पर रखा गया था। वैयाकरण कैयट का नाम भी प्रमुख है। ऐन्द्र सम्प्रदाय का तमिल व्याकरणों पर अधिक प्रभाव पड़ा। तमिल के प्राचीनतम व्यकरण 'तालकाप्पियम्' में ऐन्द्र व्याकरण का उल्लेख है।

ऐन्द्रसम्प्रदाय– ऐन्द्र सम्प्रदाय को कुछ व्यक्ति प्राचीनतम मानते हैं। तैत्तिरीय संहिता में इस सम्प्रदाय के प्रर्वतक प्रमुख वैयाकरण ऋषि इन्द्र को बतलाया है। कुछ विद्वानों के अनुसार इस सम्प्रदाय को कातंत्र सम्प्रदाय भी कहते हैं। ऐन्द्र सम्प्रदाय का मुख्य क्षेत्र दक्षिण भारत रहा है। प्रमुख वैयाकरण कात्यायन इसी सम्प्रदाय के थे।

पाणिनि– 'अष्टाध्यायी' के रचयिता पाणिनि का नाम विश्व के महान् वैयाकरणों में से एक है। पाणिनि का जन्म गन्धार के शालातुर नामक स्थान पर हुआ था। इनकी माता का नाम दाक्षी था। पाणिनि के अन्य नाम 'शालातुरीय', 'दाक्षीपुत्र', 'आहिक' तथा 'शालंकि' आदि भी प्राप्त होते हैं। बृहत्कथामंजरी के आधार पर

इनके गुरु का नाम आचार्य 'वर्ष' था । मैक्समूलर तथा वेबर के अनुसार इनका जन्म ३५० ई० पू० हुआ है तथा गोल्डस्कर तथा भण्डारकर ने ५०० ई० पू० से पहले, वासुदेव शरण अग्रवाल ने ५०० ई० पू०, डा० बेलवेल्कर ने ७०० ई० पू० माना है किन्तु सत्यव्रत जी ने अपने प्रमाणों के आधार पर इनका जन्म २४०० ई० पू० माना है। पाणिनि की जन्मतिथि विवादास्पद है ।

'अष्टाध्यायी' पाणिनि की महत्त्वपूर्ण कृति है । इस तरह का उत्तम कोटि का व्याकरण विश्व की अन्य भाषाओं में नहीं मिलता है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह कृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसमें आठ अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं और प्रत्येक पाद में अनेक सूत्र मिलते हैं । अष्टाध्यायी में लगभग ४ हजार सूत्र हैं । अष्टाध्यायी का आधार भगवान् शिव द्वारा प्रदत्त १४ सूत्र हैं जो माहेश्वर सूत्र भी कहलाते हैं । ये सूत्र-अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल् हैं । इन्हीं से प्रत्याहार बनाकर और संक्षेप कर लिया जाता है । पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' अपने पूर्ववर्ती व्याकरणों से कुछ भिन्नता रखती है । 'अष्टाध्यायी' की विशिष्टतायें पाणिनि के बुद्धि कौशल को प्रकट करती है । कुछ प्रमुख विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं– (१) पाणिनि ने अष्टाध्यायी में सूत्र शैली का प्रयोग करके संस्कृत जैसी जटिल तथा दुरूह भाषा के व्याकरण को संक्षिप्त कर दिया है । (२) इन्होंने भाषा में वाक्य को प्रमुख माना है, शब्द को नहीं । (३) सभी शब्दों की उत्पत्ति कुछ धातुओं से ही हुई है जो क्रिया का अर्थ बतलाती हैं । इसमें उपसर्ग एवं प्रत्ययों की सहायता से नये शब्द बना लिए जाते हैं । (४) पाणिनि ने शब्द को सुबन्त (अव्यय सहित) तथा तिङन्त इन दो भागों में विभक्त किया है । (५) स्थान एवं प्रयत्न की दृष्टि से पाणिनि ने ध्वनियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया जो ध्वनि-विज्ञान के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है । (६) पाणिनि ने अष्टाध्यायी में लौकिक तथा वैदिक संस्कृत का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है । अष्टाध्यायी के अतिरिक्त पाणिनि ने 'धातुपाठ', 'गणपाठ', एवं 'उणादिसूत्र' जैसे ग्रन्थों की रचना की है । 'उणादिसूत्र' के विषय में विवाद है । कतिपय विद्वान् इसे पाणिनि की रचना मानते हैं तथा कुछ शाकटायन की कहते हैं । इन रचनाओं में पाणिनि ने भाषा का जो विवेचन प्रस्तुत किया है, वह भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । अष्टाध्यायी में ध्वनि, पद, वाक्य, अर्थ, आघात, आदि सभी भाषा के अङ्गों पर विचार किया है, जो एक अत्यन्त स्तुत्य कार्य है । पाणिनि का प्रभाव अत्यन्त व्यापक तथा दूरगामी सिद्ध हुआ । इनके बाद वैया-करणों के रचे व्याकरण 'अष्टाध्यायी' के सामने टिक न सके तथा काल-कवलित हो गए । पाणिनि के बाद के विद्वानों ने 'अष्टाध्यायी' पर ही आलोचनायें टीका-टिप्पणी लिखीं, स्वतन्त्र रचनाएँ सफल नहीं हुईं ।

कात्यायन–कात्यायन ऐन्द्र सम्प्रदाय के आचार्य थे। ये पाणिनि से ३ शताब्दी बाद के माने जाते हैं। पतञ्जलि के अनुसार ये दक्षिण भारत के रहने वाल थे। डा० पी० एस० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री के मतानुसार ये कौशाम्बी के रहने वाले थे। कात्यायन ने पाणिनि द्वारा रचिति १५०० सूत्रों पर वार्तिक लिखे। पाणिनि के सूत्रों में त्रुटियाँ बतलाते हुए सूत्रों में परिवर्तन करके पुनः संशोधन लिखा। कात्यायन के वार्तिकों की सहायता से सूत्रों की व्याख्या सरल शैली में प्रस्तुत की, जिससे सूत्रों को समझने में सरलता होती है। पतंजलि का मत है कि कात्यायन ने पाणिनि को कई स्थानों पर ठीक से नहीं समझा है। कुल मिलाकर कात्यायन ने चार हजार वार्तिक लिखे हैं। पतंजलि इनका नाम वररुचि बतलाते हैं तथा कात्यायन इनका गोत्र बतलाते हैं। कुछ भी हो कात्यायन के वार्तिकों का 'अष्टाध्यायी' के सूत्र समझने में अपना महत्त्व है।

पतञ्जलि–पतञ्जलि ई० पू० १५० में हुए थे। यद्यपि इनका जन्म विवादास्पद माना जाता है। इन्होंने पाणिनि अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लिखा है। डा० मोतीचन्द्र के अनुसार गोनर्द (गोंडा) में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने कात्यायन के वार्तिकों का खण्डन करते हुए पाणिनि के सूत्रों को सही माना है। महाभाष्य में भाषा का दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। पतञ्जलि ने अपने बनाये नियमों को 'इष्टि' नाम से सम्बोधित किया है। पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि संस्कृत व्याकरण में 'मुनित्रय' के नाम से जाने जाते हैं। इनके बाद टीकाकारों की प्रमुखता हो गयी।

व्याडि–पाणिनि के बाद व्याडि प्रमुख वैयाकरण हुए थे। इनकी रचना १ लाख श्लोकों की थी। किन्तु पाणिनि के व्याकरण के समक्ष वह कम प्रचलित हुई तथा बाद में उल्लेख मात्र ही रह गया।

टीकाकार–संस्कृत में समय की आवश्यकता को देखते हुए विभिन्न कालों में टीकाकारों ने टीकाएँ लिखीं, जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं–

(१) **जयादित्य एवं वामन**–ये सातवीं शताब्दी के माने जाते हैं। इनके द्वारा लिखित टीका का नाम 'काशिका' है। इसमें आठ अध्याय हैं जिसमें ५ अध्याय जयादित्य द्वारा लिखे गए बताए जाते हैं तथा शेष ३ अध्याय वामन द्वारा लिखित हैं। इसमें पाणिनि के सूत्रों को सरलता के साथ समझाया गया है।

(२) **जिनेन्द्रबुद्धि**–ये बौद्ध धर्मावलम्बी थे। इन्होंने 'काशिका' के ऊपर 'काशिका-विवरण-पंजिका' लिखी। इसे 'काशिकान्यास' भी कहते हैं। इनका ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है।

(३) **हरदत्त**–ये १२ वीं शताब्दी में हुए थे। इन्होंने भी 'काशिका' पर 'पदमंजरी' टीका लिखी थी। ये दक्षिण भारत के रहने वाले थे।

(४) **भर्तृहरि**–द्वारा महाभाष्य की टीका 'वाक्यपदीय' लिखी गई। इसमें

आगम या ब्रह्मखण्ड, वाक्यखण्ड तथा पदखण्ड या प्रकीर्ण नामक ३ खण्ड पाये जाते हैं। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ नहीं है।

(५) **कैय्यट**–कैय्यट ने 'महाभाष्य-प्रदीप' लिखकर महाभाष्य का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। कैय्यट के 'महाभाष्य-प्रदीप' पर नागोजिभट्ट ने 'प्रदीपोद्योत' नामक सुन्दर ग्रन्थ लिखा है।' 'महाभाष्य-प्रदीप' पर नारायण और ईश्वरानन्द ने भी टीकाएँ लिखीं थी। कैय्यट काश्मीर के निवासी थे तथा इनका समय १६ वीं शताब्दी माना जाता है।

कौमुदीकार–टीकाओं के पश्चात् व्याकरण को नई विधि से सुगम बनाने की दृष्टि से 'कौमुदी' बनाई गई। प्रमुख कौमुदीकार' निम्नलिखित हैं–

(१) **विमल सरस्वती**-इन्होंने अपने ग्रन्थ रूपमाला' में अष्टाध्यायी के सूत्रों को प्रत्याहार, संज्ञा, स्वर, प्रकृतिभाव, व्यंजन, विसर्ग, सन्धियाँ, सुबन्त, स्त्रीप्रत्यय तथा कारक, कृत्, तद्धित, तथा समास के क्रम से प्रस्तुत किया। प्रत्येक लकार का पृथक् विवेचन किया है। इस प्रकार अध्ययन की दृष्टि से यह बहुत उपयोगी है।

(२) **रामचन्द्र**–इनका समय १५वीं शताब्दी माना जाता है। ये दक्षिण के निवासी थे। इन्होंने 'प्रक्रिया-कौमुदी' लिखी। इस पर भी कई टीकाएँ लिखी गई जिनमें विट्ठल की 'प्रसाद', तथा शेषकृष्ण की 'प्रक्रिया-प्रकाश' प्रसिद्ध हैं।

भट्टोजिदीक्षित–इन्होंने 'सिद्धान्त-कौमुदी' की रचना की थी। इसका क्रम इतना उपयोगी सिद्ध हुआ कि विद्यार्थी-समाज में अत्यन्त प्रिय हो गयी। भट्टोजिदीक्षित ने 'सिद्धान्त-कौमुदी' पर 'प्रौढ़-मनोरमा' तथा 'बाल-मनोरमा' टीकाएँ भी लिखीं हैं। 'प्रौढ़ मनोरमा' पर जगन्नाथ की 'मनोरमा-कुचमर्दन' टीका तथा हरि दीक्षित की 'शब्दरत्न' टीका लिखीं गई।

(४) **वरदराज**–इनका समय १८ वीं शताब्दी माना जाता है। इनकी लिखीं पुस्तकें 'मध्यसिद्धान्तकौमुदी' 'लघु-सिद्धान्त-कौमुदी' तथा 'सारसिद्धान्त-कौमुदी' हैं जो भट्टोजिदीक्षित की 'सिद्धान्त-कौमुदी' को आधार बनाकर प्रस्तुत की गई हैं। वरदराज की पुस्तकों पर भी टीकाएँ लिखीं गई।

व्याकरण की पाणिनीतर शाखायें :–व्याकरण में पाणिनि शाखा के अतिरिक्त चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, सारस्वत, कातन्त्र आदि शाखायें प्रचलित रहीं हैं।

चान्द्रशाखा–इस शाखा के प्रसिद्ध वैयाकरण चन्द्रगोमिन् नाम के बौद्ध विद्वान् थे। इनका समय ५ वीं शताब्दी बताया जाता है। इस शाखा का प्रचार लंका तथा तिब्बत में अधिक था। इनका व्याकरण बहुत सुन्दर था। पुस्तक में केवल छः अध्याय हैं। इसका छोटा रूप 'बालावबोध' नाम से काश्यप द्वारा लिखा लंका में मिलता है।

जैनेन्द्र तथा शाकटायन शाखा–जैन मतावलम्बियों में जैनेन्द्र शाखा का प्रचार

था। देवनन्दी (पूज्यपाद) ने इस शाखा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'जैनेन्द्र-व्याकरण' लिखा। दूसरी शाखा शाकटायन की थी। इस शाखा के प्रमुख वैयाकरण शाकटायन थे जिनका जन्म ८ वीं शताब्दी माना जाता है। इस शाखा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ शाकटायन रचित 'शाकटायन-शब्दानुशासन' था। हेमचन्द्र के प्रभाव से यह शाखा कालान्तर में समाप्त हो गयी।

हेमचन्द्र शाखा–इस शाखा के प्रवर्तक हेमचन्द्र का जन्म ११ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। इन्होंने 'सिद्धहेमचन्द्राभिधस्वोपज्ञशब्दानुशासन' नामक ग्रन्थ लिखा जो 'शब्दानुशासन' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें ८ अध्याय तथा ३२ पाद और ४५०० सूत्र हैं। संस्कृत व्याकरण के दृष्टिकोण से महत्त्वहीन है किन्तु प्राकृत भाषाओं (महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, अपभ्रंश) के व्याकरण की दृष्टि से अच्छा विश्लेषण हुआ है। अपने ग्रन्थ पर इन्होंने 'शब्दानुशासन-बृहद्-वृत्ति' नामक टीका भी लिखी है। इसके अतिरिक्त देवेन्द्र-सूरि द्वारा लिखी 'हेमलघुन्यास' टीका प्रसिद्ध है।

कातंत्र शाखा–इसका प्रारम्भ पाणिनि व्याकरण के अनुसार हुआ है। इसमें १४०० सूत्र हैं। कार्तिकेय या कुमार की सहायता से तैयार किए जाने के कारण इसे 'कौमार-व्याकरण' भी कहते हैं। वस्तुतः यह पंडित शर्ववर्मन् द्वारा लिखा गया है। इसका प्रचार काश्मीर में अधिक हुआ था।

सारस्वत शाखा–इस शाखा में पाणिनि के ७०० सूत्रों का अध्ययन किया जाता है। प्रमुख टीकाकार अनुभूति स्वरूप थे। अन्य टीकाकार अमृतभारति, क्षेमेन्द्र, हर्ष-कीर्ति, मण्डन आदि हैं। यह शाखा १८ वीं शदी तक प्रचलित रही।

बोपदेव शाखा-इस शाखा के प्रचारक बोपदेव थे। इनका समय १३ वीं शताब्दी माना जाता है। इनका लिखा 'मुग्धबोध' व्याकरण बंगाल में अधिक प्रचलित है। नदियाँ जिला इसका प्रमुख क्षेत्र है। 'मुग्धबोध' पर रामतर्क वागीश की टीका प्रसिद्ध है।

पाली व्याकरण-संस्कृत के अतिरिक्त अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं में व्याकरण बनाये गए जो भाषाविज्ञान के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हैं। पाली के व्याकरण बौद्ध-धर्म वाले स्थानों में रचे गए। भारत, लंका, ब्रह्मा के बौद्ध विद्वानों ने अपनी अपनी शाखायें स्थापित की। इनमें कच्चायन, मोग्गलान तथा अग्गवंस प्रसिद्ध हैं।

कच्चायन–(कात्यायन)–ये ९ वीं शताब्दी में हुए थे। इनका प्रमुख ग्रन्थ 'कच्चायन व्याकरण' है। इस पर लिखी विमल बुद्धि की टीका 'न्यास' प्रसिद्ध है। 'न्यास' पर भी कुछ टीकाएँ लिखीं गयीं। इस शाखा के अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ छपद रचित 'सुतनिद्देस' तथा संघरखित का 'संबन्ध-चिन्ता' प्रमुख हैं।

मोग्गलान-मोग्गलान (मोग्गल्लायन) ने 'मोग्गलायन व्याकरण' लिखा जो कच्चायन-व्याकरण से श्रेष्ठ है। 'मोग्गलायन व्याकरण' पर पियदस्सिन ने 'पदसाधन' तथा राहुल ने

'मोग्गल्लायन पंचिकापदीय' नाम की प्रसिद्ध टीकाएँ लिखी हैं।

अग्गवंस—ब्रह्मा निवासी अग्गवंस ने 'सिद्धनीति' व्याकरण लिखा जिसका ब्रह्मा तथा लंका में प्रचार है।

प्राकृत-व्याकरण—प्राकृत भाषा में संस्कृत की तरह ही व्याकरण की रचना की गई है। इसकी दो शाखाएँ मानी जाती हैं–(१) प्रतीच्य शाखा (२) प्राच्य शाखा। (१) प्रतीच्य शाखा के सूत्र वाल्मीकि नामक विद्वान् ने रचे थे। इन सूत्रों पर त्रिविक्रम ने 'प्राकृत-व्याकरण' नामक टीका लिखी है। लक्ष्मीधर द्वारा लिखी 'शब्द-भाषा-चन्द्रिका' दूसरी महत्त्वपूर्ण टीका है। हेमचन्द्र ने भी प्राकृत भाषा पर व्याकरण 'हेमचन्द्रशब्दानुशासन' लिखा है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। 'प्राच्य-शाखा' के प्रमुख वैयाकरण 'वररुचि' थे। ये ५वीं शताब्दी में हुए थे। इन्होंने 'प्राकृत-प्रकाश' नामक ९ अध्यायों का व्याकरण लिखा है। 'प्राकृत-प्रकाश' पर 'कात्यायन ने 'प्राकृत-मंजरी' टीका लिखी है। मार्कण्डेय की 'प्राकृत-सर्वस्व' अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है। अपभ्रंश में पृथक् रूप से कोई प्रसिद्ध व्याकरण नहीं पाया जाता है। उपरिलिखित व्याकरणों में अपभ्रंश के विषय में लिखा गया है।

वैयाकरणों के अतिरिक्त नैयायिकों, साहित्यशास्त्रियों तथा मीमांसकों ने भी भाषा अध्ययन के कार्य को सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया है।

नैयायिकों (तार्किकों) के कार्य का मुख्य क्षेत्र बंगाल का नदिया जिला था। जगदीश तर्कालंकार द्वारा लिखा ग्रन्थ शब्द-शक्ति-प्रकाशिका' प्रमुख ग्रन्थ है। इसके अध्ययन से भाषा के 'अर्थ-विज्ञान' पर प्रकाश पड़ता है।

साहित्यशास्त्रियों के 'ध्वन्यालोक', 'साहित्यदर्पण', 'काव्य-प्रकाश' 'चन्द्रालोक' जैसे ग्रन्थों द्वारा भाषा के 'अर्थ-विज्ञान' का विश्लेषण किया गया है।

मीमांशकों ने शब्दों के रूप, अर्थ, वाक्य तथा वाक्यों के अर्थ आदि का विश्लेषण किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से भाषा विज्ञान सम्बन्धी कार्य होता रहा है। भाषा-विज्ञान के भिन्न-भिन्न तत्त्वों रूप, वाक्य, ध्वनि, अर्थ आदि पर कार्य हुआ है। प्रातिशाख्य और शिक्षा-शास्त्रों में ध्वनि सम्बन्धी पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में छन्दस् तथा लौकिक संस्कृत का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। प्राकृत व्याकरणों में उस समय की प्रचलित लोकभाषाओं (महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची) का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार भारत में प्राचीन समय में भाषाविज्ञान के सभी अंगों पर कार्य किया गया है जो कि वर्तमान काल में भी अत्यन्त महत्त्व रखता है।

भारतीय भाषा-विज्ञान पर नवीन कार्य—भाषाविज्ञान का नये रूप से अध्ययन यूरोपीय प्रणाली पर विकसित हुआ है। अनेक यूरोपीय भाषावैज्ञानिकों ने भारतीय

भाषाओं में भाषा-विज्ञान संबंधी कार्य किए हैं-(१) बिशप रॉबर्ट काल्डवेल (१८१४-१८९१) ने दक्षिण भारत की सभी द्रविड़ भाषाओं का गहन अध्ययन करके सन् १८५६ में 'द्रविड़ भाषाओं का 'तुलनात्मक व्याकरण' प्रकाशित कराया। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। (२) जॉन बीम्स (John Beames) (१८५५-१८७८) ने हिन्दी, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगाली भाषाओं का अध्ययन करके सन् १८७२, १८७५, और १८७९ में क्रमशः ध्वनि, 'संज्ञा तथा सर्वनाम' और 'क्रिया' शीर्षकों से 'आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' प्रस्तुत किया। इसमें आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के व्याकरणों का तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। यह भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। (३) डी० ट्रम्प (१८७२-७३) ने 'सिन्धी व्याकरण' में सिन्धी प्राकृत, संस्कृत तथा पद्यों का तुलनात्मक व्याकरण प्रस्तुत किया। १९७३ में पश्तो व्याकरण भी प्रकाशित हुआ। (४) एस० एच० केलॉग ने १८७६ में 'हिन्दी भाषा का व्याकरण' प्रकाशित कराया। इसमें खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, रजस्थानी तथा बिहारी, पहाड़ी आदि का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। डॉ० ए० रूडलफ हार्नली (१८४१-१९१८) ने भोजपुरी तथा आधुनिक आर्य भाषाओं का अध्ययन करके 'पूर्वी हिन्दी का तुलनात्मक व्याकरण' लिखा। (६) डा० सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने भाषाविज्ञान पर प्रशंसनीय कार्य किया। १८७७ ई० में बम्बई विश्वविद्यालय में भारतीय आर्य भाषाओं पर ७ व्याख्यान दिए थे जिनका प्रकाशन बहुत समय बाद १९१४ में हुआ। इसमें बहुत सी महत्त्वपूर्ण सामग्री पाई जाती है। (७) सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन को भारतीय तथा विदेशी भाषाओं का ज्ञान था। आपने 'बिहारी भाषाओं के सात व्याकरण' १८८३ से १८८७ के बीच प्रकाशित कराये तथा भाषाविज्ञान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कार्य 'भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण' आपकी रचना है जो १८९४ ई० से प्रारम्भ होकर ३३ वर्ष के पश्चात् १९२७ ई० को पूरी हुई। १९०६ में पैशाची भाषा तथा १९११ में कश्मीरी पर इन्होंने 'काश्मीरी कोश' प्रकाशित किया।

(८) **रेल्फ लिले टर्नर**-आपने ३५ वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद सन् १९३१ में नेपाली कोश' प्रकाशित कराया। सभी ने स्वीकार किया है कि यह भारतीय आर्य-भाषाओं का प्रथम नैरुक्तिक कोश है। टर्नर ने मराठी, गुजराती तथा सिन्धी पर भी कार्य किया है।

(९) 'जूल ब्लाक' नामक फ्रान्सीसी विद्वान् ने १९१९ में 'मराठी भाषा की बनावट' नामक पुस्तक लिखी। इसमें भारतीय भाषाओं का इतिहास तथा उसकी बनावट का वर्णन है। इन्होंने 'भारतीय आर्यभाषा' एवं 'द्रविड़ भाषाओं का व्याकरणिक गठन' नामक पुस्तकें भी लिखीं हैं।

आधुनिक भारतीय विद्वानों के कार्य--वर्तमान समय में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवेस्ती आदि भाषाओं के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय भाषाओं पर अनेक विद्वानों ने कार्य किए हैं। प्रमुख भाषायें तथा उन पर कार्य करने वाले निम्नलिखित हैं–

संस्कृत--संस्कृत भाषा पर कार्य करने वालों में डा० लक्ष्मण स्वरूप, वी० के० राजवादे, डा० सिद्धेश्वर वर्मा, विश्वबन्धु शास्त्री, आर० एन० दण्डेकर, ई० डी० कुलकर्णी, डा० सुकुमार सेन, बटकृष्ण घोष आदि हैं। डा० भोलाशंकर व्यास ने 'संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन' किया है। डा० कपिलदेव द्विवेदी ने 'अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन' पर कार्य किया है। अवेस्ता की भाषा पर डा० तारापुर वाला का कार्य महत्त्वपूर्ण है। डा० सूर्यकान्त शास्त्री का 'ए ग्रैमेटिकल डिक्शनरी आँव संस्कृत' का कार्य है।

पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश–पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश पर अनेक विद्वानों ने कार्य किया है। भिक्षु जगदीश काश्यप (पाली), पी० एल० वैद्य (प्राकृत), मनमोहन घोष (प्राकृत), (अलफर्ड सी० वूल्नर ने भी प्राकृत पर कार्य किया है), बापट, गुणे, उपाध्ये, हरिवल्लभ भायाणी, सुकुमार सेन, एम० एम० कत्रे सभी ने पाली भाषा पर कार्य किया है। हीरालाल जैन, प्रबोधचन्द्र बागची (अपभ्रंश) शहीदुल्ला (पाली, अपभ्रंश), बनारसीदास जैन (पंजाबी), डा० हरदेव बाहरी (लंहदा), डा० परमानन्द बहल (मुल्तानी), शाहानी (सिन्धी), कत्रे (कोंकणी), कुलकर्णी (मराठी), गाइगर (सिंहली) पं० विनायक मिश्र, गोपाल प्रहराज, पं० गोपीनाथ नन्द, गिरजाशंकर राय, गोलोक विहारी, जी० एस० राय (उड़िया) ब्रान्सन, बरुआ, बानीकान्त काकाती (असमी), डा० सुनीतिकुमार (बंगला भाषा का उद्भव तथा विकास) मजूमदार, सुकुमार सेन, हेमन्तकुमार सरकार, विजनविहारी भट्टाचार्य, ज्ञानेन्द्र मोहनदास, गोपाल हालदार, कृष्णपद गोस्वामी, प्रफुल्ल भट्टाचार्य इन सभी ने बंगाली में, टी ग्राहम वेली, डा० खजुरिया, प्यारासिंह पदम, प्रो० प्रेमप्रकाश सिंह (पंजाबी), नरसिंहराव भोलानाथ डिवाटिया, तीसडाल, केशवराम, काशीराम शास्त्री, डा० भोगीलाल, डा० सांडेसरा, बेचरदास जीवराज दोशी, डा० पी० बी० पंडित, भापाली, कान्तिलाल व्यास (गुजराती)।

हिन्दी में विभिन्न विद्वानों ने भाषाविज्ञान सम्बन्धी कार्य किए हैं। हिन्दी तथा उसकी बोलियों पर कार्य करने वाले व्यक्ति इस प्रकार हैं–हिन्दी–बीम्स, केलाग, ग्रियर्सन, श्यामसुन्दर दास, चक्रधर शर्मा 'गुलेरी', पद्मसिंह शर्मा, सुनीतिकुमार चटर्जी, डा० धीरेन्द्र वर्मा (ब्रज), कामता प्रसाद गुरु विश्वनाथ प्रसाद, डा० बाबूराम सक्सेना (अवधी), डा० उदयनारायण तिवारी (भोजपुरी) रामाज्ञा द्विवेदी (अवधी) हरिहरनिवास द्विवेदी, किशोरीदास बाजपेयी, शिवप्रसाद सिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी

(ब्रज), वाचस्पति उपाध्याय (बनारसी) गिल क्राइस्ट, सी० जे० लाल, मोइनुद्दीन कादरी (हिन्दुस्तानी), मसऊद हसन खाँ, चन्द्रबली पाण्डेय, सब्जवारी (उर्दू), रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, एम० पी० जायसवाल, (बुन्देली) विश्वनाथ प्रसाद, वाचस्पति उपाध्याय (भोजपुरी), तेसीतोरी, चटर्जी (राजस्थानी), हीरालाल काव्योपाध्याय, तैलंग (छत्तीसगढ़ी) हरिश्चन्द्र शर्मा (कौरवी), जगदेव सिंह, (बांगरू) बाबूराम सक्सेना (दक्खिनी) श्रीराम शर्मा (दक्खिनी), सुभद्र झा, जयकान्त मिश्र (मैथिली) हरिशंकर जोशी (कुमायूँनी), डा० कृष्णलाल हंस (निमाड़ी)। भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों पर डा० मंगलदेव शास्त्री, डा० भोलानाथ तिवारी, पं० किशोरीदास वाजपेयी, श्री भगवद्दत्त, डा० राम विलास शर्मा, गोलोक विहारी (ध्वनि विज्ञान), कैलाशचन्द्र भाटिया, रमेशचन्द्र मेहरोत्रा, दयानन्द श्रीवास्तव आदि ने अच्छा कार्य किया है।

द्रविड़ भाषाओं में तमिल पर रामकृष्ण, नीलकंठ शास्त्री, अमृतराव, पी० सी० गणेश सुन्दरम्, सी० आर० शंकरन् तथा एस० वैयपुरि पिल्लै ने महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। रामस्वामी ऐयर्, चन्द्रशेखरन्, (मलयालम), नरसिंह चार (कन्नड़) डा० सी० नारायण राव (तेलगू), आर० पी० पिल्लै (द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक शब्दकोश), डेनिश डे, एस० ब्रे (ब्राहुई), पादरी हेरास सिन्धुघाटी की भाषा तथा द्रविड़, कृष्णमूर्ति आदि ने द० भारत की विभिन्न भाषाओं पर भाषा-विज्ञान सम्बन्धी कार्य किए हैं।

इस प्रकार वर्तमान समय में भी भारतीय विद्वान् भाषाविज्ञान पर अनेक कार्य कर रहे हैं। इसके विकास की सम्भावनाएँ हैं। आशा है यह साहित्य नित्य-प्रति वृद्धि को प्राप्त करता रहेगा। प्राचीन भारत में प्रातिशाख्य, शिक्षाशास्त्र आदि ग्रंथों में भाषा पर कार्य किए गए किन्तु वर्तमान समय में निश्चय ही पश्चिमी देशों से इस दिशा में प्रेरणा मिली। भारतीय भाषाओं पर काल्डवेल, बीम्स, ट्रम्प, केलॉग, हार्नले, प्लैट्स, ग्रियर्सन, टर्नर तथा जूल ब्लाक जैसे विदेशी भाषावैज्ञानिकों ने कार्य करके भारतीयों के लिए इस दिशा में मार्ग प्रस्तुत किया। पश्चिमी देशों में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, रूस में भाषाविज्ञान पर कार्य किया गया है। इन देशों में हुए कार्यों का प्रभाव भारतीय भाषावैज्ञानिकों पर पड़ा है। अब भी भारत में तथा विदेशों में इस दिशा पर बहुत काम होना है। आशा है विद्वान् लोग इस दिशा में कार्य करके भाषा-विज्ञान की अनेक समस्याओं का समाधान करने में समर्थ होंगे।

यूरोपीय भाषाविज्ञान का इतिहास

भारत में भाषाविज्ञान सम्बन्धी कार्य अत्यन्त प्राचीन काल से प्रारम्भ हो गया था, यद्यपि भाषाविज्ञान के नाम से पृथक् अध्ययन आधुनिक काल में यूरोपीय

देशों के भाषाविज्ञान सम्बन्धी कार्य के आधार पर हुआ है। यूरोप में भी इसी प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल में भाषाविज्ञान सम्बन्धी अध्ययन होता रहा है किन्तु अर्वाचीन काल में इस दिशा में हुआ कार्य अधिक महत्त्व रखता है। यूरोप में हुए भाषाविज्ञान के कार्य को साधारणतया दो प्रमुख भेदों में विभक्त कर सकते हैं–(१) प्राचीन भाषा सम्बन्धी कार्य और (२) आधुनिक भाषाविज्ञान संम्बन्धी कार्य ।

(१) प्राचीन भाषाविज्ञान सम्बन्धी कार्य–इसके अन्तर्गत प्राचीन काल से लेकर सन् १८०० ई० तक का काल सम्मिलित किया जाता है। भाषाविज्ञान सम्बन्धी कार्य यद्यपि प्राचीन समय में होता रहा होगा किन्तु निश्चित रूप से सुकरात के समय से प्रारम्भ माना जाता है।

सुकरात (४६९ ई० पूर्व से ३९९ ई० पूर्व)––सुकरात ने 'शब्द' और 'अर्थ' के विषय में बताया है कि इनका परस्पर सम्बन्ध वास्तविक न होकर कल्पित है। यही कारण है कि संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक शब्द के लिए पृथक्-पृथक् शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यदि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध वास्तविक होता तो संसार में एक ही भाषा पाई जाती है। फिर भी सुकरात शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को निर्मूल तथा असम्भव नहीं मानते ।

प्लेटो (४२९ ई० पू० से ३४७ ई० पू०)––सुकरात के शिष्य प्लेटो ने विचार तथा भाषा को साधारणतया एक ही माना है। इन्होंने ग्रीक ध्वनियों को विभाजित किया। घोष तथा अघोष ध्वनियों के भेद भी बताए थे। प्लेटो ने वाक्य-विश्लेषण, शब्दभेद, ध्वनि और व्युत्पत्ति आदि पर अपने मतों को प्रकट करके भाषा-विज्ञान के सम्बन्ध में ज्ञान की वृद्धि की है।

अरस्तू (३८५ ई० पू०–३२२ ई० पू०)–अरस्तू का प्रमुख ग्रन्थ 'पोलिटिक्स' है। इस ग्रंथ के द्वितीय भाग के १५वें तथा २२वें उपविभाग में भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। अरस्तू ने वर्ण को न विभाजित होने वाली ध्वनि बताया है तथा वर्णों को स्वर, अन्तःस्थ एवं स्पर्श इन तीन भेदों में बाँटा है। मात्रा तथा सम्बन्धबोधक शब्दों पर अपने विचार दिए हैं। शब्दों को आठ भेदों में अरस्तू ने ही बांटा है जिनका प्रचलन योरोपीय व्याकरणों में पाया जाता है। वाक्यों को उद्देश्य तथा विधेय में बांटा है एवं संज्ञा व क्रियों पर भी विचार व्यक्त किये हैं। स्त्रीलिंग, पुँल्लिग तथा नपुंसकलिंग के विषय में वर्णन भी अरस्तू द्वारा किया गया है। शब्दों को शुद्ध, अशुद्ध, विदेशी, बदले हुए एवं सार्थक, निरर्थक आदि में विभाजित कर विवेचना की गई है। इस प्रकार प्राचीन काल में अरस्तू ने अपने ग्रन्थ में आनुषङ्गिक रूप से भाषाविज्ञान सम्बन्धी तथ्यों पर अपने विचार प्रकट किए हैं।

स्टोइक–स्टोइक वर्ग के दार्शनिकों ने शब्द पर और अधिक विवेचना की तथा

ग्रीक व्याकरण तथा अर्थविज्ञान पर कार्य करके भाषाविज्ञान संबन्धी तथ्य प्रस्तुत किए।

डियोनीसिअस थ्रैक्स–थ्रैक्स ग्रीक भाषा के सबसे पहले वैयाकरण थे। इन्होंने ईसा से दो शताब्दी पहले ग्रीक भाषा का व्यवस्थित व्याकरण प्रस्तुत किया। पुरुष, लिंग, वचन, काल आदि के विषय में कर्ता तथा क्रिया पर विस्तार से प्रकाश डाला है। सबसे पहले इन्होंने ही बताया कि स्वर अपने आप बिना किसी सहायता के उच्चरित हो सकते हैं किन्तु व्यंजन स्वर की सहायता से उच्चरित होते हैं। इनके बाद इनकी शिष्य परम्परा में प्रमुख डिसकोलस ने वाक्य-विज्ञान पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

कालान्तर में ग्रीक सभ्यता का प्रभाव रोमन सभ्यता पर पड़ा तो ग्रीक भाषा की तरह लैटिन भाषा का अध्ययन प्रचलित हो गया। १५ वीं शताब्दी में लैटिन का सबसे पहला प्रामाणिक व्याकरण लौरेंशस वाल ने प्रस्तुत किया। इसके बाद वारो तथा प्रिस्किअन विद्वानों ने उत्तम व्याकरण लिखे। ईसाई धर्म के प्रभाव में वृद्धि होने पर धार्मिक कारणों से 'हिब्रू' भाषा का अध्ययन किया जाने लगा। अतः ग्रीक, लैटिन तथा 'हिब्रू' का तुलनात्मक अध्ययन प्रारम्भ हुआ। तुलनात्मक अध्ययन के कारण भाषा की उत्पत्ति, ध्वनिसाम्य तथा अर्थसाम्य के दृष्टिकोण से शब्दों की व्युत्पत्ति पर विचार किया गया। व्युत्पत्तिशास्त्र की उत्पत्ति भी इसी समय हो गयी थी।

रूस के राजा पीटर महान् ने शब्दों का संग्रह करवाया। पल्लस् हर्वस एवं एडलंग आदि ने शब्दसंग्रह किए तथा इस दिशा में अच्छा कार्य किया। १८ वीं शताब्दी में कई यूरोपीय विद्वानों ने भाषा की उत्पत्ति के विषय में ध्यान दिया। फ्रेन्च दार्शनिक रूसो ने विचार व्यक्त किया कि मनुष्यों ने पारस्परिक समझौते द्वारा भाषा का निर्माण किया। किन्तु यह विचार उपयुक्त नहीं था अतः मान्यता प्राप्त न कर सका। कैंडिलैक ने भाषा की उत्पत्ति भावाधिक्य के कारण उत्पन्न हुई ध्वनियों से स्वीकार की है। योहान् गोट फ्रीड हर्डर ने सन् १७७२ ई० में 'बर्लिन एकेडमी' में भाषा की उत्पत्ति नामक निबन्ध में भाषा के दैवी उत्पत्ति संबन्धी मत का निराकरण करते हुए बताया की भाषा की उत्पत्ति मनुष्य की अवश्यकतानुसार स्वयमेव हुई। १७९४ में डी० जेनिश ने बर्लिन एकेडमी में एक निबन्ध में आदर्श भाषा के ४ गुण आवश्यक बताये हैं-(१) भाषा की सम्पन्नता, (२) भाषा की शक्ति, (३) स्पष्टता तथा (४) भाषा की मधुरता। इन्हीं गुणों के आधार पर उन्होंने ग्रीक, लैटिन तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया। सर विलियम जोन्स ने १७९६ में 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना करके संस्कृत भाषा से यूरोप को परिचित कराने में तथा संस्कृत प्रचार में विशेष प्रयास किए।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि १८ वीं शताब्दी के अन्त तक भाषाविज्ञान के अध्ययन को प्रमुखता दी जाने लगी तथा अनेक विद्वानों का ध्यान इस दिशा में

पर्याप्त रूप से आकृष्ट हुआ तथा इससे आधुनिक काल के भाषाविज्ञान संबन्धी कार्यों के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया ।

(२) **आधुनिक भाषाविज्ञान सम्बन्धी कार्य** :-यूरोप में आधुनिक भाषाविज्ञान का अध्ययन उस समय से प्रारम्भ हुआ जब वहाँ के भाषावैज्ञानिकों का परिचय संस्कृत भाषा से हुआ । जैक्सन ने भी इसी बात को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है कि 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान का जन्म उसी दिन हुआ जिस दिन पाश्चात्त्य जगत् ने प्रथम बार संस्कृत का परिचय प्राप्त किया ।' संस्कृत को विश्व की प्राचीनतम भाषा स्वीकार किया गया तथा विश्व की अन्य भाषाओं के साथ तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया । सबसे पहिले फ्रान्सीसी पादरी कोएर्दू (Coeurdoux) ने १७६७ में संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करके संस्कृत शब्दों की प्राचीन यूरोपीय भाषाओं ग्रीक तथा लैटिन के शब्दों से तुलना की । साथ ही फ्रेन्च भाषा के शब्दों से भी तुलना की गई किन्तु कोएर्दू के इस कार्य का प्रकाशन नहीं हुआ अतएव संस्कृत एवं यूरोपीय भाषाओं के शब्दों के तुलनात्मक विश्लेषण का श्रेय उन्हें प्राप्त नहीं हो पाया ।

(अ) प्रारम्भिक युग

सर विलियम जोन्स-सर विलियम जोन्स आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक कहे जा सकते हैं । उन्होंने १७९७ में 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना की तथा संस्कृत के महत्त्व का ज्ञान योरपवासियों को कराया । उनके शब्दों में 'संस्कृत भाषा की प्राचीनता का चाहे निश्चित ज्ञान न हो, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी रचना अनोखी है जो ग्रीक से अधिक समृद्ध, लैटिन से अधिक विशद तथा इन दोनों से अधिक परिष्कृत तथा परिमार्जित है।' "The Sanskrit language, whatever be its antiquity, is of wonderful structure, more perfect than Greek, more copious than Latin and more completely refined than either." जोन्स भारत में कलकत्ता हाईकोर्ट में मुख्य न्यायाधीश के पद पर रहे थे । यहाँ रह कर ही उन्होंने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया तथा ग्रीक, लैटिन से समानता देखी । उन्होंने पहली बार यूरोप वालों का ध्यान इस दिशा में आकृष्ट किया । आपने अंग्रेजी में संस्कृत के गीतगोविन्द, मनुस्मृति तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अनुवाद किया । इनको पढ़कर यूरोपीय विद्वानों की जिज्ञासा संस्कृत साहित्य के अध्ययन की हुई । धातु, शब्द, तथा व्याकरण संबन्धी साम्य के कारण आपने ग्रीक, लैटिन, संस्कृत, गॉथिक केल्टिक तथा प्राचीन फारसी भाषा की निष्पत्ति एवं उद्गम किसी एक मूल भाषा से मानने की कल्पना की । जे० आर० फर्थ ने विलियम जोन्स की प्रशंसा करते हुए कहा है कि यदि जोन्स भारत के वैयाकरणों के विषय में न बताते तो ध्वनि (भाषा) विज्ञान के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती थी ।

इस प्रकार विलियम जोन्स ने भाषाविज्ञान को विकास की गति देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया ।

पाश्चात्य विद्वानों में विलियम ड्वाइट ह्विटनी पर भारतीय ध्वनि विकास का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है ।

इसी प्रकार संस्कृत की सघोष तथा अघोष ध्वनियों से अन्य यूरोपीय भाषा-वैज्ञानिक प्रभावित हुए–इसको लेप्सिअस (Lepsius) ने अपने लेखों में निःसंकोच रूप से स्वीकार किया है ।

भारतीय ध्वनियों का वर्गीकरण वैयाकरणों द्वारा इतना वैज्ञानिक रूप से किया गया था कि उससे प्रभावित होकर ब्रिटेन के ए० जे० एलिस नामक विद्वान् ने प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'यदि वे (भारत के ध्वनिविद्) अस्पष्ट होते तो आश्चर्य-जनक न था किन्तु आश्चर्य तो यह है कि समय क्रम में बहुत बाद में आने वाले यूरोप के वैयाकरणों तथा उच्चारणविदों से भी कहीं अधिक स्पष्ट हैं' 'The wonder is, not that they should be indistinct, but that they should have been so much more distinct than the host of European grammarians and orthaepists who succeeded them.'

हेनरी टॉमस कोलब्रुक (१७८६–१८३३)–संस्कृत के प्रचार एवं अध्ययन के समर्थक कोलब्रुक ने संस्कृत का गहन अध्ययन किया था तथा संस्कृत पर अनेक महत्त्व-पूर्ण निबंध लिखे थे । संस्कृत के अतिरिक्त इन्होंने प्राकृत, अरबी, फारसी आदि अन्य भाषाओं का भी सम्यक् अध्ययन किया था ।

फ्रीडरिख वॉन श्लेगेल (Friederich Von Schlegel) १७७२-१८२९–आप संस्कृत प्रेमी जर्मन विद्वान् थे । आपने सन् १८०८ में 'भारतीयों की भाषा और ज्ञान' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा । इसके प्रभाव से जर्मन विद्वानों की रुचि संस्कृत सीखने में हुई । इस पुस्तक में श्लेगेल ने ग्रीक, लैटिन, जर्मन तथा संस्कृत भाषाओं के बहुत से शब्दों का ध्वनि तथा अर्थ के दृष्टिकोण से तुलनात्मक विश्लेषण किया । आपने कुछ ध्वनि नियमों की ओर संकेत किया । भाषा को दो भागों में बाँटा-(१) प्रथम भाग में संस्कृत तथा सगोत्रीय भाषाएँ या श्लिष्ट भाषाएँ तथा (२) दूसरे भाग में अन्य भाषाएँ जिसमें अश्लिष्ट वर्गीय भाषाओं की गणना होती है, जिसमें प्रत्यय, उपसर्ग आदि जोड़े जाते हैं । इनका मत था कि भाषा की उत्पत्ति के विषय में किसी एक बात को आधार नहीं माना जा सकता है । मांचू आदि भाषाएँ ऐसी हैं जिनमें अनुकरणात्मक तथा अनुरणनात्मक शब्द अधिक पाये जाते हैं । अतः उनकी उत्पत्ति में प्रकृति तथा जीव-जन्तुओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है परन्तु यह तथा संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं की उत्पत्ति में सहायक नहीं हैं ।

अडोल्फ डब्लू० श्लेगल (१७६७–१८४५)–ये फ्रीडरिख वॉन श्लेगेल के बड़े

भाई थे। आपने भी संस्कृत का गहन अध्ययन किया था। आपने श्लिष्ट भाषाओं में संस्कृत को सबसे महत्त्वपूर्ण माना एवं संस्कृत तथा सगोत्रीय भाषाओं को संयोगात्मक तथा वियोगात्मक नामक दो भागों में बाँटने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

विल्हेम वान हम्बोल्ट (१७६७–१८३५)–इन्होंने भाषाओं को श्लिष्ट तथा अश्लिष्ट वर्गों में विभाजन किया। ये भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन के प्रबल पक्षपाती थे। बोलियों को भी भाषाविज्ञान की दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। भाषा के वर्गीकरण में चीनी का स्थान अलग निश्चित किया है। ये भाषाओं के आकृतिमूलक विभाजन को उचित नहीं मानते हैं। भाषा की उत्पत्ति को खोजना ठीक नहीं समझते क्योंकि उसे नहीं जाना जा सकता है। इनका मत है कि प्रत्यय पहले स्वतंत्र शब्द की भाँति थे तथा इनका प्रयोग शब्दों में अर्थवैशिष्ट्य लाने के लिए किया जाता था। सभी शब्द धातुओं से बनते हैं। इन्होंने जावा की कवि (Kawi) भाषा पर मुख्य रूप से कार्य किया है।

जैम्लस रैस्क (१७८७–१८३२)–ये डेनिश विद्वान् थे। इन्होंने आइसलैण्ड की भाषा प्राचीन नॉर्स का अध्ययन करके 'आइस लैंडिक व्याकरण' नामक पुस्तक सन् १८११ में लिखी। इन्हें १९ वीं शताब्दी का तुलनात्मक-व्याकरण का विशेषज्ञ कहा जाता है। इन्होंने 'फिनो-उग्रिअन' परिवार की भाषाओं का भी वर्गीकरण किया। रैस्क ने 'ऐंग्लो-सैक्सन व्याकरण' की भी रचना की जिससे इनकी बहुत प्रसिद्धि हुई। इन्होंने जर्मेनिक भाषाओं के ध्वनिपरिवर्तन की ओर भी संकेत किया था जो आगे चल कर ग्रिम महोदय के नाम पर 'ग्रिम-नियम' कहलाया। अवेस्ता की भाषा को आर्य भाषा परिवार में उपयुक्त स्थान इन्हीं के प्रयत्नों से प्राप्त हुआ। इन्होंने भारत आकर द्रविड़ भाषाओं तथा संस्कृत का अध्ययन किया तथा द्रविड़ भाषाओं से संस्कृत की भिन्नता प्रदर्शित की। ये सात वर्ष तक स्वीडन, फिनलैण्ड, रूस, तुर्की, ईरान तथा भारत आदि देशों में भ्रमण करके भाषाओं का अध्ययन करते रहे।

याकोब ग्रिम (१७८५–१८६३)–याकोब ग्रिम के पिता वकील थे। इन्होंने भी कानून का अध्ययन किया था किन्तु बाद में इनका झुकाव भाषाविज्ञान की ओर हो गया। इन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य जर्मन व्याकरण पर किया जो 'देवभाषा व्याकरण, के नाम से १८१९ में प्रकाशित हुआ। ऐतिहासिक व्याकरण रचने वालों में आप सर्वप्रमुख हैं। १८२२ में जर्मन व्याकरण का संशोधित द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ, इसमें रैस्क का प्रभाव पड़ा तथा उन्होंने वर्णपरिवर्तन पर 'ग्रिम-नियम' का प्रतिपादन किया। इनके समय तक प्रसिद्ध प्राचीन भाषाओं ग्रीक, लैटिन, हिब्रू आदि भाषाओं का ही अधिक अध्ययन होता था किन्तु इन्होंने बताया कि भाषाविज्ञान की दृष्टि से छोटी छोटी भाषाओं, वर्तमान प्रचलित भाषाओं तथा बोलियों का भी अध्ययन किया जाना चाहिए। इन्होंने बहुत से पारिभाषिक शब्द रचे जो अब भी

महत्त्वपूर्ण हैं । ग्रिम ने बच्चों के लिए कहानियाँ 'फेयरी टेल्स' भी लिखी हैं जो बहुत प्रसिद्ध हैं । ग्रिम जीवन भर भाषाविज्ञान संबन्धी कार्यों में लगे रहे ।

फ्रान्त्स बॉप–रास्क तथा ग्रिम के बाद प्रसिद्ध भाषा-विज्ञानी बॉप का नाम आता है, आप जर्मनी के रहने वाले थे । ये तुलनात्मक व्याकरण के लिये प्रसिद्ध हैं । आपने बीस वर्ष की आयु से ही पेरिस में संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया था । संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, प्राचीन फारसी (अवेस्ता की भाषा), जर्मन, लिथुआनी, गॉथी आदि भाषाओं के ये विद्वान् थे । १८१६ में 'धातु-प्रक्रिया' नामक पुस्तक जर्मन में प्रकाशित हुई, जिसमें ग्रीक, लैटिन, प्राचीन फारसी तथा जर्मन और संस्कृत का तुलनात्मक वर्णन किया गया है । इनका द्वितीय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सन् १८३३ में प्रकाशित हुआ जिसमें संस्कृत, प्राचीन फारसी, आर्मीनियन, ग्रीक, लैटिन, लिथुआनियन स्लावियन, गॉथी, तथा जर्मन भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण था । तुलनात्मक व्याकरण के परिशिष्ट रूप में संस्कृत और ग्रीक स्वराघात पर १८५४ में एक पुस्तक प्रकाशित हुई । बॉप ने ग्रीक, लैटिन तथा संस्कृत, भाषा की उत्पत्ति किसी एक मूल भाषा से स्वीकार की तथा मूल भाषा की सबसे अधिक विशेषताएँ संस्कृत भाषा में सुरक्षित पाईं । इसी से अपने कार्य में संस्कृत भाषा की प्रमुखता दी है । आपने सामी भाषाओं को भारोपीय भाषा से पृथक् माना है । बॉप ने श्लेगल द्वारा किए गए भाषा वर्गों को त्रुटिपूर्ण बताते हुए अपने तीन वर्ग प्रस्तुत किए–

(१) व्याकरण नियम विहीन भाषाएँ–चीनी आदि (२) एकाक्षर धातु वाली भारोपीय भाषाएँ (३) द्व्यक्षर धातु वाली अथवा तीन वर्गीय भाषायें–सामी (हिब्रू, अरबी आदि) । ये भाषाविज्ञान के नियमों को एक सीमित परिधि में ही सत्य स्वीकार करते हैं ।

उपर्युक्त विवरण को आरम्भिक काल में किए गए भाषावैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत माना जाता है । इसकाल में भाषावैज्ञानिक अध्ययन की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार थीं–

(१) इस काल में भाषाविज्ञान के अध्ययन के लिए संस्कृत जैसी प्राचीन भाषा को महत्त्वपूर्ण मानकर उसका अध्ययन किया गया ।

(२) प्राचीन भाषाओं के अध्ययन को प्रमुखता दी गई लेकिन वर्तमान जीवित भाषाओं के अध्ययन की उपेक्षा की गई ।

(३) सामान्य लक्षणों पर ही बल दिया गया यद्यपि तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन भी प्रारम्भ हो गया था ।

(४) भाषा परिवारों के वर्गीकरण की कल्पना का प्रादुर्भाव अस्पष्ट रूप से प्रारम्भ हो गया था ।

(५) प्रत्ययों को मूलतः सार्थक तथा स्वतन्त्र शब्द माना जाता था ।

(६) भाषा सम्बन्धी कार्यों को भाषाविज्ञान जैसे निश्चित विज्ञान के रूप में मान्यता मिलने की आशा प्रारम्भ हो चुकी थी।

(आ) मध्ययुग (१८३३-१८५५)—इस युग में भाषाविज्ञान की उपलब्धियों को संगृहीत करके मनुष्यों को उससे परिचित कराना विद्वानों का प्रमुख कार्य रहा। इस युग के प्रमुख भाषावैज्ञानिक निम्न थे:—

आगस्ट फ्रेडरिख पॉट (August Friederich Pott--1802-1887) आगस्ट वैज्ञानिक व्युत्पत्तिशास्त्र (Scientific Etymology) के जन्मदाता कहे जाते हैं। इन्होंने व्युत्पत्ति सम्बन्धी काम को व्यवस्थित करके आगे बढ़ाया जिसे बॉप ने शुरू किया था। आगस्ट ने ही सबसे पहिले तुलनात्मक ध्वनियों की सारिणी का निर्माण किया।

के० एम० रॉप (K. M. Rapp)—आप प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक ग्रिम के समय के थे। आपने ध्वनि तथा लिपि के सम्बन्ध को बताया तथा वर्तमान जीवित भाषाओं के अध्ययन को आवश्यक बताया। ध्वनिविज्ञान पर आपके ग्रन्थ १८३६, १८३९, १८४० तथा १८४१ में प्रकाशित हुए।

जे० एच० ब्रेडस्कार्फ—आप डेनमार्क के निवासी थे। आपने भाषा के विकास के कारण पर विशेष बल दिया। भाषा में होने वाले सामान्य परिवर्तन के कारणों पर भी विचार प्रकट किए।

रूडोल्फ रॉथ एवं ओटो बार्टलिक—इन संस्कृत विद्वानों ने (१८२१-१८९५) (१८१५-१९०४) 'सेण्ट पीटर्सवर्ग कोश' नामक संस्कृत का विशाल कोश तैयार किया जिसमें प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति धातु से प्रदर्शित की गई है।

आगस्ट श्लाइखेर (August Schleicher)--(१८२१–१८६८ ई०) ये स्लावोनिक तथा लिथुआनियन के पंडित थे। जेक तथा रूसी भाषाएँ भी सीखीं थी। इनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'भारोपीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण का सार-संग्रह' है जिसका प्रकाशन १८६२ ई० में हुआ था।

इन्होंने भाषाओं को तीन वर्गों में विभक्त किया है–(१) अयोगात्मक भाषाएँ, (२) अश्लिष्ट भाषाएँ और (३) श्लिष्ट भाषाएँ। 'कम्पेडियम' पुस्तक में उन्होंने संस्कृत, ग्रीक, लैटिन तथा गॉथी का अध्ययन करके मूल भाषा के स्वर, व्यंजन, धातु आदि बातों पर विचार किया है।

गेओर्ग कुर्टिउस (Georg Curtius) (१८२०-१८८५)—ये ग्रीक भाषा के विद्वान् थे। ग्रीक भाषा की क्रिया तथा ग्रीक शब्दों की व्युत्पत्ति पर इनका कार्य महत्वपूर्ण है।

योहान निकोलाइ मैडविग (Johan Nikolai Madvig)—ये ग्रीक तथा लैटिन भाषा के ज्ञाता थे। तर्क को महत्त्वपूर्ण मानते थे तथा ध्वनि सम्बन्धी विचारों तथा व्युत्पत्ति को अधिक मान्यता नहीं देते थे। इन्होंने भाषा विज्ञान

सम्बन्धी अपना कार्य डेनिस भाषा में किया था अतः अधिक प्रसिद्ध न हो सके।

फ्रैडरिख मैक्समूलर (Friederich Max Muller) १८२३–१९०० मैक्समूलर ने भाषाविज्ञान जैसे नीरस विषय की ओर अनेक व्यक्तियों को अपने सरस व्याख्यानों द्वारा आकर्षित किया। इनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'भाषा का विज्ञान' (The Science of Language' सन् १८६१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इन्होंने भाषा के उद्‌गम, भाषा की प्रकृति, भाषा का विकास, भाषाविकास के कारण, भाषाओं के वर्गीकरण आदि से सम्बन्धित कार्यों का संकलन किया। प्रागैतिहासिक खोज पर महत्त्वपूर्ण कार्य किए। वेदों पर इनके महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। आप संस्कृत तथा भारतीय सभ्यता के समर्थक थे। सस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद किया। मैक्समूलर ने अनेक प्रमाणों द्वारा आर्यों का मूल निवास स्थान मध्य एशिया को स्वीकार किया है। भाषाविज्ञान से सम्बन्धित अर्थ-विज्ञान पर तथा नागरी लिपि से विदेशों को परिचित कराने का कार्य मैक्समूलर के महत्त्वपूर्ण कार्य हैं।

विलियम ड्वाइट ह्विटनी(William Dwight Whitney (१८२७-१८९४) आप संस्कृत के विद्वान् तथा अमेरिका निवासी प्रथम भाषावैज्ञानिक थे। आप का पहला ग्रन्थ १८६७ में 'भाषा और भाषा का अध्ययन' नाम से प्रकाशित हुआ। दूसरा ग्रन्थ १८७५ ई० में 'भाषा का जीवन और विकास' नाम से प्रकाशित हुआ। आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संस्कृत व्याकरण' १८७९ ई० में प्रकाशित हुआ। मैक्समूलर तथा ह्विटनी में प्रतिद्वन्द्विता चलती रहती थी। ये मुख्यतः वैयाकरण थे। भाषाविज्ञान जैसे विषय से मनुष्यों को परिचित कराने में इन्होंने अपूर्व सहयोग दिया।

(इ) **नवयुग**(१८५५-१९२०)–नवयुग का प्रारम्भ १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। नवीन भाषावैज्ञानिकों तथा प्राचीन भाषावैज्ञानिकों में परस्पर विरोध की भावना रही किन्तु धीरे धीरे नवीन भाषावैज्ञानिकों की प्रमुखता हो गयी। इस काल के प्रमुख भाषा वैज्ञानिक निम्न प्रकार हैं–

हरमान स्टाइनथाल् (Hermann Steinthal) १८२५-१८९९–ये नवयुग के भाषावैज्ञानिकों में प्रमुख थे। इन्होंने भाषाविज्ञान के अध्ययन में मनोविज्ञान का सहारा लेना आवश्यक बताया। ये स्वयं व्याकरण, तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान के विद्वान् थे। इनका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ १८५५ में प्रकाशित हुआ जिसमें तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान तथा व्याकरण का पारस्परिक संबन्ध दिखालाया गया है। प्राचीन भाषावैज्ञानिकों ने नवीन भाषाविज्ञानियों की नौसिखिये वैयाकरण' कह कर उपेक्षा की, किन्तु कालान्तर में इनके सिद्धान्तों को स्वीकार करना पड़ा।

हरमॉन ओस्टॉफ–(Hermann osthoff)–तथा कार्ल ब्रुगमान् (Karl Brugmann)–इन्होंने सम्मिलित रूप से भाषाविज्ञान संबन्धी कार्य किया तथा इनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ १८७८ में 'रूप विचारात्मक अनुसंधान' प्रकाशित हुआ। यह पाँच

भागों में है । ब्रुगमान् का अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'भारोपीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण का लघु विश्वकोश' १८८६ में प्रकाशित हुआ । यह ग्रंथ भी ५ खण्डों में छपा है । इसके बाद के तीन खण्ड डेलब्रुक (Delbruck) के सहयोग से रचे गए हैं जिनमें 'तुलनात्मक वाक्यविचार' पर अभिव्यक्ति की गई है। ब्रुगमान का 'अनुनासिक सिद्धांत, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसके द्वारा ग्रिम–नियम की त्रुटियों को दूर किया गया है ।

हर्मान पाउल् (Hermann Paul)–की भाषाविज्ञान विषयक प्रसिद्ध रचना 'भाषा के इतिहास के सिद्धान्त' है । यह इनकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है ।

डेलब्रुक (Delbruck)-ये प्रसिद्ध वैयाकरण थे । इनकी प्रसिद्ध रचना 'भारोपीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण का लघुविश्वकोश' है जो ब्रुगमान् के साथ पूरी की गई है । 'तुलनात्मक वाक्यविचार' से सम्बन्धित बाद के तीन खण्ड इनके द्वारा लिखे गए हैं। इन्होंने संस्कृत, लैटिन तथा ग्रीक का गहन अध्ययन किया था ।

जूलियस जॉली (Julius Jolly)–ये ग्रीक तथा संस्कृत के महान् विद्वान् थे । इन्हे हिन्दू कानूनों का पूर्ण ज्ञान था । इन्होंने 'तुलनात्मक व्याकरण' तथा 'तुलनात्मक वाक्य विचार पर कार्य किया है ।

ओ० श्राडेर (O. Schrader) (१८५५-१९१९)–आर्यों के सम्बन्ध में प्राचीन खोज का कार्य किया है । ये स्लाव भाषाओं के ज्ञाता थे ।

ग्रासमान (Grassmann)–ग्रिम-नियम की कुछ कमियों को दूर करके ग्रासमान ने अपना ध्वनि सम्बन्धी 'ग्रासमान नियम' बनाया । ग्रिम-नियम की शेष कमियों को दूर करने के लिए १८७७ में कार्ल वर्नर(Karl verner)ने 'वर्नर-नियम' बनाया ।

अस्कोली (Askoli) ने १८७० ई० में बताया कि मूल भारोपीय भाषा की 'क' ध्वनि 'क' ही बनी रही किन्तु कहीं-कहीं 'स' ध्वनि 'श' में परिवर्तित हो गयी । इन्हीं को आधार मानकर विद्वानों ने सतम् तथा केन्टुम् वर्गों की कल्पना की ।

ब्रील (Breal)–ने १८९७ में भाषाविज्ञान सम्बन्धी 'अर्थ विचार पर निबन्ध' नामक पुस्तक लिखी ।

नवयुग के उपरिलिखित भाषा-विज्ञानियों ने अपने कार्यों में अनेक नई बातों का समावेश किया, जिसमें कुछ प्रमुख बातें निम्न हैं–

(१) प्राचीन भाषाओं के अध्ययन के साथ साथ जीवित प्रचलित भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है ।

(२) भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी कार्य अत्यन्त कठिन तथा व्यर्थ है एवं त्याज्य है ।

(३) ध्वनिपरिवर्तन के कारणों की खोज में मनोविज्ञान का सहारा आवश्यक है ।

(४) भाषा के विकास में समानता का अधिक महत्त्व है ।

(५) वाक्य–विज्ञान शाखा पर भी समुचित ध्यान देना चाहिए ।

(६) इन भाषा-वैज्ञानिकों ने 'ध्वनि' को भाषा शरीर तथा 'अर्थ' को उसकी आत्मा कहा है ।

(७) जातियों के मिलने से भाषायें भी परस्पर मिल गईं अतः भाषा का शुद्ध रूप जानना कठिन है ।

नवयुग के अनेक विद्वानों का भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है । १९ वीं शताब्दी के तीन प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिकों में रास्क, याकोब ग्रिम, तथा कार्ल ब्रुगमान के नाम प्रमुख हैं ।

(ई) वर्तमान युग (१९२० ई० से अब तक)—वर्तमान काल में भाषा-विज्ञान अत्यन्त तीव्रता से उन्नति कर रहा है । अनेक विद्वान् इस दिशा में कार्यरत हैं । कुछ प्रमुख भाषावैज्ञानिक निम्नलिखित हैं–

ओटो यस्पर्सन (Otto Jespersen) आधुनिक काल के प्रमुख डेनिश भाषा विज्ञानी हैं । अंग्रेजी व्याकरण के पूर्ण ज्ञाता हैं । इन्होंने भाषा की उत्पत्ति, वाक्य-विज्ञान, व्याकरण का दार्शनिक आधार तथा अंग्रेजी व्याकरण पर कार्य किया है । इनके ग्रंथ भाषा प्रकृति–विकास एवं उद्भव (१९२२ ई०), व्याकरण-दर्शन (१९२४) अंग्रेजी व्याकरण के मूलतत्त्व (१९३३) तथा विश्लेषणात्मक वाक्यविज्ञान (१९३७ ई०) प्रमुख हैं ।

हेनरी स्वीट ने 'भाषा का इतिहास' (१९०० ई०) तथा ध्वनि विचार प्रवेशिका' (A Primer of Phonetics), 'अंग्रेजी ध्वनियाँ (The Sounds of English १९१० ई०) आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर भाषाविज्ञान को समृद्ध बनाया ।

ए० मेइये (A.Meillet) ने 'ऐतिहासिक भाषाविज्ञान एवं सामान्य भाषा-विज्ञान' एवं 'भारोपीय भाषाओं के अध्ययन की भूमिका' भाषाविज्ञान पर प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे । 'संसार की भाषायें' नाम का भाषाओं का विश्वकोश भी महत्त्वपूर्ण रचना है । वाँन्द्रिए (Vendryei) ने 'इतिहास की भूमिका के रूप में भाषा' नाम की पुस्तक भाषाविज्ञान पर लिखी है ।

डेनियल जोन्स (Daniel Jones) ने अंग्रेजी ध्वनियों पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'अंग्रेजी ध्वनियों की रूप रेखा' १९२२ में लिखी । इनके द्वारा लिखा 'अंग्रेजी उच्चारण कोश' जो १९१७ में प्रकाशित हुई एक प्रसिद्ध रचना है ।

ल्योनार्ड ब्लूमफील्ड ने 'भाषा' नामक ग्रन्थ १९३३ ई० में लिखा जो महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है । ये अमेरिकी भाषाविज्ञानी हैं । इनके अतिरिक्त बो आस तथा सपीर ने भी इस दिशा में कार्य किया है ।

वर्तमान काल में भाषाविज्ञान पर अनेक देशों में कार्य किया जा रहा है ।

फलतः इसका विकास तीव्रतर है । 'ध्वनि-विज्ञान' पर इस काल में अधिक कार्य हुआ है । १९वीं शताब्दी में जर्मनी भाषाविज्ञान का प्रमुख क्षेत्र रहा । २०वीं शताब्दी में भाषाविज्ञान सम्बन्धी कार्यों का केन्द्र पेरिस हो गया । सन् १९२८ में 'हेग' में पहली अन्तर्राष्ट्रीय भाषाविज्ञान कांग्रेस हुई, जहाँ वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अध्ययन पर अधिक बल दिया गया । वर्तमान काल में ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, चेकोस्लोवाकिया डेन्मार्क, फ्रान्स आदि देशों में भाषाविज्ञान के केन्द्र हैं । अध्ययन की दृष्टि से जो केन्द्र या स्कूल हैं वे प्रमुख स्कूल निम्न प्रकार हैं–

(१) ब्रिटेन में निम्न स्कूल भाषाविज्ञान के कार्य के केन्द्र थे १– अंग्रेजी स्कूल- इस केन्द्र का प्रारम्भ स्वीट ने किया था तथा इसी क्रम में डैनियल जोन्स ने कार्य किया। इस स्कूल में ध्वनि पर विवेचना की गई । (२) लन्दन स्कूल– इस स्कूल के प्रवर्तक फर्थ थे । व्यतिरेकी विश्लेषण स्कूल– इस स्कूल के प्रमुख विद्वान् हैलिडे थे जिन्होंने भाषाओं के रूपों, वाक्यों आदि की समानता करते समय असमान तत्त्वों को ज्ञात करने पर बल दिया । ब्रिटिश स्कूल के अन्तर्गत ध्वनिविज्ञान पर विशेष रूप से काम होने से इसे ध्वनि विज्ञानीय स्कूल भी कहा जाता है ।

(२) अमरीकी स्कूल– इस स्कूल के अन्तर्गत ध्वनि ग्राम-विज्ञान (Phonemics) पर अध्ययन किया गया अतः इसे 'ध्वनि ग्रामीय स्कूल' भी कहते हैं । अमेरिकी स्कूल के संस्थापक फ्रांज बोआस (Franz Boas) १८५८–१९४२ थे । ये अमेरिकन इण्डियन भाषाओं के विद्वान् थे । इन्होंने वर्णनात्मक पद्धति पर कार्य किया है । इनके पश्चात् सपीर तथा ब्लूमफील्ड अमेरिकी स्कूल के मुख्य विद्वान् थे । सपीर स्कूल को आगे बढ़ाने वाले इनके शिष्य ह्वार्फ (Whorf) १८९७–१९४१ थे । ऐन-आर्बर-स्कूल के पाइक, नाइडा प्रमुख हैं। इन लोगों ने प्रायोगिक भाषाविज्ञान पर भी कार्य किया। ब्लूमफील्ड स्कूल में ब्लूमफील्ड के अतिरिक्त हैरिस, जूस, बर्नर्ड ब्लाक, ट्रेगर, हाकिट, ग्लीसन प्रसिद्ध विद्वान् हैं । इस स्कूल ने संरचनात्मक भाषा-विज्ञान पर विशेष कार्य किया । हर्वर्डस्कूल के रोमन याकोबसन प्रवर्तक थे । इसमें ध्वनि पर कार्य किया गया । रूपान्तरण स्कूल–इसके प्रवर्नक नोआस चास्की भाषाविज्ञान में नई पद्धति रूपान्तरण व्याकरण के बनाने वाले थे । इस स्कूल के अन्य प्रसिद्ध विद्वान् लीज हैं ।

(३) रूसी स्कूल– रूस में भाषाविज्ञान के कई केन्द्र हैं, जैसे कजान, लेलिन ग्राड, एवं मास्को आदि । (१) कजान स्कूल के संस्थापक बादविन द कुर्तने तथा क्रुजेब्स्की नाम के पोलेण्ड निवासी विद्वान् थे । इनके विचारों से प्रभावित होकर अन्य रूसी स्कूल विकसित हुए । लेनिनग्राड स्कूल– के प्रवर्तक शेरबा थे । (१८४०–१९४४) जिन्दर गोल्दफ आदि अन्य विद्वान् इस स्कूल के वृद्धिकर्ता थे । इस स्कूल में ध्वनिविज्ञान तथा ध्वनिग्रामविज्ञान पर विशेष कार्य किया गया । मास्को स्कूल के संस्थापक फतुंनातफ थे । मार (Marr) (१८६४–१९३४) तथा रिफरमात्स्की

अवानोसफ इस स्कूल के अन्य प्रमुख विद्वान् हैं। इस स्कूल में भाषाविज्ञान की कई शाखाओं रूप-विज्ञान, वाक्यविज्ञान, रूपध्वनिग्राम-विज्ञान आदि पर कार्य किया गया।

(४) **प्राग स्कूल** (Prague)–प्राहा या प्राग चेकोस्लोवाकिया की राजधानी है। इसी के केन्द्र के नाम पर इसका प्राग स्कूल नाम पड़ा। इस स्कूल की स्थापना १९२६ ई० में हुई थी। रोमन याकोबसन (Jakobson) त्रुबेत्सकॉय (Trubetykoy) कर सेस्की (१८८४–१९५५) आदि इस स्कूल के प्रमुख भाषाविज्ञानी थे। इस स्कूल का प्रमुख कार्य ध्वनि शाखा पर ही हुआ है।

(५) **कोपेनहैगन स्कूल**– डेनमार्क की राजधानी कोपेन हैगन के नाम पर इस स्कूल का नाम पड़ा। इस स्कूल की स्थापना ब्रन्दल (Brondal) १८८७–१९४२ तथा येम्स्लेव (Hjemsleu) द्वारा की गई। येम्स्लेव ने अपने सिद्धान्त ग्लासीम-विज्ञान (Glossematies) की स्थापना की। इसी नाम से इसे ग्लासेमेटिकस्कूल भी कहते हैं। अन्य विद्वान् उल्डल (Uldall) हैं। इस स्कूल में संरचनात्मक भाषा-विज्ञान पर अधिक कार्य किया गया है।

फ्रान्सीसी स्कूल– यह पेरिस में केन्द्रित रहा है। रूसे लो, पाल पासी सस्यूर, ग्रैमों एवं मेये (Meillet), वेन्द्रिए ब्रील, व्यूल ब्लाख आदि प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी इस स्कूल को आगे बढ़ाने वाले थे। इस स्कूल में ध्वनि, शब्द, अर्थ, भाषा-भूगोल आदि तत्त्वों पर विशेष कार्य किया गया।

जेनेवा स्कूल– इस स्कूल की स्थापना प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी सस्यूर (१८५७–१९१३) के द्वारा की गई। स्वयं सस्यूर ने संरचनात्मक भाषाविज्ञान पर कार्य किया। इन्होंने भाषाविज्ञान का अध्ययन समकालीन एवं ऐतिहासिक दो पक्षों में होना संभव बताया। इस स्कूल के अन्य प्रमुख विद्वान् चार्ल्स बेली १८६५–१९४७ तथा अलवर्ट सेकेहाये १८७०–१९४६ हैं। चार्ल्स बेली ने शैलीविज्ञान पर तथा अलबर्ट सेकेहाये ने वाक्यस्तर पर मनोविज्ञान तथा भाषाविज्ञान के संबन्ध पर कार्य किया है। इस स्कूल के वाक्यविज्ञान पर कार्य करने वाले अन्य विद्वान् फ्रेई (Frei) भी हैं।

आधुनिक काल में भाषाविज्ञान में प्रचलित तथा प्राचीन अप्रचलित दोनों ही प्रकार की भाषाओं का अध्ययन हो रहा है। उच्चारण तथा उनसे उत्पन्न तरंगों के आधार पर ध्वनि का अध्ययन हो रहा है। स्पेक्टोग्राफ, काइमोग्राफ, आसिलोग्राफ, स्पीच स्ट्रेचर, ब्रीदिंग फ्लास्क, आटो फोनोस्कोप आदि यन्त्रों की सहायता ध्वनियों के अध्ययन में ली जा रही है। लिपि सुधार, उच्चारण सुधार, आदि की ओर ध्यान दिया जा रहा है। भाषाविज्ञान का वैज्ञानिक तथा तर्कपूर्ण एवं विशद अध्ययन किया जा रहा है। यह विज्ञान अब स्वतन्त्र रूप से बड़ी तीव्रता से विकसित हो रहा है तथा पूर्ण विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है।

३ | भाषा

भाषा की परिभाषा– भाषा मनुष्य के पारस्परिक भावों के आदान प्रदान का माध्यम है। भाषा के बिना मनुष्य जीवन के विकास की क्रिया पूरी नहीं हो सकती। विचारों या भावों को दूसरों तक अन्य माध्यम द्वारा भी पहुँचाया जा सकता है। बालक अपने भावों को अनेक प्रकार के इशारों द्वारा अथवा अस्पष्ट बोली द्वारा मां-बाप पर प्रकट करता है। गूंगा व्यक्ति अपने इशारों से अपने विचार बताता है। पशु, पक्षी आदि जीव-जन्तु अपने भय की भावना, घृणा, क्रोध, प्रेम आदि भावों को विभिन्न ध्वनियों की सहायता से प्रकट करते हैं। मनुष्य भी मुख विकार, स्वर विकार, नेत्रों द्वारा, संकेतों द्वारा, हाथ, पैरों की सहायता से अपने मन्तव्य को दूसरों पर प्रकट करते हैं। अमेरिका के रेड इण्डियन लोग अपने ही विकसित साधनों से संकेतों द्वारा विचार-विनिमय करते हैं। कुछ आदिवासी संदेश भेजने में आग जलाते हैं। इस प्रकार भाषा के व्यापक अर्थ के अन्तर्गत वे सभी साधन जिनसे भाव दूसरों पर प्रकट किये जाते हैं, भाषा के अन्तर्गत माने जाते हैं। भाषा के व्यापक अर्थ को डॉ० पी० डी० गुणे के शब्दों में निम्न प्रकार प्रकट किया जा सकता है–"अपने व्यापकतम अर्थ में भाषा के अन्तर्गत विचारों और भावों को सूचित करने वाले वे सब संकेत गिने जाएँगे जो बाहरी रूप में देखे जा सकें और इच्छानुसार उत्पन्न किए एवं दुहराये जा सकें।" "(Language in its widest sense means, therefore, the sum total of such signs of our thoughts and feelings as are capable of external perception and as could be produced and repeated at will."

भाषा विज्ञान में 'भाषा' शब्द उपर्युक्त व्यापक अर्थ में प्रयोग न होकर एक संकुचित अर्थ में प्रयोग किया जाता है। इस दृष्टिकोण से कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ निम्न हैं–

ए. ए. गार्डीनर (A A. Cardinor)---ने भाषा की परिभाषा करते हुए भाषा को विचारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेत कहा है (The Common definition of speech is the use of articulate sound-symbols for

the expression of thought.")

A. A. Gardinor's 'Speech and Language'.

'मोरियो पेई' तथा 'फेंक ग्यानोर' ने भाषा की परिभाषा करते हुए कहा है–भाषा उन सार्थक और विश्लेषण–समर्थ मानवोच्चारित ध्वनियों को कहते हैं जिनका प्रयोग मानव विचारों और भावों को व्यक्त करने के लिए करता है।'

डा० मंगलदेव ने तुलनात्मक भाषाशास्त्र में भाषा की परिभाषा निम्न प्रकार की है–"भाषा मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किए गए वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।"

डा० श्यामसुन्दर दास ने 'भाषा-रहस्य' नामक पुस्तक में भाषा की परिभाषा इस प्रकार की है–"मनुष्य-मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।"

डा०, बाबूराम सक्सेना ने अपनी पुस्तक 'सामान्य भाषाविज्ञान' में भाषा की परिभाषा इस प्रकार की है–"जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।"

हेनरी स्वीट (Henry Sweet)–ने अपनी पुस्तक 'The History of Language' में भाषा की परिभाषा इस प्रकार की है–"व्यक्त-ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति को भाषा कहते हैं" (Language may be defined as the expression of thought by means of Speech-Sounds.)

पं० किशोरीदास वाजपेयी ने 'भारतीय भाषाविज्ञान' में भाषा की परिभाषा करते हुए लिखा है–'विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।'

डॉ० भोलानाथ तिवारी ने 'भाषाविज्ञान' में भाषा की परिभाषा इस प्रकार की है–'भाषा, उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।'

प्लेटो ने भाषा की परिभाषा इस प्रकार की है–'विचार जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होते हैं तो उसे भाषा कहते हैं।' वान्द्रिए के अनुसार 'भाषा चिह्न है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भाव प्रकट करता है।'

ब्लाक तथा ट्रेगर के अनुसार 'भाषा यादृच्छिक ध्वनि चिह्नों की व्यवस्था है जिसके माध्यम से समाज के समूह (Group) सहयोग करते हैं।' (A language ls a system of arleitrary vocal symbols by means of which a society

group cooperates) स्त्रुतेवाँ की भाषा सम्बन्धी परिभाषा भी ब्लाक तथा ट्रेगर के समान ही है। उनके अनुसार 'भाषा यादृच्छिक ध्वनि चिह्नों की व्यवस्था है। जिसके द्वारा सामाजिक समूह के व्यक्ति सहयोग एवं सम्पर्क करते हैं।' (A language is a system of arbitrary Vocal Symbols by means of which members of a social group cooperate and interact.')

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'उच्चारण अवयवों से उत्पन्न यादृच्छिक ध्वनि चिह्नों की वह व्यवस्था जिसे मनुष्य परस्पर विचार विनिमय में प्रयोग करते हैं, भाषा कहते हैं।" इस प्रकार भाषा की विभिन्न परिभाषाओं द्वारा भाषा के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विशेषताओं को जाना जा सकता है; जैसे–

(१) केवल मनुष्य द्वारा उच्चरित ध्वनियां भाषा के अन्तर्गत आती हैं।

(२) मनुष्य द्वारा उच्चरित सार्थक ध्वनियाँ ही भाषा कही जा सकती हैं।

(३) मनुष्य द्वारा उच्चरित ध्वनियाँ जिनका स्वरूप निश्चित होता है भाषा कहलाती हैं। अनिश्चित स्वरूप वाली पशु-पक्षियों की ध्वनियों को भाषा नहीं कह सकते हैं।

(४) मनुष्य द्वारा उच्चरित ध्वनियों का अर्थ पहले से ही निर्धारित तथा परम्परागत होता है।

(५) किसी विशेष भाषा का व्यवहार मनुष्य समाज के किसी न किसी समूह द्वारा किया जाता है। समूह के सभी सदस्य किसी भी भाषा को अपने विचार विनिमय के साधन के रूप में प्रयोग करते हैं।

(६) भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है। प्रारम्भ से ही मनुष्य जिस भाषा के सम्पर्क में आता है उसे ही सीख लेता है।

(७) भाषा परिवर्तनशील होती है।

भाषा के विविध रूप:–भाषा के विभिन्न रूप हैं; जैसे–(१) सामान्य भाषा, (२) बोली, (३) विभाषा, (४) भाषा, (५) राष्ट्रभाषा, (६) राजभाषा, (७) साहित्यिक भाषा, (८) कृत्रिम भाषा आदि।

सामान्य भाषा–मनुष्य के विचारों के आदान-प्रदान का साधन भाषा होती है। सामान्य भाषा के अन्तर्गत किसी भी देश अथवा प्रान्त की भाषा आती है, जैसे अंग्रेजी, चीनी, फ्रेन्च, हिन्दी, तमिल आदि। किसी क्षेत्र या देश के नाम पर उस स्थान की भाषा का नामकरण कर दिया जाता है।

बोली (Patois) बोली को उपभाषा भी कहा जाता है। यह भाषा का संकुचित अथवा लघुतम रूप कहा जा सकता है। भाषा का बोलचाल में व्यवहृत होने वाला स्थानीय रूप बोली कहलाता है। प्रत्येक मनुष्य अपने संस्कारों, सामाजिक प्रभावों तथा शिक्षा के अनुरूप प्रचलित भाषा को वैयक्तिक विशेषता देकर बोलता है। हर व्यक्ति की बोली में कुछ न कुछ अन्तर आ जाता है। बोली को 'व्यक्ति

बोली' अंग्रेजी में (Idiolect) कहते हैं। बोली की परिभाषा (Dictionary of Linguistics) भाषा विज्ञान कोश में इस प्रकार की है–'किसी समाज की सामान्य भाषा को बोलते समय व्यक्ति द्वारा उससे पैदा की गई वैयक्तिक विशेषता को व्यक्ति बोली कहते हैं। (Idiolect is the individval's) personal variety of the community language system) प्राय: बोली शब्द का प्रयोग फ्रेन्च भाषा के पेत्वः (Patois) शब्द के अर्थ में किया जाता है जिसकी परिभाषा 'भाषा विज्ञान कोश' में इन शब्दों में दी है–"किसी स्थान विशेष के निम्नवर्गीय अशिक्षित लोगों की बोलचाल की भाषा को बोली कहते हैं"। (Popular speech, mainly that of the illiterate classes specifically a local dialect of the lower social strata.)। डा० श्यामसुन्दरदास ने 'भाषाविज्ञान' नामक पुस्तक में बोली की परिभाषा इस प्रकार बताई है–'बोली से हमारा अभिप्राय उस स्थानीय और घरू बोली से है जो तनिक भी साहित्यिक नहीं होती और बोलने वालों के मुख में ही रहती है।" बोली की परिभाषा करते हुए 'भाषाविज्ञान' में डॉ० भोलानाथ तिवारी ने लिखा है 'बोली' किसी भाषा के एक ऐसे सीमित क्षेत्रीय रूप को कहते हैं जो ध्वनि रूप, वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द-समूह तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से, उस भाषा के परिनिष्ठित तथा अन्य क्षेत्रीय रूपों से भिन्न होता है, किन्तु इतना भिन्न नहीं कि अन्य रूपों के बोलने वाले उसे समझ न सकें साथ ही जिसके अपने क्षेत्र में कहीं भी बोलने वालों के उच्चारण, रूप-रचना, वाक्यगठन, अर्थ, शब्दसमूह तथा मुहाविरों आदि में कोई बहुत स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण भिन्नता नहीं होती।" जब बोली साहित्यिक रूप धारण कर लेती है या पड़ोसी बोलियों से अधिक भिन्न हो जाती है तो वह भाषा का रूप धारण करने लगती है। एक भाषा के क्षेत्र में अनेक बोलियाँ पाई जाती हैं; जैसे हिन्दी क्षेत्र में ब्रज, अवधी, खड़ी बोली बुन्देल खण्डी आदि बोलियाँ हैं। एक बोली में कई उपबोलियाँ पाई जाती हैं, जैसे बुन्देली की पाँवारी, राठौरी, लोधान्ती तथा अवधी बोली के अन्तर्गत लखीमपुरी, सीतापुरी, लखनवी, उन्नवी एवं रायबरेली आदि उपबोलियाँ आतीं हैं।

'बोली' को कुछ विद्वान् उपभाषा (Sub-dialect) से सम्बोधित करते हैं। हिन्दी के कुछ भाषाविज्ञानीं बोली के स्थान पर 'विभाषा' 'उपभाषा' या प्रान्तीय भाषा' आदि शब्दों का भी प्रयोग करते हैं

विभाषा (Dialect)–विभाषा का क्षेत्र बोली की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है। विभाषा का रूप परिमार्जित, शिष्ट एवं साहित्य सम्पन्न होता है। एक विभाषा में कई बोलियाँ होती हैं। विभाषा का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली, भोजपुरी, गढ़वाली आदि विभषाओं के अन्तर्गत कई बोलियाँ पाई जाती हैं। डा० श्याम सुन्दर दास के अनुसार विभाषा की परिभाषा इस प्रकार है–"एक

प्रान्त अथवा उपप्रान्त की बोलचाल तथा साहित्यिक रचना की भाषा विभाषा कहलाती है।' ऋषि गोपाल ने विभाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है–'विभाषा भाषा का वह स्वरूप है जो विशेष प्रदेश में बोला जाता है और उच्चारण, व्याकरणिक रूप और शब्द प्रयोगों की दृष्टि से अन्य विभाषाओं से भिन्न होता है परन्तु इतना भिन्न नहीं की उसे एक भाषा के क्षेत्र के अन्तर्गत न रखा जा सके।' बोलियाँ धीरे धीरे विकसित होकर विभाषा अथवा साहित्यिक भाषा बन जाती हैं। बोलियाँ निम्न कारणों से महत्त्वपूर्ण होकर साहित्यिक भाषा बन जाती हैं–

(१) जब कई बोलियों में से कोई बोली अन्य बोलियों के लुप्त होने के कारण शेष रह जाती है तो उसका महत्त्व अधिक हो जाता है और उसे 'भाषा' का नाम दे दिया जाता है। मुण्डा वर्ग की 'ब्रांहुई' इसी प्रकार की भाषा है।

(२) उत्तम साहित्य-सृजन होने से कुछ बोलियाँ अधिक प्रचलित हो जाती हैं तथा लोकप्रियता के कारण भाषा बन जाती हैं। ब्रजभाषा इसी प्रकार की बोली है।

(३) कुछ बोलियाँ राजाओं के दरबारों में आश्रय पाकर विकसित हुईं। खड़ी बोली का क्षेत्र राजनीतिक केन्द्र रहा। दिल्ली के समीप स्थित होने से यह अन्य बोलियों को पीछे छोड़ती हुई राष्ट्रभाषा बन गई तथा हिन्दी क्षेत्रों की प्रमुख सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित हो गई।

(४) धार्मिक विशेषता के कारण भी कुछ बोलियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयीं। कृष्ण सम्बन्धी साहित्य का प्रणयन विशेषकर सूरदास की रचनाएँ ब्रज में होने से ब्रजभाषा की महत्ता बढ़ गई। इसी प्रकार अयोध्या का संबन्ध भगवान् श्रीराम से होने तथा 'रामचरित' की रचना अवधी में होने से अवधी का भी महत्त्व अधिक हो गया। खड़ी बोली के प्रचार में ईसाई मिशनरियों तथा आर्यसमाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

(५) बोलने वालों के महत्त्व के कारण कोई बोली विशेष भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। अंग्रेजी का क्रमशः विकास होकर अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनना कुछ इसी प्रकार है।

जिन कारणों से कोई बोली विभाषा या भाषा के रूप में परिवर्तित हो जाती है उन कारणों के न होने पर पुनः उसका महत्त्व कम हो जाता है। ब्रजभाषा जो हिन्दी क्षेत्र के बड़े भाग में यहाँ तक कि गुजरात तथा बंगाल तक में व्यवहृत होने लगी थी तथा गौरव से मंडित हो चुकी, पुनः महत्त्व कम होने पर विभाषा होकर ही रह गई। कभी कभी पड़ोसी प्रभावशाली बोलियों के प्रभाव से अन्य बोलियाँ अप्रचलित होकर नष्ट या मृत हो जाती हैं। आयरलैण्ड की गोलिक भाषा अंग्रेज़ी के कारण मृत हो गयी। लैटिन के कारण रोम के समीप की अन्य भाषायें नष्ट हो गयीं। विकेन्द्रित होने पर विभाषा स्थानीय प्रभावों के कारण पुनः अनेक बोलियों में बदल जाती है।

टकसाली भाषा, आदर्श या परिनिष्ठित भाषा (Standard Language) जब एक भाषा क्षेत्र की कोई एक बोली आदर्श मान ली जाती है तथा उसका उपयोग सम्पूर्ण क्षेत्र के कार्यों, शिक्षित वर्ग के मनुष्यों की शिक्षा, पत्र-व्यवहार, समचार पत्रों तथा शिष्ट लोगों की पारस्परिक बातचीत के लिए किया जाता है तो उसे टकसाली या परिनिष्ठित भाषा कहते हैं। टकसाली या आदर्श भाषा का प्रभाव समीप की अन्य बोलियों पर पड़ता है, हिन्दी क्षेत्र में खड़ी बोली को भाषा का पद मिलने के बाद उसका प्रभाव हिन्दी क्षेत्र की अन्य बोलियों जैसे अवधी, ब्रज, बुन्देली, कन्नौजी, भोजपुरी आदि पर पड़ा है। आदर्श भाषा पर समीप की अन्य बोलियों का भी प्रभाव उच्चारण, शब्द भण्डार तथा व्याकरण आदि पर दिखाई देता है।

आदर्श भाषा के लिखित तथा मौखिक रूप पाये जाते हैं। संस्कृत तथा लैटिन भाषा के लिखित रूप हैं। इनके बोलने वाले अत्यल्प हैं। ये पुस्तकों तक ही सीमित हैं। मौखिक रूप में किसी क्षेत्र की बोलचाल की भाषा आती है। खड़ी बोली का मौखिक रूप दिल्ली, मेरठ के समीप के क्षेत्रों में ग्रामीण बोलियों में मिलता है। मौखिक भाषा के वाक्य छोटे छोटे तथा भाषा को सही रूप को प्रदर्शित करने वाले होते हैं। खड़ी बोली हिन्दी का आदर्श रूप पत्र-पत्रिकाओं तथा साहित्यिक रचनाओं में पाया जाला है। भाषा का मौखिक रूप जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त किया जाता है तथा यह रूप परिवर्तनशील होता है जबकि साहित्यिक रचनाओं में प्रयुक्त लिखित रूप साहित्य के प्रभाव से अधिक समय तक सुरक्षित रहता है। भाषा का लिखित रूप अधिक शुद्ध होता है।

आदर्श या टकशाली भाषा की परिभाषा डा० श्याम सुन्दर दास ने इस प्रकार की है–'कई विभाषाओं में व्यवहृत होने वाली एक शिष्ट परिगृहीत विभाषा ही भाषा (या टकसाली भाषा) कहलाती है।'

'भाषाविज्ञान कोश' में टकसाली या आदर्श भाषा की परिभाषा इन शब्दों में की है– 'टकशाली भाषा किसी भाषा की उस विभाषा को कहते हैं जो अपनी साहित्यिक और सांस्कृतिक श्रेष्ठता अन्य विभाषाओं पर स्थापित करके उन विभाषाओं के बोलने वालों द्वारा उस भाषा का सर्वाधिक उपयुक्त रूप समझी जावे।'

राष्ट्रभाषा– बोली महत्त्वपूर्ण होकर आदर्श तथा टकशाली भाषा बन जाती है तथा प्रगति के पथ पर बढ़ते हुए जब आदर्श भाषा का प्रयोग सम्पूर्ण देश के शासन संबन्धी कार्यों में तथा अन्य भाषाओं के अधिकार क्षेत्र में होने लगता है तो उसे राष्ट्र-भाषा कहते हैं। राष्ट्र की भाषा होने से इसका क्षेत्र भाषा की अपेक्षा व्यापक हो जाता है। राष्ट्र की कोई भी भाषा अपनी व्यापकता, अधिक जनसंख्या, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक कारणों से राष्ट्र के सार्वजनिक कार्यों में प्रयोग की जाने लगती है तथा देश की संस्कृति एवं सभ्यता की द्योतक होती है, उसे राष्ट्रभाषा कहा जाता है।

हिन्दी की दशा भारत में इसी प्रकार की है। देश में अन्य अनेक भाषाएँ गुजराती मराठी, बंगाली, तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम आदि बोली जाती हैं किन्तु राष्ट्र-भाषा के पद पर हिन्दी ही अधिकार रखती है। हिन्दी का व्यवहार हिन्दी क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य भाषा क्षेत्रों में भी प्रशासनिक कार्यों में बढ़ रहा है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने वाली होती है। प्रत्येक राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा होना आवश्यक होता है। डा० भोलानाथ तिवारी ने राष्ट्रभाषा की परिभाषा इस प्रकार की है– "जब कोई बोली आदर्श भाषा बनने के बाद भी बढ़ती है और अन्य भाषा क्षेत्र तथा अन्य परिवार क्षेत्र में भी उसका प्रयोग सार्वजनिक कामों में होने लगता है तो वह राष्ट्रभाषा का पद पा जाती है।" फ्रान्स में भी भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में पृथक्-पृथक् बोलियाँ बोली जाती हैं। दक्षिणी फ्रान्स में प्रोवाँशाल, कार्सिका प्रान्त में इटैलियन, उत्तरी फ्रान्स में फ्रेन्च तथा बास्क बोली जाती हैं परन्तु उत्तरी फ्रान्स में बोली जाने वाली फ्रेन्च भाषा फ्रान्स की राष्ट्रभाषा है। इस प्रकार राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

राजभाषा--(Official Language)–राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के एक होने का भ्रम होता है। लोग इन शब्दों को पर्याय समझते हैं परन्तु इनमें भिन्नता भी हो सकती है। साधारणतः किसी राष्ट्र में राष्ट्रभाषा प्रशासनिक कार्यों में प्रचलित होकर स्वयमेव राजभाषा की अधिकारिणी हो जाती है। जब कोई विदेशी शक्ति किसी राष्ट्र पर विजय प्राप्त कर लेता है तो विजयी लोग अपनी भाषा को राजभाषा पद पर आसीन कर देते हैं। विजित लोग धीरे-धीरे राजभाषा के प्रति झुकते जाते हैं तथा राजभाषा कालान्तर में राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो जाती है। मुगलों के समय फारसी तथा अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजी राजभाषा के पद पर थी। स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रभाषा हिन्दी को राजभाषा बनाया गया है किन्तु अंग्रेजी भी राजभाषा का कार्य कर रही है। उर्दू को ही लिया जाय तो हम देखते हैं कि पाकिस्तान के चारों प्रान्तों में किसी भी प्रान्त की उर्दू न बोली है न भाषा किन्तु वह पाकिस्तान की राजभाषा है। कभी-कभी कोई भाषा राष्ट्र की सीमाओं के बाहर व्यापार, शासन आदि कार्यों में प्रयोग की जाती है तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के नाम से जाना जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में पहले फ्रेन्च का व्यवहार होता था किन्तु बाद में उसका स्थान अंग्रेजी ने ले लिया है।

साहित्यिक भाषा–(Literary Language)—टकसाली या आदर्श का ही साहित्य में प्रयुक्त विशेष रूप साहित्यिक भाषा कहलाता है। टकसाली या आदर्श भाषा जनसाधारण की बोले जाने वाली भाषा होती है जबकि साहित्यिक भाषा परिष्कार तथा विशेष शब्द प्रयोग के कारण अन्य बोलियों से दूर होती है। साहित्य का जनसाधारण में व्यवहृत टकसाली भाषा को सुधार कर, परिमार्जन करके विशेषता उत्पन्न करके उसे साहित्यिक भाषा का रूप देता है। टकसाली भाषा जनभाषा होने

से स्वतः ही नदी के प्रवाह की भाँति बढ़ती जाती है। साहित्यिक भाषा में कृत्रिमता का समावेश हो जाता है जबकि जनभाषा वास्तविक रूप को प्रकट करती है। जन-भाषा में नये-नये शब्दों का समावेश होने तथा अन्य भाषाओं, बोलियों का प्रभाव पड़ने से परिवर्तन एवम् अस्थिरता की प्रधानता रहती है जबकि साहित्यिक भाषा साहित्य में प्रयोग किए जाने के कारण कुछ काल के लिए स्थिर रूप बना लेती है। साहित्य में प्रयुक्त होने से ही वैदिक संस्कृत का प्राचीन रूप अब भी स्थिर है जबकि जनभाषा का उस काल का रूप आज बहुत ही बदल गया है। आम बातचीत में हिन्दी का टकसाली रूप भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बहुत कुछ साम्य रखता है, जबकि साहित्यिक रूप से वह हिन्दी तथा उर्दू दो रूपों के नाम से जानी जाती है। धीरे-धीरे साहित्यिक भाषा जनसाधारण के लिए दुर्बोध हो जाती है तो टकसाली भाषा में साहित्य सृजन प्रारम्भ हो जाता है बाद में यह भी साहित्यिक भाषा का पद पा लेती है। इसी प्रकार क्रम चलता रहता है भाषाविज्ञानकोष में साहित्यिक भाषा की परिभाषा इन शब्दों में दी गई है--'किसी भाषा की वह विभाषा जो सर्वश्रेष्ठ समझ कर साहित्य रचना के लिए प्रयोग की जाए तथा बोलचाल की भाषा की अपेक्षा कुछ विशिष्ट हो।' 'That dialect of a language which is regarded as the best and is used for literary purposes . The formal language of literature, in contradistinction to colloquial language or to the vernarcular ."

डा० मंगलदेव शास्त्री साहित्यिक भाषा उसे स्वीकार करते हैं जिसमें साहित्य सृजन हुआ हो तथा जिसका प्रयोग विशेषतया शिक्षित समूह या शिष्ट वर्ग करता हो।"

विशिष्ट भाषा– प्रायः दैनिक व्यवहार में देखा जाता है कि कुछ वर्ग अपने कामों में विशिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं। व्यापारियों, छात्रों, सर्राफों, कहारों, साहित्यिक संस्थाओं आदि की भाषा आपस में कुछ भिन्न होती है तथा कुछ विशिष्ट-ताएँ पाई जाती हैं, इस प्रकार की भाषा विशिष्ट भाषा कहलाती है।

कृत्रिम भाषा– यद्यपि भाषा का विकास अपनी स्वाभाविक गति से होता है परन्तु कभी-कभी जाति, समाज एवं देश के हित में भाषा की रचना की जाती है। निश्चित शब्द के संकेतों से बातचीत की जाती है। इस प्रकार की भाषा को कृत्रिम भाषा कहते हैं। इस प्रकार की कृत्रिम भाषा एसपिरैंतो (Esperanto) है जिसकी रचना डा० एल. एल. जमेनहाफ ने की थी। इस भाषा का उदाहरण इस प्रकार देखा जा सकता है–कैट (kat) = बिल्ली। इन (in) = स्त्रीलिंग का चिह्न, इड id = बच्चों का चिह्न, एट (et), छोटे का चिह्न, ओ (O) = संज्ञा का चिह्न। एक बिल्ली (स्त्रीलिंग) = कैट इन ओ (kat–in–o)। एक बिल्ली का बच्चा = (kat-id-o) कैट-इड-ओ। एक छोटी बिल्ली (स्त्री०) का बच्चा = कैट–इन–एट–इट–ओ

(kat–in–et–id–o) यह भाषा रोमन लिपि में लिखी जाती है तथा एक सप्ताह में सीखी जा सकती है। इसकी सुधार की गई एक शाखा इडो (Ido) के नाम से जानी जाती है। इसमें सोलह नियम हैं। अत्यन्त सरल है तथा थोड़े समय में सीखी जा सकती है। चोर, डाकू, बच्चे अपने संकेत संकेत शब्दों का आश्रय लेकर बातचीत कर लेते हैं। कृत्रिम भाषा को दो भागों में बाँटा गया है–(१) गुप्त भाषा और (२) सामान्य भाषा।

(१) **गुप्त भाषा** का प्रयोग सेनाएँ, जासूसी विभाग, चोर, डाकू लड़के आदि करते हैं। भाषा के रूप को बिगाड़ कर, शब्दों में हेर फेर करके, नये शब्द मिला कर कृत्रिम भाषा बनाई जाती है। परसाद दो=पिटाई करो या जहर दो। अमर करो=मार डालो। हर्फम जर्फाति अर्फही=हम जात अहीं (इलाहाबादी)। आदि गुप्त भाषा के कुछ उदाहरण हैं।

(२) **सामान्य भाषा**– सामान्य कृत्रिम भाषा चलती हुई भाषा के आधार पर बनाई जाती है जिससे लोग शीघ्र समझ सकें। विश्व में इस प्रकार की भाषायें एसपिरेन्तो, इडो, नोवियल, इंटरलिंगुवा, ऑक्सिडेन्टल आदि हैं। भाषा के इन रूपों के अलावा अन्य रूप भी हैं जिनमें जाति भाषा (विभिन्न जातियों की बोली), स्त्री-भाषा (पुरुषों से भिन्न बोली का प्रयोग), पुरुष भाषा, ग्राम्य भाषा, शिष्ट, अशिष्ट, विकृत, मिश्रित भाषायें आदि हैं।

भाषा की प्रकृति या भाषासम्बन्धी प्रसिद्ध टिप्पणियाँ

(१) **भाषा परम्परागत होती है, मनुष्य उसे सीख सकता है किन्तु उत्पन्न नहीं कर सकता**– भाषा परम्परा से आगे चलती रहती है। भाषा का विकास समाज में होता है। मनुष्य उत्पन्न होने पर समाज द्वारा व्यवहृत भाषा को सीख कर अपना लेता है। भाषा सामाजिक वस्तु है उसका उपयोग भी समाज ही करता है। मनुष्य अपने भावों तथा विचारों का आदान-प्रदान किसी भाषा के माध्यम से ही करता है तथा समाज से सम्पर्क स्थापित करता है। समाज में रहकर बिना भाषा का सहारा लिए मनुष्य अपने कार्य नहीं कर सकता। यदि बालक को समाज से दूर रखा जाय तो वह कोई भी भाषा नहीं सीख पायेगा परन्तु समाज में रहकर वह समाज की भाषा को बड़ी सरलता से सीख लेता है। कभी-कभी देखा जाता है कि किन्हीं बच्चों को भेड़िया आदि पशु ले जाते हैं तथा पालन करते हैं तो इन बच्चों को भेड़ियों आदि की भाँति ध्वनि करने के अलावा अन्य किसी प्रकार की मानवीय भाषा नहीं आती। बच्चा पैदा होकर अपने माता-पिता से भाषा सीखता है। परिवार के संस्कारों शिक्षा आदि का बच्चे पर पूरा प्रभाव पड़ता है। परिवार के सदस्यों की भाषा की भाँति बच्चे की भाषा होगी। संस्कृत विद्वान् का बच्चा संस्कृत शब्द बहुल भाषा बोलेगा। मुसलमान परिवार का बच्चा फारसी-उर्दू शब्द बहुल भाषा का प्रयोग करेगा। भाषा

का शुद्ध, अशुद्ध जो रूप परिवार में बोला जायगा उसे बच्चा सीख कर बोलने लगेगा। इस प्रकार माता-पिता, समाज द्वारा बोली जाने वाली भाषा बच्चा परम्परागत रूप से सीखता है। व्यक्ति भाषा के प्रचलित रूप को सीख कर सुविधा से उसका प्रयोग कर सकता है। वह भाषा में अपनी इच्छा से कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। यदि परिवर्तन करेगा तो वह सब लोगों के लिए दुर्बोध हो जायगी तथा मनुष्य को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार परिवर्तन व्यक्ति की इच्छा पर नहीं होता यद्यपि कई पीढ़ियों बाद भाषा में स्वाभाविक रूप से क्रमशः परिवर्तन होता रहता है। इसी से कहा गया है कि भाषा परम्परागत होती है तथा मनुष्य उसे अपने प्रयत्न से अर्जित करता है किन्तु इच्छानुसार परिवर्तन नहीं कर सकता। अतः भाषा व्यक्तिकृत नहीं हो सकती।

(२) **भाषा परम्परागत होते हुए भी परम्पराप्राप्त सम्पत्ति नहीं है अथवा भाषा पैत्रिक सम्पत्ति नहीं है–** भाषा कुलपरम्परा से प्राप्त होने वाली सम्पत्ति नहीं है, अन्यथा वह स्वतः ही प्राप्त हो जाती। उसे सीखने का कोई प्रयास न करता। वास्तव में देखा जाता है कि घर या परिवार में माता-पिता या घर के अन्य सदस्य जिस भाषा को बोलते हैं बच्चा भी उसी भाषा का व्यवहार करने लगता है। देखने में लगता है कि भाषा पैतृक सम्पत्ति है क्योंकि पिता की भाषा पुत्र को प्राप्त हो जाती है परन्तु यही तथ्य सही होता तो बच्चा स्वतः पिता की भाषा सीख जाता किन्तु उसे भी भाषा सीखने के लिए बचपन में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। यदि भाषा पैतृक सम्पत्ति होती तो हिन्दी भाषी बच्चा इंगलैण्ड में रहकर अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी ही बोलना सीखता। परन्तु सही तथ्य तो यह है कि बच्चा जब अंग्रेजी या हिन्दी सुनता है, लिखता है तभी भाषा सीखता है। यदि बच्चे को समाज से पृथक् रखा जाय तो वह किसी प्रकार की भाषा नहीं बोल पाता। अतः स्पष्ट है कि भाषा परम्परा से प्राप्त या पैतृक सम्पत्ति नहीं हैं।

(३) **भाषा अर्जित सम्पत्ति है–** भाषा परम्परा से प्राप्त सम्पत्ति नहीं है। बच्चे को जिस समाज में तथा जिस भाषा के क्षेत्र में रखा जाता है बच्चा उसी के अनुसार भाषा को बोलना सीखता है। प्रायः देखा जाता है कि बच्चे को कोई भी भाषा हो प्रारम्भ से ही सीखनी पड़ती है तथा मां-बाप बच्चे को भाषा सिखाने में अथक परिश्रम करते हैं। हिन्दी भाषी मां-बाप का बच्चा जब फ्रान्स में पैदा होता है तो उस समाज तथा वातावरण से प्रभावित होकर वह फ्रेन्च सीख जाता है। यदि भाषा स्वतः प्राप्त होती तो वह जन्म से ही हिन्दी सीखता तथा बोलता। मिश्र के बादशाह सेमेटिकुस ने कुछ बच्चे मानव सम्पर्क से अलग रक्खे तो देखा गया कि वे बच्चे किसी प्रकार की भाषा नहीं जानते थे। इसी प्रकार पशुओं द्वारा उठाकर ले जाये गए बच्चे मानव भाषा से वंचित रहकर भेड़ियों आदि पशुओं जैसी ध्वनियों का प्रयोग

करने लगते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा स्वतः प्राप्त नहीं होती उसे अर्जित करना पड़ता है। अतः भाषा अर्जित सम्पत्ति है।

(४) **भाषा सामाजिक सम्पत्ति है–** मनुष्य समाज की एक इकाई है। वह समाज का अभिन्न अङ्ग होता है यद्यपि भाषा का प्रयोग विचार-विनिमय में व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से किया जाता है किन्तु भाषा समाज की वस्तु होती है। समाज द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा को ही बच्चा उत्पन्न होने के बाद सीखना प्रारम्भ कर देता है। भाषा का विकास समाज के बीच होता है। समाज के द्वारा ही भाषा में परिवर्तन होते रहते हैं। भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रचलन देखा जाता है जिसे मनुष्य अपनी सुविधा, सामाजिक सम्पर्क हेतु सीखता है। सामाजिक सम्पत्ति होने से ही भाषा में अकेले ही कोई परिवर्तन लाना व्यक्ति विशेष के वश की बात नहीं होती। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा सामाजिक सम्पत्ति है।

(५) **भाषा सतत परिवर्तनशील होती है–** भाषा के मौखिक तथा लिखित रूप होते हैं। जनसाधारण द्वारा बोले जाने वाला रूप मौखिक होता है। पुस्तकों में बद्ध रूप लिखित होता है। जनसाधारण की भाषा में भिन्न-भिन्न कारणों से नये-नये शब्द मिलते रहते हैं, रूप तथा अर्थ में परिवर्तन होते रहते हैं। भाषा के परिवर्तन में शारीरिक और मानसिक कारण कार्य करते हैं। प्रयत्न, स्थान, स्वर आदि वाग् यन्त्रों के कारण भी परिवर्तन होते हैं। बोली से विभाषा, फिर भाषा की उत्पत्ति होती है। भाषा भी कभी-कभी विकेन्द्रित होकर विभाषाओं तथा बोलियों में बदल जाती है। कभी कभी विदेशी आक्रान्ताओं के कारण उनके विजयी होने पर उनकी भाषा के शब्द अन्य भाषाओं में घुलमिल जाते हैं; उच्चारण, अर्थ सम्बन्धी परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं। नये-नये शब्दों के समावेश के कारण भी भाषा का रूप बदलता जाता है। भाषा के परिवर्तन को विकास एवं पतन दोनों दृष्टिकोणों से देखा जाता है। कुछ भाषा के प्राचीन रूप को उचित तथा पूर्ण की संज्ञा देते हैं कुछ बदलते रूप को समय के अनुसार उचित ठहराते हुए उसके विकास को स्वीकार करते हैं। भाषा में परिवर्तन एकाङ्गी न होकर पूर्ण रूप से होता है। भाषा की ध्वनि, शब्द, अर्थ, वाक्य की रचना, शब्दभण्डार आदि सभी में परिवर्तन होता है। परन्तु भाषा में होने वाले परिवर्तन दीर्घकाल में लक्षित होते हैं। विस्तृत क्षेत्र में बोले जाने वाली भाषा भिन्न-भिन्न भूभागों में पृथक्-पृथक् रूप से विकसित होने लगती है तथा उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। धीरे-धीरे कई भाषाओं में वह विभक्त हो जाती है। भाषा में परिवर्तन बाहरी तथा आन्तरिक परिस्थितियों के कारण भी होते हैं। बाहरी लोगों के सम्पर्क के अभाव में एस्कीमो लोगों की भाषा में कम-परिवर्तन हुए हैं। कुछ लोग लिथुआनी भाषा को कम परिवर्तनशील होने से संस्कृत के अधिक निकट स्वीकार करते हैं क्योंकि यह क्षेत्र पहाड़ी होने से बाहरी सम्पर्क में कम आया है। जिन क्षेत्रों में

बाहरी सम्पर्क अधिक हुआ है वहाँ परिवर्तन की गति तीव्र रही है । जिन शब्दों का प्रयोग अधिक किया जाता है वे भाषा में प्रचलित रहते हैं तथा जिनका चलन कम होता है वे शनैः शनैः लुप्त हो जाते हैं । कभी-कभी संक्षिप्तीकरण तथा बोलने की सुविधा के कारण शब्दों के रूप में अन्तर आ जाता है । तमिल भाषा में लिखने तथा बोलने के रूपों में अन्तर पाया जाता है । तमिल के पोयविट्टु वरुगिरेन् लिखित रूप हैं जिसका अर्थ-जाता हूँ (जाता, आता हूँ) हैं इसे बोलचाल में 'पोय्ट् वरें' कहा जाता है । हेनरी स्वीट के अनुसार दीर्घ स्वर शीघ्र लुप्त होते हैं ह्रस्व स्वर देर में । संयुक्त स्वर तो अपेक्षाकृत अति शीघ्र लुप्त हो जाते हैं। प्राचीन संस्कृत के अनेक शब्द जो कभी सबको स्वीकार थे बाद में उनका अर्थ बदल गया तथा समाज में प्रचलन कम हो गया । असुर शब्द प्राणवान् या शक्तिवान् के अर्थ में प्रयुक्त होता था जो किसी बाह्य कारण से 'राक्षस' जैसे बुरे अर्थ में प्रयोग होने लगा । अंग्रेजी, फारसी, जर्मन, ग्रीम, डच भाषाओं में बोलने तथा लिखने के शब्दों में कई ध्वनियों को छोड़ दिया जाता है । कुछ रूप लिखित भाषा में पाये जाते हैं परन्तु बोलते समय उन्हें छोड़ दिया जाता है । Thought और Daughter डॉटर, Doubt डॉउट, Calm कॉम आदि इसी प्रकार के शब्द हैं । इस प्रकार परिवर्तन की गति चलती रहती है तथा भाषाओं का रूप बदलता रहता है । 1013

(६) **भाषा की सामान्य प्रवृत्ति संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर होती है**– भाषा वियोगावस्था से संयोगावस्था की ओर नहीं जाती जैसा कि कुछ समय पहले विद्वान् विश्वास करते थे । भाषा की प्रवृत्ति संयोगावस्था अथवा संश्लेषावस्था या संहिता से वियोगावस्था या विश्लेषावस्था या व्यवहिति की ओर जाने की होती है । संहिति या संयोग मिली हुई दशा को तथा वियोग वियुक्त दशा को कहते हैं; जैसे-बालकः पुस्तकं पठति– यहाँ इस का अर्थ 'बालक पुस्तक को पढ़ता है' हुआ । संस्कृत में 'पुस्तकम्' या पठति संयोगावस्था है जो आगे चल कर हिन्दी में 'पुस्तक को' एवं 'पढ़ता है' वियोगावस्था में परिवर्तित हो गया । साधारणतः भाषाओं में वाक्य चार प्रकार से बनाये जाते हैं; स्वतंत्र शब्दों द्वारा जिसे व्यास प्रधान स्थिति कहते हैं यह प्रथम स्थिति है । कुछ शब्द प्रत्यय बनकर दूसरे शब्दों के साथ जुड़ते है इस प्रकार मिल कर भी अलग रहते हैं, यह दूसरी स्थिति प्रत्ययप्रधान कही जाती है । जब प्रत्यय धातु तथा प्रातिपदिक के साथ मिलकर विकार उत्पन्न करते हैं तो इस तीसरी स्थिति को विभक्ति प्रधान स्थिति कहते हैं । जब शब्द में प्रकृति तथा प्रत्यय का भेद नहीं ज्ञात होता तो उस चौथी स्थिति को समास प्रधान दशा कहते हैं । जैसे– बालकः– (व्यास प्रधान), बालकवत् (प्रत्यय प्रधान) बालकाय (विभक्ति प्रधान) तथा अस्मि=मैं हूँ (समास प्रधान) दशायें हैं । वर्तमान काल में चीनी भाषा व्यास प्रधान है, जहाँ हर शब्द स्वतत्र स्थिति रखता है, केवल शब्दों के स्थान परिवर्तन तथा

ध्वनि के आधार पर अर्थ निश्चित किया जाता है। कुछ प्राचीन स्वतन्त्र शब्द प्रत्यय का रूप धारणा कर चुके हैं; जैसे फ्रेन्डशिप गॉडली में शिप प्रत्यय का रूप पहले शेप (आकार) था तथा ली प्रत्यय का रूप लिक (Lik) था जिसका अर्थ शरीर था। हिन्दी का 'में' संस्कृत के 'मध्ये' से बना है।

प्राचीन काल में अवेस्ता की भाषा तथा संस्कृत (वैदिक) समास प्रधान थीं किन्तु वर्तमान काल में फारसी व्यास प्रधान भाषा है। वैदिक संस्कृत संयोगावस्था से भिन्न-भिन्न रूपों में पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के द्वारा वर्तमान समय तक वियोगावस्था की ओर बढ़ी है। कुछ भाषाएँ जिन पर बाहरी प्रभाव अधिक नहीं पड़ा अब भी संयोगावस्था के लक्षणों से पूर्ण हैं– जैसे लिथुआनी तथा अरबी आदि। इस प्रकार कह सकते हैं कि अधिकांश भाषाएँ संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर चलने की प्रवृत्ति रखती हैं यद्यपि इसके अपवाद भी प्राप्त होते हैं किन्तु उससे सही तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

(७) **भाषा की प्रवृत्ति कठिनता से सरलता की ओर होती है–** मानव की प्रवृत्ति होती है कि वह कठिन कार्यों से सरल कार्यों की ओर शीघ्र आकर्षित होता है। मनुष्य का यही गुण भाषा पर घटित होता है। मनुष्य शब्दों का उच्चारण करते समय आलस्य के कारण अथवा सरल एवं संक्षिप्तीकरण के कारण तोड़ता-मरोड़ता है तथा उसे छोटा तथा सरल बनाकर प्रयोग करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करता है। रतनेश को रतन, रामेन्द्र को राम, आम्रपाली को अम्मपा, कृष्ण को किशन जैसे रूपों से पुकारने लगता है। प्राचीन संस्कृत तथा ग्रीक जैसी भाषाओं में रूप अधिक पाये जाते हैं परन्तु वर्तमान काल की प्रचलित भाषाओं में रूपों की बहुत कमी हो गयी है। रूप याद करने अथवा अनेक शब्दों में प्रयोग की अपेक्षा अब विभक्ति चिह्न का प्रयोग करके कम रूपों से काम चला लिया जाता है। कठिनता से सरलता की ओर जाने का उदाहरण संस्कृत भाषा से देख सकते है जो वैदिक संस्कृत से किस प्रकार संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश जैसे भाषा रूपों में विकसित होती हुई वर्तमान भारतीय आर्यभाषाओं में बँट गई। पाली, प्राकृत, अपभ्रंश अपने-अपने काल में अपने से पूर्ववर्ती भाषा से सहज, सरल तथा जनसाधारण के लिए सुबोध थी। अतः कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में भाषा कठिन रहती है तथा कालान्तर में नदी की धारा के समान स्वाभाविक गति से चलती हुई सरल, सूक्ष्म होती जाती है। वह संयोगावस्था से वियोगावस्था में बदलती जाती है। संसार की सभी भाषाओं में यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

(८) **शब्द भाषा का प्रमुख अवयव है किन्तु भाषा का प्रारम्भ वाक्यों से हुआ है–** मनुष्य पारस्परिक सम्पर्क साधन के रूप में भाषा का प्रयोग करता है। भाषा की छोटी इकाई शब्द हैं जिनसे कुछ अभिप्राय समझा जा सकता है किन्तु शब्द कहने

से ही बात पूरी नहीं समझी जा सकती, अतः शब्द समूहों अर्थात् वाक्यों का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। पारस्परिक बात-चीत में लोग शीघ्रातिशीघ्र वाक्यों का प्रयोग करते हैं तथा आपस में अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं। केवल एक एक शब्द कहने से बात पूरी नहीं की जा सकती। यह बात और है कि कभी-कभी कुछ शब्द पूरे वाक्य का अर्थ प्रदर्शित करते हैं, जैसे आओ' अर्थात् तुम यहाँ आओ को प्रकट करता है इसी प्रकार 'जाओ' 'पढ़ो' 'खेलो' शब्दों से तुम जाओ, तुम पढ़ो, तुम खेलो जैसे वाक्यों के भाव को समझा जाता है। इसी प्रकार बच्चों द्वारा एक एक शब्द का उच्चारण जैसे 'दूध', 'पानी' आदि कहना पूरे वाक्य का भाव प्रकट कर देता है। उ० अमेरिका के मूल निवासी 'रेड इण्डियन्स' की भाषाओं में वाक्य से प्रतीत होने वाले शब्दों का प्रयोग होता है जैसे पुरानी भाषा 'हूरोन-इरोक्वा' (Huron-Iroquois) में वाक्य जैसे शब्द दर्शनीय हैं– एस्चोइरहोन् अर्थात् मैं पानी के लिए गया। सेत्होनहा अर्थात् पानी के लिए जाओ। ओन्द्रक्वोहा अर्थात् बाल्टी में पानी है। दाउस्तान्तेवा-चारेट अर्थात् वर्तन में पानी है। इन चारों वाक्यों का रूप शब्द जैसा है। इनमें स्वतंत्र शब्द नहीं हैं, जैसे 'पानी' का प्रयोग सब वाक्यों में है किन्तु मूल रूप में इसके लिए किस शब्द का प्रयोग किया गया यह यहाँ घोषित नहीं होता। अतः इन लोगों के भाव वाक्यों द्वारा प्रकट हुए हैं। बोलने तथा भाव दूसरों पर शीघ्र प्रकट करने के कारण वाक्य का संक्षिप्तीकरण कर दिया जाता है। मुझे मार डाला के स्थान पर मुझे माड्डाला मास्टर साहब के स्थान पर मास्साब जैसे शब्दों का प्रयोग शीघ्रता में कर लिया जाता है। फ्रेन्च तथा संस्कृत भाषा में सन्धि के कारण वाक्य छोटे-छोटे हो जाते हैं तथा शब्द से प्रतीत होते हैं 'गन्तुमिच्छाम्यहम्' वाक्य शब्द जैसा लगता है जिसका अर्थ है– 'मैं जाना चाहता हूँ' इस प्रकार देखते हैं कि भाषा में भाव-विचार के सम्प्रेषण में वाक्य मुख्य आधार है तथा भाषा का प्रारम्भ वाक्यों से ही हुआ है किन्तु अर्थ के दृष्टिकोण से शब्द भाषा की सबसे छोटी इकाई मानी गई है। यद्यपि उच्चारण शब्द ध्वनियों के लिए या वर्णों में विभाजित किए गए हैं।

(९) **भाषा की प्रवृत्ति स्वतन्त्र होती है–** भाषा की प्रकृति स्वतंत्र रूप से सहज गति से आगे बढ़ना है। वह जनसाधारण के द्वारा प्रयुक्त होती हुई नदी की धारा की भाँति स्वतः विकसित होती जाती है। जब भाषा को व्याकरण के नियमों द्वारा बाँध दिया जाता है तो उसका स्वाभाविक विकास रुक जाता है वह स्थिर तथा जड़ हो जाती है तथा धीरे-धीरे मृतावस्था को प्राप्त हो जाती है। संस्कृतभाषा को वैदिक काल से ही वैयाकरणों ने व्याकरण रच कर बाँधा किन्तु उसके रूप विकास के कारण बदलते गए। संस्कृत स्वयं व्याकरण की जकड़ में फंस कर आज भी उसी रूप को प्रदर्शित करती है जैसा कि हजारों वर्ष पहले साहित्य में पाया जाता था। साहित्यिक रूप से भिन्न होकर भाषा जनसाधारण के प्रयोग द्वारा आगे बढ़ती जाती

है । एक समय ऐसा भी आता हैं जब उसका साहित्यिक रूप साधारण व्यक्ति के लिए समझाना कठिन हो जाता है तब नयी भाषा बन जाती है । संस्कृत अपने मूल रूप से जन भाषाओं में विकसित होकर पाली, प्राकृत, अपभ्रंश जैसी भाषाओं में बदल गई । भगवान् बुद्ध ने अपने समय की जन-जन की भाषा पाली में अपने उपदेश व्यक्तियों को दिए थे । उस समय संस्कृत साधारण मनुष्यों की भाषा (पाली) से दूर होकर विद्वानों, पण्डितों तथा पुस्तकों की भाषा होकर रह गई थी । संस्कृत को नियमों में आबद्ध करने के लिए, अपशब्दों के प्रयोग को रोकने के लिए, नये तथा असंस्कृत शब्दों को म्लेच्छ शब्दों के नाम से सम्बोधित किया गया था । जैसे 'गौ' संस्कृत शब्दों के अनेक अपभ्रंशित रूप गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि का भाषा में प्रचलन हो गया था जिनके प्रयोग को रोकने की वैयाकरणों ने चेष्टा की । इसी प्रकार अवेस्ता की भाषा आज अपने कई रूपों से होकर वर्तमान फारसी भाषा बनी है । इसी प्रकार यूरोप में अनेक भाषाएँ ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं से उसी प्रकार विकसित हुई हैं जैसे संस्कृत से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ । इस प्रकार भाषा की प्रवृत्ति स्वच्छन्दता एवं स्वतन्त्रता की होती है जो नियमों द्वारा बाधित नहीं की जा सकती, यही नियम वर्तमान प्रचलित भाषाओं पर घटित होता है जिनका वर्तमान रूप कुछ सौ वर्षों में बहुत सीमा तक परिवर्तित हो जायगा । इस प्रकार भाषा की स्वतन्त्र प्रकृति परिलक्षित होगी ।

(१०) **भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं है**– भाषा की गतिशीलता एवं परिवर्तनशीलता तथा स्वतंत्र प्रवृत्ति के कारण भाषा का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता । पिछले हजारों वर्ष के इतिहास के देखने पर ज्ञात होता है कि संसार की अनेक प्राचीन भाषाएँ अब लुप्त हो चुकी हैं अथवा उनका रूप बहुत ही बदल गया है तथा उनसे नई-नई भाषाओं का विकास हो गया है । यह बात लैटिन, ग्रीक संस्कृत, अवेस्ती तथा हिब्रू भाषाओं पर लक्षित होती है । इन भाषाओं से बनी वर्तमान भारतीय तथा यूरोपीय भाषाओं का आज का प्रचलित रूप निश्चित रूप नहीं हो सकता । विकास की अविराम धारा के कारण ये भाषाएँ भी परिवर्तित हो गयीं । संस्कृत से उद्भूत हिन्दी, बंगला, पंजाबी, गुजराती जैसी भाषाएँ परिवर्तन की राह में पड़कर निश्चय ही अपने वर्तमान रूप को खो देंगी तथा इनसे नवीन भाषाओं का विकास होगा । अतः यह कथन समीचीन ही है कि भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा परम्परागत सम्पत्ति होते हुए भी परम्परा प्राप्त अर्थात् पैतृक सम्पत्ति नहीं है । भाषा को सीखना पड़ता है अतः वह अर्जित सम्पत्ति है । भाषा सामाजिक सम्पत्ति है, वह समाज द्वारा प्रयुक्त की जाती है तथा उसका निर्माण एक व्यक्ति नहीं कर सकता अतः वह व्यक्तिकृत नहीं है । भाषा में

सदैव परिवर्तन होते रहते हैं, ये परिवर्तन शीघ्रता से भी हो सकते हैं या मंथर गति से भी हो सकते हैं । मूलतः भाषाएँ संयोगावस्था में होती है तथा विकास के चरणों में उसकी प्रवृत्ति वियोगावस्था या वियुक्तावस्था की ओर रहती है । भाषा जनसाधारण द्वारा बोली व समझी जाती है । मनुष्य स्वभावत: सहजता की ओर आकर्षित होता है अत: वह शब्दों को सरल तथा संक्षिप्त बनाने की चेष्टा करता है । इन प्रयत्नों से भाषा का रूप कठिनता से सरलता की ओर बढ़ता रहता है । यद्यपि शब्दों से वाक्य बनते हैं किन्तु बोल चाल में वाक्यों का प्रयोग किया जाता है, अतः वाक्यों से ही भाषा का प्रारम्भ माना गया है लेकिन मुख्य अवयव शब्द ही हैं । भाषा की प्रबृत्ति स्वतंत्रता की होती है वह मनुष्यों द्वारा व्यवहृत होती हुई अपनी सहजगति से आगे बढ़ती रहती है । नियमों द्वारा उसकी स्वतन्त्रप्रवृत्ति नहीं रोकी जा सकती है । भाषाओं का पिछला हजारों वर्षों का इतिहास बताता है कि भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं रहता ।

भाषा–परिवर्तन–

भाषा का निरन्तर विकास होने से वह परिवर्तनशील होती है । भाषा का विकास थोड़े समय में स्पष्ट लक्षित नहीं होता परन्तु विकास कई सौ वर्षों के अन्तराल में स्पष्ट प्रतीत होने लगता है । कई सौ वर्षों में भाषा के रूप में इतना अन्तर हो जाता है कि उसका पूर्वरूप जनसाधारण के लिए कठिनता से समझने योग्य हो जाता है । मानव युग के अनुसार बदलता रहता है उसके साथ ही उसके विचारों की अभि-व्यक्ति का साधन भाषा भी बदलती है । मनुष्य की भाषा पर उसके शारीरिक एवं मानसिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है, इसी से मनुष्य मनुष्य की बोली में अन्तर भासित होता है । भाषा का प्राचीन साहित्यिक रूप देखकर कुछ विद्वान् परिष्कृत भाषा के न बदलने की कल्पना करते हैं परन्तु साहित्य में आबद्ध भाषा का वास्तविक रूप मनुष्यों के मुख में रहता हैं, जनसाधारण उसको बोलता समझता है तथा जन-साधारण की बोली नदी की धारा की भाँति विकास की ओर बढ़ती रहती है, अतः भाषा के रूप न बदलने की कल्पना उचित नहीं । आज हम देखते है कि संस्कृत की अनेक प्राचीन ध्वनियों का स्पष्ट रूप ज्ञात नहीं होता उनके उच्चारण का ढंग बदल गया है । प्राचीन 'ऋ' का रूप निश्चय ही दूसरा था अब उसे 'रि' तथा दक्षिण भारत में 'रु' के रूप में उच्चारित करते हैं । 'ष' का उच्चारण 'ख', 'य' को ज तथा 'ज्ञ' को 'ग्य' की तरह उच्चारण करते हैं । प्राचीन भाषाओ में प्रायः हर भाषा में परिवर्तन हुआ है । कहीं बाहरी सम्पर्क से तीव्रगति से हुआ, कहीं मन्द गति से हुआ है । वैदिक संस्कृत, संस्कृत भाषा, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में बदलती हुई वर्तमान भाषाओं में परिवर्तित हुई । प्राचीन रूप उसकाल की साहित्यिक कृतियों में पाये जाते हैं । भाषा के प्राचीन रूप संश्लेषात्मक पाये जाते हैं । उसके बाद उसका विकास विश्लेषणात्मक भाषाओं के रूप में हुआ । 'सः पठति' में 'पठति' का

रूप हिन्दी में वियोगात्मक रूप से 'पढ़ता है' हुआ । भाषा में परिवर्तन उसके सभी अङ्गों–ध्वनि, शब्द, रूप, अर्थ और वाक्य में होता है । ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तन ध्वनियों के लोप, आगम, विपर्यय-परिवर्तन आदि होते हैं ।

भाषा के विकास के कारणों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते है–

(१) आन्तरिक या आभ्यंतर कारण (२) बाह्य कारण ।

(१) आन्तरिक कारण–भाषा में परिवर्तन लाने वाले आन्तरिक कारण अनेक हैं–

(क) अनुकरण की अपूर्णता ।

(ख) मात्रा, सुर, बालाघात का प्रभाव

(ग) प्रयत्नलाघव

(घ) सादृश्य

(ङ) प्रयोगाधिक्य ।

(क) अनुकरण की अपूर्णता–मनुष्य उत्पन्न होने के बाद आस पास के वातावरण में जिस प्रकार की भाषा को सुनता है उसी को धीरे–धीरे सीख लेता है । इस प्रकार शब्दों का सीखना अनुकरण के सहारे किया जाता है । यदि अनुकरण दोष पूर्ण होता है तो भाषा में विकार आ जाता है । इस विकार जन्य परिवर्तन का ज्ञान सैकड़ों वर्षों में स्पष्ट होता है । अनुकरण की अपूर्णता कई कारणों से होती है जो निम्न प्रकार हैं–

(१) शारीरिक विभिन्नता–उच्चारण अंगों का बनाव हर व्यक्ति के शरीर में एक सा नहीं होता है, अतः किसी का उच्चारण स्पष्ट समझ में आता है किसी का अस्पष्ट । महीन आवाज वाले व्यक्ति भारी आवाज के व्यक्तियों की तुलना में स्पष्ट बोलते हैं । अनेक कारणों से (देश, काल, अनुचित उपयोग, राजसी एवं तामसी भोजन) कोमल स्वर यन्त्र प्रभावित होकर संकुचित या विस्तृत हो जाते हैं जिसके कारण वर्णों के उच्चारण की शुद्धता पर प्रभाव पड़ता है तथा उच्चारण में अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं । इस प्रकार होने वाले भाषा परिवर्तनों का ज्ञान पीढ़ियों बाद स्पष्ट दिखाई देता है । अग्निपुराण में मनुष्य के शारीरिक दोषों के कारण उच्चारण त्रुटि पूर्ण होना बताया गया है, यथा–

न करालो न लम्बोष्ठो नाव्यक्तो नानुनासिकः ।
गद्गदो बद्धजिह्वश्च न वर्णान् वक्तुमर्हति ।।

"अर्थात् बहुत फैले मुँह वाला या दाँत बाहर को निकले हुए मुँह वाला, लम्बे होठ वाला, अस्पष्ट बोलने वाला, नाम से उच्चारण करने वाला और बँधी जिह्वावाला व्यक्ति वर्णों का ठीक उच्चारण नहीं कर सकता ।"

(२) असावधानी––असावधानी या ध्यान की कमी के कारण अनुकरण में दोष उत्पन्न हो जाते हैं । त्रुटिपूर्ण उच्चारण का शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थी भी

अनुकरण करने लगते हैं इस प्रकार धीरे धीरे त्रुटिपूर्ण शब्द बढ़ते जाते हैं तथा व्यवहार में आकर भाषा में परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं। प्रायः हिन्दी में प्रयुक्त होने वाला उपरोक्त शब्द का सही रूप उपर्युक्त है। इसी प्रकार अन्य शब्द भी देखे जाते हैं।

(३) **अशिक्षा**-अनुकरण में अशिक्षा के कारण भी परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। बोलचाल में अशिक्षित लोग बहुत से विदेशी शब्दों का उच्चारण सही रूप से नहीं करते धीरे धीरे ये शब्द भाषा में मान्य होकर परिवर्तन ला देते हैं। व का ब श का स, क्ष का ख, ण का न य का ज उच्चारण अज्ञान के कारण होते हैं। डाक्टर को डागदर, इन्सपेक्टर को इसपट्टर रिपोर्ट को रपट, एन्जिन को इंजन, प्लैटून को पलटन, लाइब्रेरी को रायबरेली, यूनीवर्सिटी को अनवरसिटी, टाइम को टेम, दर्ख्वास्त को दरखास अशिक्षा एवं अज्ञानता वश कह दिया जाता है। इस कारण भी भाषा में परिवर्तन होते हैं।

(४) **लिपि की अपूर्णता अथवा लिपि दोष**-लिपि की अपूर्णता का भाषा में परिवर्तन लाने में योग रहता है। अंग्रेजी में कलिकाता का कैलकटा (Calcutta), तिरुवनन्तपुरम् का ट्रिवैन्ड्रम (Trinandrum), मुम्बई का बांम्बे (Bombay) दिल्ली का डलही (Dllhi) 'पुदुच्चेरि' का 'पाँडिचेरी' (Pondicherry) हो जाता है। अरबी का साअत हिन्दी में साइत, तमिल में नेहरू का नेरू, हिमालय का इमयलै,-शासन का असमिया में हारवान, असम का ही ऑहॉम, अरबी का 'जगह' मराठी में जागा हो जाते हैं। ये परिवर्तन लिपियों की कमियों के कारण होते हैं जो धीरे-धीरे भाषा में प्रचलित होकर परिवर्तन उत्पन्न कर देते हैं।

(ख) **मात्रा, सुर, बलाघात का प्रभाव**-जब शब्द के उच्चारण में किसी ध्वनि पर अधिक बल दिया जाता है तो अन्य ध्वनियां दुर्बल पड़कर धीरे-धीर समाप्त हो जाती है। जैसे आभ्यन्तर शब्द में 'भ्य' पर अधिक बल देने के कारण 'आ' ध्वनि दुर्बल होकर बाद में लुप्त हो गयी तथा 'भीतर' शब्द की रचना हुई। इसी प्रकार ध्वनि के अतिरिक्त यदि शब्द के किसी अर्थ पर अधिक बल दिया जाता है तो अन्य अर्थ धीरे-धीरे प्रचलन से बाहर होकर लुप्त हो जाते हैं। वैदिक भाषा में 'अरि' के चार अर्थ ईश्वर, निवासस्थान, धार्मिक एवं शत्रु थे। कालान्तर में 'शत्रृ' अर्थ पर अधिक बल दिया गया तो अन्य अर्थ लुप्त हो गए। सुर के कारण शब्द में परिवर्तन घटित होते हैं तथा भाषा में परिवर्तन आता है जैसे बिल्व शब्द बाद में संवृत स्वर के विवृत स्वर में बदलने के कारण ,बेल' शब्द बन गया। मात्रा के कारण भी ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। प्रायः दो दीर्घ ध्वनियों के समीप होने पर उनमें एक ह्रस्व होकर शब्द में बदलाव ला देती है।

(ग) **प्रयत्नलाघव**-शब्दों को शीघ्र तथा संक्षिप्त रूप में उच्चारण करने की

प्रवृत्ति मनुष्य में पाई जाती है। कम प्रयत्न द्वारा अधिक कहना ही प्रयत्नलाघव है। आलस्य के कारण मनुष्य शब्द का पूर्णतः उच्चारण नहीं करते हैं। कृष्ण को किशन, स्टेशन के टेशन, धर्म को धरम, कर्म को करम, सात अनाज को सतनजा, भक्त को भगत, प्रसाद को परसाद कहते हैं। पंडित जी को पंडी जी, मास्टर साहब को मास्साव, आदि शीघ्रता एवं आलस्य के कारण बोले जाते हैं। प्रयत्नलाघव कई प्रकार से होता है। स्वरागम (स्कूल का इस्कूल या स्थान का इस्थान) स्वरलोप (अनाज का नाज), व्यञ्जनागम (अस्थि का हड्डी), व्यंजन लोप (स्थल का थल, स्थाली का थाली, स्थान का थान), अक्षर लोप (शहतूत का तूत), वर्ण विपर्यय (लखनऊ का नखलऊ),अम रूद का अरमूद), समीकरण (शर्करा से शक्कर, चक्र से चक्क) विषमीकरण कंकण कंगन काक, का काग), स्वर भक्ति (भक्त का भगत) संक्षिप्तीकरण (हस्तिन मृग का हस्ती या हाथी) आदि रूप में प्रयत्न लाघव भाषा में परिवर्तन उत्पन्न करता है।

(घ) **सादृश्य**–सादृश्य का अर्थ समानता से है। पहले से उपस्थित शब्दों के सदृश्य पर नये शब्दों को बना लिया जाता है। संस्कृत के करिन् शब्द का तृतीया एक वचन में 'करिणा' की भाँति हरि शब्द का भी तृतीया एकवचन में 'हरिणा' रूप बनता है यद्यपि हरि शब्द के साथ 'न्' का योग नहीं है। अंग्रेजी में संज्ञा शब्दों के आगे बहुवचन के लिए एस (S) लगाते हैं Pen से Pens Fan से Fans किन्तु बहुवचन बनाने की इसी प्रवृत्ति के कारण अंग्रेजी में Cow का Cows 'काउज' रूप बन गया जबकि इसका प्राचीन रूपCows न होकर Kine हैं। इस प्रकार विल' will का भूतकाल would हो जाता है किन्तु इसी सादृश्य पर 'केन' Can का भूतकाल का रूप Could बना लिया। Will में ल् 'ध्वनि' है किन्तु Can नहीं फिर भी में दोनों के रूपों में सादृश्य दिखाई पड़ता है। हिन्दी में भी इसी के कई रूप देखे जा सकते हैं जैसे 'धरने' से 'धरा' रूप बनता है। इसी प्रकार के सादृश्य पर 'करने' का रूप 'करा' भी प्रचलित है जो वास्तव में 'किया' रूप है। इस प्रकार सादृश्य के आधार पर भी भाषा में परिवर्तन होते हैं। पाश्चात्त्य के अनुसार पौर्वात्य, द्वादश के अनुसार 'एकादश' आदि ऐसे ही परिवर्तन हैं।

(ङ) **प्रयोगाधिक्य**–जब शब्द का अधिक प्रयोग होता है तो कई सौ वर्षों के बाद उसका रूप परिवर्तित हो जाता है जैसे 'शताब्दी' का रूप 'सदी' भी प्रचलित है। इसी प्रकार उदास का उआस धर्म का धम्म, चरित का चरिउ, राज का राअ, एवं प्रयोग का पओग प्रचलित थे। इसी प्रकार उपाध्याय का रूप बदल कर अब 'झा' भी हो गया है। प्रयोगाधिक्य से शब्दों के रूप में परिवर्तन के साथ ही अर्थ परिवर्तन भी हो जाता है।

(२) **बाह्य-कारण**–भाषा में परिवर्तन लाने वाले बाह्य कारण निम्न प्रकार हैं–

(१) भौगोलिक विभिन्नता, (२) जातीय सम्मिश्रण, (३) सांस्कृतिक कारण, (४) जातियों के मानसिक स्तर के भेद, (५) समाजव्यवस्था, (६) राजनैतिक कारण, (७) कालभेद, (८) स्थानभेद, (९) व्यक्तिगत प्रभाव, (१०) शिक्षा तथा संस्कृति, (११) शब्द का अप्रयोग, (१२) शब्द द्वैधीभाव, (१३) अनेक शब्द संश्लेषण।

(१) **भौगोलिक कारण**–भौगोलिक विभिन्नताओं का भाषा में परिवर्तन उपस्थित कर में योगदान रहता है। वातावरण तथा स्थान के कारण भाषा में परिवर्तन आ जाता है। जिन क्षेत्रों में अत्यधिक गर्मी या सर्दी पड़ती है अथवा कम गर्मी सर्दी पड़ती है तो उसका प्रभाव उन क्षेत्रों के निवासियों के कार्यों, निवास, स्वभाव, आचरण जीविकोपार्जन आदि पर पड़ता है। इनसे सम्बद्ध भाष। भी परिवर्तित होती रहती है। पर्वतीय क्षेत्रों के निवासी मैदानों के निवासियों से भिन्न भाषा बोलते हैं। शीताधिक्य के कारण पर्वतीय निवासियों का मुँह उच्चारण करते समय उतना नहीं खुलपाता जितना मैदानी क्षेत्रों के निवासियों का। मरुस्थलीय क्षेत्रों के निवासी धूल भरी आंधियों के कारण कपड़े से मुंह ढके रहते हैं। इससे पहाड़ी या रेगिस्तानी व्यक्तियों के उच्चारण में अस्पष्टता होती है। ये बातें कुछ ही अंशों में सत्य हो सकती हैं किन्तु स्थानाकृतियों की भिन्नता का प्रभाव अवश्य भाषा परिवर्तन पर पड़ता है। पहाड़ी क्षेत्रों में मनुष्यों का सम्पर्क अधिक विस्तृत क्षेत्र में न होकर थोड़े-थोड़े क्षेत्रों में होता है। यातायात या संचार के साधनों की कमी इसका प्रधान कारण है। अत: पहाड़ी क्षेत्रों में कई बोलियाँ विकसित हो जाती हैं। मैदानी क्षेत्रों में विस्तृत भूभागों में मनुष्यों का सम्पर्क रहता है अत: भाषा सारे क्षेत्र में एक रूप होती है। पहाड़ी क्षेत्रों तथा मैदानी क्षेत्रों के निवासियों में शारीरिक गठन में भिन्नता वातावरण के अनुसार होती है। भौगोलिक प्रभाव से कहीं उड़द को उरद या उद्द या बैल को बद्द कहते हैं।

भाषा परिवर्तन पर भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव का वर्णन करते हुए डा० तारापुरवाला का कथन है कि कोई देश पर्वतीय है या रेगिस्तानी, उसमें बड़ी नदियाँ बहती हैं या नहीं, उसका समुद्र तट बड़ा है या छोटा, उसमें बड़े-बड़े बन्दरगाह हैं या नहीं आदि बातों का निश्चय है उस देश की संस्कृति एवं जातीय विकास पर प्रभाव पड़ता है, अतएव वहाँ की भाषा पर भी उसका अवश्य प्रभाव पड़ता है। नार्वे के लोग पहाड़ी क्षेत्र होने, कृषि भूमि का अभाव होने, समुद्र के कटावदार होने से कुशल मल्लाह हैं। उन्होंने ईसा की पहली सदी में यूरोप में फैलकर वहाँ की भाषा तथा संस्कृति को प्रभावित किया। ग्रीक पहाड़ी क्षेत्रों में कई घाटियों के निवासियों का आपस में सम्पर्क न होने से अनेक बोलियों का विकास हो गया। भारत में भी आर्यों के आगमन, उनके फैलाव के कारण भाषागत परिवर्तन होते गए। आर्य

मध्य एशिया से पंजाब तक फैले थे । बाद में पूर्व तथा दक्षिण में फैल गए इसके साथ ही समुद्र का सहारा लेकर पूर्वी द्वीप समूह, हिन्दचीन में पहुँचकर वहाँ की सभ्यता तथा संस्कृति को प्रभावित किया साथ ही उनकी अपनी भाषा में उन देशों के शब्द समूह के मिलने से परिवर्तन हुए । आज भी हिन्देशिया की भाषा पर संस्कृत का प्रभाव विशेषकर जावानीज (जावा की भाषा) पर दृष्टिगत होता है, इसी प्रकार थाइलैण्ड, कम्बोडिया तथा लाओस की भाषाओं में अनेक संस्कृत शब्द पाये जाते हैं । प्राचीनकाल में भारतीयों का बेबीलोनिया से व्यापार सम्बन्ध होने से अनेक भारतीय शब्द सामी भाषाओं अर्थात् अरबी तथा हिब्रू में पाये जाते हैं । इसी प्रकार आधुनिक काल में भारतीय भाषाओं में तुर्की, अरबी, फारसी, पुर्तगाली, अंग्रेजी, फ्रेन्च भाषाओं के अनेक शब्द घुलमिल गए हैं । तमिल भाषा का चावल अर्थ का द्योतक 'अरिसि' प० एशिया तथा यूरोप की भाषाओं में थोड़े परिवर्तन के साथ मिलता है । अंग्रेजी में राइस (Rice), जर्मन में (Riec) राइस, फ्रेंच में री (Riz), डेनिश में रिस (Ris), रूसी में रिस (Ris), ग्रीक में ओरिजा (Oryza), लैटिन में ओरिजा (Oryza) आदि अरिसि (चावल) के रूप पाये जाते हैं ।

कृषि सम्पन्नता तथा उत्तम व्यापार का उस क्षेत्र के निवासियों पर प्रभाव पड़ता है । मनुष्य सुखी रहते हुए धर्म, कला, विज्ञान, दर्शन आदि क्षेत्रों में प्रगति करते हैं अतः उनकी भाषा भी शिष्ट, परिष्कृत होती है । आर्थिक विपन्नता वाले भागों में मानसिक उन्नति कम होने से भाषा असंस्कृत रह जाती है जैसा कि उत्तर प्रदेश के गंगा-जमुना के भूभाग तथा समीप के राजस्थानी क्षेत्र में तुलना करके देखा जा सकता है ।

(२) **जातीय सम्मिश्रण**–विभिन्न जातियों के सम्मिलन से उनका परस्पर विचारविनिमय होता है । अतः भिन्न-भिन्न जातियों की भाषाओं पर भी परस्पर प्रभाव पड़ता है तथा भाषा में थोड़ा बहुत परिवर्तन अवश्य होता है । भारतवर्ष में प्राचीन समय से ही अनेक जातियों एवं संस्कृतियों का सम्मिलन होता रहा है । भारत में इस प्रकार की प्रमुख जातियाँ एवं संस्कृतियाँ इस प्रकार थीं । (अ) पूर्व द्रविड़ एवं द्रविड़, (आ) द्रविड़ एवं आर्य, (इ) आर्य एवं ग्रीक, (ई) आर्य एवं इस्लामी संस्कृति, (उ) भारतीय एवं यूरोपीय संस्कृति । इसके अतिरिक्त भारतीय जातियों के सम्मिश्रण में कुषाण, शक, हूण, गुर्जर आदि जातियों का भी योगदान है । इन जातियों एवं संस्कृतियों के मिलने से एक दूसरे की भाषाओं में भी परिवर्तन हुए । इस प्रकार के परिवर्तन कई प्रकार से होते हैं । (१) जब भाषा में दूसरी संस्कृति के शब्द प्रत्यक्ष ग्रहण कर लिए जाते हैं-जैसे हिन्दी भाषा में आस्ट्रिक शब्द गंगा, द्राविड़ शब्द तीर, मीन, पिल्ला आदि ग्रीक शब्द सुरंग दाभ तुर्की, अरबी, फारसी के शब्द पाजामा, दूकान, बाजार, कागज, सन्दूक, कलम, किताब, तकिया

रजाई इत्यादि । यूरोपीय भाषाओं के शब्द रेल, स्टेशन, कोट, हाकी, टेनिस, फुटबाल कॉलर, बटन, पेन्सिल, पेन, साइकिल, कालेज, स्कूल मोटर आदि । (२) नई ध्वनियों का प्रवेश हिन्दी में क, ज, ग, ख, ऑ आदि एवं ट वर्ग ध्वनियां अन्य जातियों के मिश्रण से आई हैं । (३) मुहावरों, लोकोक्तियों वाक्यगठन पर प्रभाव (४) अप्रत्यक्ष प्रभाव भाषाओं पर अन्य संस्कृति एवं भाषा का प्रभाव साहित्य कला आदि पर पड़ता है । इस प्रकार विभिन्न संस्कृतियों के सम्मिलन से भाषा में परिवर्तन होते हैं ।

(३) **सांस्कृतिक कारण**–किसी क्षेत्र की जाति पर साहित्य एवं धर्म का अत्यधिक प्रभाव होता है । धार्मिक विश्वासों का भाषा पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि धार्मिक ग्रन्थों की भाषा पवित्र होती है, धर्म विशेष को मानने वाले उसे श्रद्धा एवं सम्मान से देखते हैं । धर्म ग्रन्थों की भाषा होने से उसके पठन-पाठन में रुचि रखते हैं । वर्तमान काल में देखा जाता है कि ईसाई बाइविल अंग्रेजी में ही पढ़ता है तथा अंग्रेजी ही उसे प्रिय लगती है । हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत में सुरक्षित हैं, अतः धार्मिक कारणों से संस्कृत सभी भारतीयों को प्रिय एवं ग्राह्य है । उसे पवित्र माना गया है तथा देववाणी से सम्बोधित किया गया है । इसी प्रकार पाली में बौद्धधर्म के ग्रन्थ होने से उसे पवित्र माना जाता है । इसी प्रकार मुसलमान अरबी को धार्मिक ग्रन्थों की भाषा होने से प्रमुखता देते हैं । 'ग्रन्थ साहिब' की भाषा पंजाबी एवं लिपि गुरमुखी होने से वह सिखों की प्रिय भाषा है । स्वामी दयानन्द एवं आर्य समाज के कारण संस्कृत निष्ठ हिन्दी का प्रचार हुआ । इस प्रकार सांस्कृतिक कारणों से भाषा में परिवर्तन होता रहता है ।

(४) **जातियों के मानसिक स्तर में भेद**–कुछ विद्वान् कुछ जातियों की श्रेष्ठता एवं अन्य जातियों की निम्नता की कल्पना करते हैं । यूरोपीय लोग यूरोपवासियों को संसार की अन्य जातियों, एशियाई अथवा अफ्रीकी लोगों से श्रेष्ठ मानते हैं । हिटलर जर्मन जाति को अन्य जातियों से श्रेष्ठ मानता था । आर्य जाति संसार की अन्य जातियों से श्रेष्ठ मानी जाती रही है । इसी प्रकार मानसिक एवं शारीरिक क्षमता, गुण, वर्ण आदि के आधार पर कई अन्य जातियाँ अपने को संसार की अन्य जातियों की तुलना में श्रेष्ठता का दावा करती हैं । अपने को श्रेष्ठ मानने वाली जातियाँ अपनी भाषा की श्रेष्ठता स्थापित करती हैं तथा अन्य भाषाओं को अध्ययन के अयोग्य समझती हैं । ग्रीक लोग अपनी भाषा को शिष्ट समझ कर प्रधानता देते थे । किसी जाति का किसी विशेष ज्ञान में उन्नति करने से उस ज्ञान की शब्दावली अधिक सम्पन्न हो जाती है । भारतीय भाषाओं में दर्शन तथा धर्म की विशेष व्याख्या तथा सूक्ष्म भाव प्रगट किए गए हैं । जर्मन भाषा में दर्शन, भाषाविज्ञान एवं गणित की विशेष प्रगति हुई है । इसी प्रकार वर्तमान काल में अंग्रेजी विज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त समृद्ध भाषा है ।

जो जातियाँ श्रेष्ठता का दावा करती हैं तथा उनसे पराजित लोग उनके भाषा-साहित्य से प्रभावित होते हैं उनमें शासक लोगों के अनुकरण की तथा वैसा ही जीवन पद्धति बिताने की कामना होती है। अतः पराजितों की भाषा, साहित्य में परिवर्तन आते रहते हैं।

(५) **सामाजिक व्यवस्था**–समाज के संगठन का भाषा के विकास पर प्रभाव पड़ता है। शान्ति काल में सामाजिक संगठन में व्यवस्था बनी रहती है तथा भाषा का समुचित रूप दिखाई देता है किन्तु युद्ध के समय सामाजिक संगठन सुदृढ़ न होकर शिथिल हो जाता है तथा उस समय भाषा पर नियंत्रण समाप्त सा हो जाता है जिसके कारण स्वतंत्र होकर भाषा तीव्रता से परिवर्तित (विकसित) होने लगती है। भाषा में नये-नये शब्दों का समावेश हो जाता है। नये-नये संकेतों का विकास होता है। शब्दों के संक्षिप्त रूप प्रचलित हो जाते है। नेफा (उपूसी), पेप्सू, यूनेस्को, यू. के., बी० बी० सी० जैसे संकेत रूप विकसित हो जाते हैं।

युद्ध काल के अतिरिक्त जहाँ भिन्न-भिन्न जातियाँ रहती हैं वहाँ भी भाषा में परिवर्तन दिखाई देता है। किसी-किसी क्षेत्र में हिन्दुओं की बोली संस्कृतनिष्ठ होती है तो मुसलमानों के क्षेत्रों में हिन्दी, अरबी, फारसी के शब्दों से बोझिल होती है। अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्तियों की भाषा साधारण लोगों की भाषा से भिन्न होती है। इसी प्रकार पंडितों की भाषा, कायस्थों की भाषा, गूजरों की भाषा, चमारों की भाषा, हिन्दुओं की भाषा, मुसलमानों की भाषा आदि नाम सामाजिक व्यवस्था के कारण हैं। प्रायः इन लोगों की भाषा में आपस में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य पायी जाती है।

(६) **राजनैतिक कारण**–भाषा में परिवर्तन लाने में राजनैतिक कारण भी प्रमुख महत्त्व रखते हैं। विजेता अथवा शासक लोग अपनी भाषा हारे हुए लोगों पर थोप देते हैं, उनकी भाषा हारे हुए लोगों की भाषा में नये-नये शब्दों के प्रवेश के कारण परिवर्तन कर देती है। गुप्त काल में संस्कृत को आश्रय मिला था उसके अध्ययन को प्रमुखता दी गई। पाली का विकास-उन्नति बड़े-बड़े राजाओं (अशोक आदि) द्वारा बौद्ध धर्म अङ्गीकार कर लेने से हुई। मुगलों के शासन काल में फारसी की, अंग्रेजों के समय अंग्रेजी की उन्नति तथा इनके शब्दों का भारतीय भाषा में प्रवेश कर घुलमिल जाना राजनैतिक कारणों से हुआ। पंजाबी भाषा की उन्नति सिखों के कारण तथा हिन्दुस्तानी (हिन्दी-उर्दू) की उन्नति वर्तमान शासन द्वारा प्रोत्साहन देने के कारण हुई है। इस प्रकार राजनीतिक कारणों से एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में प्रवेश कर परिवर्तन लाते हैं।

(७) **कालभेद**–भाषा के परिवर्तन में काल (समय) का विशेष प्रभाव पड़ता है। संसार की कोई भी भाषा स्थिर नहीं है, उसके स्वरूप में निरन्तर परि-

वर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन अधिक समय के बाद स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। कई सौ वर्ष बाद भाषा के रूप में इतना अन्तर हो जाता है कि उससे नवीन भाषा का विकास (जन्म या उत्पत्ति) हो जाता है। उदाहरणार्थ वैदिक संस्कृत काल की अविराम धारा में प्रवाहित होती हुई पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में विकसित हुई है। इस प्रकार वैदिक संस्कृत पर काल भेद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है तथा भिन्न-भिन्न कालों में परिवर्तन (विकास) होकर उसके अन्य रूप (भाषाएँ) बन गए। यूरोप में अधिकांश आधुनिक भाषाओं की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न रूपों में होते हुए लैटिन एवं ग्रीक से हुई है। संसार की सभी भाषायें काल भेद से प्रभावित होकर परिवर्तनशील हैं।

(८) **स्थानभेद**-स्थान भेद या स्थान परिवर्तन का भाषा में परिवर्तन लाने में प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति की भाषा में स्थानीयपन दिखाई पड़ता है। किसी मनुष्य की भाषा को सुन कर अनुमान लगाया जा सकता है कि वह किस स्थान का रहने वाला है। भिन्न-भिन्न स्थानों की भाषा में कुछ न कुछ परिवर्तन आ जाता है। हिन्दी, बंगाली, पंजाबी, गुजराती, सिन्धी आदि भाषायें इसी प्रकार है। अवधी, ब्रज, कन्नौजी, बनारसी, लखनवी, सीतापुरी आदि नाम स्थानभेद के कारण दिए गए हैं। इस प्रकार स्थान परिवर्तन के साथ भाषा में परिवर्तन भी होता है।

(९) **व्यक्तिगत प्रभाव**-महान् व्यक्तियों के विशेष प्रभाव के कारण कभी-कभी भाषा में परिवर्तन होते हैं। जन साधारण साहित्यकार आदि उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं। गौतम बुद्ध के कारण संस्कृत की अपेक्षा पाली का अधिक विकास हुआ। शंकराचार्य के प्रभाव के कारण बौद्धधर्म का प्रभाव बहुत कम हो गया तथा वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के कारण संस्कृत भाषा का महत्त्व एवं प्रचलन बढ़ गया। इसी प्रकार तुलसीदास, स्वामी दयानन्द सरस्वती, कवीन्द्र रवीन्द्र, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द्र तथा गान्धी जी के व्यक्तिगत प्रभाव के कारण भाषा परिवर्तन लक्षित होता है। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के कारण संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का विकास हुआ। इसी प्रकार की भाषा जयशंकर प्रसाद की थी जिन्होंने हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा दी। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों, कहानियों में अरबी-फारसी शब्द से युक्त हिन्दी का प्रयोग किया है जिसे हिन्दुस्तानी नाम दिया गया है। गांधी जी भी कई कारणों से (सामाजिक, राजनैतिक) हिन्दुस्तानी के समर्थक थे, उनके प्रभाव में आकर अनेक लोगों ने हिन्दुस्तानी पढ़ना-लिखना सीखा। कवीन्द्र रवीन्द्र ने बंगला भाषा के प्रभाव एवं महत्त्व को बढ़ाया। इस प्रकार भाषा में परिवर्तन लाने में महान् व्यक्तियों का भी प्रभाव पड़ता है।

(१०) **शिक्षा तथा संस्कृति**-शिक्षित व्यक्तियों की भाषा अशिक्षित एवं असभ्य व्यक्तियों से भिन्न होती है। शिक्षित व्यक्ति सुसंस्कृत एवं परिमार्जित भाषा का प्रयोग

करता है जब कि अशिक्षित व्यक्ति की भाषा अपरिमार्जित, असंस्कृत होती है। इस प्रकार शिक्षित व्यक्ति तथा अशिक्षित व्यक्ति क्रमशः अपने शुद्ध एवं अशुद्ध शब्द प्रयोगों द्वारा भाषा में परिवर्तन लाते हैं।

(११) **शब्द का अप्रयोग**--कभी-कभी किसी देश की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक दशा में परिवर्तन होता है तो भाषा के अनेक प्राचीन शब्दों का प्रचलन बन्द हो जाता है तथा नये शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है। आज वैदिक संस्कृत के यज्ञ आदि क्रियाओं से संबन्धित शब्द व्यवहार में न आने से अप्रचलित एवं लुप्त हो गए हैं। कभी-कभी एक ही अर्थ के बोधक कई शब्दों में कोई एक या दो शब्द अधिक प्रचलित रहते हैं तथा शेष अप्रचलित हो जाते हैं। इस प्रकार कुछ शब्दों का अप्रयोग होने से एवं नवीन शब्दों के व्यवहृत होने से भाषा में परिवर्तन होते हैं।

(१२) **शब्द द्वैधीभाव**--जब भाषा के कुछ शब्द रूप बदल कर प्रचलित हो जाते हैं तो उनका प्रयोग अलग-अलग अर्थों में किया जाता है। संस्कृत 'पाद' शब्द जिसका अर्थ पैर होता है, हिन्दी में पाव सेर का चौथाई भाग), पाँव (=पैर) हो गया। इस प्रकार अन्य शब्द द्वैधीभाव से प्रयुक्त हो कर भाषा में परिवर्तन लाते हैं।

(१३) **अनेक शब्द संश्लेषण**-कभी-कभी भाषा में अनेक शब्दों के संश्लेषण से नवीन शब्द बना लिए जाते हैं जिनके प्रयोग से भाषा में थोड़ी बहुत मात्रा में परिवर्तन होता है। जैसे-नैहर (निज+गृह), त्यौहार (तिथि+वार), पतोहू (पुत्र+वधू), मौसी (मातृ+स्वसा), सौत (स+पत्नी) आदि शब्द संश्लेषण से बने हैं।

इस प्रकार यह निश्चित है कि भाषा परिवर्तनशील होती है। ये परिवर्तन विभिन्न कारणों से भाषा में होते हैं। भाषा एक नदी की धारा की भाँति भिन्न-भिन्न रूपों में होती हुई आगे बढ़ती है। यदि व्याकरण बना कर उसकी गति को रोकने का प्रयास किया जाता है तो वह व्याकरण तथा साहित्य में बंधकर स्थिर रह जाती है किन्तु इसकी ही अन्य शाखा जनसाधारण के मुंह में सुरक्षित रहकर विभिन्न रूप धारण करती हुई विकसित होती रहती है। संस्कृत का वैयाकरणों द्वारा निश्चित साहित्यिक रूप अब भी वही है जो आज से हजारों वर्ष पहिले था, किन्तु उसका असाहित्यिक (जनसाधारण द्वारा व्यवहृत) रूप प्राकृत, अपभ्रंश होकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में बदल गया। यही दशा लैटिन, ग्रीक, अवेस्ती आदि भाषाओं की रही है। भाषा का प्रवाह बांधा नहीं जा सकता। भाषा का परिवर्तन उसका विकास है। विकास ही भाषा का जीवन है। भाषा का विकास कभी तीव्रता से होता है तो कभी शताब्दियों में होता है।

भाषा की उत्पत्ति :

भाषा मनुष्य के विचारों के आदान-प्रदान का साधन है। अतः मनुष्य-जीवन में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। भाषाविज्ञान का अध्ययन करते समय यह प्रश्न

उठना स्वाभाविक है कि भाषा की उत्पत्ति कब तथा किस प्रकार हुई ? यह बात निर्विवाद है कि कोई बच्चा मां के गर्भ से भाषा सीख कर नहीं आता अपितु वह अनुकरण आदि के द्वारा अपने प्रयत्नों से आसपास के वातावरण में व्यवहृत भाषा को सीखता है। कुछ भाषाविज्ञानी भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न को भाषाविज्ञान का क्षेत्र स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि भाषा की उत्पत्ति के विषय में कोई निश्चित रूप से नहीं बता सकता है। अतः जिसका समाधान कठिन तथा असम्भव है उस प्रश्न पर विचार करने से लाभ ही क्या होगा। प्रसिद्ध विद्वान् मेरियो पाई (Mario Pai) ने भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है-'अगर कोई वस्तु है जिस पर सभी भाषाविज्ञानी सहमत हैं तो वह है मनुष्य के भाषण की उत्पत्ति की समस्या जो अब तक अनसुलझी है' (If there is one thing on which all linguists are fully agreed, it is that the problem of the origin of human speech is still unsolved)। प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान् ने भी इस समस्या का संतोषजनक हल नहीं ढूंढ़ पाया है, वह कहते हैं-(The problem of the origin of language does not admit of any satisfactory solution.")

भाषा की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों ने दो विधियों का आश्रय लिया है। पहली विधि है-प्रत्यक्ष मार्ग तथा दूसरी विधि है-परोक्ष मार्ग। प्रत्यक्ष मार्ग विधि द्वारा अनेक सिद्धान्तों या वादों पर विचार किया गया है जो प्रत्यक्ष रूप से सिद्धान्त विशेष से भाषा की उत्पत्ति बताते हैं। अप्रत्यक्ष मार्ग विधि में ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर भाषा के वर्तमान स्वरूप पर विचार करते हुए उसके भूतकाल पर विचार करके भाषा की उत्पत्ति का अनुमान लगाया जाता है।

प्रत्यक्ष मार्ग

(१) **दैवी उत्पत्तिवाद** (Divine Origin Theory)–इस मत के अनुसार यह माना जाता है कि भाषा की उत्पत्ति दैवी शक्ति के द्वारा हुई है। भगवान् सभी वस्तुओं का कर्ता है उसी ने भाषा की भी उत्पत्ति की है। जब भाषा की उत्पत्ति भगवान् ने की है तो प्रश्न यह है कि किस भाषा विशेष की उत्पत्ति भगवान् ने की है अथवा सभी भाषायें ईश्वर द्वारा निर्मित हैं ? एक भाषा से कई भाषायें कैसे बन गई ? प्रायः संसार के भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी अपने धर्म ग्रन्थों की भाषा को सबसे प्राचीन एवं ईश्वर द्वारा उत्पन्न मानते हैं। हिन्दू लोग वैदिक संस्कृत को ईश्वर द्वारा उत्पन्न मानते है। वेदों को अपौरुषेय स्वीकार करते हैं। संस्कृत भाषा को 'देववाणी', 'सुरभारती' जैसे शब्दों से विभूषित किया जाता है। पाणिनि द्वारा लिखे १४ माहेश्वर सूत्रों की उत्पत्ति भगवान् शंकर के डमरू से मानी जाती है। बौद्ध लोगों का विश्वास है कि पाली ही ईश्वर द्वारा उत्पन्न पवित्र तथा प्राचीन भाषा है जिसमें स्वयं भगवान्

बुद्ध ने मानव जाति को संदेश प्रदान किए हैं। इसी प्रकार जैन लोग महावीर स्वामी द्वारा दिए गए उपदेशों की भाषा अर्धमागधी को संसार के प्राणियों की एकमात्र प्राचीन भाषा मानते हैं। कैथोलिक ईसाई 'हिब्रू' को ईश्वर द्वारा उत्पन्न भाषा मानते हैं। इसी से संसार की अन्य भाषायें बनी हैं। इस्लाम धर्मावलम्बी अरबी को जो कुरान की भाषा है, ईश्वर (खुदा) द्वारा उत्पन्न मानते हैं। मिस्रवासी भी अपनी भाषा को देवभाषा के रूप में सम्बोधित करते हैं। इसी प्रकार पारसी लोग अपनी प्राचीन अवेस्ती भाषा को संसार की मूलभाषा एवं ईश्वरीय भाषा मानते हैं। कई योरोप के विद्वानों ने 'हिब्रू' से तथा भारतीय विद्वानों ने वैदिक संस्कृत से संसार की अन्य भाषाओं की उत्पत्ति मानी है। श्री भगवद्दत्त जी ने अपने 'भाषा का इतिहास' ग्रन्थ में बताया है कि संस्कृत ही सबसे प्राचीन भाषा है तथा उसका प्राचीनतम रूप जो अज्ञात है कभी संसार को ज्ञात हुआ तो अनेक समस्याओं का समाधान निकल आयेगा। उन्होंने 'ह्रास सिद्धान्त' को दर्शाया है अर्थात् प्राचीनतम रूप में संस्कृत अत्यन्त समृद्ध भाषा थी बाद में उसमें ह्रास हुआ। यूरोप के विद्वान् इसके विपरीत 'विकासवाद' का समर्थन करते हैं। भाषा प्राचीन अविकसित दशा से विकास की ओर बढ़ती है।

आलोचना–इस सिद्धान्त के विरोध में निम्न तर्क दिए जाते हैं–

(१) यदि भाषा ईश्वर द्वारा उत्पन्न होती तो सभी बच्चे जन्म से उसी को बोलते तथा सीखना नहीं पड़ता। परन्तु बच्चे जन्म से किसी भाषा को नहीं बोल सकते। वे समाज द्वारा बोले जाने वाली भाषा को सीख कर बोलने लगते हैं। जिन बच्चों को समाज से अलग रखा, वे कोई भी भाषा बोलने में असमर्थ थे, अतः भाषा ईश्वर प्रदत्त नहीं है।

(२) यदि भाषा ईश्वरनिर्मित होती तो सब लोग एक ही भाषा का प्रयोग करते। संसार में भिन्न-भिन्न भाषायें न पाई जातीं।

(३) यदि भाषा ईश्वरनिर्मित होती तो उसमें वर्तमान काल में प्राप्त अनियमिततायें, असंगतियाँ एवं अपवाद न मिलते।

(४) सभ्य तथा असभ्य लोगों की भाषा में भेद नहीं होते।

(५) हर्डर ने बताया है कि भाषा यदि ईश्वर ने बनाई होती तो वह सब तरह से पूर्ण, युक्तसंगत होती तथा भाषा की उत्पत्ति संज्ञा शब्दों से होती जब कि अधिकांश भाषओं में धातुओं से संज्ञा शब्द बने हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा मानना अन्धविश्वास एवं तर्कहीनता का प्रतीक है। नास्तिक लोग भाषा की उत्पत्ति ईश्वर से स्वीकार नहीं कर सकते। वर्तमान काल की भाषाओं का अब भी लगातार विकास हो रहा है। भाषा में नवीन शब्दों का प्रवेश होता रहता है तथा अनेक प्राचीन शब्द प्रचलित हो कर लुप्त हो जाते हैं। भाषा में अनेक परिवर्तन तथा सुधार होते रहते हैं।

अतः भाषा की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा नहीं की जाती उसे सीखकर ही बोला जा सकता है।

(२) **सांकेतिक उत्पत्तिवाद या निर्णय-सिद्धान्त** (Symbolical Origin, Agreement Theory)–इस सिद्धान्त को स्वीकारवाद, प्रतीकवाद, संकेतवाद भी कहते हैं। इस मत के समर्थक कहते हैं कि प्रारम्भ में मनुष्यों को संकेतों से काम चलाना पड़ता था किन्तु इससे उसके सम्पूर्ण काम आसानी से नहीं हो पाते थे, अतः मनुष्यों ने एकत्रित होकर विभिन्न वस्तुओं के लिए भिन्न-भिन्न संकेत निश्चित किए और इस प्रकार भाषा का प्रारम्भ हुआ।

आलोचना–इस मत के विरुद्ध ये तर्क दिए जाते हैं कि–

(१) जब मनुष्य बोलता नहीं था तथा उसके पास कोई भाषा नहीं थी तो एकत्रित किस प्रकार हुए ?

(२) भाषा न बोलने की स्थिति में विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न संकेत किस प्रकार निश्चित किये गये?

(३) यदि लोग विचार-विमर्श कर सकते थे तो उनके पास भाषा रही होगी फिर अन्य भाषा के निर्माण की क्या आवश्यकता थी।

इस प्रकार इस सिद्धान्त द्वारा भाषा की उत्पत्ति का समाधान नहीं होता है।

(३) **धातु सिद्धान्त** (Root Theory)–इस सिद्धान्त की प्रेरणा जर्मन विद्वान् हेज ((Heyes) ने दी तथा मैक्समूलर ने इसका प्रतिपादन किया था। आदिमानव के पास ऐसी शक्ति थी कि उसके मन पर जब किसी वस्तु का प्रभाव पड़ता तो उसके मुँह से अपने आप उस वस्तु के अनुरूप ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति होती थी। इस प्रकार आदिमानव ने ४००-५०० धातुओं की उत्पत्ति की, जिनके सहारे बाद में भाषा की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार की शक्ति आवश्यक धातुओं के निर्मित होने के बाद स्वतः समाप्त हो गई। इन्हीं धातुओं से विभिन्न भाषाओं की उत्पत्ति हुई।

आलोचना–इस सिद्धान्त द्वारा भाषा की उत्पत्ति को भलीभाँति सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस मत के विरुद्ध ये तर्क दिये जाते हैं–

(१) मनुष्य में जिस विशेष शक्ति की कल्पना की गई है वह कहाँ से आयी, किस प्रकार उत्पन्न हुई तथा बाद में समाप्त क्यों हो गयी ?

(२) आदिमानव ने धातुओं की किसी प्रकार की कल्पना नहीं की थी। यह तो बाद में धातु एवं प्रातिपदिकों के आधार पर कल्पित भावना है।

(३) धातुओं से भाषाओं की उत्पत्ति मानी गई है परन्तु संसार में कई भाषायें इस प्रकार की हैं जिनमें धातुयें नहीं पाई जातीं। जैसे–चीनी इसी प्रकार की भाषा है। अथवस्कन भी इसी प्रकार की भाषा है।

(४) चार सौ या पाँच सौ धातुओं की कल्पना भाषा की उत्पत्ति के लिए थोड़ी है,

अकेली संस्कृत भाषा में १९७० धातुयें पाई जाती हैं।

(४) भाषा के निर्माण में धातुओं, प्रत्ययों एवं उपसर्गों का प्रयोग किया जाता है। अकेले धातुओं से भाषा का निर्माण सम्भव नहीं है।

(४) **अनुकरणमूलकतावाद** (Bow-Wow Theory)–इस सिद्धान्त के अनुकरण सिद्धान्त, शब्दानुकरणवाद, शब्दानुकरणमूलकतावाद, भों भों वाद आदि अन्य नाम हैं। अंग्रेजी में इसे Onomotopoeic एवं choic theory कहा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह माना गया है कि आदिमानव ने अपने आसपास के पशु एवं पक्षियों की ध्वनियों का अनुकरण करके शब्दों का निर्माण किया, जिन्होंने बाद में विकसित होकर भाषा का रूप ग्रहण कर लिया। संस्कृत के 'काक', 'कोकिल', अंग्रेजी के कुक्कू cuckoo इसी प्रकार के शब्द हैं जिनका निर्माण पक्षियों की ध्वनि के आधार पर हुआ है। चीनी में मिआऊ (बिल्ली) तथा हिन्दी में म्याँऊ शब्द ध्वनि अनुकरण पर बने हैं। हिन्दी में अन्य शब्द जैसे कौआ, कुक्कुट, कोयल, घुग्घू (उल्लू), मिमियाना, धमाका, दहाड़ना, गरजना, गुर्राना, हिनहिनाना, फटफटिया, पों पों, में में (भेड़ की बोली), रेंकना, भौंकना, चहचहाना, टर्राना, खोंखियाना, चहकना, हिनहिनाना, मिनमिनाना, घिघियाना आदि इसी प्रकार अनुकरण पर बने हैं। हडर, ह्विटनी, पाल आदि भाषाविज्ञानियों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। भाषाओं में इस प्रकार के बने शब्द अब थोड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। परन्तु यह निश्चित है कि प्रारम्भिक समय में ध्वनि के अनुकरण पर बने शब्द भाषा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। ओटो यस्पर्सन ने सिद्ध किया है कि ध्वनि के अनुकरण पर अनेक शब्द बन सकते हैं; जैसे–कुक्कू cuckoo से कुकोल्ड cuckold फ्रेन्च cocu काकू बने हैं। cock कॉक से फ्रेन्च के कॉके (coquet), काकेतरी (coquetterie), कोकार (cocart), कोकार्द (cocarde), काकेलिको (coquelicot) आदि शब्द बने हैं। इस प्रकार अन्य भाषाओं में भी विभिन्न शब्दों को देखा जा सकता है जिनका निर्माण ध्वन्यात्मक अनुकरण पर हुआ है।

आलोचना–(१) इस सिद्धान्त में मनुष्य द्वारा पशु-पक्षियों की ध्वनियों के अनुकरण पर शब्दों की उत्पत्ति बताई है। क्या मनुष्य जो संसार के अन्य सभी प्राणियों से श्रेष्ठ है स्वयं ध्वनि उत्पन्न नहीं कर सका अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सभी भाषाओं में इस प्रकार के शब्द पाये जाते हैं। उत्तरी अमेरिका की अथवस्कन तथा अन्य कुछ भाषाओं में पशु-पक्षियों की ध्वनि अनुकरण पर बने शब्द नहीं पाये जाते हैं।

(२) ध्वन्यनुकरण पर बने शब्द हर भाषा में कुछ ही पाए जाते हैं जो सम्पूर्ण शब्दों के एक या दो प्रतिशत से अधिक नहीं, अतः शेष शब्द कैसे बने ? यह बात इस सिद्धान्त से हल नहीं होती।

(३) यदि ध्वनि-अनुकरण पर शब्द निर्माण होता तो संसार की सभी भाषाओं में इनके लिए समान शब्द पाये जाते, किन्तु ऐसा नहीं है। प्रत्येक भाषा में सभी ध्वनियाँ नहीं होती हैं। अंग्रेजी में 'भ' ध्वनि न होने से 'ब' ध्वनि द्वारा उसे व्यक्त किया जाता है जैसे हिन्दी का भनभमाना या भिनभिनाना अंग्रेजी में (buzzing) 'बजिङ्ग' कहलाता है।

(४) मैक्समूलर ने इस मत की हँसीं उड़ाई तथा इस सिद्धान्त को वाउ बाउ (Bow-wow) (कुत्ते की बोली) कहा है। उनका कहना था कि 'इस प्रकार के शब्द कृत्रिम फूलों की तरह आधार रहित हैं, वे अनुर्वर हैं क्योंकि जिस वस्तु के ध्वन्यनुकरण पर वे बने हैं उस वस्तु को छोड़ वे अन्य किसी वस्तु का निर्देश नहीं कर सकते।' (Words of this kind are like artificial flowers, without a root They are sterile, and unfit to express anything beyond the one object which they emitate.")

अत: यह निश्चित है कि भाषाओं में अनुकरणात्मक शब्द तो पाये जाते हैं किन्तु साथ ही भाषा के सारे शब्दों का समाधान इस मत से नहीं हो सकता है।

(५) **मनोभावाभिव्यञ्जकतावाद** (Pooh-Pooh Theory or Interjectional theory)–इस सिद्धान्त को मनोभावाभिव्यक्तिवाद, आवेगसिद्धान्त, मनोरागव्यंजक, शब्दमूलकवाद, पूह पूहवाद आदि अन्य नामों से भी सम्बोधित करते हैं। इस सिद्धान्त का जन्म अनुकरणमूलकतावाद सिद्धान्त के आधार पर हुआ । प्रारम्भ में मनुष्य विचार प्रधान न होकर भाव प्रधान अधिक था। भिन्न-भिन्न अवसरों पर सुख, दु:ख, घृणा, क्रोध आदि भावों को प्रकट करने वाली ध्वनियाँ भावावेश में निकल पड़ती थीं ओह, ओं, छिः, हाय, धिक्, अहा, धत् पूह(Pooh), पिश(pish), फाइ ,(fie), व्ह्यू (whew), टट tut आदि ध्वनियाँ इसी प्रकार की हैं। इन्हीं ध्वनियों से बाद में कई शब्दों का निर्माण हुआ, जैसे धिक्कारना, धिक्कार, फाइसे, 'फिएन्ड, दुरदुराना, वाहवाही, हाहाकार आदि। इस प्रकार इन शब्दों के द्वारा भाषा का निर्माण, इस सिद्धान्त के समर्थक, स्वीकार करते हैं।

आलोचना---इस सिद्धान्त से शब्दों की उत्पत्ति का समाधान उचित रूप से नहीं हो पाता है। इसके विरुद्ध निम्न तर्क प्रस्तुत किए गए हैं--

(१) इस प्रकार के बने शब्दों में भाषा के सम्पूर्ण शब्दों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता, अत: इन शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों की उत्पत्ति कैसे हुई ?यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है।

(२) संसार की अलग अलग भाषाओं में इस प्रकार के बने शब्द भिन्न-भिन्न रूपों में पाये जाते हैं; जैसे पीड़ा प्रकट करने के लिए जर्मन आउ, अंग्रेजी ओह, हिन्दी हाय हैं।

(३) इस प्रकार से बने शब्दों की संख्या अत्यल्प है।

(४) ये शब्द भाषा के पूर्ण अङ्ग भी नहीं कहे जा सकते हैं।

भाषा की उत्पत्ति में इन शब्दों का आंशिक योगदान अवश्य है।

(६) **श्रमपरिहरणमूलकतावाद** (yo he -ho-theory) – योहेहोवाद इस सिद्धान्त को श्रमध्वनिसिद्धान्त या श्रम-परिहरणमूलकतावाद भी कहते हैं। इस सिद्धान्त के प्रवर्तक न्वायर (Noire) नामक विद्वान् थे। उनका मत था कि मनुष्य जब कठोर परिश्रम करता है तो उसके कारण श्वास तीव्रता से चलने लगती है तथा स्वरतन्त्रियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार से कम्पित होने लगती हैं, उस समय मानव मुख से कुछ ध्वनियों की उत्पत्ति होती है तथा मनुष्य को शान्ति का अनुभव होता है। मल्लाह हैयाहैया, धोबी हियो हियो या छियो–छियो तथा अन्य श्रमिक हो हो हूँ हूँ आदि इसी प्रकार की कुछ ध्वनियों का उच्चारण करके अपने शारीरिक श्रम का परिहार करते हैं। अत: इस सिद्धान्त के आधार पर यह बताया गया है कि स्वतः निकली ध्वनियाँ ही आदिम दशा में उन कार्यों की प्रतीक हो गईं, जिन कार्यों को करते समय वे उत्पन्न हुईं थीं। इस प्रकार भाषा के कुछ शब्दों की उत्पत्ति हुई। अंग्रेजी में यो-हे-हो(yo he ho) ऐसी ही ध्वनि है। ऐसी अन्य ध्वनियों से अंग्रेजी में हीव(Heave) तथा हॉल (Haul) क्रियाओं का निर्माण हुआ होगा। हर भाषा के कुछ शब्द इस प्रकार बनें होंगे।

आलोचना–इस सिद्धान्त के विरुद्ध ये तर्क दिए जाते हैं–

(१) इस प्रकार के शब्द किसी भी भाषा में थोड़ी ही मात्रा में पाये जाते हैं, अत: इनके अतिरिक्त विशाल शब्द समूह की उत्पत्ति कैसे हुई ? यह समाधान इस सिद्धान्त से नहीं किया जा सकता हैं।

(२) इस प्रकार की ध्वनियों का भाषा में कोई स्थान नहीं है।

(३) संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में ये शब्द एक प्रकार से नहीं पाये जाते। एक अंग्रेज श्रमिक एवं एक भारतीय श्रमिक की ध्वनियों में स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है।

(४) कुछ भाषाओं में इस प्रकार के बने शब्दों का अस्तित्व नहीं है।

(५) ये शब्द भाषा के प्रमुख अङ्ग नहीं हैं।

(६) इस प्रकार के बने शब्दों की संख्या बहुत कम है।

(७) **अनुरणनमूलकतावाद** (Ding dong theory) –इस सिद्धान्त को अनुरणात्मक, अनुकरण या अनुरणन सिद्धान्त भीं कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जड़ पदार्थ पर प्रहार करने से एक विशेष प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है उसी ध्वनि के आधार पर शब्द बनाये गए। यह ध्वनि किसी धातु, लकड़ी, पानी जैसे निर्जीव पदार्थों की हो सकती है। इस प्रकार के बने शब्दों से भाषा की उत्पत्ति हुई है। तड़तड़, तड़तड़ाना,

झनझनाना, छल छल, कल-कल, खट-पट, ठक-ठक, खट-खट, झंकार, निर्झर, सनसन, रणन, क्वणन, भड़भड़, सरसर, टंकार, ठन ठन, खन खन, छप छप, टपटप, छर छर, झर झर, चट चट आदि इसी प्रकार से बने शब्द हैं । अंग्रेजी में इसी प्रकार के शब्द मरमर(Murmur), थन्डर(thunder), जाज(jazz), जिगजैग, डैजिल आदि हैं । हर भाषा में इस प्रकार के थोड़े शब्द पाये जाते हैं ।

आलोचना–संसार की किसी भी भाषा में इस प्रकार के शब्द थोड़ी ही मात्रा में पाये जाते हैं अतः भाषा के अन्य शब्दों की उत्पत्ति की समस्या इस सिद्धान्त से हल नहीं होती ।

(८) **प्रतीकवाद, इंगित सिद्धान्त या जेस्चर थियरी**–प्रतीक का अर्थ 'चिह्न' है । किसी छोटी वस्तु या भाव को बनाने के लिए स्थूल वस्तु का आश्रय लिया जाता तो उसे प्रतीकवाद कहते हैं जैसे युवावस्था की तुलना सौंदर्य, ताजगी, उत्साह, विकास से युक्त फूल से दी जाय । 'कली' को बाल्यावस्था का, शाम का बुढ़ापे से तथा रात का मृत्यु प्रतीक कहा जाता है । पीने की क्रिया का प्रतीक 'पी' से जाना जाता है । 'मामा' शब्द अंग्रेजी में मां का प्रतीक है तो हिन्दी में माँका भाई(मामा)के लिए। तमिल में श्वसुर के लिए इसी शब्द का प्रयोग करते हैं । अतः 'मामा' शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ प्रतीक स्वरूप आरोपित कर दिए गये हैं ।

आलोचना–(१) इस प्रकार के शब्द अल्पमात्रा में पाये जाते हैं । इनसे भाषा का निर्माण नहीं हो सकता है ।

(२) प्रतीक की विधि स्पष्ट नहीं है ।

(३) यदि पहले भाषा नहीं थी तो प्रतीक किस प्रकार नियत हुआ ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह सिद्धान्त थोड़े रूप में भाषा के शब्दों की उत्पत्ति को बता सकता है सभी शब्दों की उत्पत्ति नही ।

टा-टा सिद्धान्त (Ta-ta-theory)---इस सिद्धान्त में बताया गया है कि भाषा की उत्पत्ति उन शब्दों के द्वारा हुई जिनका आदिम मानव कार्य करते समय जाने-अनजाने (कुछ ध्वनियों या शब्दों का) उच्चारण करता था । इस सिद्धान्त से भाषा की उत्पत्ति पूर्णतया सिद्ध नहीं की जा सकती है । आदिम मानव द्वारा उच्चरित ध्वनि या शब्द निरर्थक थे, फिर इनसे भाषा का विकास किस प्रकार हो सकता है ।

संगीत सिद्धान्त (Sing Song theory)---इस सिद्धान्त के अनुसार आदिम मनुष्य में संगीत द्वारा भाषा की उत्पत्ति स्वीकार की गई है । आदिम मानव अवकाश के क्षणों में प्रेम या दुःख के कारण अर्थहीन गाना गाता था । बाद में इन्हीं गीतों के शब्दों से विशेष दशाओं में अर्थ सम्बन्धित होने से भाषा का विकास हुआ । डार्विन, स्पेंसर तथा येस्पर्सन ने इसी प्रकार का मत प्रकट किया है । संगीत प्रेम से सम्बन्धित होने के कारण इसे प्रेम-सिद्धान्त (Woo-Woo-theory)भी कहा गया है ।

सम्पर्क सिद्धान्त--इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो० जी० रेवेज ने किया था। उन्होंने पशुमनोविज्ञान,बाल–मनोविज्ञान एवं आदिम मानव के मनोविज्ञान के आधार पर इस सिद्धान्त का निर्माण किया। उनका कहना था कि सामाजिक प्राणियों में पारस्परिक सम्बन्ध बनाने की प्रवृत्ति होती है इसी को 'सम्पर्क' कहा गया है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को बताने में अनेक प्रकार सम्पर्क स्थापित करता था। स्पर्श तथा ध्वनि उच्चारण के द्वारा सम्पर्क होता था। धीरे धीरे इनसे भाषा का विकास हुआ। जैसे जैसे विचारों तथा भावों का सम्पर्क अधिक होता गया उसी प्रकार भाषा भी विकसित होती गई। इस सिद्धान्त के द्वारा भी भाषा की उत्पत्ति भली भाँति सिद्ध नहीं की जा सकती है।

समन्वित विकासवाद का सिद्धान्त--इस सिद्धान्त को 'स्वीट का समन्वय सिद्धान्त' भी कहते हैं। उनके अनुसार प्रारम्भ में भाषा इंगित तथा ध्वनि समूह दोनों पर आधारित थी। आगे चलकर ध्वनि समूह से शब्दों का विकास हुआ। स्वीट के मतानुसार प्रारम्भ में शब्द तीन प्रकर के थे–(१) अनुकरणमूलक,(२) मनोभावाभिव्यञ्जक और (३) प्रतीकात्मक। (१) अनुकरणमूलक(Imitative)शब्दों में पशु-पक्षियों की ध्वनियों के अनुकरण पर निर्मित शब्द तथा अनुकरण मूलक शब्द भी सम्मिलित हैं। मिस्त्री शब्द माउ, जो म्याऊँ-म्याऊँ करने की ध्वनि पर बना है, बिल्ली के लिए प्रयुक्त होता है। संस्कृत का काक शब्द जो कौवा द्वारा का, का करने के अनुकरण पर बना है। इसी प्रकार अंग्रेजी शब्द कुक्कू(Cuckoo)हिन्दी का शब्द घुग्घू। बिल्ली के लिए 'पुस' (Puss) शब्द का प्रयोग या इसी के समान शब्द कई देशों में जैसे उ. अफ्रीका, अरब ब्रिटेन, स्पेन, इटली, स्कैण्डिनेविया, जर्मनी और हालैण्ड आदि में बोला जाता है। इसी प्रकार अल्बानिया में 'पीजो' (Piso) रूमानिया की भाषा में 'पीसा' (Pisa) तथा तमिल में 'पूसै' अनुकरणात्मक शब्द हैं। इसी प्रकार ह्मबग् (humbug), हम (Hum), बज (buzz), बैंग (Bang), पॉप (Pop) इसी प्रकार ध्वनियों के अनुकरण पर बने शब्द हैं।

(२) **मनोभावाभिव्यञ्जक**– अथवा भावावेशव्यञ्जक शब्द प्राचीन भाषाओं में निश्चय ही रहे होंगे। ओह, आह, धिक, वाह, हाय, हुश, अंग्रेजी का 'पाह' (Pah)' फाइ, (Fie) डेनी, 'फाई' (fy), जर्मन 'प्फुई'(Pfui), संस्कृत पू, पी, पुरानी अंग्रेजी का 'फे ऑन्ड' (feond) शत्रु के आधुनिक अंग्रेजी का फिएन्ड=पिशाच, प्रेत), हिन्दी का धिक्कारना, दुरदुराना इसी प्रकार के शब्द हैं।

(३) तीसरे प्रकार के शब्द प्रतीकात्मक हैं। प्रतीकात्मक शब्द का थोड़े संबंध से किसी अर्थ से सम्बन्ध होकर प्रतीक या चिह्न बन जाता है। यौवन को यदि खिले पुष्प से तुलना करते हैं तो बचपन का प्रतीक 'कली' होगी। छोटे-छोटे बच्चे ऐसे ही पापा, बाबा, मामा आदि का उच्चारण करने लगते हैं जिन्हें माता-पिता अपने लिए समझ लेते हैं। अतः अर्थ से सम्बन्धित होकर वे शब्द उनके प्रतीक बन

जाते हैं ।

प्राचीन काल में मनुष्य ने पानी पीने की विधि ओठों से साँस अन्दर लेकर प्रकट की होगी, अतः इस क्रिया के सूचक शब्दों में ओष्ठ्य ध्वनियों जैसे प्, ब् आदि का प्रयोग किया जाने लगा तथा संस्कृत का पिबामि, लैटिन का बिबेरे (Bibere) शब्द पीने की क्रिया के सूचक बन गए । इसी से मिलता हुआ अरबी शब्द शरब्=पीना है जिससे शरबत् शब्द बना है । वायु के चलने से उत्पन्न हुई ध्वनि के अनुकरण पर अथवा मुंह से फूँक मारने के आधार पर अंग्रेजी शब्द विन्ड (Wind),जर्मन-भाषा का शब्द वेहेन(Wehen)बने जिनका अर्थ है हवा का बहना । इसी प्रकार ब्लावन(Blawan), ब्लो' (Blow), 'पफ' (Puff) चीनी 'फुङ्ग' (हवा) आदि शब्द निर्मित हुए हैं। प्रतीकात्मक शब्द से अन्य शब्दों की उत्पत्ति हुई । जैसे पेड़ से पत्ते के गिरने से 'पत्' ध्वनि हुई जिसका अर्थ 'गिरना' मान लिया गया । पत् के आधार पर पतंग (पक्षी या पतंगा), पतत्र (सवारी, पर) पत्रि (पक्षी), तद्गृह (पीकदान), पतत् (गिरता हुआ),पतन पतयालु, (पतनशील), पतत्री(पक्षी, घोड़ा, बाल), पतित, पत्र (चिट्ठी) आदि शब्दों की उत्पत्ति हुई है । 'पत्र' ही हिन्दी में पत्ता, पत्तर, पत्तल आदि शब्दों की उत्पत्ति का स्रोत बना है ।

हेनरी स्वीट ने उपरिलिखित तीन प्रकार के शब्दों से भाषा की उत्पत्ति स्वीकार की है । लेकिन इन शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्द पाये जाते हैं जिनका समावेश हेनरी स्वीट के इन विभाजनों में नहीं होता है । इस प्रकार के शब्दों को औपचारिक शब्द कहा गया है ।

औपचारिक शब्द--भाषा का विकास निरन्तर होता रहा है । ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ उसको व्यक्त करने के लिए नये नये शब्दों का निर्माण किया जाता है । पहले से चले आ रहे शब्दों को आधार बनाकर नवीन शब्दों का निर्माण औपचारिक शब्द कहा जाता है । संस्कृत भाषा का 'या' से 'जाना' अर्थ ग्रहण किया जाता है, इसको आधार मानकर अनेक शब्द बनाये गए हैं; जैसे यान, अभियान, वायुयान, जलयान, बाष्पयान, प्रयाण, हीनयान, महायान, आदि इसी प्रकार के शब्द हैं ।

दक्षिणी अफ्रीका की सासुतो भाषा में मक्खी को 'न्त्सी न्त्सी' कहते हैं । जिसमें भिनभिनाने का भाव छिपा रहता हैं । इसका प्रयोग चाटुकारिता एवं चूसने के लिए भी किया जाता है । आस्ट्रेलिया के आदिवासी स्नायु को अपनी बोली में 'मूयूम' कहते हैं । स्नायु की तरह खुलने बन्द होने से वे लोग पुस्तक को भी 'मूयूम' कहने लगे । अंग्रेजी बाजे पाइप (Pipe) की सादृशता के कारण 'नल' के लिए 'पाइप' शब्द का प्रयोग होने लगा । ईरान के पहाड़ी क्षेत्र के सुमेरी लोग कुत्तों तथा गधों से परिचित थे किन्तु जब वे द० ईराक में बसे तो शेर तथा घोड़े से परिचित हुए अतः ये लोग शेर को 'नुग मग' (बड़ा कुत्ता)तथा घोड़े को 'पर्वतीय गधा' कहने लगे । 'रम्' धातु

का प्राचीन अर्थ 'स्थिर होना' था। कालान्तर में इसका अर्थ 'आनन्द मनाना' हो गया। इसी प्रकार रमण तथा मनोरम का अर्थ भी औपचारिक है, मूलार्थ नहीं। 'कुप' (चलना) तथा 'व्यथ' (=काँपना) धातुओं का अर्थ बदलकर औपचारिक होकर क्रमशः क्रोध तथा पीड़ा हो गया।

इस प्रकार जिन शब्दों की उत्पत्ति अनुकरणात्मक, मनोभावाभिव्यंजक एवं प्रतीकात्मक शब्दों द्वारा सिद्ध नहीं होती उन शेष शब्दों की उत्पत्ति सादृश्य के आधार पर निश्चित की जा सकती है।

अप्रत्यक्ष मार्ग--भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए प्रत्यक्ष मार्ग के अतिरिक्त कुछ विद्वान् अप्रत्यक्ष मार्ग का भी आश्रय लेते हैं। अप्रत्यक्षमार्ग को आगमन पद्धति भी कहते हैं। इस विधि में भाषा की उत्पत्ति जानने के लिए निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है--

(१) बच्चों की भाषा के द्वारा मूल भाषा की प्रकृति का ज्ञान करना।
(२) प्राचीन असभ्य जातियों की भाषा का अध्ययन।
(३) भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन।

बच्चों की भाषा–बच्चा प्रारंभ में कोई भाषा नहीं जानता है। वह अपने भावों को हंसकर प्रसन्न होकर अथवा रोकर प्रकट करता है। कालान्तर में थोड़ा बड़ा होने पर बालक अनुकरण करके अपने माता-पिता तथा आस पास के व्यक्तियों की भाषा को सीख लेता है। वर्तमान काल में बच्चे के लिए भाषा उपस्थित होती है जिसे वह सीखता है किन्तु आदि मानव के पास पहले कोई भाषा नहीं थी वह अपने भावों को उसी प्रकार व्यक्त करता होगा जिस प्रकार भाषा सीखने के पहले बच्चा अपने भाव प्रकट करता है। इन बालप्रयत्नों का सूक्ष्मता से अध्ययन करके अथवा बालकों की भाषा का सहारा लेकर भाषा के प्रारम्भिक रूप को ज्ञात करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

असभ्य जातियों की भाषा–असभ्य लोगों की भाषाएँ विकसित भाषाओं की तुलना में कम विकसित हैं। उनका प्राचीन रूप अधिक परिवर्तित नहीं हुआ है क्योंकि असभ्य आदिवासी सभ्य संसार के सम्पर्क से दूर वनों, पहाड़ो में निवास करते हैं। इस प्रकार इन लोगों की भाषा विकसित भाषाओं से प्राचीन रूप को प्रकट करती हैं। असभ्य लोगों की भाषाओं की विकसित भाषाओं से तुलना की जाय तो यह जाना जा सकता है कि विकसित भाषाओं में कितना परिवर्तन हुआ है। यद्यपि असभ्य लोगों की भाषाएँ मूल रूप में नहीं है उनमें भी निरन्तर थोड़ी बहुत मात्रा में परिवर्तन होते रहे है किन्तु विकसित भाषाओं की तुलना में ये परिवर्तन अपेक्षाकृत कम हुए हैं। इस प्रकार असभ्य लोगों की भाषा से मूल रूप की ओर पहुँचने में सहायता प्राप्त हो सकती है।

भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन--इस पद्धति द्वारा मूल भाषा की उत्पत्ति

पर विश्वसनीय तथा महत्वपूर्ण प्रयत्न किये जा सकते हैं। वर्तमान किसी भाषा के सहारे आगे बढ़कर उसके भिन्न रूपों का अध्ययन करके मूल रूप तक पहुँचा जा सकता है। जैसे वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में किसी को लेकर भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन किया जा सकता है। हिन्दी की उत्पत्ति को अपभ्रंश, प्राकृत, पालि, संस्कृत, वैदिक संस्कृत आदि का अध्ययन करके जाना जा सकता है कि हिन्दी की उत्पत्ति वैदिक संस्कृत अथवा उसके प्राचीन रूप से हुई है। इस प्रकार ऐतिहासिक अध्ययन के सहारे मूल भाषा की उत्पत्ति तक पहुँचा जा सकता है। इसी प्रकार वर्तमान यूरोपीय भाषाओं की उत्पत्ति लैटिन एवं ग्रीक तथा उनसे प्राचीन भाषाओं से हुई है, इस बात को ऐतिहासिक अध्ययन द्वारा जाना जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा की उत्पत्ति को इन तीन बातों द्वारा जानने का प्रयत्न किया जा सकता है। वस्तुतः भाषा की उत्पत्ति की समस्या का हल निकालना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। कोई भी विद्वान् भाषा के मूल को निश्चित रूप से नहीं बता सकता है। यद्यपि इस दिशा में विद्वान् कार्य कर रहे हैं तथा उनके प्रयत्नों से बहुत सी प्राचीन बातों का ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं।

४ | भाषाओं का वर्गीकरण

संसार में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर भाषाओं में अन्तर आता जाता है। भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि संसार की अनेक भाषाएँ परस्पर बहुत कुछ समानता रखती हैं जबकि कुछ भाषाएँ एक दूसरे से पर्याप्त पार्थक्य रखती हैं तथा उनमें समानता बिलकुल नहीं पाई जाती है। भाषा के रूप को देख कर ही उसे किसी एक वर्ग में रखा जा सकता है। भाषाओं में भेद प्रकट करने वाले लक्षण इतने स्पष्ट नहीं होते जिनके आधार पर उन्हें किसी विशेष वर्ग में स्थान दिया जाय। विद्वानों ने भाषाओं का तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन किया है। विश्व की भाषाओं को कई आधारों के अनुसार वर्गीकृत किया है जो निम्न प्रकार हैं--

वर्गीकरण के आधार–संसार की भाषाओं का वर्गीकरण निम्न आधारों के अनुसार किया गया है–

(१) **रूपात्मक या आकृतिमूलक वर्गीकरण**–इस प्रकार के वर्गीकरण में योगात्मक-अयोगात्मक आदि वर्गीकरण किए जाते हैं।

(२) **पारिवारिक वर्गीकरण**–इस प्रकार के वर्गीकरण में भाषापरिवारों का उल्लेख किया जाता है; जैसे भारोपीय परिवार, द्रविड़ परिवार, एकाक्षर भाषा परिवार आदि।

(३) **कालिक या ऐतिहासिक वर्गीकरण**–इस प्रकार के वर्गीकरण में विभिन्न कालों के आधार पर भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन किया जाता है, जैसे प्रागैतिहासिक भाषाएँ, प्राचीन भाषाएँ, मध्यकालीन भाषाएँ एवं आधुनिक भाषाएँ।

(४) **महाद्वीपीय आधार पर वर्गीकरण**–इस प्रकार के वर्गीकरण में भिन्न-भिन्न महाद्वीपों की भाषाओं का उल्लेख किया जाता है, जैसे–एशियाई भाषाएँ, योरोपीय भाषाएँ आदि।

(५) **देश के आधार पर वर्गीकरण**–इस प्रकार के वर्गीकरणों के आधार में भिन्न-भिन्न देशों के नाम पर भाषाओं का उल्लेख किया जाता है। जैसे भारतीय भाषाएँ चीनी भाषाएँ, रूसी भाषाएँ आदि।

(६) धर्म के आधार पर वर्गीकरण—इस वर्गीकरण में धर्मों के आधार पर भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है, जैसे—ईसाई भाषाएँ, हिन्दू भाषाएँ, मुसलमानी भाषाएँ आदि।

आलोचना—संसार की भाषाओं का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न आधारों पर किया जाता है। इस प्रकार के वर्गीकरण प्रायः अध्ययन की सुविधा के लिए किये जाते हैं तथा हर एक वर्गीकरण से उस वर्ग की भाषाओं का सम्बन्ध द्योतित होता है। इन वर्गीकरणों में कुछ तो उचित हैं किन्तु कुछ असंगत हैं। आकृतिमूलक वर्गीकरण में भाषाओं के रूप का विश्लेषण किया जाता है किन्तु इस प्रकार के वर्गीकरण में अनेक इस प्रकार की भाषाओं को सम्मिलित कर लिया जाता है जो परस्पर असम्बद्ध होती हैं तथा दूर-दूर बोली जाती हैं। जैसे—अश्लिष्ट योगात्मक वर्ग की भाषाओं में तुर्की भाषा, फिलीपाइन्स की टगलॉग भाषा, अफ्रीका की काफिर भाषा आदि सम्मिलित हैं किन्तु ये भाषाएँ परस्पर किसी प्रकार सम्बद्ध नहीं हैं तथा इनके क्षेत्र एक दूसरे से दूर स्थित हैं। पारिवारिक वर्गीकरण में अध्ययन की सुविधा रहती है क्योंकि इसमें एक ही परिवार की भाषाओं को गिना जाता है जो परस्पर भी किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित रहती हैं। पारिवारिक अध्ययन को जब काल-क्रम से विश्लेषित किया जाता है तो उसे ऐतिहासिक अध्ययन के नाम से जाना जाता है। ऐतिहासिक अध्ययन भाषाविज्ञान की दृष्टि से उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण तथा वैज्ञानिक है। ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर ही भाषाओं को भिन्न-भिन्न परिवारों में विभाजित करते हैं। महाद्वीपों के आधार पर किया वर्गीकरण अधिक उपादेय नहीं होता। एशिया महाद्वीप में ही अनेक भाषाएँ इस प्रकार की हैं जिनमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे तुर्की, जापानी, तेलगू, पंजाबी आदि। देश के आधार पर किया वर्गीकरण भी अधिक तर्क संगत नहीं है क्योंकि एक देश की भाषाएँ भी एक दूसरे से दूर हो सकती हैं, जैसे—भारत में ही बोली जाने वाली भाषायें तमिल, तेलगू भी हिन्दी, गुजराती से नितान्त भिन्न हैं। धर्म के आधार पर किया गया वर्गीकरण भी विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि एक धर्म के व्यक्ति भी अनेक भाषाओं का व्यवहार करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्व-भाषाओं के वर्गीकरण के आधार कई हैं किन्तु किसी को भी पूर्णतः उचित नहीं कहा जा सकता। अध्ययन की दृष्टि से आकृतिमूलक वर्गीकरण तथा पारिवारिक वर्गीकरण का विशेष महत्त्व है। अतः सर्वप्रथम आकृतिमूलक वर्गीकरण पर प्रकाश डाला जाएगा।

आकृतिमूलक वर्गीकरण—यह वर्गीकरण रूपरचना, वाक्यरचना, पदरचना पर आधारित है। अतः इसे रूपात्मक, पदात्मक अथवा रचनात्मक वर्गीकरण भी कहते हैं। वाक्य में प्रयोग किए जाने वाले ध्वनिसमूह को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। प्रथम को 'अर्थतत्त्व' कहते हैं तथा दूसरे को सम्बन्धतत्त्व या 'रूपतत्व' कहा

जाता है, जैसे 'मोहन ने श्याम को लेखनी दी'–इस वाक्य में मोहन, श्याम, लेखनी एवं देना ये प्रधान शब्द हैं। 'ने' मोहन का कर्तृत्व तथा 'को' श्याम के 'कर्मत्व' को बताता है, 'दी' से स्त्रीलिंग की एकवचन की भूतकाल की क्रिया का बोध होता है। इस वाक्य में प्रधान चार शब्दों को, जिनसे मूल अर्थ का ज्ञान होता है, 'अर्थतत्त्व' कहते हैं तथा 'ने' 'को' जैसे व्याकरणिक सम्बन्धों को बताने वाले चिह्नों को सम्बन्धतत्त्व या रूप तत्त्व कहते हैं। सम्बन्धतत्त्व या रूपतत्त्व की समानता के आधार पर किए जाने वाले वर्गीकरण को आकृतिमूलक वर्गीकरण कहते हैं। इस तरह के वर्गीकरण में वाक्य का अधिक महत्त्व होता है। गया, किया, पाया, खाया, आदि शब्दों में 'या' प्रत्यय से भूतकाल एकवचन, पुँल्लिग का बोध होता है, अतः इनमें सम्बन्धतत्त्व या रूपतत्त्व की समानता पाई जाती है। इसी प्रकार अर्थतत्त्व को इस रूप में समझा जा सकता है.–जैसे-जाना, जाता, जाएगा, गया, जाए, जाओगे आदि शब्द रूपों में जाना क्रिया मूल रूप से एक है अतः अर्थतत्त्व की समानता दिखाई पड़ती है; जबकि व्याकरणिक समानता (काल, वचन, लिङ्ग आदि में) नहीं है। इस प्रकार कह सकते हैं कि संसार की उन भाषाओं को रूपात्मक वर्ग में स्थान दिया जाता है जिनमें 'रूप तत्त्व' की समानता होती है। वाक्य गठन ही रूप तत्त्व का आधार है अतः इसे 'वाक्य मलक वर्ग' भी कहा जाता है। रूपात्मक वर्ग के अतिरिक्त दूसरा प्रमुख वर्ग परिवार मूलक होता है जिस वर्ग की भाषाओं में रूप तत्त्व की समानता के साथ ही अर्थतत्त्व की भी समानता होती है। इस प्रकार ये दोनों वर्ग एक दूसरे से पृथक् होते हैं। रूपात्मक या आकृतिमूलक वर्गीकरण में शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध एवं शब्दों की धातु, प्रत्यय अथवा उपसर्गों से उत्पत्ति आदि तथ्यों का विशेष अध्ययन किया जाता है।

आकृतिमूलक (रूपात्मक) दृष्टि से संसार की भाषाओं का विभाजन–आकृतिमूलक दृष्टि से संसार की भाषाओं को दो भागों में बाँटा गया है–

(१) अयोगात्मक

(२) योगात्मक

योगात्मक भाषाओं को पुनः निम्न भागों में विभाजित किया गया है–

(क) अश्लिष्ट योगात्मक

(ख) श्लिष्ट योगात्मक

(ग) प्रश्लिष्ट योगात्मक

इस प्रकार संसार की भाषाओं का वर्गीकरण निम्न ४ भागों में किया गया है––

(१) अयोगात्मक भाषाएँ

(२) अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ

(३) श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ

(४) प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ

(१) **अयोगात्मक भाषाएँ**--अयोगात्मक भाषाओं में अर्थतत्त्व प्रधान होता है तथा सम्बन्धतत्त्व का पृथक् अस्तित्व नहीं होता है। प्रत्येक शब्द स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होता है अर्थात् शब्दों में प्रकृति तथा प्रत्यय या उपसर्ग का योग नहीं होता है। इसीलिए इन भाषाओं को अयोगात्मक कहा जाता है। संस्कृत भाषा में बिना प्रत्ययों का प्रयोग किए कार्य नहीं चल सकता है। 'रामम्' कहने से तात्पर्य हुआ कि 'राम' शब्द में 'अम्' प्रत्यय लग कर द्वितीया एक वचन (अर्थात् कर्म कारक एक वचन) का रूप बना है। इसी प्रकार हिन्दी में कहा जाता है कि 'मुझे रेल से जाने दो' इसमें 'मुझे' शब्द 'मैं' में परिवर्तन कर अथवा कुछ जोड़ करके बनाया गया है। इन रूपों को योगात्मक कहा जाता है क्योंकि शब्दों के रूप में कुछ न कुछ योग करके या परिवर्तन करके नये शब्द रूप बनाकर प्रयोग किए जाते हैं। अयोगात्मक भाषाओं में यह बात नहीं। वहाँ प्रयोग करते समय अपने अर्थ के अनुसार शब्द में कुछ जोड़ा या घटाया नहीं जाता है। शब्दों का प्रयुक्त रूप सदैव एक सा रहता है। वाक्य में जिस स्थान पर जो शब्द प्रयोग किया जाता है उसी के सहारे शब्द का अर्थ समझ लिया जाता है। इस प्रकार की भाषाओं को एकाक्षर, एकाच् अर्थात् एक स्वर वाली, धातु प्रधान, निपात प्रधान, अथवा व्यासप्रधान भी कहा जाता है। इन भाषाओं में वाक्य विचार किया जाता है लेकिन पद विचार (प्रकृति प्रत्यय) नहीं किया जाता है। इस वर्ग की सबसे प्रमुख भाषा चीनी है। इसके अतिरिक्त तिब्बती, वर्मी, स्यामी, अनामी, सूडानी आदि अयोगात्मक भाषाएँ हैं।

अयोगात्मक भाषाओं के विषय में प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी डा० गुणे ने अपनी तुलनात्मक भाषाविज्ञान पुस्तक में लिखा है-"इसमें किसी वाक्य में शब्द का स्थान ही उसकी विशेषता या उसकी व्याकरणिक कार्यकारिता को निर्धारित करता है अर्थात् कोई शब्द क्रिया, संज्ञा अथवा विशेषण इसलिए नहीं होता कि उसमें इतनी विशेषताएँ होती हैं वरन् इसलिए होता है कि उस वाक्य में इसका विशेष स्थान होता है।" वे पुनः लिखते हैं-"प्रत्येक शब्द वाक्य में, प्रत्येक अवस्था में, अव्ययों की तरह एक ही रूप रहता है। इसीलिए इन भाषाओं में और भाषाओं के सदृश, शब्दों का नाम विशेषण, सर्वनाम, क्रिया, क्रिया विशेषण इत्यादि प्रकार का भी विभाग नहीं किया जाता।"

चीनी भाषा में "न्गो" का अर्थ 'मैं', '**ता** का अर्थ 'मारना' तथा 'नो' का अर्थ 'तू या तुम' है। इस प्रकार 'न्गो **ता नी**' इस वाक्य का अर्थ हुआ 'मैं तुझे मारता हूँ।" यदि इन्हीं शब्दों का स्थान परिवर्तन हो जाता है तो वाक्य का अर्थ भी बदल जाता है जैसे '**नी ता न्गो**' वाक्य का अर्थ हुआ 'तू मुझे मारता है।' इसी प्रकार '**ता**=**बड़ा**, **लेन**=**आदमी**',='**ता लेन**' का अर्थ हुआ '**बड़ा आदमी**'। लेन

ता=आदमी बड़ा है । चीनी भाषा में '**त्सेन**' का अर्थ होता है=चलना, इसका भूत-काल का रूप होता है '**लियोन**' (=समाप्त करना) इन दोनों को सम्मिलित रूप से कहने से शब्द बना **त्सेनलियोन**' जिसका अर्थ हुआ 'चल चुका' (या चलना समाप्त हो गया) । '**तलइ**' शब्द (**त**=वह, **लइ**=आना) का अर्थ होता है 'वह आता है ।' '**त लइ लिआव**' का अर्थ हुआ वह आया । चीनी भाषा में एक ही शब्द वाक्य के जिस स्थान पर प्रयुक्त होता है उसी के अनुसार संज्ञा, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण आदि हो सकता है । किन्तु शब्द रूप नहीं बदलता वह अव्यय की तरह सदा एकसा ही रहता है । उदाहरणार्थ='वो' शब्द का प्रयोग यदि क्रिया के पूर्व किया जाता है तो इसका अर्थ होता है मैं । यदि क्रिया के बाद प्रयोग किया जाता है तो इसका अर्थ होता है 'मुझे' । अर्थ-परिवर्तन स्थान परिवर्तन के अनुरूप होता है । जैसे '**कुओक** (राज्य) **ता**' (बड़ा) का अर्थ हुआ, 'राज्य बड़ा है' किन्तु शब्द का स्थान बदलने पर '**ता कुओक**' का अर्थ होगा 'बड़े राज्य में' पहले वाक्य में 'ता' का प्रयोग क्रियास्थानीय है, दूसरे वाक्य में विशेषण है ।

निपात--संस्कृत में उपस्थित एवं व्याकरण से सिद्ध न होने वाले शब्द निपात कहलाते हैं । चीनी भाषा में कुछ शब्द ऐसे भी पाये जाते हैं जो पूर्ण शब्दों की तरह स्वतन्त्र अर्थ प्रकट करते हैं किन्तु सम्बन्धतत्त्व को बताने वाले कुछ सहायक अर्थ को भी प्रकट करते हैं । इस प्रकार के शब्द 'रिक्त शब्द' (Empty wo·ds) कहलाते हैं । इन्हीं रिक्त शब्दों को निपात नाम से अभिहित किया गया है । हिन्दी के कारक चिह्न ने, को, से या द्वारा, आदि व्याकरणिक सम्बन्ध बतलाने में प्रयोग किये जाते हैं किन्तु स्वतन्त्र रूप से नहीं । चीनी भाषा के ये निपात शब्द स्वतन्त्र रूप से भी प्रयोग होते हैं । चीनी भाषा के छिह' (Chih) शब्द के अर्थ वह, जाना, सम्बन्ध रखना आदि है किन्तु इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग सम्बन्ध कारक की तरह भी किया जाता है जो 'का' 'की' आदि अर्थ प्रकट करता है । **मु** (माता) **छिह** (का) **त्सु** (पुत्र) अर्थात् माता का पुत्र यहाँ 'छिह' का अर्थ 'का' है जो सम्बन्ध कारक के स्थान पर आया है । इसी प्रकार **मिन** (=जनता) '**छिह**' (=की) '**लिक**' (=शक्ति) इन शब्दों को एक साथ प्रयोग करने पर 'मिन छिह लिक' का अर्थ हुआ जनता की शक्ति । यहाँ भी छिह का प्रयोग सम्बन्ध कारक की तरह हुआ है, यदि इसे हटा दिया जाय तो **मिन लिक**' का अर्थ '**जनशक्ति**' हुआ । इस प्रकार इसके प्रयोग से वाक्य में स्पष्टता आ गयी है । इसी प्रकार '**वांग**' (राजा), '**पाओ**' (रक्षा करना) 'मिन' (जनता) का अर्थ हुआ राजा जनता की रक्षा करता है । 'वांग छिह पाओ मिन' वाक्य का अर्थ हुआ 'राजा द्वारा रक्षित जनता ।' बोलने में शब्द पर बलप्रयोग तथा थोड़े-थोड़े स्वर भेद के कारण अर्थ की विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है । जैसे केबल 'ब' का अर्थ स्वर भेद के कारण इस प्रकार हो सकता है । 'ब ब ब ब' वाक्य में हर अक्षर पर स्वर

भेद से अर्थ होगा–'तीन महिलाओं ने राजा के कृपापात्र के कान अमेंठे'। इस प्रकार शब्द के बल प्रयोग में अन्तर आने से अर्थ भी बदल जाते हैं। निपात 'छिह' की भाँति अन्य प्रमुख शब्द 'ती' है जो निपात की तरह कार्य करता है जिससे सम्बन्ध का बोध होता है। जैसे–'वो' का अर्थ 'मैं' तथा 'नी' का अर्थ तुम है। 'वो ती' का अर्थ हुआ मेरा। 'नी' (तुम) 'ती' (का) का अर्थ हुआ तुम्हारा। इस प्रकार निपातों का प्रयोग वाक्य के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

सुर (Tone)–ध्वनि के उतार-चढ़ाव से अर्थ में वैभिन्न्य उत्पन्न हो जाता है। यदि किसी शब्द का उच्चारण उच्च, मध्यम या निम्न प्रकार से किया जाता है तो अयोगात्मक भाषाओं में शब्दों का अर्थ बदल जाता है। चीनी भाषा में सुर सामान्य रूप से चार तरह प्रयोग किया जाता है––(१) सामान्य सुर से उच्चारण (अर्थात् किसी अक्षर पर जोर न देकर उच्चारण) करना, (२) पहले मन्द उच्चारण करते हुए बाद में उच्च सुर में बोलना, (३) प्रारम्भ में उच्च सुर में बोलते हुए अन्त में निम्न सुर से बोलना, (४) पूरे शब्द को उच्च सुर में बोलना। इन सुरों के अनुसार ही शब्दों के अर्थ में अन्तर आ जाता है। 'मु' को सामान्य सुर से बोलने से पर्दा, प्रेम, शाम, वन आवश्यक, नेत्र, ध्यान रखना, बुलाना, धुलाई करना आदि अर्थ होते हैं। दूसरे प्रकार बोलने पर मां, अंगूठी आदि अर्थ होते हैं। इसी प्रकार तीसरे तथा चौथे प्रकार के सुर से बोलने पर अर्थों में अन्तर आ जाएगा। येन शब्द के अर्थ नेत्र, नमक, धुआँ, हंस आदि भिन्न-भिन्न सुर से बोलने पर होते हैं। चीनी भाषा में एक शब्द से स्वर भेद के कारण औसत रूप से दश अर्थों की अभिव्यक्ति होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अयोगात्मक भाषाओं में शब्द के स्थान 'निपात तथा सुर' की विशेष महत्ता होती है। अयोगात्मक भाषाओं में सूडानी भाषा (स्थान प्रधान), मलय, तथा अनामी (स्वर-प्रधान), बर्मी (निपात प्रधान), तिब्बती (निपात प्रधान), स्यामी (सुर-प्रधान) तथा चीनी (निपात प्रधान-साथ ही शब्द स्थान तथा सुर की प्रधानता) प्रमुख अयोगात्मक भाषाएँ हैं।

योगात्मक भाषायें–इस प्रकार की भाषाओं को प्रकृति-प्रत्यय प्रधान, प्रत्यय प्रधान, सावयव संयोग-प्रधान, संयोगी, संयोगात्मक, व्यक्तयोग, उपचयोन्मुख, संचयोन्मुख, संचयात्मक, उपचयात्मक आदि नामों से संबोधित किया जाता है। योगात्मक भाषाओं में अयोगात्मक भाषाओं की भाँति शब्द की स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती है। इन भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व एवं अर्थतत्त्व दोनों का योग रहता है। सम्बन्धतत्त्व तथा अर्थतत्त्व के योग होने से इन्हें योगात्मक भाषाएँ कहा जाता है। हिन्दी में **तुम्हारे**' '**मेरे**', '**मुझे**', 'अपने', आदि इसी प्रकार के शब्द हैं जिनमें अर्थतत्त्व एवं संबन्धतत्त्व का योग है। संस्कृत में '**रामस्य गृहम्**' में 'रामस्य'

इसी प्रकार का शब्द है । विश्व की अधिकांश भाषाएँ योगात्मक ही हैं । प्रत्यय प्रकृति से पूर्व अथवा मध्य में अथवा अन्त में जुड़ता है । इस प्रकार प्रकृति और प्रत्यय के योग से शब्द बनता है । योगात्मक भाषाओं को योग की प्रकृति के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है-(१) अश्लिष्ट, (२) श्लिष्ट, (३) प्रश्लिष्ट ।

(१) **अश्लिष्ट योगात्मक (प्रत्यय प्रधान) भाषाएँ**--अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व का अर्थतत्त्व से इस प्रकार योग रहता है कि दोनों तत्त्वों की सत्ता अथवा स्थिति स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है । हिन्दी में इसके उदाहरण दिए जा सकते हैं; जैसे शिशुत्व, सुजनता, मैंने आदि । इस वर्ग की तुर्की भाषा के उदाहरण इस प्रकार हैं-**एविम** (एव्+इम्) अर्थात् मेरा घर, **एविमिन्** (एव्+इम्+इन्)=मेरे घर का । तुर्की भाषा में **एव**=घर, **अत**=घोड़ा, लर=बहुवचन सूचक हैं अत का अर्थ एक घोड़ा, **अतलर**=घोड़े, **एव**=घर, **एवलेर**=अनेक घर । **सेव** का अर्थ=प्यार करना । इस धातु की सहायता से **सेवमेक** (प्यार करना) **सेव् इस्मेक्** (आपस में एक दूसरे को प्यार करना), **सेव् दिरमेक** (प्यार करवाना) आदि शब्दों का निर्माण होता है । अश्लिष्ट योगात्मक (प्रत्यय प्रधान) भाषा में व्याकरण से सम्बन्ध (१) पुरः प्रत्यय (पूर्व योगात्मक), (२) अन्तः प्रत्यय (मध्य योगात्मक), (३) पर प्रत्यय प्रधान (अन्त योगात्मक), (४) पूर्वान्त योगात्मक (आंशिक योगात्मक) के संयोग से प्रकट किया जाता है ।

(१) **पुरःप्रत्ययप्रधान (पूर्वयोगात्मक)**-इस तरह की भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व का आरम्भ में प्रयोग किया जाता है । दक्षिण अफ्रीका की **'बान्टू'** भाषा परिवार की भाषाएँ इसी प्रकार की 'पुरः प्रत्यय प्रधान' भाषाएँ हैं । 'बान्टू भाषा परिवार' की एक भाषा 'काफिर' में **'कु'** उपसर्ग अर्थात् पुरः प्रत्यय का अर्थ है 'को', 'ति' (=हम), नि (=उन) आदि सर्वनाम हैं इनका आपस में योग इस प्रकार होता है-

कु-ति=हमको
कु-नि=उनको
कु-जे=उसको

इसी प्रकार इस परिवार की अन्य भाषा **'जुलू'** में इस तरह के निम्न उदाहरण दर्शनीय हैं-

'न्तु'=आदमी | **उमु**=एक वचन का चिह्न
अब=बहुबचन का चिह्न
न्ग=से

इन शब्दों के योग द्वारा निम्न शब्दों का निर्माण होता है-

उमुन्तु=एक आदमी
अबन्तु=कई आदमी

न्ग उमुन्तु=आदमी से

न्ग अबन्तु=आदमियों से

(२) **अन्त:प्रत्ययप्रधान**-(मध्य योगात्मक)-इन भाषाओं में प्रत्यय मध्य में प्रयुक्त किया जाता है। भारत की मुण्डा भाषाएँ, मैडागास्कर द्वीप की भाषा, मलाया परिवार की प्रधान भाषा फिलीपाइन की 'टगलॉग भाषा' आदि भाषाएँ मध्य योगात्मक भाषायें हैं। मुण्डा परिवार की संथाली भाषा में मंझि (=मुखिया) तथा 'प' बहुवचन का सूचक प्रत्यय है। इनके योग से 'मपंझि' शब्द बना जिसका अर्थ हुआ 'मुखिया गण'। इसी तरह दल=मारना, दपल=परस्पर मारना। फिलीपाइन्स की टगलॉग भाषा (Tagalog) में इसी प्रकार के उदाहरण इस प्रकार हैं-

सुलत्=लेख (स+उलत्)

सुमूलत्=लिखने वाला (स+उम्+ऊलत्)

सिनूलत्=लिखा गया (स+इन्+ऊलत्)

तुर्की भाषा में भी इसी प्रकार के उदाहरण निम्न प्रकार हैं-

सेवमेक्-=प्यार करना

सेवइनमेक्=अपने को प्यार करना

सेवइलमेक्=प्यार किया जाना

(तुर्की भाषा के ये उदाहरण दो अक्षरों से अधिक के हैं।)

कुछ भाषाएँ ईषत् प्रत्यय प्रधान होती हैं क्योंकि इन भाषाओं में कारक, समास, तथा विभक्ति भी मिलती हैं। काकेशस की तथा जापानी भाषाएँ विभक्ति की ओर प्रवृत्ति अधिक होती है।

(३) **परप्रत्ययप्रधान (अन्त योगात्मक)**-इस प्रकार की भाषाओं में प्रत्यय अन्त में जोड़ा जाता है। इस तरह की परप्रत्ययप्रधान भाषाएँ यूराल, अल्टाइक तथा द्रविड़ परिवार की भाषाएँ हैं। 'तुर्की' भाषा इस प्रकार की भाषाओं में प्रसिद्ध है; यथा-

एव=घर

एवलेर=कई घर

एवलेरइम=मेरे घर

यज्मक्=लिखना

यजिस्मक्=परस्पर लिखना

यज्दिर्मक्=लिखवाना

यजिल्मक=लिखाया जाना

दक्षिण भारतीय द्रविड़ भाषाओं में तमिल भाषा के निम्न उदाहरण द्वारा देखा जा सकता है कि ये भाषाएँ भी पर प्रत्यय प्रधान हैं जैसे-

कुदिरै=घोड़ा **कुदिरैगल्**=घोड़े
गल्=बहुबचन प्रत्यय **कुदिरैगलै**=घोड़ों को
ऐ=कर्म कारक चिन्ह

कन्नड़ भाषा में इसी प्रकार देखा जा सकता है–सेवक से **सेवक–रु** (कर्त्ता), **सेवक–रन्नु** (कर्म), **सेवक–रिन्द** (करण), **सेवकरिगे** (सम्प्रदान), **सेवक-र** (संबन्ध) **सेवक–रल्लि** अधिकरण आदि रूप बनते हैं।

हंगरी भाषा में–
जार=बन्द करना
जारत=बन्द करवाता है
जारत्गत्=अधिकतर बन्द करवाता है।

(४) **सर्वप्रत्ययप्रधान या पूर्वान्त योगात्मक (आंशिक योगात्मक, ईषत् प्रत्यय प्रधान)**-इनमें अर्थतत्त्व के पहले तथा बाद में भी सम्बन्धतत्व जोड़े जाते हैं। इस प्रकार इनमें पूर्व प्रत्यय और पर-प्रत्यय सभी जोड़े जाते हैं। उदाहरणार्थ न्यूगिनी की 'मफोर भाषा' को देखा जा सकता है–

म्नफ़्=सुनना **वम्नफ़्**=तू सुनता है।
ज=मैं **इम्नफ़्**=वह सुनता है।
उ=तुम **सिम्नफ़्**=वे सुनते हैं।

ज-म्नफ़् =मैं सुनता हूँ, **ज-म्नफ़्-उ**=मैं तेरी बात सुनता हूँ। इस प्रकार की भाषाएँ बास्क, हौंसा, जापानी एवं न्यूजीलैण्ड तथा हवाई द्वीप में बोली जाती हैं। ये भाषाएँ योगात्मक एवं अयोगात्मक वर्गों के मध्य की हैं। दोनों वर्गों की भाषाओं के लक्षण आंशिक योगात्मक भाषाओं में पाये जाते हैं। कुछ अन्य भाषाएँ सर्वप्रत्यय प्रधान होती हैं जिनमें आदि में, मध्य में तथा अन्त में प्रत्ययों के योग होते हैं। मला-यन भाषाएँ इसी प्रकार की हैं।

(२) **श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ (विभक्ति प्रधान)**–श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में शब्दों में विभक्ति की प्रमुखता होती है। इस प्रकार की भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) को जोड़ने के कारण अर्थतत्त्व वाले भाग में (प्रकृति में) कुछ न कुछ विकार आ जाता है परन्तु सम्बन्धतत्त्व की झलक (प्रतीति) भी बनी रहती है। विभक्ति प्रधान भाषाओं के शब्दों का निर्माण प्रकृति और प्रत्यय के योग से होता है। दोनों का योग घनिष्ठ होता है। उन्हें अलग करना कठिन होता है। वेद, इतिहास, भूगोल, राजनीति, नीति आदि से वैदिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनैतिक आदि शब्द बनते हैं। यहाँ शब्दों में 'इक' प्रत्यय जोड़ा गया है। परन्तु प्रत्यय जुड़ने से शब्दों में भी विकार हो गया है। इसी प्रकार अरबी में क्-त्-ल (=मारना) धातु कतल (=खून), कातिल (मारने वाला), किल्ल (शत्रु) आदि रूप बनते हैं। इस तरह

की भाषाएँ सामी, हामी तथा भारोपीय भाषाएँ है । विभक्ति प्रधान भाषाओं को दो भागों में विभाजित किया जाता है–

(१) अन्तर्मुखी श्लिष्ट (विभिक्त प्रधान) भाषाएँ ।

(२) बहिर्मुखी श्लिष्ट (विभक्ति प्रधान) भाषाएँ ।

(१) **अन्तर्मुखी श्लिष्ट**–इस तरह की भाषाएँ सामी तथा हामी भाषा परिवार में आती हैं । अरबी भाषा इसी प्रकार की है । इस प्रकार की भाषाओं में शब्दों में जुड़े हुए भाग (प्रकृति+प्रत्यय) घुल-मिल जाते हैं; जैसे–अरबी भाषा 'क्-त्-ब' धातु जिसका अर्थ लिखना होता है उससे बने शब्द इस तरह होंगे–

कातिब=लिखने वाला

किताब=जो लिखा गया (लिखी गयी)

कुतुब=बहुत सी किताबें

इसी प्रकार स् ल् म् (कुशल होना) से सलाम, सलीम इसलाम, मुसलिम, सुलेमान, स्ज्द् (झुकना, प्रणाम करना) से सिज्दा, मसजिद आदि रूप बनते हैं । संस्कृत में पर्वत से पार्वती, अंग्रेजी में सिंग, सैंग, आदि इसी तरह के शब्द हैं ।

अन्तर्मुखी श्लिष्ट भाषाओं को भी दो उपविभागों में बाँटा गया है–(क) संयोगात्मक (ख) वियोगात्मक ।

(क) **संयोगात्मक भाषाएँ**–सामी भाषाएँ प्राचीन रूप में संयोगात्मक थीं । अब इनकी प्रवृत्ति वियोगात्मक है । इस तरह की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत, ग्रीक, लैटिन अवेस्ता आदि हैं ।

(ख) **वियोगात्मक**–इनमें हिब्रू भाषा का आधुनिक रूप तथा अन्य आधुनिक सामी भाषाएँ वियोगात्मक रूप की ओर बढ़ रही हैं । अब प्रकृति के साथ सहायक संबन्धतत्त्व का प्रयोग किया जाने लगा है जो इन भाषाओं के प्राचीन रूप के समय प्रयुक्त नहीं होता था ।

(२) **बहिर्मुखी श्लिष्ट (विभक्ति प्रधान भाषाएँ)**––भारोपीय परिवार की आधुनिक भाषाएँ बहिर्मुखी श्लिष्ट भाषाएँ हैं । हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी इसी प्रकार की भाषाएँ हैं । प्राचीन भाषाएँ ग्रीक, लैटिन, संस्कृत, अवेस्ती संयोगात्मक भाषाएँ थीं जिनमें सहायक क्रिया परसर्ग आदि की आवश्यकता नहीं होती थी । परन्तु अब अधिकांश भाषाएँ वियोगात्मक हो रही हैं । इन भाषाओं में प्रत्यय (विभक्तियाँ) बाहर से जुड़कर रूप बदल देते हैं । संस्कृत की गम् धातु से प्रत्यय का योग होने पर इसका रूप 'गच्छ' बनता है, 'अव' उपसर्ग लगाने से इसका रूप अवगच्छति (अन्य पुरुष एक वचन) बनता है । हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अब विभक्ति के स्थान पर सहायक शब्द लगाने की आवश्यकता पड़ती है ।

(३) **प्रश्लिष्ट योगात्मक (समासप्रधान) भाषाएँ**–प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं

में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व (प्रकृति और प्रत्यय) इतने मिले रहते हैं कि उनको अलग अलग पहिचानना तथा पृथक् करना असम्भव सा होता है। इस तरह की भाषाओं में शब्द खण्ड मिल जुल कर पूरा एक वाक्य सा बन जाता है। इस प्रकार की भाषाएँ ग्रीनलैण्ड तथा दक्षिण अमेरिका महाद्वीप में पाई जाती हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार के संस्कृतभाषा में मिल जाते हैं किन्तु संस्कृत प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा नहीं है। अपितु श्लिष्ट योगात्मक है। संस्कृत के शिशु से बना शब्द 'शैशव' एवं 'ऋजु' से बना 'आर्जव' शब्द में अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व पूर्णतया मिल गए हैं। एक से अधिक अर्थतत्त्व समास प्रक्रिया द्वारा जोड़ लिए जाते हैं जैसे--'राजपुत्रगणविजय:' ऐसे ही उदाहरण हैं। संबन्धतत्त्व के योग से प्रश्लिष्ट-योगात्मक भाषाओं के दो उप विभाग किए जाते हैं–

(क) पूर्ण प्रश्लिष्ट-योगात्मक भाषाएँ।
(ख) आंशिक प्रश्लिष्ट-योगात्मक भाषाएँ।

(क) **पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ** –इस प्रकार की भाषाओं में अर्थतत्त्व और संबन्धतत्त्व (प्रकृति और प्रत्यय) का योग इतना पूर्ण होता है कि पूरा वाक्य एक शब्द जैसा बन जाता है। एक दूसरे से पृथक् करना कठिन होता है। द० अमेरिका तथा ग्रीनलैण्ड की भाषाएँ इसी तरह की हैं। द० अमेरिका की चेरोकी भाषा के उदाहरण निम्न हैं–

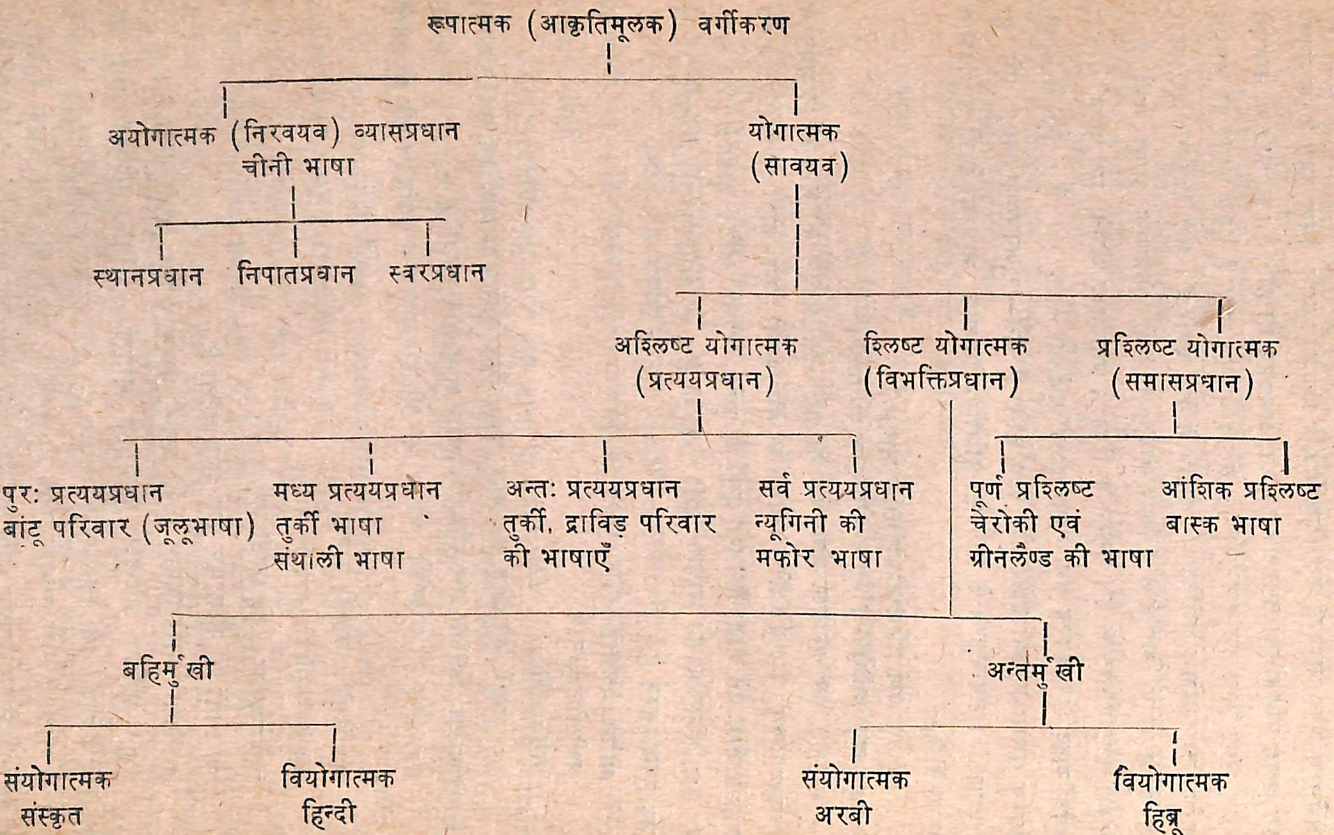
नातेन=लाओ
अमोखोल=नाव
निन=हम

इन शब्दों को जोड़ कर शब्द खण्ड मिलाने से बड़ा शब्द इस प्रकार बनता है–'**नाधोलिनिन**' जिसका अर्थ होता है–'हमारे पास नाव लाओ'।

ग्रीन लैण्ड की एक्सिमो भाषा में भी इस प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं; जैसे–

अउलिसर=मछली मारना
पेअर्तोर=किसी काम में लगना
पिन्नेसुअर्पोक्=वह जल्दी करता है।
इन तीनों को मिलाकर बड़ा शब्द बनता है–
अउलिसरिअर्तोरसुअर्पोक्=वह मछली मारने के लिए जल्दी जाता है।

(ख) **आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ**--आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में सर्वनाम तथा क्रियाओं का संयोग इस प्रकार होता है कि क्रिया का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तथा सर्वनाम पूरक हो जाता है। सर्वनाम तथा क्रिया के अतिरिक्त संज्ञा, विशेषण, अव्यय आदि का योग नहीं होता है। फ्रांस तथा स्पेन के पिरेनीज पर्वत क्षेत्र के सीमावर्ती भाग में बोली जाने वाली बास्क भाषा इसी प्रकार की भाषा


रूपात्मक (आकृतिमूलक) वर्गीकरण
अयोगात्मक (निरवयव) व्यासप्रधान
चीनी भाषा
स्थानप्रधान
निपातप्रधान
स्वरप्रधान
योगात्मक
(सावयव)
अश्लिष्ट योगात्मक
(प्रत्ययप्रधान)
श्लिष्ट योगात्मक
(विभक्तिप्रधान)
प्रश्लिष्ट योगात्मक
(समासप्रधान)
पुर: प्रत्ययप्रधान
बांटू परिवार (जूलूभाषा)
मध्य प्रत्ययप्रधान
तुर्की भाषा
संथाली भाषा
अन्त: प्रत्ययप्रधान
तुर्की, द्राविड़ परिवार
की भाषाएँ
सर्व प्रत्ययप्रधान
न्यूगिनी की
मफोर भाषा
पूर्ण प्रश्लिष्ट
चेरोकी एवं
ग्रीनलैण्ड की भाषा
आंशिक प्रश्लिष्ट
बास्क भाषा
बहिर्मुखी
अन्तर्मुखी
संयोगात्मक
संस्कृत
वियोगात्मक
हिन्दी
संयोगात्मक
अरबी
वियोगात्मक
हिब्रू

है। जिसका उदाहरण इस प्रकार है–

दकार किओत=मैं इसे उसके पास ले जाता हूँ।

नकारसु=तुम मुझे ले जाते हो।

हकारत=मैं तुझे ले जाता हूँ।

इन शब्दों में सर्वनाम और क्रियाओं का ही योग हुआ है।

आकृतिमूलक वर्गीकरण की समीक्षा–आकृतिमूलक वर्गीकरण की व्यावहारिक उपयोगिता अधिक नहीं है। इस वर्गीकरण द्वारा संसार की हजारों भाषाओं का विभाजन चार वर्गों में किया गया है। भाषाओं की रचना शैली समझने की सुविधा अवश्य हो जाती है। विभक्ति प्रधान वर्ग की भाषाएँ थोड़ी बहुत समान हैं अन्यथा अन्य वर्गों की भाषाओं में कोई सम्बद्धता नहीं है। जैसे अयोगात्मक वर्ग की चीनी तथा सूडानी आपस में बहुत दूर हैं। इसी प्रकार प्रत्यय प्रधान भाषाएँ भी एक दूसरे से बहुत दूर स्थित हैं, जैसे तुर्की (एशिया में), फिनी (यूरोप), काफिर (अफ्रीका), टगलॉग (फिलीपाइन्स), मफोर (न्यूगिनी) तथा द्रविड भाषाएँ (भारत) आदि। इस प्रकार का वर्गीकरण अवैज्ञानिक है।

संसार की कोई भी भाषा पूर्ण रूप से दूसरी भाषा से नहीं मिलती है। भिन्न भिन्न वर्गों की भाषाओं में कोई भी अपने वर्ग की प्रतिनिधि भाषा नहीं हैं। भाषाविज्ञान में जो चार प्रकार का वर्गीकरण वाक्यों के आधार पर किया गया है, उनसे न भाषाविकास का ही ज्ञान होता है और नहीं प्रकृति-प्रत्यय का ही विवेचन होता है। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि भाषाओं में मूल रूप में मात्र धातुओं का ही प्रयोग किया जाता था। साथ ही इस बात का भी ज्ञान होता है कि बहुत सी प्राचीन भाषाएँ संयोगात्मक थीं तथा संयोगावस्था से आधुनिक काल तक वियोगास्था की ओर बढ़ चुकीं हैं संसार की सभी भाषाओं का अभी सम्यक् रूप से अध्ययन नहीं हो पाया है। भारोपीय भाषाओं की तुलना में चीनी, वर्मी भाषाओं का अध्ययन कम हुआ है। भाषा अध्ययन सम्बन्धी जो मान्यताएँ आज हैं, नयी खोजों से सम्भव हो सकता है कि उनमें परिवर्तन हों। आकृतिमूलक वर्गीकरण का महत्त्व अब कम हो गया है तथा पारिवारिक वर्गीकरण को अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है।

भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण

विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है–(१) आकृति मूलक या रूपात्मक वर्गीकरण तथा (२) पारिवारिक या वंशानुक्रमिक वर्गीकरण। पहले प्रकार के वर्गीकरण में ऐतिहासिक तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया जाता अपितु केवल भाषा की आकृति, रचना या रूप पर ध्यान दिया जाता है। भाषा के पद,

शब्द या वाक्य का निर्माण किस प्रकार होता है इसका विचार किया जाता है। सम्बन्धतत्त्व की समानता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। पारिवारिक या वंशानुक्रमिक वर्गीकरण में सम्बन्धतत्त्व की समानता तथा अर्थतत्त्व की समानता पर ध्यान दिया जाता है अर्थात् भाषा की रचना और समानता व्युत्पत्ति, ध्वनि-समूह, शब्द भण्डार तथा ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। इस प्रकार तुलना तथा ऐतिहासिक क्रम की सहायता से भाषा की उत्पत्ति एवं मूल की कल्पना कर ली जाती है पारिवारिक वर्गीकरण में भाषाओं को कुलों, उपकुलों शाखाओं, उपशाखाओं में विभाजित कर लिया जाता है। भाषाविज्ञानी मानता है कि भिन्न भिन्न परिवारों की भाषाओं की उत्पत्ति किसी एक मूल भाषा से हुई है। एक मूलभाषा बहुत समय बाद परिवर्तित होकर दूसरा रूप ग्रहण कर लेती है जिस प्रकार वेद कालीन भाषा जिसे छन्दस् कहा गया है परिवर्तित होती हुई संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि भाषाओं से होती हुई वर्तमानकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं-हिन्दी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, मराठी आदि में स्थित दिखाई पड़ती है। भाषा का रूप निरन्तर बदलता रहता है। एक ही भाषा भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित की जाती है। अतः भाषा की उत्पत्ति का अभिप्राय है एक भाषा का क्रमिक विकास होकर दूसरे रूप (दूसरी भाषा) में परिवर्तित हो जाना। पारिवारिक वर्गीकरण के लिए यह आवश्यक है कि भाषाओं का गहराई से अध्ययन किया जाय, केवल बाह्य रूप में साम्य देखकर किन्हीं भाषाओं को एक परिवार की भाषा नहीं कहा जा सकता है।

पारिवारिक वर्गीकरण का आधार—विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण भाषाओं की आकृति अथवा रचना की समानता को देखकर किया जाता है या उत्पत्ति सम्बन्धी निकटता को देखकर किया जाता है। भाषाओं की भौगोलिक समीपता से एक भाषा का दूसरी भाषा से भी सम्बन्ध प्रायः होता है। उत्तरी भारतीय आर्य भाषाएँ हिन्दी, बंगाली, पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में भौगोलिक समीपता के कारण परस्पर सम्बन्ध पाया जाता है। ये सभी भाषाएँ एक ही परिवार की मानी जाती हैं। परन्तु इसके विपरीत कभी-कभी भौगोलिक सामीप्य होने पर भी भाषाओं में वैभिन्न्य पाया जाता है तथा उनमें एक परिवार की सम्भावना नहीं होती है। मराठी, हिन्दी से लगे क्षेत्र में द्रविड़ परिवार की कन्नड़ तेलगू आदि भाषाएँ पायी जाती हैं। इनमें भौगोलिक समीपता होते हुए भी अन्तर है। पारिवारिक सम्बन्ध का ज्ञान इन बातों से होता है–(१) शब्दों की समानता, (२) व्याकरण की समानता, (३) ध्वनियों की समानता। ये ही पारिवारिक वर्गीकरण के आधार हैं :

(१) **शब्दों की समानता**—प्रत्येक भाषा में कई प्रकार के शब्द समूह पाये जाते हैं। कुछ शब्द समूह किसी भाषा के अपने होते हैं जिन्हें मूल शब्द कहा जाता

है । इसके अतिरिक्त किसी भाषा में अन्य जातियों के सम्पर्क से नये-नये शब्द आ जाते हैं । कुछ शब्द ज्यों के त्यों अर्थात् मूल रूप में दूसरी भाषा में प्रवेश कर जाते हैं तो कुछ शब्द अपना रूप परिवर्तन करके दूसरी भाषा में स्थान पा जाते हैं; तद्भव शब्द के रूप में मूल शब्द भाषा में रहते हैं । किसी भाषा के शब्द समूह का विभाजन निम्न प्रकार किया जा सकता है–

(अ) **सार्वजनिक प्रयोग के शब्द**–इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किसी भाषा को बोलने वाले सभी व्यक्ति करते हैं । ये शब्द इस प्रकार हो सकते हैं; जैसे–माता-पिता आदि सम्बन्धियों के वाचक शब्द, सर्वनाम (मैं, तुम, वह), संख्यावाचक विशेषण (एक, दो आदि), शरीर के अंगों के नाम (हाथ, पैर, मुंह, आंख, नाक, कान आदि), दैनन्दिन सामान्य जीवन में प्रयुक्त शब्द, (खाना, पीना, सोना उठना आदि), घर के प्रयोग के शब्द जो गृहस्थी से सम्बन्धित हाते हैं जैसे चूल्हा, आग, लकड़ी आदि ।

(ब) पढ़े-लिखे व्यक्तियों के प्रयोग में आने वाली चीजों के नाम जैसे–रेडियो, टेलीविजन, फोन, कुर्सी, मेज, कापी, कलम, दवात, पलंग, स्नानगृह, भवन आदि ।

(स) सभी व्यक्तियों द्वारा परिचित वस्तुओं के नाम जिनका कुछ व्यक्ति उपभोग करते है तथा कुछ नहीं; जैसे शरीर पर धारण किए जाने वाले वस्त्र–धोती, साड़ी, बनियान, कुर्ता, कमीज, कोट, स्वेटर, मोजे, मफलर आदि । लेटते समय प्रयोग किए जाने वाले वस्त्र–दरी, रजाई, गद्दा, तकिया, चादर, कम्बल आदि । भोजन के समय प्रयुक्त बर्तन–जैसे–थाली, कटोरी, लोटा, गिलास, कढ़ाई, तवा, चकला, वेलन चिमटा आदि ।

(द) विशेष कलाओं तथा विद्याओं के नाम-संगीत, चित्रकला, विज्ञान, गणित आदि ।

शब्दों का यह वर्गीकरण सामान्य रूप से किया गया है । पहला (अ) वर्ग पर विदेशी अथवा दूसरी भाषा का प्रभाव नहीं पड़ता अथवा अत्यल्प पड़ता है । तृतीय (स) वर्ग भी अन्य भाषा से कम प्रभावित होता है । द्वितीय वर्ग (ब) दूसरी भाषा के शब्दों से अधिक प्रभावित होता है क्योंकि शिक्षित वर्ग नयी भाषा के शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं । अन्तिम (द) वर्ग पर भी दूसरी भाषाओं का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है । सर्वनाम तथा क्रियाओं के मूल रूप पर बहुत कम प्रभाव दूसरी भाषा का पड़ता है । संबन्धवाचक शब्द एवं संख्यावाचक विशेषण शब्द भी अन्य भाषा से बहुत कम प्रभावित होते हैं, अतः भाषा के मूल रूप को इन शब्दों में देखा जा सकता है । भारोपीय भाषा परिवार की भिन्न भाषाओं में शब्दों की समानता निम्न रूप में देखी जा सकती है–

संस्कृत	अवेस्ती	फारसी	ग्रीक	लैटिन	इटैलियन	स्पेनिश
पितृ	पितर	पिदर	Pater	Pater	Padre	Padro
मातृ (मातर)	मातर	मादर	Meter	mater	madre	madre
भ्रातृ	–	बिरादर	Frater	Frater	–	–

फ्रेन्च	डेनिश	स्वीडिश	जर्मन	पुरानी अंग्रेजी	आधु० अंग्रेजी
Pere	fader	fader	vater	faeder	father
mere	moder	moder	mutter	modor	mother
–	–	–	Braider	–	Brother

इसी प्रकार इन्हीं भाषाओं के संख्यावाची विशेषणों में भी बहुत समानता दृष्टिगोचर होती है जो परस्पर किसी न किसी सम्बन्ध की सूचक हैं–

संस्कृत	फारसी	ग्रीक	लैटिन	फ्रेन्च	स्पेनिश	गॉथिक
सप्त	हफ्त	Hhepta	Septum	Sept	Siete	Sibun

जर्मन	आ० अंग्रेजी	हिन्दी	पंजाबी
Sieben	Seven	सात	सत्त

संस्कृत	फारसी	ग्रीक	लैटिन	जर्मन	अंग्रेजी	स्पेनिश	फ्रेन्च	पंजाबी
त्रि	सिह	Tries	Tres	Drei	Three	Troi	Tri	तिन्न

कभी-कभी दो भाषाओं में इस प्रकार के शब्द मिल जाते है जिनमें परस्पर समानता होती है कि एक दूसरे से मूल रूप से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस प्रकार का उदाहरण संस्कृत के 'काम' शब्द से देखा जा सकता है। हिन्दी में भी काम शब्द है। दोनों ही बाह्य रूप से परस्पर समान हैं किन्तु मूल रूप देखने पर ज्ञात होता है कि संस्कृत 'काम' शब्द का अर्थ कामना या इच्छा है जबकि हिन्दी का 'काम' शब्द संस्कृत 'कर्मन्' से बिगड़कर बना है। ध्वनि नियमों के आधार पर ही शब्दों की समानता का निश्चय किया जाता है। वर्ण विकार सम्बन्धी नियमों के घटित होने पर शब्दों की सम्बद्धता ज्ञात की जाती है। वर्ण विकारों के कारण परस्पर सम्बन्धित शब्दों का रूप बदल जाता है तथा उनका पहिचानना कठिन प्रतीत होता है। जैसे–

संस्कृत	ग्रीक	लैटिन	पुरानी अंग्रेजी	आधु० अंग्रेजी	जर्मन	फ्रेन्च
गौः	Bous	Bos	Cu	Cow	Kuh	Vache
पञ्च	Pente	Quinque	–	Five	Funf	–
श्वा	Kuon	Canis	–	Hund	Hund	–

संस्कृत की 'प्' अंग्रेजी आदि भाषाओं में 'फ्' ध्वनि हो जाती है। इसी प्रकार संस्कृत की कई ध्वनियां अवेस्ती में बदल जाती हैं। 'स्' ध्वनि 'ह्' में बदल जाती हैं; जैसे–

संस्कृत	जिप्सी भाषा	संस्कृत	अवेस्ती
घृत	खिल्	सप्त	हफ्त
भ्रातृ	फ्रल	सिन्धु	हिन्दु
			फारसी

कभी-कभी एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा से बाह्य रूप से मिलते हैं किन्तु बस्तुतः उनमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता है जैसे—

हिन्दी	अंग्रेजी
काम (कार्य)	काम (Calm) = (शान्त)
मेल (मिलाप)	मेल (Mail) = (डाक)
माल (वस्तु)	माल (Mall) = (छायादार मार्ग)

समानता के लिए आवश्यक है कि शब्द ध्वनि सम्बन्धी समानता रखे साथ ही उसके अर्थ में भी समानता होनी चाहिए। संस्कृत का अश्व फारसी में अस्व तथा लैटिन में एकुउस् कहलाता है। इन शब्दों में समानता पाई जाती है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा का 'नीड' शब्द, लैटिन में 'निदुस' (Nidus) तथा अंग्रेजी में Nest 'नेस्ट' कहलाता है। ये शब्द भी परस्पर सम्बन्धित हैं। इसी तरह अन्य उदाहरण देखे जा सकते हैं जैसे संस्कृत 'धूमः' और ग्रीक् शब्द 'थूमॉस' तथा संस्कृत 'आत्मा' एवं ग्रीक् शब्द 'आत्मास्' शब्द ध्वनि में समानता रखते हैं किन्तु शब्द का अर्थ विपर्यय हो गया। आत्मा के लिए ग्रीक् में 'थूमास्' तथा धुआँ के लिए आत्मॉस' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अर्थ विपर्यय के अन्य उदाहरण प्राचीन संस्कृत (ऋग्वेद में) तथा प्राचीन फारसी (अवेस्ता की भाषा) में देखे जा सकते हैं जहां संस्कृत भाषा का असुर (राक्षस) तथा देव (देवता) शब्द क्रमशः अहुर तथा दैव कहलाते हैं किन्तु अर्थ भिन्न है अहुर का अर्थ देवता तथा दैव का अर्थ राक्षस लिया गया है। इस अर्थ विपर्यय का कारण भारतीय तथा इरानी आर्यों का संघर्ष है। कभी-कभी ध्वनि सम्बन्धी समानता तथा अर्थ सम्बन्धी एकता परस्पर दूर स्थित भाषाओं में मिल जाती है, जैसे बिल्ली अर्थ का बोधक शब्द 'म्याँऊ' हिन्दी भाषा के अतिरिक्त चीनी भाषा तथा मिस्री भाषा में पाया जाता है। लेकिन इन भाषाओं में पारिवारिक सम्बन्ध नहीं हैं। लैटिन भाषा का डॉमिना (Domina) शब्द इटली की भाषा में डॉना (Donna) तथा जापानी में 'ऑना' (Onna) के रूप में पाया जाता है तथा इटैलियन और जापानी दोनों में इसका अर्थ स्त्री होता है। इन दोनों भाषाओं का भी दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

विभिन्न भाषाओं में कुछ शब्द इस तरह के पाये जाते हैं जो अन्य किसी भाषा से ग्रहण किए गए हैं तथा फिर भाषा में घुलमिल गए। उत्तरी चीनी भाषा (पेकिंग के पास की बोली) के शब्द 'चा' (Cha) जिसका अर्थ चाय होता है अन्य भाषाओं

में भी इसी अर्थ में पाया जाता है जैसे तुर्की में Chay (चाय), पुर्तगाली में चा (Cha), फारसी में 'चा' (Cha), रूसी में चाय् (Chai), हिन्दी में भी 'चाय' कहते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी शब्द Tea 'टी', जर्मन 'टी' (Tee), डच शब्द 'टी' (Thee), फ्रेन्च शब्द 'टे' (The), इटैलियन शब्द 'टे' (Te), स्पेनिश शब्द ते (Te), मलय भाषा में ते या तेह (Te or teh) शब्द चाय के अर्थ में दक्षिणी चीनी बोली 'अमोय' (Amoy) के 'टे' (Te) शब्द से बने हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओं में तम्बाकू अर्थ में प्रचलित शब्द पश्चिमी द्वीप समूह की भाषा से लिये गये हैं इसी से इन शब्दों में समानता पाई जाती है। हिन्दी 'तम्बाकू', बंगला 'तामाक', जर्मन 'टाबाक' (Tabak), अंग्रेजी 'टुबैको' (Tobacco), फ्रेन्च 'ताबा' (Tabac) इसी प्रकार के शब्द हैं। भिन्न-भिन्न भाषाओं में थोडे से समान शब्दों को देखकर कोई निश्चित मत की स्थापना करना उचित नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के शब्दों को छोड़ कर भाषाओं की तुलना करनी चाहिए। कभी-कभी विजेता लोगों की भाषा के शब्द विजित लोगों की भाषा में घुल मिल जाते हैं। अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी, फ्रेन्च, पुर्तगाली शब्द हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में धुलमिल गए हैं। इस प्रकार के शब्द परस्पर सम्पर्क के कारण एक भाषा से दूसी भाषा में पहुँचते हैं। दो भाषाओं की समानता निश्चित करते समय इस प्रकार के शब्द विशेष महत्त्व नहीं रखते। इन शब्दों की समानता के कारण एक भाषा को दूसरी भाषा के साथ एक ही परिवार में नहीं रख सकते।

(२) **व्याकरण की समानता**-समान भाषाओं अर्थात् एक परिवार की भाषाओं के व्याकरण तथा रचना तत्त्व में पारस्परिक सम्बन्ध होने से समानता पाई जाती है। अतः शब्दों के बाह्य रूप की समानता के पश्चात् व्याकरण की समानता पर ध्यान देना चाहिए। व्याकरण की समानता महत्त्वपूर्ण होती है तथा दीर्घकाल तक अन्य किसी भाषा के प्रभाव के कारण परिवर्तित नहीं होती। व्याकरण की समानता के लिए इन बातों पर विचार करना उपयुक्त होगा है, जैसे—

(१) धातुओं से शब्द निर्माण की समानता।

(२) मूल शब्द के पहले, मध्य में तथा अन्त में प्रत्यय जोड़कर अन्य शब्द निर्माण की समानता।

(३) वाक्य-रचना पद्धति की समानता।

यदि शब्द के रूप में समानता हो तथा व्याकरण सम्बन्धी समानता भी हो तो भाषायें एक परिवार की सदस्य हो सकती हैं।

(३) **ध्वनियों की समानता**—एक भाषा का शब्द जब दूसरी भाषा में प्रवेश पा लेता है तो शब्द की ध्वनि उसका उच्चारण ग्रहण करने वाली भाषा की ध्वनियों के अनुरूप होती है। अनेक फारसी ध्वनियाँ हिन्दी में प्रवेश पाकर हिन्दी के अनुरूप हो गयीं। कागज को हिन्दी में कागज, गरीब को गरीब ही कहा जाता है। अंग्रेजी

लैंटर्न को लालटैन, रिपोर्ट को रपट, पार्क को पारक, बॉक्स को बक्स, कार्ड को कारड कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुसार ये शब्द बन गये हैं। भारत से कई सौ वर्ष पहले प्रवास करने वाले जिप्सियों की भाषा में ध्वनियाँ भारतीय प्रकार से उच्चारण की जाती हैं। यद्यपि ये लोग यूरोप के भिन्न-भिन्न भाषाभाषी क्षेत्रों में विखरे हैं। भाषाओं के बीच ध्वनि-समानता यदि ध्वनि-नियमों के आधार पर उचित रूप से घटित होती हो तो भाषाओं के मध्य एक परिवार जैसा सम्बन्ध हो सकता है। 'सामान्य भाषाविज्ञान' में इस सम्बन्ध में डा० बाबूराम सक्सेना ने लिखा है कि "पारिवारिक सम्बन्ध के लिये प्राय: स्थानिक समीपता से विचार उठता है, शब्दों की समानता से विचार को पुष्टि मिलती है, व्याकरण–साम्य से विचार वादरूप हो जाता है और यदि ध्वनि–साम्य भी निश्चित हो जाए तो संबन्ध पूरी तरह निश्चय कोटि को पहुँच जाता है। यदि व्याकरण–साम्य न मिलता हो तो विचार कोटि से ऊपर नहीं उठ पाता।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण के लिए शब्द समूह की समानता, व्याकरण की समानता तथा ध्वनि संबन्धी समानता पर विचार किया जाना चाहिए तथा इन तीनों की समानता प्राप्त होने पर भाषाओं को एक परिवार का सदस्य समझना चाहिए।

पारिवारिक वर्गीकरण की उपादेयता–भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण अधिक वैज्ञानिक तथा उपयोगी है। इसका निश्चय करने के लिए कि भाषाएँ एक ही परिवार की हैं 'संबन्ध तत्त्व' एवं 'अर्थ तत्त्व' की समानता पर विचार किया जाता है। जब शब्दों में रूपात्मक समानता, व्याकरण संबन्धी समानता (वाक्य रचना आदि) तथा ध्वनि संबन्धी समानता का निश्चय हो जाता है तभी किसी भाषा को एक परिवार का सदस्य बताया जाता है। जबकि रूपात्मक वर्गीकरण में केवल संबन्ध-तत्त्व की समानता देखकर कोई मत निश्चित किया जाता है। पारिवारिक वर्गीकरण के द्वारा अब तक की असम्बद्ध तथा दूर दूर स्थित भाषाओं में संबन्ध निश्चित किया गया है। यूरोपीय तथा उ० भारत की भाषाएँ एक परिवार की सदस्य मानी गईं जो किसी एक मूल भाषा से उत्पन्न हुई हैं। भाषाविज्ञान के अध्ययन से ज्ञात हुआ की द्रविड़ भाषाओं तथा बलूचिस्तान की ब्राहुई भाषा में पारिवारिक सम्बन्ध है। पारिवारिक वर्गीकरण के द्वारा एक परिवार की कई भाषाओं में सुरक्षित मूल भाषा की विशेषताओं का पता चल जाता है। इस वर्गीकरण के द्वारा अनेक मानव जातियों की उत्पत्ति संबन्धी एकता का पता चलता है क्योंकि एक जाति के लोगों की भाषा में एक रूपता पाई जाती है जो बहुत समय बाद परिवर्तित हो सकती है। पारिवारिक वर्गीकरण के द्वारा ज्ञात एवं अज्ञात, जीवित अथवा मृत भाषाओं के विकास का ऐतिहासिक क्रम ज्ञात होता है। अनेक लुप्त भाषाओं के विषय में ज्ञान

होता है जिसे अब तक नहीं जाना गया था। वर्तमान काल में यूरोपीय भाषाविदों द्वारा अथक प्रयत्नों द्वारा यह प्रमाणित किया गया कि प्राचीन भारतीय भाषा संस्कृत तथा लैटिन, ग्रीक, हिब्रू आदि प्राचीन यूरोपीय भाषाओं में पारस्परिक सम्बन्ध है तथा ये भाषायें किसी एक मूल भाषा से उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार रूपात्मक वर्गीकरण की अपेक्षा पारिवारिक वर्गीकरण अधिक वैज्ञानिक है। इसमें दो भाषाओं की तुलना अधिक गहराई से की जाती है। भाषाओं से संबन्धित अनेक पहेलियाँ सुलझाई गई हैं। अनेक अज्ञात तथ्यों का उद्‌घाटन हुआ है। साथ ही प्राचीन दुर्लभ साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार का साहित्य पूर्वजों की उन्नति की ओर संकेत करता है, जो अपने समय में उन लोगों ने जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में की थी।

पारिवारिक वर्गीकरण—संसार में अभी अनेक भाषाएँ हैं जिनका सम्यक् रूप से अध्ययन नहीं हो पाया है। अतः भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण के लिए आवश्यक है कि संसार की सभी भाषाओं का पूर्ण अध्ययन किया जाय क्योंकि तभी संसार की भाषाओं को उचित रूप से परिवारों में विभाजित किया जा सकेगा। अब तक जिन भाषाओं का अध्ययन किया गया है उनके आधार पर भाषावैज्ञानिकों ने संसार की भाषाओं को भौगोलिक आधार से चार प्रमुख भागों में बाँटा है—(१) अफ्रीका खण्ड, (२) यूरेशिया खण्ड, (३) प्रशान्त महासागरीय खण्ड तथा (४) अमरीका खण्ड। विद्वानों ने इन प्रधान खण्डों को पुनः कई भाषा परिवारों में विभाजित किया है। भाषा परिवारों की संख्या निश्चित नहीं है। भिन्न-भिन्न विद्वानों के अनुसार भाषा परिवार कम या अधिक हैं। साधारणतः प्रमुख भाषा परिवार निम्न प्रकार माने गए हैं—

(१) भारोपीय परिवार
(२) सेमेटिक परिवार
(३) हैमेटिक परिवार
(४) यूराल-अल्टाई भाषापरिवार
(५) चीनी-तिब्बती भाषापरिवार
(६) द्राविड़ भाषापरिवार
(७) काकेशी भाषापरिवार
(८) प्रशान्त महासागरीय भाषापरिवार
(९) अफ्रीकी निग्रो भाषापरिवार
(१०) रेड इंडियन भाषापरिवार
(११) एस्कीमो भाषापरिवार
(१२) अवर्गीकृत भाषाएँ

वस्तुतः भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण भिन्न-भिन्न विद्वानों के अपनी-अपनी तरह प्रस्तुत किया है। यहाँ भाषा-परिवारों का वर्गीकरण भौगोलिक खण्डों के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है-

भाषा-खण्ड-संसार को चार प्रमुख भाषाखण्डों में विभाजित किया गया है-

(१) **अफ्रीका खण्ड**-इस भाषा खण्ड में मुख्यतः पाँच भाषा-परिवार सम्मिलित हैं-

(अ) बुशमैन, (आ) बान्टू, (इ) सूडान, (ई) हैमेटिक, (उ) सेमेटिक।

(२) **यूरेशिया खण्ड**-इस भाषा खण्ड के अन्तर्गत निम्न भाषा परिवार सम्मिलित हैं-

(अ) सेमेटिक, (आ)काकेशस, (इ) यूराल-अल्टाई, (ई)चीनी-एकाक्षर, (उ) द्रविड़, (ऊ) आस्ट्रेलियाई या आग्नेय, (ए)भारोपीय, (ऐ) अनिश्चित भाषापरिवार।

(३) **प्रशान्त महासागरीय खण्ड**-इस खण्ड की भाषाएँ प्रशान्त महासागर तथा हिन्द महासागर के द्वीपों में बोली जाती हैं। इस भाषा खण्ड को पालीनेशियाई भाषा परिवार भी कहते हैं। इसमें मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, न्यूगिनी, फिलीपाइन्स, फारमोसा एवं न्यूज़ीलैण्ड में बोले जानी वाली भाषाएँ सम्मिलित हैं-

(१) मलायन परिवार, (२) मलेनेशियाई परिवार, (३) पालीनेशियाई, (४) पपुअन परिवार, (५) आस्ट्रेलियाई परिवार।

(४) **अमरीका खण्ड**-उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका की भाषाएँ इस वर्ग में सम्मिलित हैं। इस खण्ड में लगभग ४०० भाषाएँ हैं जो ३० वर्गों में बांटी गई हैं।

उत्तरी अमेरिका में (१) अलगोन्किन तथा (२) अथवस्कन, मैक्सिको तथा मध्य अमेरिका में (३) अज्टेक (Aztec) तथा (४) मय (Maya), द० अमेरिका में (५) अरवक (Arawak), (६) कुइचुआ (Quichua) प्रमुख भाषा वर्ग है।

(१) अफ्रीका खण्ड

(अ) **बुशमैन भाषा परिवार**-बुशमैन लोगों की भाषा अफ्रीका खण्ड की प्राचीनतम भाषा है। ये लोग दक्षिण अफ्रीका में आरेंज नदी से नगामी झील तक मुख्यतः केन्द्रित हैं। ये लोग अपने आपको खोइम (Khoim) अर्थात् मनुष्य कहते हैं। इनकी भाषा में लिंग विधान सजीव और निर्जीव वस्तुओं के आधार पर निश्चित किया जाता है। पुरुष लिंग या स्त्रीलिंग के आधार पर नहीं। इस परिवार में बुशमैन लोगों के अलग-अलग वर्गों में रहने के कारण कई बोलियाँ विकसित हो गयीं हैं। ये भाषाएँ संयोगात्मक से अयोगात्मक हो रही हैं। बुशमैन भाषाओं में नामा, खीरा आदि होटटोट भाषाएँ भी सम्मिलित हैं। ये भाषाएँ सूडान भाषा परिवार तथा बाण्टू भाषा परिवार से अनेक समानताएँ रखती हैं। इस भाषा परिवार में बहुवचन

बनाने के लिए कोई विशेष नियम नहीं हैं। कभी-कभी संज्ञा शब्द का दो बार उच्चारण करके बहुवचन बना लिया जाता है। इस परिवार की भाषाओं की साधारण विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

(क) ये भषाएँ पर-प्रत्यय-संयोगी हैं किन्तु अयोगात्मक की ओर झुकने की प्रवृत्ति है।

(ख) इस परिवार की ध्वनियाँ विचित्र प्रकार की हैं जो 'क्लिक' या 'अन्तः स्फोटात्मक' कहलाती हैं।

(ग) इस परिवार की भाषाओं में लिङ्ग निर्धारण सजीव तथा निर्जीव पदार्थों के आधार पर निश्चित किया जाता है, पुरुषत्व या स्त्रीत्व पर नहीं।

(घ) बहुवचन बनाने के अनेक नियम हैं। कभी कभी संज्ञा (एक वचन) को पुनरुक्ति करके बहुवचन बना लिया जाता है।

(ङ) होटन्टॉट इस वर्ग की प्रमुख भाषा है।

(आ) **बान्टू भाषा परिवार**–ये भाषाएँ अफ्रीका महाद्वीप में भूमध्य रेखा के दक्षिण में फैली हैं अर्थात् मध्य तथा दक्षिणी अफ्रीका में पूर्व से पश्चिम क्षेत्र में बोली जाती हैं। इस परिवार की भाषाएँ अधिकाँशतः पुरः प्रत्ययसंयोगी हैं। इस परिवार में लगभग १५० भाषाएँ हैं जो क्षेत्रों की दृष्टि से पूर्वी क्षेत्र, मध्यवर्ती क्षेत्र एवं पश्चिमी क्षेत्र की भाषाओं के रूप में वर्गीकृत की जा सकती हैं। इस परिवार की सबसे प्रमुख भाषा पूर्वी क्षेत्र में व्यहृत 'स्वाहिली' भाषा है इसका मुख्य क्षेत्र जंजीवार है। इस भाषा में बच्चों को शिक्षा दी जाती है तथा इसका साहित्य भी पाया जाता है। इस परिवार की अन्य प्रमुख भाषाएँ कांगो की भाषा, काफिर (Kafir या Xosa) एवं जूलू (Zullu) भाषाएँ हैं। इस भाषा परिवार के कुछ साहित्य का रोमन लिपि में प्रकाशन भी हुआ है। इन भाषाओं में व्याकरण संबन्धी लिंग भेद नहीं पाया जाता है। कारक चिह्नों का प्रयोग नहीं किया जाता है। शब्दों के निर्माण में उपसर्गों का प्रयोग किया जाता है। भाषा में संगीतात्मक, माधुर्य, कोमलता पायी जाती है। शब्द स्वरान्त होते हैं। संयुक्त व्यञ्जनों का बहुत कम प्रयोग किया जाता है। स्वरों के अन्तर के साथ अर्थ में भी अन्तर आ जाता है। इस भाषा परिवार की साधारतः निम्न विशेषताएँ हैं–

(१) इस परिवार की भषाएँ पुरः प्रत्यय संयोगी हैं।

(२) इन भाषाओं में लिंग भेद नहीं पाया जाता है।

(३) स्वरों के अन्तर से अर्थान्तर भी हो जाता है जैसे-'हो फिनेल्ला' का अर्थ 'बांधना' होता है पर 'हो फिनोल्ला' का अर्थ ठीक बिपरीत 'खोलना' हो जाता है।

(४) माधुर्य एवं कोमलता का आधिक्य है।

(५) सभी शब्द स्वरान्त होते हैं। संयुक्त व्यञ्जनों का अभाव है।

(६) इन भाषाओं में विभक्तियों का प्रयोग नहीं के बराबर होता है।
(७) पदों का निर्माण उपसर्ग लगाकर किया जाता है।
(८) वाक्यविन्यास में कविता की तरह ध्वनि सामंजस्य होता है।
(९) 'स्वाहिली' भाषा को छोड़कर अधिकांश भाषाओं में साहित्य का अभाव है।
(१०) कुछ भाषाओं में (दक्षिण पूर्वी क्षेत्र की) क्लिक ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है।

(इ) **सूडान भाषा परिवार**–इस परिवार की भाषाएँ अफ्रीका महाद्वीप में भूमध्य रेखा के उत्तरी क्षेत्र में पूर्व से पश्चिम तक फैली हैं। पहले इसको एक भाषा परिवार माना जाता था किन्तु पाटर डब्लू शिमट (Pater W. Schmidt) नामक विद्वान् के अनुसार इसमें सात भाषा परिवार सम्मिलित हैं। सूडानी भाषा परिवार की सबसे प्रमुख भाषा हाउसा (Hausa) है जो नाइजीरिया की भाषा है तथा जिसका प्रयोग मध्य अफ्रीका के अधिकांश क्षेत्रों में होता है। यह व्यापारिक सम्पर्क की प्रमुख भाषा है। इस परिवार की भाषाएँ चीनी भाषा की तरह एकाक्षरी धातु वाली एवं अयोगात्मक हैं। सुर (Tone) परिवर्तन भी हो जाता है। शब्दों में विभक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाता है । ये भाषाएँ ध्वन्यात्मक होती हैं। इस भाषा परिवार के उत्तर में हैमेटिक भाषा परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं तथा दक्षिण की ओर बान्टू भाषा परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। बान्टू भाषाओं से इन भाषाओं की कुछ विशेषताएँ मिलती हैं। इस परिवार की कुछ भाषाओं की अपनी-अपनी लिपियाँ हैं जिनकी संख्या लगभग छः है। इस परिवार में चार सौ से अधिक भाषाएँ सम्मिलित की जाती हैं। इनमें प्रमुख भाषाएँ 'ईव', 'मोम', 'नूबी', 'हाउसा' तथा 'प्यूल' हैं। इस भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

(१) ये भाषाएँ एकाक्षरी तथा अयोगात्मक हैं।
(२) इन भाषाओं में विभक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाता है।
(३) प्रत्ययों का अभाव होने से सुरभेद (Tone) के साथ ही अर्थ में भी अन्तर आ जाता है।
(४) लिंग बनाने के निश्चित नियम नहीं हैं।
(५) बहुवचन बनाने के निश्चित नियम नहीं हैं।
(६) वाक्य छोटे-छोटे होते हैं।
(७) इन भाषाओं में व्याकरण नहीं पाया जाता है।
(८) ये भाषाएँ ध्वन्यात्मक होती हैं। शब्द की ध्वनि से रूप, गति, अवस्था तथा रंग तक का बोध हो जाता है।
(९) इस परिवार की 'नूबी' भाषा के 'काप्टी लिपि' के प्राचीन लेख पाये गये हैं।
(१०) इस परिवार की भाषाएँ सरस होती हैं।
(११) इस भाषा परिवार को ४ वर्गों में बांटा गया है–

(अ) सेनेगल भाषाएँ–जिनमें 'वोलोफ' भाषा प्रमुख है।

(ब) ईव भाषाएँ–ईव, अशानी, यरुबा आदि।

(स) मध्यवर्ती भाषाएँ–हाउसा, सोंधराई आदि।

(द) नील नदी के उत्तरी भाग की भाषाएँ–बारी, डेंका आदि।

(ई) **हैमेटिक भाषा परिवार (हामी भाषा परिवार**--इस परिवार की भाषायें सम्पूर्ण उत्तरी अफ्रीका में प्रचलित हैं। इन भाषाओं के बोलने वाले मध्य तथा दक्षिण अफ्रीका तक पाये जाते हैं।

'इंजील' की कथा के अनुसार 'नौह' के दूसरे पुत्र 'हैम' उत्तरी अफ्रीका के अधिकांश भागों में–मिश्र, फोनेशिया, इथोपिया आदि देशों में 'आदिपुरुष' के रूप में माने जाते हैं। इन्हीं के नाम से इस परिवार की भाषाओं का नाम 'हैमेटिक भाषा परिवार' पड़ा है। इस परिवार की भाषाओं में प्राचीन शिलालेख एवं धार्मिक साहित्य पाया जाता है। इस कुल की अनेक भाषाएँ अब नष्ट हो गयी हैं या सैमेटिक भाषा परिवार की भाषाओं के प्रभाव में आ गयी हैं। सूडानी भाषा परिवार की 'हाउसा' भाषा को कुछ विद्वान् इसी परिवार की भाषा मानते हैं। इस परिवार की भाषाएँ श्लिष्ट योगात्मक हैं। शब्द निर्माण में प्रत्यय एवं उपसर्ग दोनों जोड़े जाते हैं। बड़ी-बड़ी वस्तुओं को पुँल्लिग एवं निर्बल वस्तुओं को स्त्रीलिंग समझा जाता है। लिंग भेद के निश्चित नियम नहीं हैं। स्वर-परिवर्तन के साथ अर्थ परिवर्तन भी हो जाता है। जैसे 'गल' का अर्थ अन्दर प्रवेश करना, जबकि गेलि का अर्थ भीतर रखना। किसी शब्द पर बलदेने के लिए उसका दो बार उच्चारण करते हैं। इस परिवार की भाषाएँ कई वर्गों में बाँटी गई हैं जैसे---

(क) मिश्र शाखा--इसके अन्तर्गत पुरानी मिश्री तथा काप्टिक आदि भाषाएँ सम्मिलित हैं।

(ख) एथिओपिक शाखा–इसके अन्तर्गत खामीर, सोमाली, गल्ला, साह, वेदीय, बेजा आदि सम्मिलित हैं।

(ग) लीबियन शाखा–इसके अन्तर्गत शिल्हा, नुमिदियन, तामाशेक आदि भाषायें मानी गई हैं।

(घ) मिश्रित शाखा--इसमें भसाइ, नामा आदि भाषाएँ सम्मिलित हैं।

इस भाषा परिवार की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

(१) इस भाषा परिवार की भाषाएँ श्लिष्ट-योगात्मक हैं।

(२) इस परिवार की भाषाएँ अन्य भाषा परिवारों (जैसे सैमेटिक परिवार की भाषाओं) से प्रभावित हैं।

(३) इस परिवार की भाषाओं में प्राचीन लेख तथा धार्मिक साहित्य पाया जाता है।

(४) पद रचना के लिए संज्ञा के साथ प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

(५) पद रचना के लिए क्रिया के साथ प्रत्यय एवं उपसर्ग दोनों जोड़े जाते हैं।

(६) बल देने के लिए पुनरुक्ति का प्रयोग किया जाता है।

(७) इस परिवार की भाषाओं में स्वर परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन हो जाता है।

(८) बहुवचन बनाने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं हैं।

(९) लिंग भेद निश्चित नहीं है। सबल एवं बड़ी वस्तुएँ पुँल्लिग तथा निर्बल वस्तुएँ स्त्रीलिंग मानी जाती हैं।

(१०) संज्ञा वचन में परिवर्तन होने पर लिंग में भी परिवर्तन हो जाता है। एक वचन पुँल्लिग संज्ञा को जब बहुवचन बनाया जायगा तो वह स्त्रीलिंग हो जायगा जैसे एक शेर (पुँल्लिग), कई शेर (स्त्रीलिंग)।

(११) इस परिवार की भाषाओं में क्रिया द्वारा काल का ज्ञान नहीं होता, अपितु काल का ज्ञान कराने के लिए सहायक शब्दों को प्रयुक्त किया जाता है।

(१२) ये भाषाएँ संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ रही है।

(उ) **सेमेटिक भाषा परिवार**–सेमेटिक या सामी भाषा परिवार की भाषाएँ मोरक्को से स्वेज नहर तक बोली जाती हैं। अफ्रीका में इस भाषा परिवार की प्रमुख भाषाओं में अरबी, भाषा है। मोरक्को तथा अल्जीरिया में अरबी भाषा ही राज-भाषा है। हिब्रू (यहूदी भाषा) तथा आरमेनियन भाषा भी इसी परिवार की भाषायें हैं। इस परिवार की भाषाओं का प्रमुख स्थान एशिया है। अतः इस परिवार को यूरेशिया खण्ड में भी सम्मिलित करते हैं। इस भाषा परिवार का नाम नौह' के पुत्र 'सेम' के नाम पर पड़ा है जो 'हैम' के बड़े भाई थे जिनके नाम से हैमेटिक भाषा परि-वार नाम पड़ा है। इस भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

(१) धातुएँ तीन व्यंजनों की होती हैं--जैसे क्‌त्‌ब्‌ (लिखना)।

(२) स्वर परिवर्तन के कारण अर्थ परिवर्तन हो जाता है।

(३) बहुवचन बनाने में प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

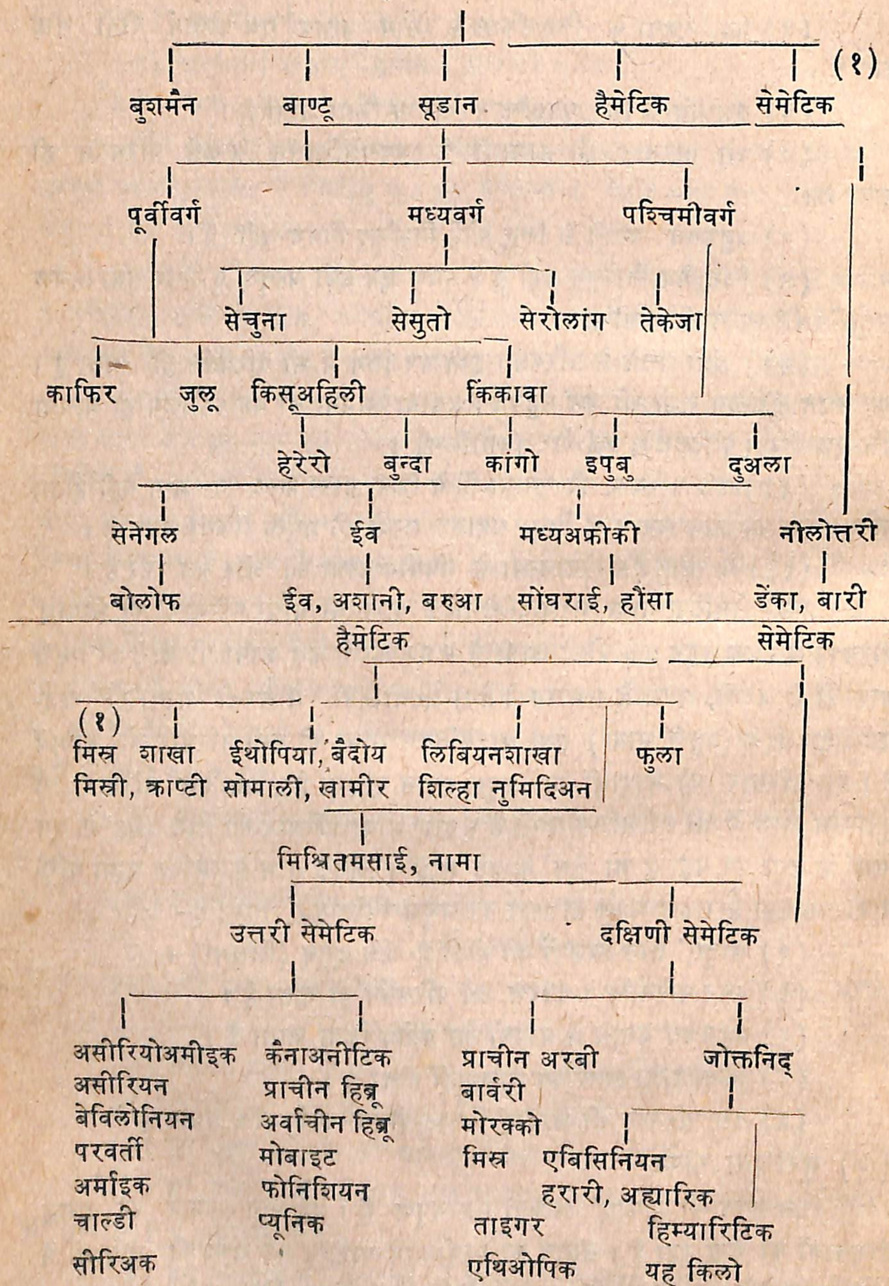
(४) क्रिया द्वारा काल का ज्ञान नहीं होता है।

(५) इस परिवार की भाषाएँ श्लिष्ट-योगात्मक विभक्ति प्रधान हैं।

(२) यूरेशिया खण्ड–

इस खण्ड की भाषाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। यह भाग संसार की प्रसिद्ध सभ्यताओं का केन्द्र रहा है। संसार का प्राचीनतम साहित्य इस खण्ड की भाषाओं में पाया जाता है। इस खण्ड की भाषाओं का सबसे अधिक विस्तार से अध्ययन एवं

अफ्रीकी भाषा-परिवार


(१)
बुशमैन
बाण्टू
सूडान
हैमेटिक
सेमेटिक
पूर्वीवर्ग
मध्यवर्ग
पश्चिमीवर्ग
सेचुना
सेसुतो
सेरोलांग
तेकेजा
काफिर
जुलू
किसूअहिली
किंकावा
हेरेरो
बुन्दा
कांगो
इपुबु
दुअला
सेनेगल
ईव
मध्यअफ्रीकी
नीलोत्तरी
बोलोफ
ईव, अशानी, बरुआ
सोंघराई, हौंसा
डेंका, बारी
हैमेटिक
सेमेटिक
(१)
मिस्र शाखा
ईथोपिया, बैदोय
लिबियनशाखा
फुला
मिस्री, क्राप्टी
सोमाली, खामीर
शिल्हा नुमिदिअन
मिश्रितमसाई, नामा
उत्तरी सेमेटिक
दक्षिणी सेमेटिक
असीरियोअमीइक
असीरियन
बेबिलोनियन
परवर्ती
अर्माइक
चाल्डी
सीरिअक
कैनाअनीटिक
प्राचीन हिब्रू
अर्वाचीन हिब्रू
मोबाइट
फोनिशियन
प्यूनिक
प्राचीन अरबी
बार्बरी
मोरक्को
मिस्र
ताइगर
एथिओपिक
जोक्तनिद्
एबिसिनियन
हरारी, अह्यारिक
हिम्यारिटिक
यह किलो

विश्लेषण किया गया है। इस परिवार की भाषाएँ प्राय: सम्पूर्ण यूरोप, द० प० एशिया, ईरान, अफगानिस्तान तथा उत्तरी भारत में फैली हैं। इसके अतिरिक्त इस खण्ड की भाषाएँ उत्तरी अमेरिका महाद्वीप (कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको आदि) द० अमेरिका के देशों तथा अफ्रीका के कुछ क्षेत्रों में बोली जाती हैं। आस्ट्रेलिया महाद्वीप (न्यूजीलैंड एवं तस्मानिया) में भी इसी खण्ड की प्रधान भाषा अंग्रेजी प्रचलित है। इस खण्ड की भाषाएँ बोलने वालों की संख्या अन्य किसी भी भाषा खण्ड से बहुत अधिक है। पहले इस खण्ड की भाषाएँ विभक्ति प्रधान एवं संयोगात्मक थीं किन्तु वर्तमान भाषाओं की प्रवृत्ति वियोगात्मक होती जा रही है। इस खण्ड में सात भाषा परिवार हैं। इन परिवारों के अतिरिक्त कुछ इस प्रकार की भाषाएँ हैं जो किसी परिवार में सम्मिलित न किए जाने के कारण अनिश्चित भाषा वर्ग मे रखीं गयीं हैं। इस भाषा खण्ड के प्रमुख भाषा परिवार इस प्रकार हैं–

(क) सेमेटिक भाषा परिवार
(ख) काकेशस भाषा परिवार
(ग) यूराल-अल्टाइक भाषा परिवार
(घ) एकाक्षर भाषा परिवार (चीनी भाषापरिवार)
(ङ) आग्नेय भाषा परिवार (आस्ट्रेलियाई भाषापरिवार)
(च) द्राविड़ भाषा परिवार
(छ) भारोपीय भाषा परिवार
(ज) विविधि भाषा परिवार (अनिश्चित भाषासमुदाय)

(क) सेमेटिक (सामी) भाषा परिवार–इस परिवार का नामकरण 'नौह' के पुत्र 'सेम' के नाम पर हुआ है। 'सेम' द० प० एशिया के 'आदिपुरुष' के रूप में माने गये हैं। सामी भाषा परिवार की पूर्वी उपशाखा 'अक्कादी' जैसी प्राचीन भाषा है। बेब्रीलौनी एवं असीरी भाषायें इसी के अन्तर्गत (अक्कादी के) मानी जाती हैं। बेबीलौनी में सरगौन प्रथम के ईसा २८०० वर्ष पूर्व के शिलालेख, पाये गए हैं। इसी प्रकार असीरी भाषा में ई० पू० ११०० तक के शिलालेख जो तिगलथ पिलेजर (TiglathPileser I) प्रथम के शासन काल में हैं, पाये गए हैं। सामी भाषा परिवार की पश्चिमी उपशाखा के अन्तर्गत उत्तरी वर्ग की कनानी (Canaanite), अरामी (Aramaic) तथा फोनेशियन (Phoenician) नाम की अत्यन्त प्राचीन भाषाएँ थीं जो आज लुप्त हो चुकी हैं। ईसामसीह की मातृभाषा 'अरामी' कही जाती है। दक्षिणी वर्ग में अरबी भाषा तथा एबीसीनिया की भाषाएँ हैं। सामी भाषा परिवार की सबसे प्रमुख भाषा अरबी है जो द० प० एशिया के देशों में तथा उत्तरी अफ्रीका में मिश्र से मोरक्को तक तथा सहारा के अधिकांश भागों में बोली जाती है। इस परिवार की विशेषताएँ निम्न हैं--

(१) लिपिज्ञान का अधिकांश श्रेय इस भाषापरिवार को है।

(२) इस परिवार की धातुएँ ३ व्यञ्जनों से मिल कर बनती हैं।

(३) सर्वनाम क्रियाओं के बाद जोड़े जाते हैं, जैसे 'दरब नो' उसने मुझे मारा या 'कतब-इ' (किताब मेरी)।

(४) धातुओं के व्यञ्जनों में स्वरों को जोड़कर पद बनाये जाते हैं जैसे क्‌त्‌ब्‌ (लिखना) से भिन्न-भिन्न स्वर संयुक्त करके कातिब, किताब, कुतुब आदि शब्द बनते हैं।

(५) व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में ही समास पाये जाते हैं। समास दो शब्दों से बनते हैं जैसे—बीर्‌--शेबा, समासक्रम भारोपीय भाषाओं से विपरीत है, जैसे फारस-शाह के स्थान पर शाहेफारस।

(६) इस परिवार की भाषाओं में कर्त्ता-कर्म तथा सम्बन्ध ये तीन कारक ही प्रयोग किए जाते हैं।

(७) स्वर परिवर्तन के साथ ही अर्थ परिवर्तन हो जाता है।

(८) उपसर्ग तथा प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, जैसे क्‌त्‌ल्‌ में 'हि' उपसर्ग जोड़कर 'हि क्तिल' बना है।

(९) ये भाषाएँ श्लिष्ट-योगात्मक विभक्ति प्रधान हैं परन्तु आधुनिक भाषाओं की प्रवृत्ति वियोगात्मक है।

(१०) विभक्तियाँ अन्तर्मुखी हैं।

(११) इस परिवार की भाषाओं में लिंग भेद भी पाया जाता है। सेमेटिक भाषाओं में 'त्' या त् के स्थान पर 'थ्' या 'ह्' स्त्रीलिंग बोधक चिह्न है। अरबी में 'मलक' (राजा) का स्त्री लिंग 'मलकह्' (रानी) हुआ, जबकि हैमेटिक भाषा असीरी में स्त्रीलिंग 'मलकत्' बनेगा।

(१२) इस परिवार की मुख्य भाषाएँ अरबी, हिब्रू, आरमेनियन हैं। अरबी भाषा इन सब में अधिक सम्पन्न है।

(ख) **काकेशस भाषा परिवार**—इस भाषा परिवार की बोलियाँ कालासागर तथा कैस्पियन सागर के बीच काकेशस पर्वत के क्षेत्र में बोली जाती हैं। इस परिवार को दो भागों में बाँटा जाता है। प्रथम उत्तरी काकेशस क्षेत्र द्वितीय दक्षिणी काकेशस क्षेत्र। उत्तरी काकेशस भाषा के बोलने वाले लगभग ५ लाख तथा दक्षिणी काकेशस भाषा के बोलने वाले लगभग १५ लाख हैं। काकेशस पर्वत के उत्तरी ढाल पर उत्तरी काकेशस भाषा बोली जाती है। जबकि दक्षिण ढाल पर दक्षिणी काकेशस भाषा बोली जाती है। इनमें परस्पर भिन्नता पाई जाती है। पहले विद्वानों का विश्वास था कि ये भाषाएँ विभक्ति प्रधान हैं किन्तु अब निश्चित रूप से इन्हें प्रत्यय-संयोगी भाषा माना जाता है। दक्षिणी काकेशस भाषा के अन्तर्गत जार्जियन (Georgian) प्रधान

भाषा है जिसमें साहित्य प्राप्त होता है। इस परिवार की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

(१) इस परिवार की भाषाएँ विभक्तिप्रधान न होकर अश्लिष्ट योगात्मक हैं।

(२) प्रत्यय तथा उपसर्ग दोनों का प्रयोग किया जाता है।

(३) उत्तरी काकेशी भाषा में व्यञ्जनों की अधिकता तथा स्वरों की कमी है।

(४) इस परिवार की भाषाओं की पदरचना अत्यन्त जटिल होती है।

(५) इस परिवार की कुछ बोलियों में संज्ञा की तीस विभक्तियाँ तक पाई जाती हैं।

(६) इस परिवार की कुछ बोलियों में जैसे चेचेन' में छः लिङ्ग तक होते हैं।

(७) जब इस परिवार की भाषाओं में सर्वनाम एवं क्रिया का योग होता है तो भाषा आंशिक-प्रश्लिष्ट-योगात्मक का रूप ग्रहण कर लेती है।

(८) क्रियाओं का रूप बहुत जटिल होता है। मूल धातु का पता करना दुष्कर होता है। 'खसी कुमुक' नामक इस परिवार की एक बोली में 'आर', 'ऊ', 'अइसर', उन्द अन्द एवं 'अ' इन रूपों की धातु 'अइ' (=बनाना) है जिसे सही रूप से बता सकना कठिन है।

(९) इस भाषा परिवार में 'जार्जियन' मुख्य भाषा है, उसकी अपनी लिपि है किन्तु अन्य भाषाओं की न लिपियाँ हैं और न साहित्य ही।

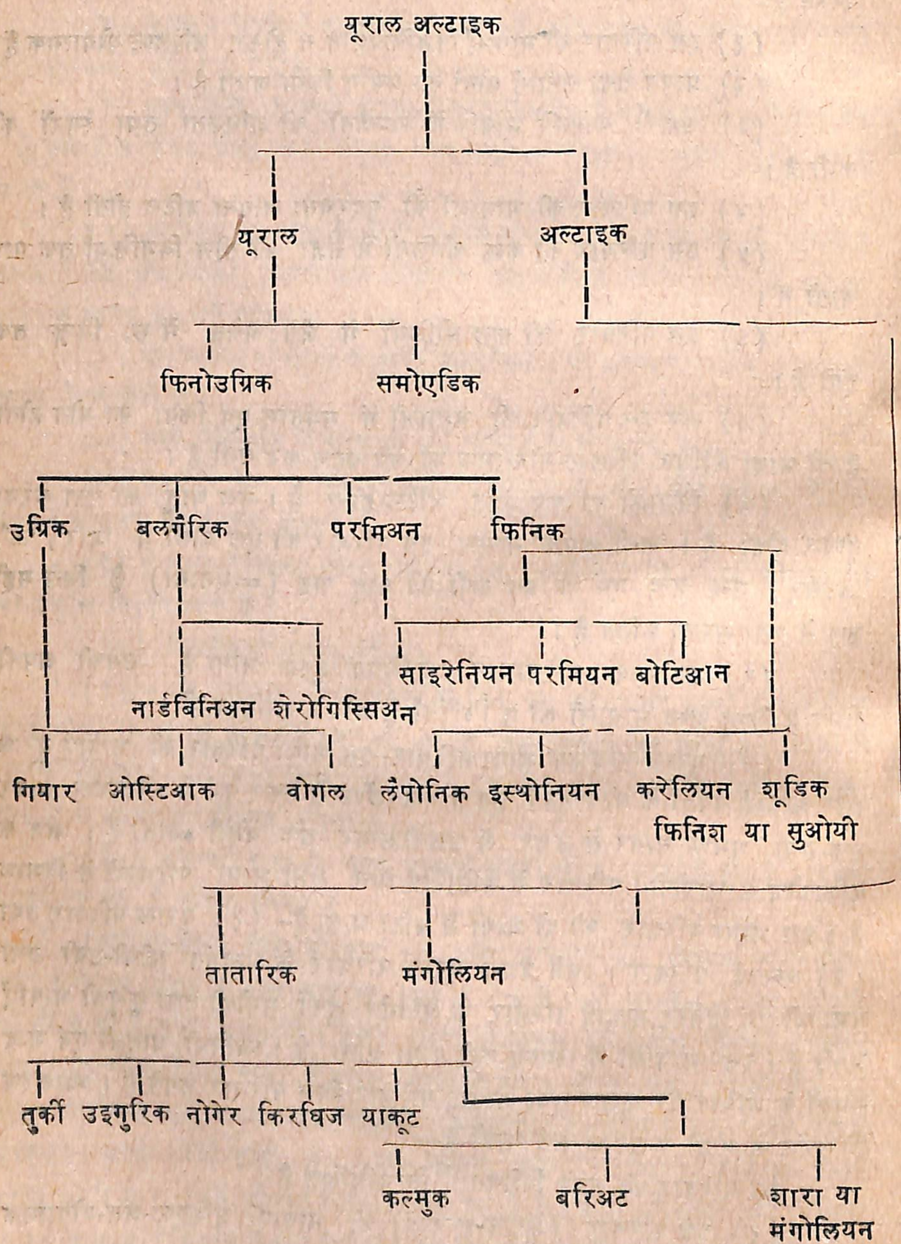
(ग) **यूराल-अल्टाइक भाषा परिवार**–इस भाषा परिवार की भाषाएँ यूराल और अल्टाई पर्वतों के बीच तुर्की, हंगरी, फिनलैण्ड से लेकर पूर्व में ओखस्टक सागर तक तथा भूमध्य सागर से उत्तर में उत्तरी सागर तक बोली जाती हैं। क्षेत्र के दृष्टिकोण से भारोपीय परिवार के अतिरिक्त अन्य सभी भाषा परिवारों से विशाल है। इस भाषा परिवार को दो भागों में बाँटा जाता है– (१) यूराल परिवार तथा (२) अल्टाई परिवार। इनमें प्रथम यूराल परिवार के अन्तर्गत फीनी-उग्री तथा समोयेदी एवं द्वितीय अल्टाई परिवार के अन्तर्गत तुर्की, मंगोली तथा तुँगूजी भाषाएँ आती हैं। इन भाषाओं में साम्य नहीं पाया जाता है। ध्वनियों, धातुओं एवं शब्द समूहों के आधार पर यूराल तथा अल्टाई परिवार भिन्न परिवार लगते हैं। व्याकरण की दृष्टि से थोड़ी समानता पाई जाती है–

इस परिवार की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

(१) इस परिवार (यूराल-अल्टाई) की भाषाएँ अश्लिष्ट-अंत-योगात्मक हैं। धातुओं में प्रत्ययों को संयुक्त करके शब्द बनाये जाते हैं।

(२) धातुएँ विकार रहित अर्थात् अव्यय की भाँति होती हैं।

यूराल अल्टाइक परिवार का वर्गीकरण



(३) शब्दों के साथ सम्बन्धवाचक प्रत्यय जोड़ा जाता है ।

(४) यूराल तथा अल्टाई दोनों वर्गों की भाषाओं में स्वर की अनुरूपता पाई जाती है ।

(५) फिनिश भाषा इस परिवार की प्राचीनतम भाषा है जिसमें प्राचीन साहित्य मिलता है ।

(६) फिनिश, भगियार (हंगरी की भाषा) तथा तुर्की भाषाएँ उन्नत भाषाएँ हैं ।

(७) भाषाओं की अधिकता के कारण विद्वान् लोग इसे एक भाषा परिवार की अपेक्षा एक भाषा समुदाय मानते हैं ।

(घ) **एकाक्षर (चीनी) भाषा परिवार**–इस परिवार की भाषाएँ पूर्वी तथा द० पू० एशिया के क्षेत्रों में एक बड़े भूखण्ड में बोली जाती हैं । चीन, थाइलैण्ड, तिब्बत, ब्रह्मा आदि देशों में ये भाषाएँ बोली जाती हैं । इस परिवार की मुख्य भाषा चीनी है, अतः इसे चीनीभाषा परिवार भी कहते हैं । भारोपीय परिवार के बाद सबसे अधिक बोलने वाले चीनी भाषा परिवार के हैं । इस परिवार की भाषाएँ एकाक्षरात्मक या अयोगात्मक हैं । इस परिवार को ३ प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है– (अ) चीनी परिवार, (ब) थाई-चीनी-परिवार एवं (स) तिब्बती-वर्मी परिवार । (अ) **चीनी परिवार**–चीनी भाषा सम्पूर्ण चीन देश में व्यवहृत होती है । यद्यपि स्थान भेद से इसकी कई बोलियाँ हैं । उत्तरी चीन तथा दक्षिणी चीन की भाषाओं में थोड़ा अन्तर पाया जाता है । इनमें उत्तरी चीन की प्रमुख बोली पेकिंग के आस पास बोली जाने वाली बोली है । इसे चीन की राजभाषा (मन्दारिन Mandarin) के रूप में स्वीकार किया गया है । दक्षिणी भाषाओं में 'केन्टन' की बोली प्रमुख है । चीनी भाषा में विश्व का प्राचीनतम साहित्य पाया जाता है । चीनी भाषा सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचारों को सरलता से व्यक्त करने की क्षमता रखती है । संस्कृत भाषा का बौद्ध साहित्य अनूदित होकर चीनी भाषा में सुरक्षित रूप से स्थित है । इतिहास लेखन की प्रथा भी पाई जाती है जिसे 'शुकिंग' कहा जाता है । वर्तमान चीनी भाषा का रूप अपने प्राचीन रूप से अधिक भिन्न नहीं है । लिपिविकास की दूसरी अवस्था से आगे नहीं बढ़ पाई है । हर शब्द के लिए अलग-अलग संकेत हैं । तिब्बती और ब्राह्मी लिपियों का विकास भारतीय लिपियों से हुआ है । सुर (Tone) परिवर्तन के साथ ही अर्थ में अन्तर आ जाता है । सुर भेद के कारण 'येन्' शब्द के चार अर्थ धुआ, नमक, आंख और हंस होते हैं । इसी प्रकार 'तओ' शब्द के अनेक अर्थ हैं; जैसे 'अनाज, सड़क, झंडा' आदि । चीनी भाषा में दो प्रकार के शब्द पाये जाते हैं– (१) अर्थवान् तथा (२) अर्थहीन । अर्थहीन शब्दों का प्रयोग सम्बन्धतत्त्व के स्थान पर किया जाता है । कभी-कभी इनका विशेष अर्थ भी

होता है। कर्म कारक 'को' के लिये 'यु', करण के लिये 'य' (से), अपादान 'से' के अर्थ में 'त्सुंग', सम्बन्ध 'का' के लिये 'त्सि' तथा अधिकरण 'पर' के अर्थ में 'लि' एवं 'बहुत' के लिए 'ती' तथा संख्या के लिए 'शु' का प्रयोग किया जाता है। चीनी भाषा का एक शब्द ही यथावसर संज्ञा, विशेषण क्रिया आदि का रूप धारण कर लेता है; जैसे–'त' शब्द का अर्थ 'बड़ा', 'बड़ाई', 'बड़ा होना' आदि होता है। चीनी भाषा में कोई भी शब्द सघोष व्यञ्जन से प्रारम्भ नहीं होता है। सभी शब्दों का अन्त अनुनासिक व्यंजन से होता है (न् ङ् ञ्)। अनुनासिक ध्वनियों की अधिकता पाई जाती है। (ब) **थाई चीनी परिवार**--इस प्रकार की भाषाएँ आसाम के पूर्वोत्तर भाग में, उत्तरी ब्रह्मा तथा थाईलैण्ड में पाई जाती हैं। 'स्यामी' या 'थाई' भाषा इस प्रकार की प्रमुख भाषा है। थाई थाईलैंण्ड की सम्पन्न भाषा है। इसका प्राचीन रूप १३ वीं शदी से पाया जाता है। इसकी 'शान' शाखा उत्तरी ब्रह्मा में, 'आहोम' आसाम में बोली जाती थी किन्तु अब लुप्त हो चुकी है। 'खामती' आसाम के पूर्वी भाग में बोली जाती है। (स) **तिब्बती-बर्मी भाषाएँ**–इसके अन्तर्गत बर्मी, तिब्बती, गारो, नागा, बोडो, मेइथेइ ((Miethei), लुशेइ (Lushei) भाषाएँ आती हैं। प्रथम दो को छोड़ कर शेष बोलियाँ आसाम में बोली जाती हैं।

एकाक्षर (चीनी) भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(१) इस परिवार की भाषाएँ अयोगात्मक (स्थान प्रधान) हैं। शब्द के स्थान से सम्बन्ध का ज्ञान होता है। जैसे 'हुआ पथो मीन' का अर्थ=राजा प्रजा की रक्षा करता है परन्तु शब्द क्रम बदलने पर 'मीन पओ हुआ' का अर्थ–'प्रजा राजा की रक्षा करती है' होगा।

(२) हर शब्द एकाक्षरी होता है। उसके रूप में कोई विकार नहीं आता, अत: उसका रूप अव्यय की तरह होता है।

(३) सुर (Tone) की भिन्नता से अर्थ में अन्तर आ जाता है। 'फूकिन' बोली में आठ तरह के सुर भेद हैं तथा राजभाषा मंदारिन में छः प्रकार के सुर पाये जाते हैं। अन्य बोलियों में भी कई स्वर पाये जाते हैं।

(४) अर्थ निश्चय एवं सुरों को स्पष्ट करने के लिए द्वित्व का प्रयोग किया जाता है जैसे 'ताओ' शब्द का अर्थ–सड़क, गल्ला, झंडा होता है तथा 'लू' शब्द का अर्थ–ओस, जवाहर, सड़क आदि। इस प्रकार 'ताओ लू' कहने से सड़क अर्थ निश्चित हो जाता है क्योंकि दोनों शब्द सड़क के लिए प्रयोग किए गए हैं।

(५) अनुनासिक ध्वनियाँ अधिकता से पाई जाती हैं।

(६) चीनी भाषा में व्याकरण नहीं पाया जाता है।

(७) चीनी भाषा में अर्थहीन और अर्थवान् दो प्रकार के शब्द पाये जाते हैं। अर्थहीन शब्दों का प्रयोग सम्बन्धतत्त्व के लिए किया जाता है।

(८) अर्थवान् शब्द दो प्रकार के होते हैं-(१) जीवित शब्द, (२) मृत । अधिकांश जीवित शब्द क्रिया को बताते हैं एवं मृत शब्द कर्म को ।

(९) शब्द के स्थान भेद के साथ अर्थ भेद भी हो जाते हैं ।

(१०) इस परिवार की तिब्बती, बर्मी, मेईथेई आदि सम्पन्न भाषाएँ हैं । इनमें लिखा गया साहित्य प्राचीन एवं धार्मिक हैं ।

(ङ) **द्रविड़ भाषा परिवार**–इस भाषापरिवार की भाषाएँ भारत में नर्मदा तथा गोदावरी नदियों से लेकर दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक फैली हैं । इस परिवार की भाषाए॑ उत्तारी लंका, बिलोचिस्तान, मध्य प्रदेश, बिहार आदि क्षेत्रों में बोली जाती हैं । इस परिवार की सब भाषाओं और बोलियों की संख्या चौदह मानी जाती है । इन्हें चार उपभागों में बाँटा गया है (१) द्रविड़ वर्ग (२), आन्ध्रवर्ग (३) मध्यवर्ती वर्ग तथा (४) ब्राहुई वर्ग । इस परिवार की भाषाएँ इस प्रकार हैं–कन्नड़, तमिल तेलगू, मलयालम्, तुलू, कोडगु, टुडा, गोंड, ओरॉव, कोड, कुई, कोलामी, कुरुख, माल्टो तथा ब्राहुई । इन भाषाओं में तमिल सबसे अधिक सम्पन्न तथा प्राचीनतम भाषा है । यह तमिलनाडु एवं उत्तरी लंका में बोली जाती है । आन्ध्र में तेलगू, मैसूर में कन्नड़, केरल में मलयालम भाषाएँ बोली जाती हैं । ये भाषाए॑ उन्नत साहित्य सम्पन्न हैं । ब्राहुई भाषा बलूचिस्तान के बीच थोड़े में बोली जाती है । तमिल भाषा की श्रेष्ठता के कारण इस परिवार को 'तमिलभाषा परिवार' नाम भी दिया जाता है । यह परिवार वाक्य तथा स्वर के कारण यूराल-अल्टाई भाषा परिवार के निकट है । इस भाषा परिवार के बोलने वाले लगभग १० करोड़ व्यक्ति हैं । इस परिवार की भाषाए॑ अश्लिष्ट-योगात्मक हैं । इन भाषाओं में मूर्द्धन्य ध्वनियों (जैसे ट वर्ग) की अधिकता पाई जाती है । इन भाषाओं में लिंग ३ प्रकार के पाये जाते हैं तथा वचन दो प्रकार के (एकवचन एवं बहुवचन) होते हैं । द्रविड़ भाषाओं का प्रभाव भारतीय आर्य भाषाओं पर भी पड़ा है विशेषत: मूर्धन्य ध्वनियों के क्षेत्र में इस भाषा परिवार में शब्द निर्माण के लिए प्रत्यय आदि मध्य तथा अन्त में जोड़े जाते हैं । इस परिवार की धातुए॑ दो अक्षर की होती हैं ।

द्रविड़ भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताए॑ इस प्रकार हैं--

(१) इस परिवार की भाषाए॑ अश्लिष्ट-अन्त-योगात्मक हैं ।

(२) मूल शब्द के साथ प्रत्यय जुड़ने पर शब्द में परिवर्तन नहीं होता है ।

(३) इस भाषा परिवार में मूर्धन्य ध्वनियों की (जैसे ट वर्ग) की अधिकता है ।

(४) कभी कभी संज्ञा शब्द क्रिया का भी अर्थ प्रकट करते हैं ।

(५) इन भाषाओं में तीन लिंग तथा दो वचन (एकवचन एवं बहुवचन) पाये जाते हैं ।

(६) इन भाषाओं में शब्दान्त व्यञ्जन के साथ उकार ध्वनि का प्रायः प्रयोग किया जाता है।

(७) शब्द के प्रारम्भ में घोष व्यञ्जन का अभाव रहता है।

(८) इन भाषाओं का साहित्य अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की तुलना में अधिक प्राचीन एवं सम्पन्न है।

(९) इस भाषा परिवार में स्वर-अनुरूपता अधिक पाई जाती है।

(१०) सोलह की संख्या पर निर्धारित माप जैसे रुपया-आना, सेर छटाँक इसी भाषा परिवार की विशेषता है जिसका प्रभाव आर्य भाषाओं पर पड़ा है।

(११) इन भाषाओं में कर्मवाच्य नहीं पाया जाता है। सहायक क्रिया द्वारा कर्मवाच्य प्रकट किया जाता है।

(२) इस भाषा परिवार में निर्जीव शब्द नपुंसकलिंग में आते हैं तथा अन्य शब्दों के साथ आवश्यकतानुसार स्त्रीलिंग एवं पुंलिंग शब्द जोड़ लिए जाते हैं।

(च) आग्नेय भाषा परिवार (आष्ट्रेलियाई भाषा परिवार)–आग्नेय भाष परिवार को दो भागों में बाँटा जाता है-(१) प्रशान्त महासागर के द्वीपों का क्षेत्र जिसे आग्नेय द्वीप भी कहा जाता है तथा (२) आग्नेय देशी जिसकी भाषाएँ भारत में मध्य प्रदेश (गोंड क्षेत्र),तमिलनाडु(गंजाम जिला),आसाम के पहाड़ी क्षेत्र, नीकोबार द्वीप, ब्रह्मा तथा थाईलैण्ड के कुछ क्षेत्रों में बोली जाती हैं। भारत में बोली जाने वाली मुण्डा भाषाएँ (कनावरी, खेरवारी, कुकूँ ड़िया, जुआंग, शावर, गादवा) प्रमुख भाषाएँ हैं। सम्मिलित रूप से यह भाषा परिवार प्रशान्त महासागर तथा हिन्द महासागर के द्वीपों में फैला है। इस परिवार में आग्नेय देशी का अध्ययन किया जाता है। प्रशान्त महासागरीय द्वीपों के क्षेत्र को प्रशान्त भाषा खण्ड में सम्मिलित किया जाता है। यूरेशिया भाषा खण्ड में आग्नेय देशी को सम्मिलित किया जाता है।

इस भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(१) इस परिवार की भाषाएँ अश्लिष्ट--योगात्मक हैं। परन्तु वर्तमान प्रवृत्ति वियोगावस्था की ओर है।

(२) धातुएँ अधिकांशतः दो अक्षरों की होती हैं।

(३) इन भाषाओं में घोष, अघोष, महाप्राण एवं अल्पप्राण ध्वनियाँ पाई जाती हैं।

(४) इन भाषाओं में पुँल्लिग और स्त्रीलिंग दो लिंग पाये जाते हैं। सजीव वस्तु पुँल्लिग एवं निर्जीव स्त्रीलिंग समझी जाती है।

(५) इन भाषाओं में तीन वचन पाये जाते हैं। संज्ञा शब्द के आगे प्रत्यय जोड़ कर द्विवचन तथा बहुवचन बनाए जाते हैं।

(६) सम्बन्ध तत्त्व को शब्द के अन्त में या मध्य में प्रयोग किया जाता है।

(७) शब्दों के साथ उपसर्ग भी जोड़े जाते हैं।

(८) क्रिया के लिए पृथक् शब्द नहीं होते हैं। संज्ञा शब्द से ही क्रिया का काम लिया जाता है।

(९) चीनी भाषा के समान एक शब्द ही संज्ञा, क्रिया तथा विशेषण का स्थान ग्रहण कर लेता है।

(१०) क्रिया रूप से ही भिन्न-भिन्न कालों का बोध होता है।

(११) शब्द पर बल देने के लिए पुनरावृत्ति की जाती है।

(१२) संख्याएँ दश तक हैं तथा 'कोड़ी' (बीस) शब्द भी मुण्डा भाषाओं से निकला है।

(१३) पद के लिए प्रत्ययों को शब्द के प्रारम्भ में, मध्य में या अन्त में तीनों ही स्थानों पर जोड़ा जाता है '

(६) **भारोपीय भाषा परिवार**--यह परिवार क्षेत्र विस्तार एवं साहित्यसम्पन्नता तथा जनसंख्या की दृष्टि से अन्य सभी भाषा परिवारों से श्रेष्ठ है। इस भाषा परिवार में संसार का अत्यन्त प्राचीन साहित्य पाया जाता है। इस परिवार की भाषाएँ एक बहुत बड़े क्षेत्र में व्यवहृत होती हैं जिसमें अर्मीनिया, ईरान, भारत, यूरोपीय देश, अमेरिकी देश, द० प० अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया आदि सम्मिलत हैं। इस परिवार के बोलने वालों की संख्या १ अरब ५० करोड़ के लगभग है। इस परिवार के नामकरण के विषय में भिन्न भिन्न मत हैं। इस परिवार को कई नामों से सम्बोधित किया गया है। इसे पहिले 'इण्डो--जर्मनिक' नाम दिया गया फिर इसका नामकरण 'इण्डो-केल्टिक' किया गया। इसके अतिरिक्त इसे 'आर्य-परिवार', 'संस्कृत-परिवार', 'काकेशियन परिवार', 'भारत-हित्ती परिवार', 'विरोस परिवार' आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। वर्तमान समय में 'भारोपीय भाषा परिवार' नाम अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अतः इस परिवार के लिए यही नाम अधिक प्रचलित हो गया है। इस परिवार की भाषाएँ विभक्तिप्रधान तथा संश्लिष्ट थीं किन्तु अब इनकी प्रवृत्ति वियोगात्मक हो रही है।

इस परिवार की प्रधान शाखाएँ इस प्रकार हैं—

(१) कैल्टिक शाखा

(२) जर्मनिक शाखा

(३) इटैलिक शाखा

(४) ग्रीक शाखा

(५) तोखारी शाखा

(६) अल्बेनियन शाखा

(७) बाल्ती-स्लावी शाखा

(८) आर्मेनियन शाखा

(९) आर्यशाखा (भारत-ईरानी शाखा)

भारोपीय भाषा परिवार की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(१) इस परिवार की भाषाएँ श्लिष्ट-योगात्मक हैं।

(२) इन भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व का अर्थतत्त्व से योग बहिर्मुखी होता है।

(३) इस परिवार की भाषाओं की प्रवृत्ति वियोगात्मक हो गयी है।

(४) इन भाषाओं में धातुएँ एकाक्षर हैं। धातुओं में प्रत्यय जोड़ कर शब्द निर्माण किया जाता है।

(५) प्रत्यय दो प्रकार के–कृत् तथा तद्धित होते हैं।

(६) इस परिवार की भाषाओं में उपसर्गों का प्रयोग करके शब्दों के अर्थ को परिवर्तित कर लिया जाता है।

(७) इस परिवार की भाषाओं में समासरचना होती है। समास बनाते समय विभक्तियों का लोप हो जाता है।

(८) इस परिवार की भाषाओं में स्वर-परिवर्तन से सम्बन्धतत्त्व में परिवर्तन हो जाता है।

(९) इस परिवार की भाषाओं में प्रत्ययों का अधिकता से प्रयोग किया जाता है क्योंकि भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न भाषाओं का विकास हुआ है।

(१०) इस परिवार की भाषाओं में प्रत्यय स्वतन्त्र शब्द थे किन्तु बाद में उनके स्वतन्त्र अर्थ का लोप हो गया।

(ज) **विविध भाषा परिवार (अनिश्चित भाषा समुदाय)**–इस परिवार में उन भाषाओं को सम्मिलित किया गया है जिनका समावेश किसी निश्चित परिवार में नहीं हो पाया है। इन भाषाओं में कुछ भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं तथा कुछ नवीन भाषाएँ हैं जो इस प्रकार हैं–

(क) प्राचीन भाषाएँ

(१) **क्रीटी**–क्रीट द्वीप की प्राचीन भाषा जिसमें साहित्यिक रचना भी पाई जाती है। अब यह लुप्त हो चुकी है।

(२) **सिन्धु घाटी भाषा**–सिन्धु की घाटी के क्षेत्रों-मोहन जोदड़ो आदि में प्राचीन संस्कृति एवं भाषा का पता चला है इस भाषा की लिपि अभी भलीभाँति जानी नहीं जा सकी है।

(३) **सुमेरी भाषा**–इस भाषा का क्षेत्र दक्षिणी मेसोपोटामिया (वर्तमान इराक देश) था। इस भाषा में ईसा से चार हजार वर्ष पहिले के लेख पाये जाते हैं। अब यह भाषा लुप्त हो चुकी है।

(४) **सूसियन या एलमी भाषा**–यह भाषा प्राचीन काल में ईरान के सूसा प्रदेश में बोली जाती थी । इस भाषा के लेख ईसा से २५०० वर्ष पूर्व के हैं ।

(५) **खत्ती भाषा**–यह तुर्की (एशिया माइनर) के निवासियों की भाषा थी। यह पुरः प्रत्यय प्रधान भाषा थी । इस भाषा में २००० ई० पू० तक के लेख पाये जाते हैं ।

(६) **मितानी भाषा**–यह भाषा मेसोपोटामिया के उत्तरी भाग में प्रचलित थी । इस भाषा के लेख १४०० ई० पू० के पाये गये हैं ।

(७) **कासाइट या कोसाइन** (Kassite or Cossaean) **भाषा**–इस भाषा का क्षेत्र जैग्रोस पर्वतीय भाग में था । इस भाषा के विषय में बहुत कम पता चला है।

(८) **वन्नी** (Vannic) **भाषा**–यह भाषा पश्चिमी एशिया के अरारात क्षेत्र में बोली जाती थी । इसकी लिपि कीलाक्षर थी । इसमें ९०० ई० पू० तक के लेख पाये गये हैं ।

(९) **लीसियन भाषा** (Lykian or Lycian)–इस भाषा का क्षेत्र एशिया माइनर का द० प० भाग था । ५०० ई० पू० तक के लेख पाये जाते हैं ।

(१०) **कप्पदोसी** (Capoadecian) **भाषा**–यह भाषा काले सागर के दक्षिण में कप्पदोसिया क्षेत्र में बोली जाती थी ।

(११) **एत्रुस्कन** (Etruscan) **भाषा**–इस भाषा का क्षेत्र इटली का उत्तरी तथा मध्य क्षेत्र था । इसमें ६०० ई० पू० तक के लेख पाये गये हैं । इसके अतिरिक्त इन प्राचीन अवर्गीकृत भाषाओं में करियन (एशिया माइनर के पश्चिमी समुद्र तट की भाषा), लीडियन (Lidian) (पश्चिमी एशिया माइनर की भाषा), लूवियन (Luvion) भाषाएँ भी सम्मिलित की जाती हैं ।

(ख) नवीन भाषाएँ

नवीन अवर्गीकृत भाषाओं में निम्न भाषाओं की गणना की गयी है–

(१) जापानी, (२) कोरियाई, (३) एनू, (४) हाइपरबोरी, (५) लती, (६) अण्डमानी, (७) करेनी, (८) बास्क, (९) मानी, (१०) बुरुशास्की आदि ।

(१) **जापानी भाषा**–यह भाषा उन्नत साहित्य से पूर्ण है । इसके लिखित तथा बोलचाल के रूप अलग-अलग हैं । इस भाषा की लिपि चीनी लिपि से बहुत कुछ मिलती जुलती है । इस भाषा की प्रवृत्ति परप्रत्यय संयोग है । अभी यह निश्चित नहीं हो सका है कि इस भाषा को किस भाषा परिवार में सम्मिलित किया जाए । इस भाषा के बोलने वाले लगभग १२ करोड़ व्यक्ति हैं ।

(२) **कोरियाई भाषा**–यह भाषा चीन के उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित कोरिया देश में बोली जाती है । इस पर मांचू तथा मंगोल भाषाओं का अधिक प्रभाव पड़ा

है। इस भाषा की प्रवृत्ति प्रत्यय संयोगी हैं इसके बोलने वालों की संख्या कई करोड़ है।

(३) **एनू** (Ainu) **भाषा**–यह भाषा जापान के आदिवासी एनू लोगों द्वारा बोली जाती है। इनका क्षेत्र होकेडो द्वीप है। इस भाषा की दो बोलियाँ हैं। इस भाषा में साहित्य नहीं पाया जाता है।

(४) **हाइपरबोरी** (Hyperborean) **भाषा**-इस भाषा के बोलने वाले साइबेरिया के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में रहते हैं। इसके बोलने वाले ५० हजार से अधिक हैं।

(५) **लती** (Lati or Latchi) **भाषा** यह भाषा चीन के यून्नान तथा टोंगकिंग प्रदेशों की सीमा पर कुछ सौ व्यक्तियों के द्वारा बोली जाती है।

(६) **अण्डमानी भाषा**–यह भाषा बंगाल की खाड़ी में स्थित अण्डमान द्वीप समूह के मूल निवासियों द्वारा बोली जाती है।

(७) **करेनी** (Karen) **भाषा**–इस भाषा का क्षेत्र ब्रह्मा के इरावती नदी की घाटी में स्थित है। इसके बोलने वाले लगभग १० लाख हैं।

(८) **बास्क भाषा** इस भाषा का क्षेत्र यूरोप के पिरेनीज पर्वत के पश्चिमी भाग में फ्रांस और स्पेन की सीमा पर दोनों देशों में है। १६ वीं शदी के बाद से इसमें साहित्य पाया जाता है। इसके बोलने वाले लगभग १० लाख हैं।

(९) **मानी भाषा**–इस भाषा के बोलने वाले ब्रह्मा के उत्तरी भाग में, दक्षिणी-पश्चिमी चीन तथा हिन्द चीन में पाये जाते हैं। यह भाषा याओ (yao) तथा मिआओ (Miao) भाषाओं से सम्बन्धित है।

(१०) **बुरुशास्की या खजुना** (Burushaski or khajuna) **भाषा**––इसके बोलने वाले उ० पू० काश्मीर में पाये जाते हैं। इस भाषा को किसी भी भाषा परिवार में नहीं रखा जा सका है।

(३) प्रशान्त महासागर खण्ड

इस भाषाखण्ड की भाषाएँ प्रशान्त महासागर तथा हिन्द महासागर के द्वीपों में बोली जाती हैं। इस भाषा खण्ड में कई भाषा समूह सम्मिलित हैं। ये भाषाएँ मैडागास्कर से लेकर चिली के पश्चिम में स्थित ईस्टर द्वीप तक तथा हिन्द महासागर के द्वीपों सुमात्रा, जावा, मलाया, न्यूजीलैण्ड, टस्मानिया, फिजी में, ताइवान में, एवं फिलीपाइन्स में बोली जाती हैं। प्रशान्त महासागर भाषा खण्ड को निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है–

(क) आग्नेय या आस्ट्रिक शाखा (Austric)
(ख) पापुआई शाखा (Papuan)
(ग) आस्ट्रेलियाई शाखा (Australian Group)
(घ) तस्मानी शाखा (Tasmanian Group)

प्रशान्तमहासागरीय भाषापरिवार

- मलयन
- मलेनेशियाई
  - फिजियन (फिजी)
  - कैलीडोनी (कैलिडो)
  - लायल्टी (लायल्टी)
  - हेब्रिडा (हेब्रिडा)
  - सोलीमोनी (सोलोमन)
- पालीनेशियायी
  - माओरी (न्यूजीलैण्ड)
  - टोंगी (टोंगा)
  - समोई (समोआ)
  - हवाई (हवाई)
  - ताहिती (ताहिती)
  - मारक्कीसन (मारक्कीसज)
- पापुआई
  - मफोर (न्यूगिनी)
- आस्ट्रेलियाई
  - आस्ट्रेलियन
    - क्कारी
    - कमिलरोई
  - टस्मानियम (टस्मानियम)

(मलयन एवं पालीनेशियायी से)

- मलय
  - मलय (मलाया)
  - बत्तक (सुमात्रा)
    - बत्तक
    - आकीनीज
    - लपोंग
  - जाबी (जावा)
    - (लपोंग एवं जाबी से) क्रोमो
    - न्गोकी
  - सुन्दियन (जावा)
  - दपक (बुर्नियो)
  - बुधी (सेलेवस)
- तगाल
  - तगाल (फिलीपाइन)
  - फारमोसी (फारमोसा)
  - लदोनी (लदोर्न)
  - मलगसी या होग (मैडागास्कर)

(क) आग्नेय वर्ग को दो उपवर्गों में बांटा जाता है–

(१) आग्नेय एशियाई उपवर्ग

(२) आग्नेय द्वीपीय या मलय पॉलिनेशियाई उपवर्ग ।

(क) आग्नेय एशियाई उपवर्ग–इस उपवर्ग में बोली जाने वाली भाषाएँ भारत, ब्रह्मा, थाईलैण्ड में बोली जाती हैं । इनमें 'मुण्डा' भाषाएँ प्रमुख हैं । 'मुण्डा' भाषाएँ मध्य प्रदेश के गोंड क्षेत्र में, तमिलनाडु के गंजाम जिले में, आसाम की खासी पहाड़ी क्षेत्र में, विहार में संथाल क्षेत्र में तथा छोटा नागपुर क्षेत्र में एवं पश्चिमी बंगाल में बोली जाती हैं । संथाली भाषा इनमें प्रधान है । इसके अतिरिक्त भूमिज, खड़िया, शबर, कनावी, मुण्डारी भी बोली जाती हैं । भारत के बाहर ब्रह्मा में मोन, ब्रह्मा, थाईलैण्ड सीमा क्षेत्र में ख्मेर भाषाएँ प्रधान हैं । मोन भाषा में ११वीं शताब्दी से साहित्य पाया जाता है ।

(२) **आग्नेय द्वीपीय**–इस उपवर्ग में मलय भाषा का स्थान प्रमुख है । आग्नेय द्वीपीय भाषाओं में मालागासी (मैडागास्कर की भाषा), फारमोसी (पूर्वी तथा मध्य फारमूसा की भाषा), टगलॉग (Tagalog) (फिलीपाइन्स की भाषा), मलय (मलाया की भाषा), सुमात्रा की भाषा तथा जावा की 'कवि' (Kawi) भाषा, फीजी (Fiji) द्वीपों की भाषा, न्यूजीलैंड की माओरी भाषा तथा तहीती एवं हवाई द्वीपों की भाषाएँ सम्मिलित हैं । इन सभी भाषाओं में अत्यधिक समानता पाई जाती है ।

(ख) **पापुआई वर्ग**–न्यूगिनी तथा अन्य छोटे छोटे द्वीपों में इस प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं । न्यूगिनी की मफोर (Mafor) भाषा इनमें प्रमुख है । पुरः प्रत्यय संयोग अथवा पर प्रत्यय संयोग इन भाषाओं की प्रधान विशेषताएँ हैं । उदाहरणार्थ देखा जा सकता है–म्नफ़=सुनना

जम्नफ़=मैं सुनता हूँ

जम्नफ़उ=मैं तेरी बात सुनता हूँ ।

(३) **आस्ट्रेलियाई शाखा (आस्ट्रेलियन परिवार)**–इस परिवार की भाषाएँ आस्ट्रेलिया महाद्वीप के आदिवासियों द्वारा बोली जाती हैं । ये भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक हैं । शब्दरचना प्रत्यय जोड़ कर की जाती है । इस परिवार की मुख्य भाषा '**मैक्वारी**' है जो मैक्वारी झील के आस-पास बोली जाती है । दूसरी प्रमुख भाषा '**कमिलरोई**' है । इस परिवार की भाषाएँ बोलने वाले यूरोपीय व्यक्तियों द्वारा नष्ट कर दिए जाने के कारण कुछ हजार व्यक्ति हैं ।

(४) **तस्मानी शाखा**–इस परिवार की भाषा के बोलने वाले १८वीं शताब्दी तक पाये जाते थे । अब यह भाषा लुप्त हो चुकी है ।

इन भाषा परिवारों की भाषाओं में अत्यधिक साम्य पाया जाता है । प्रमुख

विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(१) सभी भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक हैं ।

(२) इस भाषा खण्ड की भाषाओं की प्रवृत्ति वियोगात्मक हो रही है ।

(३) शब्दरचना आदि, मध्य या अन्त में प्रत्यय जोड़ कर की जाती है ।

(४) धातुएँ दो अक्षर की होती हैं ।

(५) शब्द पर बल देने के लिए पुनरावृत्ति करते हैं ।

(६) संज्ञा शब्द ही क्रिया एवं क्रिया विशेषण का कार्य करते हैं ।

(७) किन्हीं-किन्हीं भाषाओं में तीन वचन पाये जाते हैं ।

(४) अमरीकी भाषा खण्ड

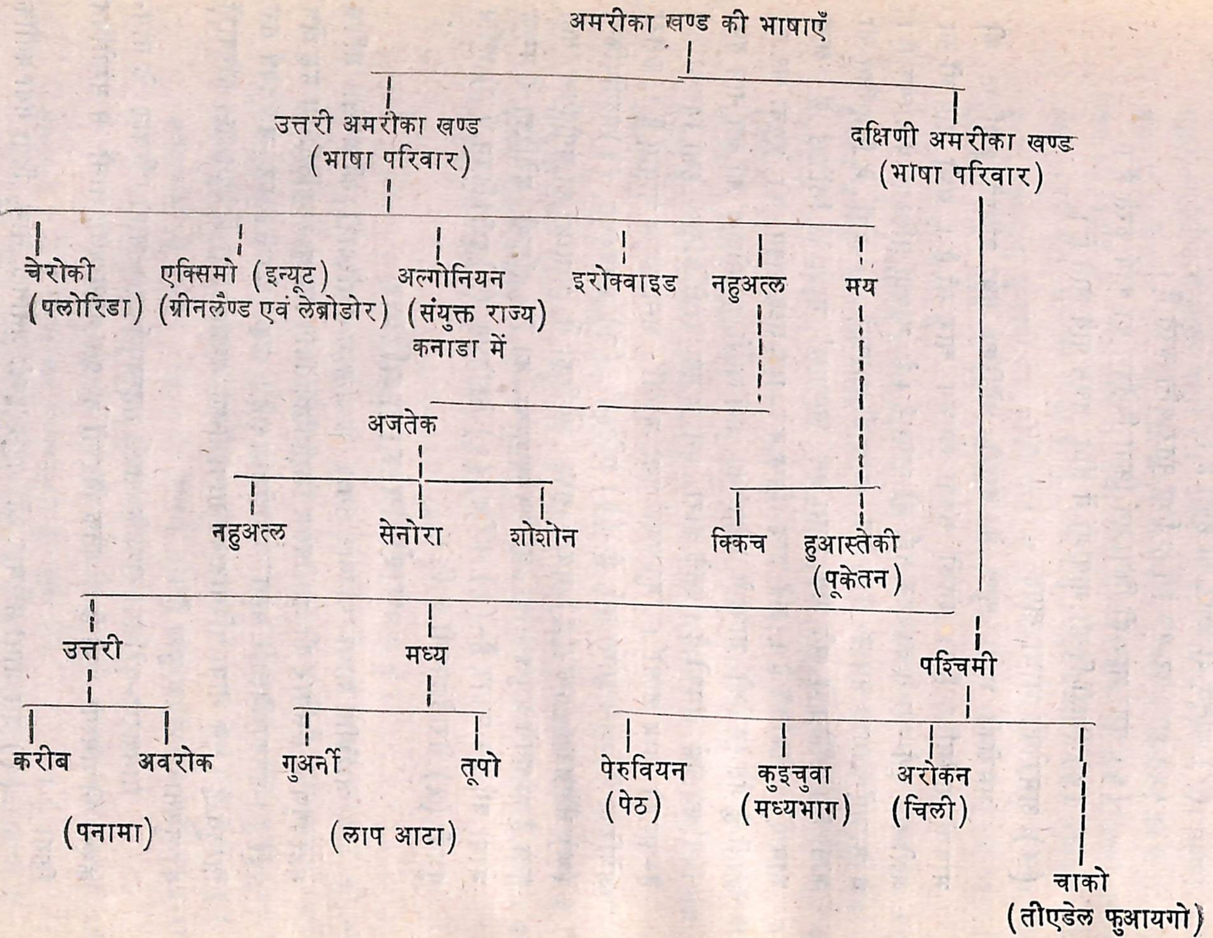
अमरीकी भाषा खण्ड में उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका की भाषाएँ सम्मिलित हैं । इनकी संख्या लगभग चार सौ है । सभी भाषाओं का अभी तक पूर्ण रूप से अध्ययन नहीं हो पाया है । ये भाषाएँ प्रश्लिष्ट योगात्मक हैं । ये भाषाएँ समास प्रधान हैं । इस खण्ड की भाषाएँ ३० वर्गों में विभाजित की जाती हैं । मैक्सिको की 'मय' भाषा एवं 'नहुअत्ल' भाषा की लिपियाँ हैं । अन्य भाषाएँ अविकसित हैं । कई शब्द मिल कर एक शब्द-वाक्य की रचना कर ली जाती है जैसे 'चेरोकी' भाषा में 'नतेन' का अर्थ लाओ, 'आमोखल' का अर्थ नाव तथा 'निन' का अर्थ हमको है । इनके द्वारा बना वाक्य 'नाधोलिनिन' हुआ जिसका अर्थ है-'हमको नाव लाओ' । 'कुइचुआ' तथा 'गुअर्नी' अन्य प्रमुख भाषाएँ हैं । उत्तरी अमेरिका के प्रमुख भाषा वर्ग हैं-(१) एस्किमो, (२) अथबस्कन, (३)अलगोनकिन, (४) मैक्सिकन तथा (५) मय । मध्य अमेरिका में भाषाओं का वर्गीकरण नहीं हुआ है । इसमें प्रमुख भाषा वर्ग क्यूबा भाषा का है । दक्षिणी अमेरिका के प्रमुख भाषा वर्ग इस प्रकार हैं-(१) करीब, (२) पेरुविअन, (३)अरौकनियन, (४) तुपीब गुअर्नी,(५) तेराडेलफ्यूगो आदि ।

भारोपीय भाषा परिवार

भारोपीय भाषा परिवार संसार के अन्य भाषापरिवारों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है । संसार की प्राचीनतम साहित्यिक निधियों एवं संस्कृतियों का यह क्षेत्र रहा है । इसका विस्तार बहुत बड़े क्षेत्र पर है । यह यूरोप से लेकर भारतवर्ष तक विस्तृत है । इस भाषा परिवार की भाषाओं का अध्ययन तथा विवेचन अन्य परिवारों की तुलना में अधिक हुआ है ।

नामकरण-यूरेशिया खण्ड के सबसे महत्त्वपूर्ण इस भाषा परिवार के नामकरण की समस्या रही है । अनेक विद्वानों ने इसे अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया है ।

(१) इस भाषा परिवार को पहले **'इण्डो जर्मनिक'** नाम दिया गया क्योंकि


अमरीका खण्ड की भाषाएँ
उत्तरी अमरीका खण्ड (भाषा परिवार)
दक्षिणी अमरीका खण्ड (भाषा परिवार)
चेरोकी (फ्लोरिडा)
एक्सिमो (इन्यूट) (ग्रीनलैण्ड एवं लेब्रोडोर)
अल्गोनियन (संयुक्त राज्य) कनाडा में
इरोक्वाइड
नहुअत्ल
मय
अजतेक
नहुअत्ल
सेनोरा
शोशोन
क्किच
हुआस्तेकी (पूकेतन)
उत्तरी
मध्य
पश्चिमी
करीब
अवरोक
(पनामा)
गुअर्नी
तूपो
(लाप आटा)
पेरुवियन (पेठ)
कुइचुवा (मध्यभाग)
अरोकन (चिली)
चाको (तीएडेल फुआयगो)

यूरोप में जर्मन भाषाओं से लेकर एशिया में भारत की भाषाओं तक यह फैला है। परन्तु यूरोप में जर्मन भाषा के पश्चिम में कैल्टिक भाषा इसी परिवार की भाषा है। अतः बाद में जर्मनी से बाहर के देशों ने इस नाम को त्याग सा दिया है।

(२) इस परिवार का दूसरा नाम **'इण्डो केल्टिक'** भाषा परिवार रखा गया किन्तु इसका भी अधिक प्रचलन नहीं हो सका है।

(३) 'संस्कृत' भाषा से यूरोपीय विद्वानों का परिचय होने पर कुछ विद्वानों ने इस भाषा परिवार को **'संस्कृत भाषा परिवार'** नाम दिया क्योंकि उनका मत था कि इस परिवार की भाषाएँ संस्कृत भाषा से निकली हैं। बाद में इस नाम का भी अधिक प्रचलन नहीं हो पाया।

(४) भारोपीय परिवार को **'आर्य-परिवार'** भी नाम दिया गया। क्योंकि विश्वास किया जाता था कि इस परिवार के बोलने वाले आर्य जाति के हैं किन्तु सभी व्यक्ति आर्य नहीं हैं। अतः यह नाम भी बाद में त्याग दिया गया।

(५) कुछ विद्वानों ने इस भाषा परिवार के लिए **'काकेशियन भाषा परिवार'** नाम दिया, किन्तु यह भी अधिक ग्राह्य नहीं हो सका।

(६) इस भाषा परिवार को हजरत के तीसरे बेटे जैफ के नाम पर **'जैफाइट'** या **'जफेटिक भाषा परिवार'** नाम दिया। यह नामकरण बहुत कुछ सेमिटिक या हैमिटिक नाम की समानता पर दिया गया था किन्तु अब यह नाम भी अप्रचलित है।

इस परिवार को 'इण्डो हित्ताइट' (Indo Hittite) नाम भी प्रदान किया गया है तथा भारोपीय भाषा परिवार को इसका एक भाग माना है।

(७) मूल भारोपीय भाषा के बोलने वाले लोगों को विरोस् (Wiros) नाम दिया गया है अतः इस भाषा परिवार को **'विरोस भाषा परिवार'** भी नामकरण दिया गया है। विरोस शब्द संस्कृत आदि भाषाओं के 'वीर' शब्द का मूल माना है। (जैसे संस्कृत में वीर, लैटिन में Vir या Uir प्राचीन आइरी में Fer तथा जर्मन भाषाओं में Wer शब्द पाया जाता है)

२४०० ई० पू० में इण्डो-हिट्टाइट' भाषा की दो शाखाएँ हो गयी थीं पहली 'एनाटोलियन' तथा दूसरी 'भारोपीय'। अतः इन दोनों भाषाओं के नाम से इस परिवार को 'भारोपीय एनाटोलियन' नाम दिया जा सकता है।

(८) इस परिवार के लिए सबसे अधिक प्रचलित नाम **'भारोपीय भाषा परिवार'** है। यद्यपि इस नामकरण का आधार भौगोलिक है फिर भी इस परिवार की भाषाएँ इस क्षेत्र (यूरोप से भारत तक) के बाहर अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका में भी बोली जाती हैं। अभी तक 'भारोपीय भाषा परिवार' नाम विद्वानों द्वारा अधिक ग्रहण किया गया है। इसके पश्चात् इस भाषा परिवार का अन्य नाम 'इण्डो-हिट्टाइट

प्रयोग किये जाने के समर्थक अधिक हैं ।

भारोपीय भाषापरिवार का महत्त्व–इस भाषा परिवार का अत्यधिक महत्त्व है । भाषाविज्ञान की आधार-शिला इसी परिवार द्वारा डाली गई है । इस भाषा परिवार की भाषाओं की जितनी अधिक विवेचना एवं खोज हुई है तथा अध्ययन किया गया है उतना अन्य किसी भाषापरिवार का नहीं । इस भाषापरिवार में संसार की प्राचीनतम भाषाएँ आती हैं जिनमें विश्व की प्राचीनतम साहित्यिक निधि सुरक्षित है । विश्व का सबसे प्राचीन साहित्य संस्कृत भाषा में ऋग्वेद के रूप में उपलब्ध है । संस्कृत, ग्रीक, लैटिन जैसी प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण भाषाएँ इसी परिवार की भाषाएँ हैं । यह भाषा परिवार विश्व के बहुत बड़े क्षेत्र पर विस्तृत है । भारत से यूरोप तक, अमेरिका के दोनों महाद्वीप, आस्ट्रेलिया एवं कुछ अफ्रीकी क्षेत्रों में इसी परिवार की भाषाओं का प्रयोग हो रहा है । भाषाओं के क्रमिक विकास को दिखाने वाला साहित्य इस परिवार में पाया जाता है । इस परिवार की प्राचीन भाषाओं के अध्ययन से यह सिद्ध किया जाता है कि कभी मानव का मूल स्थान मध्य एशिया रहा था तथा भाषाएँ परस्पर सम्बन्धित थीं । ग्रीक, लैटिन, संस्कृत के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन तीनों भाषाओं की जननी एवं मूल भाषा एक ही रही होगी । इस प्रकार विश्व की प्राचीनतम संस्कृति, साहित्यिक विकास, भाषाविकास, मानव की आदिभूमि, ध्वनि संबन्धी तथ्यों की एकता, भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आदि दृष्टिकोण से भारोपीय परिवार का अपना विशिष्ट इतिहास है । आज भी इस परिवार की भाषा बोलने वाले संसार में सबसे अधिक हैं तथा उनका विश्व राजनीति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । विश्व को ज्ञान की ज्योति से आलोकित करने का श्रेय इसी भाषा परिवार को है । इस भाषा परिवार के लोग आज विज्ञान के क्षेत्र में भी विश्व के अन्य भाषावर्गों की अपेक्षा आगे हैं । इस प्रकार भारोपीय भाषा परिवार का अत्यन्त महत्त्व है ।

भारोपीय भाषापरिवार की प्रमुख विशेषताएँ–भारोपीय भाषापरिवार की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(१) इस परिवार की भाषाएँ श्लिष्ट-योगात्मक हैं ।

(२) इस परिवार की भाषाओं में अर्थतत्त्व से सम्बन्धतत्त्व का संयोग बहिर्मुखी होता है ।

(३) इस परिवार की भाषाएँ वियोगावस्था की ओर बढ़ रहीं हैं ।

(४) धातुएँ एकाक्षर की होती हैं ।

(५) धातुओं में कृत् तथा तद्धित प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए जाते हैं ।

(६) उपसर्ग आदि का प्रयोग करने से धातुओं का अर्थ बदल जाता है ।

(७) इस परिवार की भाषाओं में समासरचना की जाती है । समास बनाते

समय विभक्तियों का लोप हो जाता है ।

(८) इन भाषाओं में स्वर परिवर्तन से सम्बन्धतत्त्व का परिवर्तन हो जाता है ।

(९) इन भाषाओं में प्रत्यय पहले स्वतन्त्र अर्थ प्रकट करते थे परन्तु बाद में इनकी स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी ।

(१०) इस परिवार की भाषाओं के बोलने वाले जनसंख्या में सबसे अधिक हैं ।

(११) इस परिवार की भाषाएँ संसार के बहुत बड़े क्षेत्र में फैलीं हैं तथा व्यापक हैं ।

(१२) इस परिवार में संसार का प्राचीनतम तथा श्रेष्ठ साहित्य पाया जाता है ।

(१३) इस परिवार में विश्व की उन्नत सभ्यताओं का विकास हुआ है ।

(१४) इस भाषा परिवार में अत्यन्त विकसित वैज्ञानिक साहित्य पाया जाता है।

(१५) इस भाषा परिवार के बोलने वाले विश्व के राजनैतिक क्षेत्र में सबसे आगे हैं ।

(१६) इस भाषा परिवार की भाषाओं का अन्य भाषा परिवारों की अपेक्षा अधिक अध्ययन किया गया है ।

(१७) इस भाषा परिवार के अनुशीलन के परिणाम स्वरूप ही 'भाषाविज्ञान' का विकास हुआ है ।

मूल भारोपीय ध्वनियाँ–मूलभारोपीय भाषा परिवार की ध्वनियों के विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं । १८७० ई० में अस्कोली (Ascoli) ने इस दिशा में विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया । ध्वनियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया गया है–

मूल स्वर (ह्रस्व) अ एँ ओ । मूल स्वर दीर्घ–आ ए ओ

(मिश्र ह्रस्व) अइ अऋ अलृ अउ अऩ अम़

एइ ऍऋ एलृ ऍउ ऍऩ ऍम़

ओइ ओऋ ओलृ ओउ ओऩ ओम़

स्वर (मिश्र दीर्घ) आइ आऋ आलृ आउ आऩ आम़

एइ एऋ एलृ एउ एऩ एम़

ओइ ओऋ ओलृ ओउ ओऩ ओम़

अन्तःस्थ (स्वर) इ ऋ लृ उ ऩ म़

अन्तःस्थ (व्यञ्जन) य् र् ल् व् न् म्

व्यञ्जन

कवर्ग-(१) क् ख् ग् घ्
(२) क़् ख़् ग़् घ़्
(३) क्व् ख्व् ग्व् घ्व्
तवर्ग- त् थ् द् ध्
पवर्ग- प् फ् ब् भ्
उष्म- स् (ज़्)

मूल भारोपीय ध्वनियों के वर्गीकरण के विषय में विद्वान् एक मत नहीं हैं, अत: ध्वनियों के वर्गीकरण में भिन्नता पाई जाती है।

इन ध्वनियों में कण्ठ्य-तालव्य कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्) ध्वनियाँ आगे चलकर अन्य भाषाओं में कण्ठ्य कवर्ग (क़्, ख़्, ग़्, घ़्) हो गईं या कुछ भाषाओं में उष्म (श्, स्) हो गयीं। इस प्रकार जिन भाषाओं में क् मूलत: बना रहा उन्हें 'केन्तुम्' वर्ग की भाषाएँ कहा गया तथा जिन भाषाओं में 'क्' बदल कर 'श्' या 'स' (उष्म) हो गया उन्हें 'शतम्' वर्ग की भाषाएँ कहा गया। इस बात को सरलता से समझने योग्य बनाने के लिए भिन्न-भिन्न भारोपीय भाषाओं से 'सौ' के प्रतीक शब्दों को लिया गया है। विद्वानों का अनुमान है कि 'सौ' के लिए मूल भारोपीय भाषा में क्म्तोम् (Kmtom) शब्द था जो बाद में 'शतम्' तथा 'केन्तुम्' भाषाओं में निम्न प्रकार हो गया--

'शतम्' वर्ग		'केन्तुम्' वर्ग	
संस्कृत	– शतम्	लैटिन	– केन्तुम्
अवेस्ती	– सतम्	ग्रीक	– हेक्टोन (He-katon)
फारसी	– सद	इटैलियन	– केन्तो
प्राकृत	– सदं, सअं	फ्रेन्च	– केन्त
हिन्दी	– सौ	स्पैनिश	– क्लेत्नो (Cletno)
लिथुआनी	– शिम्तस् (Szimtas) या स्जिम्तास	प्रचीन आइरिश	– केट्
		वर्तमान आइरिश	– क्यूड
प्राचीन बुल्गारी	– सुतो	गेलिक	– क्यूड (Ceud)
रूसी	– स्तो	ब्रीटन	– कैन्ट
		वेल्श	– कैन्ट (Cant)
		तुखारियन	– कन्ध (Kandh)

इस प्रकार उपरिलिखित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल भारोपीय भाषा की 'क्' ध्वनि 'केन्तुम्' वर्ग की भाषाओं में क्' ही बनी रही किन्तु 'शतम्' वर्ग की भाषाओं में परिवर्तित होकर 'श्' या 'स' हो गयी। केन्तुम् वर्ग में लैटिन

ग्रीक, इटैलियन, कैल्टिक, ट्यूटानिक, तोखारी, भारतीय हिट्टाइट आदि भाषाएँ आती हैं तथा शतम् या सतम् वर्ग में भारतीय भाषाएँ, ईरानी, आर्मोनियन, वाल्टिक-स्लैवोनिक, अल्वानियन आदि भाषाएँ सम्मिलित की जाती हैं। इस विभाजन को कुछ विद्वान् क्रमश: पश्चिमी वर्ग (केन्तुम्) तथा पूर्वी वर्ग (शतम्) कहते हैं किन्तु यह वर्गीकरण उचित नहीं माना गया है।

मूल भारोपीय भाषा की 'न्' अथवा 'म्' ध्वनियों के साथ 'शतम्' वर्ग में मात्र एक स्वर आता है किन्तु ध्वनियाँ (न् ब म्) लुप्त हो जाती हैं। तथा केन्तुम् वर्ग में एक अतिरिक्त स्वर का और समावेश हो जाता है।

उदाहरणार्थ-

मूल भारोपीय भाषा-dekom (देक्म्=देक्+म्)

लैटिन=देकेम (decem)

गाथिक=तैखुम (taihum)

संस्कृत=दश

इसी प्रकार-

मूल भारोपीय='क्म्तोम्' (kmtom)

लैटिन=सेन्टम् (centum)

संस्कृत=शतम्

मूल भारोपीय=स्प्त्न (septon)

लैटिन=सेप्तम् (septum)

संस्कृत=सप्त

मूल भारोपीय भाषा की कण्ठ्योष्ठ कवर्ग ध्वनियाँ केन्तुम् वर्ग की भाषाओं में उसी प्रकार पाई जाती हैं किन्तु 'शतम्' वर्ग की भाषाओं में कण्ठ्यत्व ही हो जाती हैं, ओष्ट्यत्व का लोप हो जाता है। अर्थात् मूल भारोपीय भाषा की 'क्व्' ध्वनि लैटिन भाषा में 'क्व्' ही बनी रही किन्तु संस्कृत आदि में क् हो गयी तथा ओष्ठ्य ध्वनि व् का अभाव हो गया।

भारोपीय भाषाओं को 'केन्तुम्' तथा 'शतम्' वर्गों में बांटा जाता है। इन वर्गों को निम्न भागों में विभाजित किया गया है-

केन्तुम् वर्ग-इस वर्ग की भाषाओं को छः शाखाओं में विभाजित किया गया है-

(१) केल्टिक

(२) ट्यूटानिक (जर्मन)

(३) लैटिन (इटैलियन)

(४) हेलेनिक या ग्रीक

(५) हिट्टाइट (हित्ती)

(६) तोखारी (तुखारी)

शतम् वर्ग–इस वर्ग को निम्न पाँच शाखाओं में बांटा गया है–

(१) अल्बानी (अल्बेनियन) या इलीरियन

(२) बाल्टिक

(३) स्लैवोनिक

(४) आर्मीनी (आर्मेनियन)

(५) आर्य (हिन्द-ईरानी)

केन्तुम् वर्ग

(१) **कैल्टिक**–इस शाखा के बोलने वाले प्राचीन काल में समस्त पश्चिमी तथा मध्य यूरोप एवं एशिया माइनर में रहते थे। आजकल इस शाखा के बोलने वाले यूरेशिया के पश्चिमी भाग के कुछ क्षेत्रों में रहते हैं। ये लोग आयरलैण्ड, वेल्स, स्काटलैण्ड, मानद्वीप एवं ब्रिटेनी व कार्नवाल में रहते हैं। इस शाखा की भाषाएँ हैं– स्काटलैण्ड की स्कॉच या स्काटिश भाषा (Scotch or Scottish), आयर्लैण्ड की आइरिश (Irish), वेल्स की वेल्श (Welsh) भाषा तथा फ्रांस के उत्तर पश्चिम क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा ब्रेटन (Breton) जो ब्रिटेनी प्रान्त की भाषा है। कैल्टिक भाषा लैटिन भाषा से बहुत समानता रखती है।

लैटिन तथा कैल्टिक दोनों भाषाओं में पुँल्लिग तथा नपुंसकलिंग ओकारान्त संज्ञाओं में सम्बन्ध कारक हेतु 'ई' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों भाषाओं में क्रियार्थक संज्ञा बनाते समय शन (Tion) प्रत्यय प्रयुक्त किया जाता है। दोनों भाषाओं में कर्मवाच्य की रचना समान रूप से होती है। कैल्टिक तथा लैटिन दोनों भाषाओं में दो प्रकार के उच्चारण भेद पाये जाते हैं। प्रथम 'क' वर्ग तथा दूसरा 'प' वर्ग। 'क' वर्ग गायलिक कहलाता है जिसमें आयरिश, स्कॉच तथा मैक्स सम्मिलित की जाती हैं। 'प' वर्ग ब्रिटानिक कहलाता है जिसमें वेल्स, कार्निश तथा ब्रिटन भाषाएँ आती हैं।

(२) **ट्यूटानिक (जर्मन)**–यह शाखा भारोपीय परिवार की महत्त्वपूर्ण तथा श्रेष्ठ शाखा है। अंग्रेजी भी इसी शाखा की एक भाषा है जो विश्व की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषा है। ये भाषाएँ संयोगावस्था से वियोगात्मक हो रही हैं। इन भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन प्रधानतया होता है। इन भाषाओं में बलात्मक स्वराधात का विकास हुआ है। इन भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन दो बार हुआ। पहला वर्ण-परिवर्तन प्रागैतिहासिक काल में हुआ था। अतः ये भाषाएँ यूरोपीय भाषाओं से कुछ दूर सी हो गईं। दूसरा वर्ण परिवर्तन सातवीं शताब्दी में घटित हुआ। इस शाखा को ३ भागों में बाँटा गया है–(१) पूर्वी उप शाखा, (२) उत्तरी उप शाखा, (३) पश्चिमी उपशाखा।

(१) **पूर्वी उपशाखा**–इसके अन्तर्गत प्राचीन 'गॉथिक' भाषा आती है जो अब लुप्त

हो चुकी है । यह भाषा संस्कृत से अधिक साम्य रखती थी । (२) **उत्तरी उपशाखा**–इसके अर्न्गत प्राचीन नार्स (Norse) या आइसलैण्डी भाषा आती है । इसमें सातवीं शदी से साहित्य पाया जाता है । ११ वीं शताब्दी में यह पश्चिमी तथा पूर्वी दो भागों में बंट गई । पश्चिमी के अन्तर्गत आइसलैण्डी तथा नार्वेजी (नार्वे की भाषा) तथा पूर्वी के अन्तर्गत स्वीडी (स्वीडन की भाषा) तथा डेनमार्क की डेनिश भाषा है । (३) **पश्चिमी उपशाखा**–इसके अन्तर्गत दो भाग हैं–प्रथम–उच्च जर्मन तथा द्वितीय-निम्न जर्मन । उच्च जर्मन का क्षेत्र जर्मनी का दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र है तथा निम्न जर्मन का क्षेत्र उत्तरी मैदानी भाग है । निम्न जर्मन भाषा से डच भाषा (हालैण्ड की), बेल्जियम की फ्लेमी तथा अंग्रेजी का विकास हुआ है । अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है जिसमें सातवीं शताब्दी से साहित्य पाया जाता है ।

(३) **लैटिन (इटैलिक)**–इस भाषा का प्रधान क्षेत्र इटली देश था । इस शाखा की दो प्राचीन भाषाएँ भी थीं–(१) 'ओस्कन' (Oscan) तथा (२) 'अम्ब्रियन' (Umbrian) । इन दोनों भाषाओं का लोप ५०० ई० पू० में हो गया था । बाद में इसी क्षेत्र पर लैटिन का विस्तार हो गया । यह प्राचीन रोम साम्राज्य की भाषा रही है । रोम नगर के समीप के क्षेत्रों की भाषा लैटिन थी । इस भाषा के दो रूप पाये जाते हैं–(१) साहित्यिक या लिखित तथा (२) कथित । लैटिन भाषा में रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय वालों का धार्मिक साहित्य सुरक्षित है । लैटिन भाषा (बोलचाल) से वर्तमान फ्रेञ्च, इटैलिक, स्पेनिश, पुर्तगाली तथा रूमानी भाषाओं का विकास हुआ है । फ्रेञ्च भाषा संसार की उन्नत, श्रेष्ठ एवं समृद्ध भाषाओं में मानी जाती है । रोम के समीप की लैटिन को 'रोमान्स' नाम भी दिया जाता है । रूमानी भाषा रूमानिया में बोली जाती है । यूरोपीय भाषाओं पर लैटिन का उसी प्रकार प्रभाव था जैसे भारतीय आर्य्य भाषाओं पर संस्कृत का है । यह भाषा वियोगात्मक है । कैल्टिक तथा इटैलिक भाषाओं में बहुत समानता पाई जाती है ।

(४) **ग्रीक या हेलेनिक**–ग्रीक शाखा में प्राचीन काल में अनेक बोलियाँ थीं । यह भारोपीय परिवार की प्राचीनतम शाखाओं में से एक है । इसमें लिखे गए होमर कृत इलियड और ओडिसी महाकाव्यों में भाषा का प्राचीन रूप पाया जाता है जो १००० ई० पू० का है । सुकरात तथा अरस्तू द्वारा लिखे गये ग्रन्थ ग्रीक भाषा की निधि हैं । ग्रीक की प्राचीन बोलियों में दो बोलियाँ प्रमुख थीं–(१) एटिक (Atic) एवं (२) डोरिक (Doric) । ४०० वर्ष ई० पू० से एटिक भाषा प्रमुख रूप से प्रचलित हो गयी तथा इसी से आधुनिक ग्रीक भाषा का विकास हुआ है । ग्रीक भाषा तथा संस्कृत परस्पर समीप हैं । (१) ग्रीक तथा संस्कृत भाषाओं में संगीतात्मक स्वराघात की प्रधानता है । (२) दोनों भाषाएँ संयोगात्मक हैं । (३) दोनों में शब्दों के बहुत अधिक रूप पाये जाते हैं । (४) संस्कृत में परस्मैपद तथा आत्मनेपद होते हैं उसी

प्रकार ग्रीक में ऐक्टिव तथा मिडिल वायस होते हैं। (५) संस्कृत भाषा में संज्ञा और सर्वनामों के रूपों की अधिकता है तो ग्रीक में क्रिया तथा अव्यय रूपों की। (६) संस्कृत में व्यञ्जन अधिक पाये जाते हैं लेकिन ग्रीक में स्वर अधिकता से पाये जाते हैं। (७) संस्कृत तथा ग्रीक भाषाओं में द्विवचन, समास, निपात आदि की समानताएँ पाई जाती हैं।

ग्रीक भाषा का क्षेत्र अब संकुचित हो गया है। रोमन साम्राज्य के समय भूमध्य सागर के चारों ओर के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता था। ग्रीक शाखा की मुख्य भाषाएँ लोकानियन, मेस्सेनियन, कारिथियन, मेगारन, क्रीटन, फोक्सिन, लोक्रिमन, एलिसन, थेसालेनियन, एओलिमन, बोइओटिअन, इओनिक, एट्रिक आदि हैं।

(५) **हिट्टाइट (हित्ती)**–इस भाषा के संबन्ध में ज्ञान उस समय हुआ जब १९०६-७ में उत्तरी एशिया माइनर के बोगाज कोई स्थान पर हुई खुदाई में कुछ कीलाक्षर लेख प्राप्त हुए। यह भाषा एशिया माइनर में १९०० से १३०० ई० पू० बोली जाती थी। प्राप्त लेखों में प्रथम हित्ती साम्राज्य (१९०० ई० पू० से १६५० ई० पू०) तथा द्वितीय हित्ती साम्राज्य के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है तथा तत्कालीन भाषा एवं इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। हित्ती भाषा की कुछ विद्वान् अनिश्चित वर्ग की भाषा मानते हैं किन्तु अध्यापक हाञ्जी के अनुसार यह भारोपीय परिवार की ही भाषा है। हित्ती भाषा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–(१) हित्ती भाषा की विभक्तियाँ तथा सर्वनाम संस्कृत तथा लैटिन से बहुत समानता रखते हैं। (२) कारक तथा क्रिया रचनाएँ भारोपीय भाषाओं के समान हैं। (३) संस्कृत तत् (वह) का रूप भी हित्ती में 'तत्' ही मिलता है लेकिन संस्कृत कः (कौन) के लिए हित्ती भाषा में 'कुइस' रूप प्राप्त होता है। हित्ती भाषा के कुछ लक्षण सेमेटिक भाषाओं से भी मिलते हैं।

(६) **तोखारी (तुखारी) भाषा**–यह मध्य एशिया के तुरफान की भाषा है। इसका ज्ञान सन् १९०४ ई० में मध्य एशिया के चीनी तुकिस्तान (सिक्यांग प्रदेश) में तोखारी भाषा के लेख प्राप्त होने से हुआ है। यह शकों की भाषा है तथा ७०० ई० तक यह लुप्त हो गयी थी। तोखारी भाषा यूराल-अल्टाई से प्रभावित है। तोखारी की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–(१) इस भाषा में स्वरों संबन्धी जटिलता अल्प है। (२) संख्या शब्द तथा सर्वनाम भारोपीय परिवार की तरह हैं। (३) शब्द भंडार संस्कृत से बहुत समानता रखता है। (४) तोखारी में संस्कृत की भाँति आठ विभक्तियाँ पाई जाती हैं। (५) क्रिया रूप भी सरल हैं। (६) सौ' शब्द के लिए तोखारी में 'कन्ध' शब्द पाया जाता है, यही कारण है कि इसकी गणना 'केन्तुम्' वर्ग में की गई है। (७) इस भाषा में संस्कृत की ही तरह सन्धि नियम पाये जाते हैं।

संस्कृत से इसकी समानता निम्न प्रकार देखी जा सकती है--

संस्कृत	तोखारी
पितृ	पाचर
मातृ	माचर
भ्रातृ	प्राचर
वीर	वीर (wir)

शतम् वर्ग--

इस वर्ग की प्रमुख शाखाएँ पाँच हैं जो इस प्रकार हैं--

(१) **अल्बेनियन या इलीरियन**- इस भाषा का क्षेत्र एड्रियाटिक सागर के तटीय क्षेत्र में कारिन्थियन की खाड़ी से द० पू० इटली तक स्थित था। इसकी अन्य भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं केवल अल्वानी भाषा मात्र शेष है। यह अल्बानिया के पहाड़ी क्षेत्र में बोली जाती है तथा इसके बोलने वाले १५ लाख के लगभग हैं। अल्बानी की दो प्रधान बोलियाँ हैं- (१) घेघ तथा (२) टोस्क। घेघ उत्तरीभाग में तथा टोस्क दक्षिणी भाग में बोली जाती हैं। अल्बानी में १५वीं शताब्दी से लेख मिलते हैं। इस भाषा में ग्रीक, लैटिन, तुर्की, स्लावोनिक भाषाओं के शब्द अधिक मात्रा में मिल गए हैं।

(२) **बाल्टिक**- बाल्टिक शाखा के अन्तर्गत तीन भाषाएँ सम्मिलित हैं- (१) प्राचीन प्रशन (प्रशियाई) (Old Prussian), (२) लिथुआनी एवं (३) लेटी (Lettic)। इनमें प्राचीन प्रशन जर्मनी देश के प्रशिया प्रदेश की भाषा थी जो अब लुप्त हो चुकी है। इस भाषा का साहित्य १६वीं शताब्दी तक पाया जाता है। लिथुआनी क्षेत्र की भाषा है जो प्रशिया क्षेत्र के उत्तर पूर्व में स्थित है। इस भाषा में १६वीं शताब्दी से साहित्य प्राप्त होता है। इस भाषा का विकास अत्यन्त मन्द गति से हुआ है। अतः भाषा सम्बन्धी परिवर्तन बहुत कम हुए हैं। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इस भाषा का अत्यधिक महत्त्व है। यह भाषा ग्रीक तथा संस्कृत के बहुत समीप है। इसमें संस्कृत ग्रीक की भाँति संगीतात्मक स्वराधात तथा द्विवचन भी पाये जाते हैं। लेटी या लेटिक (Lettic) भाषा लैटविया (Latuia) राज्य की भाषा है। इसमें भी १६वीं शताब्दी के बाद से साहित्य पाया जाता है। यह राज्य अब रूस में सम्मिलित है।

(३) **स्लैवोनिक (स्लावी)**- यह भाषा काले सागर के उत्तर में पूर्वी यूरोप के बहुत बड़े क्षेत्र में फैली है। इसमें रूस, पोलैंड, गलसिया, आस्ट्रिया, बोहेमिया, सार्बिया, मोराबिया, बल्गारिया तथा स्लावोनिया क्षेत्र आते हैं। इसमें ९०० ई० से साहित्य प्राप्त होता है। स्लावी के ३ उपविभाग हैं- (१) दक्षिणी, (२) पश्चिमी तथा (३) पूर्वी। (१) दक्षिणी स्लावी भाषाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण तथा प्राचीन भाषा बल्गेरियन है। इसमें ९०० ई० का लिखा बाइबिल का अनुवाद प्राप्त होता है।

संस्कृत तथा ग्रीक के बहुत समीप है तथा इसमें संस्कृत की तरह तीन वचन पाये जाते हैं। वर्तमान बल्गेरियन पूरी तरह वियोगात्मक हो गयी है तथा बहुत से विदेशी शब्द (ग्रीक, रूमानी, अल्वानी तथा तुर्की भाषाओं के) इस में घुल-मिल गए हैं। दक्षिणी स्लावी भाषाओं में दूसरी प्रमुख भाषा सर्बो-क्रोटी (Serbo-Croatian) है जो यूगोस्लाविया में बोली जाती है। पश्चिमी स्लावी भाषाओं में चेक (Czech) तथा पोलिश (Polish) भाषाएँ प्रमुख है। चेक भाषा चेकोस्लोवाकिया की भाषा है। पोलिश भाषा पोलैंड में बोली जाती हैं। इस भाषा में १३ वीं शताब्दी से साहित्य प्राप्त होता है। अब यह अत्यन्त विकसित भाषा है। पूर्वी स्लावी भाषाओं का १९०० ई० से साहित्य पाया जाता है। इसमें महारूसी, श्वेत रूसी, लघुरूसी भाषाएँ प्रमुख हैं। इनमें महारूसी भाषा सबसे प्रधान है यह मास्को के आसपास बोली जाती है तथा १८वीं शताब्दी से यह टकसाली तथा राजभाषा के रूप में स्थापित हो गई है। इसके बोलने वाले १० करोड़ से अधिक हैं तथा अब यह विश्व की महत्त्वपूर्ण भाषाओं में से एक है।

श्वेत रूसी रूस के दक्षिणी भागों में बोली जाती है। लघु रूसी यूक्रेन प्रान्त की भाषा है। इसे रूथेनियन (Ruthenian) भी कहते हैं। लघुरूसी के बोलने वाले आस्ट्रिया के गलीसिया प्रान्त में भी पाये जाते हैं। इसके बोलने वाले ३ करोड़ व्यक्ति हैं।

(४) **आर्मीनी (आर्मेनियन)**– आर्मेनियन भाषाएँ आर्मीनिया में बोली जाती हैं। ये ८०० ई० से वहाँ प्रचलित हैं। इनमें ईरानी शब्द अधिक पाये जाते हैं। इस शाखा की वर्तमान भाषाएँ अपने प्राचीन रूप से बहुत परिवर्तित हो गयी हैं। इन भाषाओं में काकेशी तथा सामी भाषाओं के शब्द भी पाये जाते हैं। प्राचीन आर्मीनी का साहित्य ४०० ई० से ११०० ई० तक पाया जाता है। इसमें लिखा अधिकांश साहित्य धार्मिक है जिसका प्रयोग धार्मिक कार्यों में संस्कृत तथा लैटिन की तरह होता है। इस शाखा की भाषाएँ बाल्टिक, स्लैवोनिक एवं भारत-ईरानी भाषाओं के बीच स्थित हैं। यह शाखा काला सागर तथा काकेशस पर्वत के दक्षिणी भागों में बोली जाती है। अनुमानतः इसके बोलने वाले ५० लाख हैं। यूरोप तथा एशिया की सीमा पर बोली जाने वाली भाषा फ्रीजियन' इसी शाखा में गिनी जाती है। आधुनिक आर्मेनियन के दो मुख्य रूप हैं। एक बोली यूरोपीय भाग में बोली जाती है जिसे स्तबुल कहते हैं तथा दूसरी बोली एशियाई भाग में बोली जाती हैं जिसे अराराट कहते हैं। स्वरों के दृष्टिकोण से आर्मीनी शाखा यूरोपीय भाषाओं के समीप है किन्तु व्यंजनों की दृष्टि से भारत-ईरानी भाषाओं के पास है।

(५) **आर्य (हिन्द-ईरानी)**– इस शाखा को 'भारत-ईरानी' भी कहते हैं। यह भारोपीय परिवार की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शाखा है। इसमें विश्व का प्राचीनतम एवं

श्रेष्ठ साहित्य पाया जाता है। 'ऋग्वेद' इस शाखा का प्राचीनतम शुद्ध रूप प्रस्तुत करता है। पारसियों का धार्मिक ग्रन्थ 'अवेस्ता' भी प्राचीन है जो ७०० ई० पू० का है। भाषाविज्ञान के अध्ययन हेतु इस शाखा की सामग्री का बहुत महत्त्व है। वस्तुतः 'भाषाविज्ञान' का प्रारम्भ पाश्चात्य विद्वानों द्वारा इस शाखा से परिचित होने के बाद हुआ। इस शाखा के आर्यों में कुछ ईरान में बस गए तथा कुछ भारतवर्ष में आकर बस गए। इसी आधार पर आर्य शाखा के दो भाग हो गए-(१) भारतीय शाखा तथा (२) ईरानी शाखा। इसी से आर्यशाखा को 'भारत-ईरानी' भाषा कुल कहते हैं। 'भारत-ईरानी 'परिवार' की तीन शाखाएँ हैं- १- ईरानी, २- दरद, ३- भारतीय।

(१) **ईरानी**- इसमें साहित्य रचना अत्यन्त प्राचीन समय से प्रारम्भ हो गयी थी किन्तु इसका अधिकांश प्राचीन साहित्य यूनानी तथा अरब आक्रमणकारियों ने जलाकर नष्ट कर डाला। आधुनिक समय में इसमें प्राचीन साहित्य 'अवेस्ता' के रूप में तथा कुछ शिला-लेखों में पाया जाता है जो ६०० ई० पू० तक का माना जाता है। ईरानी की दो शाखाएँ प्राचीन समय से ही हैं- (१) फारसी तथा (२) अवेस्ती। फारसी भाषा ईरान के पश्चिमी भाग में बोली जाती है तथा अवेस्ती भाषा का क्षेत्र ईरान का पूर्वी भाग है। (१) **फारसी**- इस भाषा में डेरियस प्रथम (ई० पू० ५२१ ४८५) तथा अन्य एकेमेनियन राजाओं द्वारा उत्कीर्ण शिलालेखों में इसका प्राचीन रूप पाया जाता है। ससानी (Sassanian) राजाओं का समय (२२६ ई० से ६५१ ई०) फारसी का दूसरा रूप है जिसे 'पहलवी' कहते हैं। मध्यकालीन फारसी या पहलवी को दो भागों में बाँटा गया है--

(अ) **हुज्वारेश** - जिसकी लिपि तथा शब्द सेमिटिक परिवार से प्रभावित है। इसमें पारसियों का धार्मिक साहित्य भी पाया जाता है। (आ) **पारसी या पाजंद** जो सेमिटिक प्रभाव से मुक्त है तथा भारतीय पारसियों की भाषा थी। आधुनिक फारसी मुसलमानों के प्रभाव के कारण अरबी शब्दों से बोझिल है। 'शाहनामा' (फिरदौसी कृत) इसमें प्रमुख साहित्यिक रचना है। अब अरबी शब्दों के स्थान पर फारसी शब्दों के प्रयोग को प्रमुखता दी जाती है। आधुनिक फारसी की कई बोलियाँ पाई जाती हैं। ओसेटिक, कुर्दिश, बिलोदी, पश्तो, पामीरी आदि इसकी बोलियाँ हैं।

(२) **अवेस्ती**-ईरान के पूर्वी भाग की भाषा थी। इसका प्राचीन रूप पारसियों के धार्मिक ग्रन्थ 'अवेस्ता' में पाया जाता है जो एक प्राचीन कृति है। पूर्वी ईरानी (अवेस्ती) का मध्य काल का रूप 'सोग्दी' है। इसमें ईसाई तथा बौद्ध धर्म की पुस्तकें पाई गई हैं जो ईस्वी के प्रारम्भ से ८०० ई० तक की हैं। अफगानी (पश्तो), बिलोची एवं पामीरी आधुनिक ईरानी से विकसित हुई हैं।

(२) **दरद**- 'दरद' भाषाओं का विस्तार पामीर तथा पश्चिमोत्तर पंजाब

के बीच हुआ है। गठन की दृष्टि से दरद भाषा का स्थान ईरानी एवं भारतीय भाषाओं के बीच आता है। यह भारतीय भाषाओं से अधिक प्रभावित है। भारत में इसे 'पैशाची प्राकृत' कहा गया है। इसका प्रभाव मराठी, सिन्धी, पंजाबी पर भी पड़ा है। दरद शाखा की ३ उपशाखाएँ हैं- (१) दरद, (२) काफिर तथा (३) खोवार। काफिर भाषा खोवार भाषा के पश्चिम में बोली जाती है। खोवार भाषा दर्दिस्तान तथा ईरानी के बीच बोली जाती है। इसकी प्रधान बोली 'चित्राली' है। इन भाषाओं में साहित्य नहीं पाया जाता है। दरद शाखा की भाषाएँ एवं बोलियाँ ये हैं— शीना-(गिलगिटी, ब्रोक्या), कश्मीरी (कष्टवारी) कोहिस्तानी- मैया, तोखारी, गार्वी आदि।

(३) **भारतीय आर्य भाषा**- भारतीय-आर्य-भाषाओं को ३ भागों में बाँट कर सुविधानुसार अध्ययन किया जा सकता है-

(१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल (२००० ई०पू० से ५०० ई०पू०तक)
(२) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल (५००ई०पू० से १०००ई०पू० तक)
(३) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल (१०००ई० से आधुनिक समय तक)

(१) **प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल**- (लगभग २००० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक)- प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का रूप वैदिक साहित्य में सुरक्षित रूप से पाया जाता है। 'ऋग्वेद' इसका सबसे प्राचीन साहित्य है। वेदों के अतिरिक्त अन्य कृतियों जैसे ब्राह्मण, आरण्यक, तथा उपनिषद् आदि की भाषा वैदिक संस्कृत (छन्दस्) हैं। संस्कृत के दो रूप माने जाते हैं- प्रथम वैदिक संस्कृत तथा द्वितीय रूप लौकिक संस्कृत का है। लौकिक संस्कृत में रामायण, महाभारत तथा संस्कृत के अन्य ग्रन्थ और शिला-लेख सम्मिलित किए गये हैं। आगे चल कर संस्कृत में साहित्य रचना होती रही लेकिन जनभाषा का रूप परिवर्तित होने लगा था और पाली तथा प्राकृतों का विकास हो गया।

(२) **मध्यकालीन आर्यभाषा काल** (५०० ई० पू०- १००० ई० पू०)- इस समय का साहित्य तत्कालीन जनभाषाओं में (पाली तथा प्राकृतों में) पाया जाता है। इस काल की भाषाओं में उच्चारण तथा व्याकरण की दृष्टि से अन्तर हो गया था तथा ये संस्कृत से भिन्न हो गई थीं। (१) पाली भाषा में बौद्धधर्म का साहित्य तथा अशोक के शिलालेख पाये जाते हैं। पाली भाषा को **प्राचीन प्राकृत** कहा जाता है। (२) दूसरा भेद **मध्य प्राकृत** नाम का है (इनका काल ५०० ई० पू० से ५०० ई० तक है)। मध्य प्राकृत में जैन प्राकृत तथा अन्य प्राकृतों- **मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, पैशाची** तथा **महाराष्ट्री** को सम्मिलित किया जाता है। (३) प्राकृतों का तीसरा भेद **अन्त्य प्राकृत** या **अपभ्रंश** है। अपभ्रंश साहित्य का रचना काल ५०० ई० से १००० ई० तक माना जाता है। अपभ्रंश से ही आधुनिक आर्य भाषाओं का

विकास हुआ है ।

(३) **आधुनिक आर्यभाषाकाल** (१००० ई० से अब तक)–अपभ्रंश या अवहट्ट के विभिन्न रूपों से १००० ई० के बाद से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, सिन्धी, बंगला, असमी, उड़िया तथा मराठी सम्मिलित हैं। राजस्थानी तथा बिहारी-हिन्दी की भाषाएँ हैं। उत्पत्ति के अनुसार इन भाषाओं को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है––

(१) **शौरसेनी अपभ्रंश**– इस अपभ्रंश से निकली भाषाएँ–हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती एवं पहाड़ी भाषाएँ हैं।

(२) **मागधी अपभ्रंश**– इससे निकली भाषाएँ बिहारी, उड़िया, बंगला एवं असमी हैं।

(३) **अर्धमागधी**– इससे पूर्वी हिन्दी विकसित हुई है।

(४) **महाराष्ट्री**– इससे मराठी का विकास हुआ है।

(५) **बाचड़ अपभ्रंश**– इससे सिन्धी विकसित हुई है।

(६) **केकय अपभ्रंश**– इससे लहंदा भाषा का विकास हुआ है।

सुनीति कुमार चटर्जी ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को इस प्रकार विभाजित किया है––

(क) उदीच्य (उत्तरी) वर्ग– (१) सिंधी, (२) लहंदा, (३) पंजाबी।

(ख) प्रतीच्य (पश्चिमी) वर्ग–(४) गुजराती, (५) राजस्थानी।

(ग) मध्यदेशीय वर्ग– (६) पश्चिमी हिन्दी।

(घ) प्राच्य (पूर्वी) वर्ग- (७) पूर्वी हिन्दी, (८) बिहारी, (९) उड़िया, (१०) बंगला (११) असमी।

(ङ) दाक्षिणात्य (दक्षिणी) वर्ग– (१२) मराठी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार के भाषा परिवारों में भारोपीय परिवार अत्यन्त विस्तृत एवं समृद्ध है। भारोपीय परिवार की आर्य शाखा (भारत-ईरानी) का भी विशेष महत्त्व है। संसार का प्राचीनतम साहित्य इसी शाखा की निधि है।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा– भारतीयों की प्राचीन संस्कृत का ज्ञान हमें प्राचीन भारतीय साहित्य द्वारा होता है। भारतीयों विशेषत: आर्यों का प्राचीनतम साहित्य प्राचीन भारतीय आर्य भाषा संस्कृत में सुरक्षित है। 'वेद' हमारी प्राचीनतम अमूल्य निधि हैं। इस भाषा के साहित्य-सृजन के समय के सम्बन्ध में कोई भी विद्वान् निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कह सकता है। विदेशी पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत साहित्य का सम्यक् अनुशीलन किया है तथा उन्होंने वेदों का काल ई० पू० १००० वर्ष तक माना है किन्तु मैक्समूलर जैसे प्रसिद्ध पाश्चत्य विद्वान् ने वेदों का रचना

काल ईसा से कई हजार शताब्दी पूर्व माना है; साथ ही कहा है कि विश्व की कोई भी शक्ति ऋग्वेद आदि के रचना काल के विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कह सकती है। विश्व का प्राचीनतम साहित्य इस समय की भाषा में पाया जाता है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल आर्यों के भारत प्रवेश से लेकर ५०० ई० पू० माना जाता है। इस काल की भाषा के दो रूप पाये जाते हैं– (१) वैदिक संस्कृत तथा (२) लौकिक संस्कृत। सम्मिलित रूप से संस्कृत ही कह दिया जाता है।

(१) **वैदिक संस्कृत**–इस काल की भाषा को 'छन्दस्' या 'प्राचीन संस्कृत' भी कहते हैं। छन्दस् भाषा में हिन्दू धर्म के मूलाधार वेदों की रचना की गई। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् साहित्य का प्रणयन वैदिक संस्कृत में ही हुआ है। वैदिक साहित्य का निर्माण एक काल में न होकर अधिक समय में हुआ है। ऋग्वेद का द्वितीय मण्डल से लेकर नवें मण्डल तक का भाग भाषा की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भाषा का क्रमिक विकास होता गया है। जब आर्यों की निवास भूमि सप्तसिन्धु (पंजाब के आस-पास का क्षेत्र) थी उस काल की साहित्यिक रचनाओं में वैदिक संस्कृत का प्राचीन रूप मिलता है। मध्यदेश में हुई रचनाओं में वैदिकभाषा का निखरा हुआ रूप पाया जाता है। उसके बाद भी आर्यों का विस्तार पूर्व की ओर होता रहा, उस समय की भाषा भी अपने विकसित रूप से और आगे बढ़ चुकी थी। वैदिक संस्कृत में यत्र-तत्र भाषा संबन्धी अन्तर पाया जाता है। अत्यन्त प्राचीन रूप में रेफ का प्रयोग अधिकता से किया जाता था किन्तु बाद की संस्कृत में रेफ का प्रयोग कम हो गया तथा लकार के प्रयोग का आधिक्य हो गया। ऋग्वेद की प्राचीनतम भाषा में पुँल्लिग आकारान्त शब्दों के प्रथमा द्विवचन में 'आ' का प्रयोग अधिक किया जाता था जो आगे चल कर 'औ' के रूप में प्रचलित हो गया जैसे 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' में आकार का प्रयोग ऋग्वेद के दशम मण्डल में 'मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम्' में औकार के रूप में प्रचलित हो गया। प्राचीन भाषा में 'तुमुन्' प्रत्यय का अधिक प्रयोग हुआ है। भाषा सम्बन्धी भिन्नता लौकिक संस्कृत की तुलना में अधिक हो गयी थी।

वैदिक भाषा की ध्वनियाँ– वैदिक भाषा में मूलतः बावन ध्वनियाँ हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) **मूलस्वर**– **ह्रस्व**– अ, इ, उ, ऋ, ऌ

दीर्घ– आ, ई, ऊ, ॠ

(२) **संयुक्त स्वर**– ए (अ इ), ओ (अ उ), औ (आ उ)

(३) **स्पर्श व्यञ्जन**– **कण्ठ्य**– क्, ख्, ग्, घ्, ङ्

तालव्य–च्, छ्, ज्, झ्, ञ् ।

मूर्धन्य–ट्, ठ्, ड्, ळ, ढ्, ळह, ण् ।

दन्त्य–त्, थ्, द्, ध्, न् ।

ओष्ठ्य–प्, फ्, ब्, भ्, म् ।

(४) अन्तःस्थ–य्, र्, ल्, व्

(५) ऊष्म–श् (तालव्य), ष् (मूर्धन्य), स् (दन्त्य)

(६) महाप्राण–ह्

(७) शुद्ध अनुनासिक–अनुस्वार –ं

(८) अघोष संघर्षी– : विसर्ग (विसर्जनीय)

ᳵ जिह्वामूलीय

ᳶ उपध्मानीय

उपर्युक्त ध्वनियों में कुछ के विषय में सभी विद्वान् एक मत नहीं है। कुछ लोग 'ए' तथा 'ओ' को मूल स्वर मानकर उनका संयुक्त रूप ऐ तथा औ मानते हैं। कुछ विद्वान् संस्कृत की मूर्द्धन्य ध्वनियों को द्रविड़ भाषाओं से ली गई बताते हैं। घोष 'ह' का अघोष रूप 'ह' विसर्ग (:) माना जाता है। जिह्वामूलीय का उच्चारण 'ख' की तरह होता था तथा उपध्मानीय का उच्चारण 'फ' की तरह था। ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार 'ऋ' ध्वनि का उच्चारण 'वर्स्त्य' (तवर्ग) माना गया था। 'ॡ' ध्वनि का प्रयोग बहुत कम होता है। वैदिक भाषा में ड् तथा ढ् ध्वनियाँ जब दो स्वरों के बीच आती हैं तो उनका रूप 'ढ्' तथा 'ल्ह' की भाँति होता है। वैदिक भाषा में कहीं कहीं 'स्' तथा 'म्' से पहले आने वाले स्' की जगह त् तथा द् हो जाते हैं।

वैदिक भाषा की ५ अनुनासिक स्पर्श-ध्वनियों में 'न्' तथा 'म्' ध्वनियाँ स्वतंत्र रूप से शब्द में किसी भी प्रकार प्रयोग की जा सकती हैं (अर्थात् प्रारम्भ में, बीच में, अन्त में) ङ्, ञ्, न् अनुनासिक स्पर्श ध्वनियाँ शब्द के प्रारम्भ में प्रयोग नहीं की जाती हैं। ङ् का प्रयोग कण्ठ्य ध्वनियों के पहले, ञ् का तालव्य ध्वनियों के पहले तथा न् का प्रयोग मूर्द्धन्य ध्वनियों के पहले किया जाता है। संस्कृत की ध्वनि 'श्' (तालव्य) का विकास 'इण्डो-ईरानी' शाखा में हुआ। दन्त्य 'स' मूल भारोपीय भाषा की ध्वनि है। मूर्धन्य 'ष' संस्कृत की (भारतीय) ध्वनि है। (:) विसर्ग या विसर्जनीय ध्वनि का विकास स् या र् ध्वनि से हुआ है। जब कवर्ग ध्वनियों से पहले विसर्ग आता है तो उच्चारण 'जिह्वामूलीय' होता है तथा विसर्ग पवर्ग ध्वनियों से पहले आता है तो उच्चारण 'उपध्मानीय' होता है।

लौकिक संस्कृत :–वैदिक संस्कृत प्रगति के पथ पर बढ़ती हुई लौकिक संस्कृत के रूप में प्रतिष्ठित हुई। 'लौकिक संस्कृत' रूप धारण करते-करते वैदिक भाषा में कुछ अन्तर आ गए थे। इसी भिन्नता के कारण इसे लौकिक संस्कृत, देववाणी, देवभाषा

कहा गया है । इसका साहित्य ८वीं शताब्दी ई० पू० से प्रारम्भ हो जाता है । ५०० ई० पू० तक संस्कृत बोलचाल या जनसम्पर्क की भाषा रही । धीरे-धीरे इसके रूप में भी परिवर्तन होने लगे तो पाणिनि तथा अन्य वैयाकरणों ने साहित्यिक संस्कृत के शुद्ध रूप को बनाए रखने के लिए व्याकरण बनाए । पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' इनमें सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई । संस्कृत का साहित्यिक रूप तो नियमबद्ध होकर आज भी वैसा ही है किन्तु बोलचाल की भाषा विकसित होती रही तथा बाद में प्राकृत, अपभ्रंश आदि रूपों में परिवर्तित हो गयी । संस्कृत साहित्य बड़ा विशाल है । महाभारत, रामायण, महाकाव्यों की रचना से लेकर अब तक संस्कृत साहित्य में रचनाएँ होती रही हैं । संस्कृत का प्रभाव सभी भारतीय भाषाओं पर पड़ा है तथा भारत के बाहर भी चीनी, जापानी, तिब्बती, द० पू० एशियाई देशों की भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव मिलता है । वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत की ध्वनियाँ बहुत कुछ मिलती हैं । वैदिक संस्कृत की कुछ ध्वनियाँ जैसे ळ्, ळ्ह्, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ध्वनियाँ लौकिक संस्कृत में नहीं पाई जाती हैं । वैदिक संस्कृत में स्वर तीन प्रकार के थे—(१) उदात्त, (२) अनुदात्त तथा (३) स्वरित । स्वरों के उच्चारण पर विशेष ध्यान रखा जाता था । स्वर परिवर्तन से अर्थपरिवर्तन भी हो जाता था । स्वर की शुद्धता का कितना महत्त्व था, यह इस श्लोक से प्रकट है—

"मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

संस्कृतभाषा की रूपरचना--संस्कृत के पदों को दो भागों में बाँटा गया है—संज्ञा तथा क्रिया । संज्ञाएँ दो प्रकार की अजन्त तथा हलन्त होती हैं । अच् का अर्थ हुआ स्वर अतः अजन्त उन्हें कहते हैं जिनके बाद में स्वर आता है । इसी प्रकार हल् का अर्थ हुआ व्यञ्जन । हलन्त का अर्थ हुआ कि व्यंजन अन्त में है जिसके । संस्कृत भाषा में तीन लिंग पाये जाते हैं- (१)पुँल्लिग, (२) स्त्रीलिंग, तथा (३) नपुंसक लिंग । इसके अतिरिक्त आठ विभक्तियाँ (कारक) पायीं जाती हैं । प्रथमा (कर्त्ता), द्वितीया (कर्म), तृतीया (करण), चतुर्थी (सम्प्रदान), पञ्चमी (अपादान), षष्ठी (संबन्ध), अधिकरण (सप्तमी) तथा सम्बोधन । संज्ञा शब्दों के साथ रूप बनाते समय सुप् प्रत्यय लगाये जाते हैं । विशेषण-विशेष्य के अनुकूल विभक्तियाँ, वचन एवं लिंग बदलते हैं । विशेषण तथा संख्यावाची शब्द संज्ञा के अनुसार ही अधिकतर चलते हैं । सर्वनाम संस्कृत में उन शब्दों को माना जाता है जिनकी सर्वनामों के अन्तर्गत गणना हुयी है । सर्वनाम शब्दों के रूप सात विभक्तियों में चलते हैं । सम्बोधन इन रूपों में नहीं पाया जाता है ।

संस्कृत के क्रिया रूपों को कई भागों में बाँटा गया है—(१) कर्तृवाच्य, (२) कर्मवाच्य, (३) भाववाच्य, (४)परस्मैपद, (५)आत्मनेपद, (६) प्रेरणार्थक णिजन्त ।

हर धातु के रूप दश लकारों में पाये जाते हैं सभी का नाम 'ल' से प्रारम्भ होने से इनको लकार कहा गया है। लकार दश हैं–लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ । लिङ् लकार के दो भेद हैं–आशीर्लिङ् तथा विधिलिङ् । हर लकार में तीन वचन (एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन) होते है तथा तीन पुरुष–उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा प्रथम अथवा अन्य पुरुष हैं। धातुएँ कई गणों में विभाजित हैं। इन गणों के नाम इस प्रकार हैं–(१) भ्वादि गण, (२) अदादि गण, (३) जुहोत्यादि गण, (४) दिवादि गण, (५) स्वादि गण, (६) तुदादि गण, (७) रुधादि गण (८) तनादि गण, (९) क्र्यादि गण, (१०) चुरादि गण। क्रियाओं के अकर्मक एवं सकर्मक प्रकार भी होते हैं। इसके अतिरिक्त सन्नंत, यङन्त, नामधातु आदि क्रियाओं के रूप होते हैं। कुछ धातुएँ उभयपदी भी होती हैं। लौकिक संस्कृत में तीन काल–वर्तमान काल, भूतकाल तथा भविष्यत् काल होते हैं। जबकि वैदिक संस्कृत में ४ काल पाये जाते थे। लौकिक संस्कृत में भूत काल के तीन रूप, परोक्ष, सामान्य एवं अनद्यतन होते हैं।

संस्कृत में विभक्तियों की अधिकता है। समास होना संस्कृत की विशेषता है। उपसर्ग लगाकर अथवा अव्यय के प्रयोग द्वारा अर्थान्तर हो जाता है। वाक्य रचना में पहले कर्ता का स्थान है, फिर कर्म का तथा फिर क्रिया का है लेकिन संस्कृत वाक्यों में यह नियम अनिवार्य नहीं है। इनका क्रम आगे पीछे भी हो सकता है । संस्कृत भाषा में कृदन्त तथा तद्धित का भी प्रयोग किया जाता है।

संस्कृत के दोनों रूपों वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत में कुछ भाषागत भेद हो गए थे। इन दोनों का पारस्परिक अन्तर इस प्रकार है--

(१) वैदिक संस्कृत में अकारान्त पुँल्लिग शब्दों के प्रथमा बहुवचन में अस् तथा असस् प्रत्ययों वाले रूप पाये जाते हैं जैसे मर्त्याः, मर्त्यासः, ब्राह्मणाः, ब्राह्मणासः आदि। परन्तु लौकिक संस्कृत में अस् प्रत्यय वाले मर्त्याः, ब्राह्मणाः जैसे रूप पाये जाते हैं।

(२) वैदिक संस्कृत में देवेभिः, देवैः जैसे अकारान्त तृतीया बहुवचन के रूप मिलते हैं जिनमें भिस् तथा ऐस् प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है किन्तु लौकिक संस्कृत में देवैः जैसे एक तरह के रूप पाये जाते हैं।

(३) वैदिक संस्कृत में अकारान्त रूपों में प्रथमा के द्विवचन में 'आ' तथा इकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के तृतीया एकवचन में 'ई' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है जैसे–आश्विना एवं सुष्टुती परन्तु लौकिक संस्कृत में इनके स्थानों पर क्रमशः 'औ' तथा 'आ' प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है जैसे--अश्विनौ तथा सुष्टुत्या।

(४) वैदिक संस्कृत में कहीं-कहीं पर सप्तमी एकवचन रूप नहीं मिलता किन्तु लौकिक संस्कृत में मिलता है। जैसे परमे व्योमन्, लौकिक में--व्योम्नि या व्योमनि।

(५) वैदिक संस्कृत में नपुंसक लिंग के अकारान्त रूपों के एक एकवचन में आ तथा आनि से युक्त अद्भुता तथा विश्वानि जैसे रूप पाये जाते हैं परन्तु लौकिक संस्कृत में 'आनि' प्रत्यय का ही प्रयोग होकर विश्वानि तथा अद्भुतानि जैसे एक-एक रूप बनते हैं।

(६) वैदिक संस्कृत में 'र' का अधिक प्रयोग होता था किन्तु लौकिक संस्कृत में 'ल' का प्रयोग अधिक हो गया। वैदिक शब्द रोहित, रोम, रभ के लिए लौकिक संस्कृत में लोहित, लोम, लभ जैसे शब्द हो गए।

(७) वैदिक संस्कृत में शब्द के बीच तथा अन्त में आने वाले अम्, तु, त्य, ति आदि लौकिक संस्कृत में नहीं पाये जाते।

(८) वैदिक संस्कृत में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित पाये जाते हैं लौकिक संस्कृत में इनका अभाव है।

(९) वैदिक संस्कृत के कई स्वर लौकिक संस्कृत में नहीं पाये जाते हैं।

(१०) वैदिक संस्कृत का 'धि' प्रत्यय लौकिक संस्कृत में 'हि' हो गया है जैसे एधि का एहि, जधि का जहि आदि।

(११) वैदिक संस्कृत में मसि तथा मः प्रत्यय क्रियाओं में लगता था जैसे स्मृसि, स्मृः, मिनीमसि, मिनीमः आदि किन्तु लौकिक संस्कृत में इनका अभाव है।

(१२) वैदिक संस्कृत में लोट् लकार के मध्यम पुरुष में बहुवचन शब्दों में त, तन, थन और तात प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है किन्तु लौकिक संस्कृत में ये प्रत्यय नहीं लगाये जाते हैं।

(१३) वैदिक संस्कृत का लेट् लकार लौकिक संस्कृत में नहीं पाया जाता है।

(१४) अनेक वैदिक शब्द अवस्तु उक्थ, ऊति, ईम आदि लौकिक संस्कृत में नहीं पाये जाते हैं।

(१५) वैदिक संस्कृत के कुछ शब्दों का अर्थ लौकिक संस्कृत में बदल गया है। 'न' का अर्थ 'तरह' था जो लौकिक में 'नहीं' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। मृडीक, अराति, अरि इसी प्रकार के शब्द हैं जो वैदिक संस्कृत में क्रमशः कृपा, शत्रुता, ईश्वर के बोधक थे लौकिक संस्कृत में शिव तथा शत्रु के प्रतीक बन गए।

(१६) वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में छन्दों तथा अलंकारों में भेद पाया जाता है।

(१७) वैदिक संस्कृत के चार समास लौकिक संस्कृत में बढ़कर छः हो गये द्विगु तथा अव्ययीभाव वैदिक संस्कृत में नहीं पाये जाते हैं।

(१८) वैदिक संस्कृत में उपसर्गों का प्रयोग धातु शब्दों से अलग होता है किन्तु लौकिक में धातु में जुड़कर होता है।

(१९) वैदिक संस्कृत के सदृश स्वरभक्ति का प्रयोग लौकिक में नहीं पाया जाता है।

क्या कभी संस्कृत जन-सम्पर्क (जन-साधारण) की भाषा थी ?

भाषा का अर्थ ही है कि जिसको मनुष्य अपने सम्पर्क-सूत्र में, साधारण बोल-चाल में प्रयोग करें। संस्कृत भी जन साधारण की भाषा थी। वैदिक काल से ही आर्यों के पारस्परिक व्यवहार की भाषा संस्कृत थी। यह अवश्य कहा जा सकता है कि वैदिक-साहित्य अथवा लौकिक संस्कृत के साहित्य की भाषा जन साधारण की भाषा का साहित्यिक रूप रही हो। कोई भी भाषा कृत्रिम रूप से नहीं पनप सकती। भाषा का विकास तभी सम्भव है जब उसके बोलने वाले हों। कुछ पाश्चात्त्य विद्वान् अपना अलग मत व्यक्त करते हैं कि संस्कृत कभी जन भाषा नहीं रही थी। इस मत को मानने वाले हार्नली, वेवर, ग्रियर्सन आदि पाश्चात्त्य विद्वान् हैं। इसको भारतीय विद्वान् स्वीकार नहीं करते हैं। भाषा-वैज्ञानिक भी इस बात के समर्थक हैं कि किसी कृत्रिम भाषा की रचना सम्भव नहीं है। संस्कृत भाषा कृत्रिम भाषा नहीं है इसको निम्नलिखित बातों से जाना जा सकता है :—

(१) अनेक पाश्चात्त्य विद्वान् कहते हैं कि नाटक मूलत: पालि में लिखे गए, बाद में उनका अनुवाद संस्कृत में किया गया। परन्तु अनेकानेक तथ्यों से अब यह माना जाने लगा है कि संस्कृत के भास-कृत प्राचीनतम नाटक मूलतः संस्कृत में ही लिखे गए थे।

(२) शास्त्रार्थों की भाषा पहले संस्कृत ही थी।

(३) पाणिनि के जन्म से पूर्व संस्कृत ही जन-भाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी।

(४) पाणिनि ने संस्कृत को अपनी रचनाओं में भाषा के रूप में सम्बोधित किया है। भाषा उसी को कहते हैं जिसको जन-साधारण बोलचाल में प्रयुक्त करता है। 'भाषायाम्' 'छन्दसि बहुलम्' जैसे सूत्र इसे भाषा ही सिद्ध करते हैं।

(५) वैदिक काल के पश्चात् संस्कृत जन साधारण के माध्यम से कुछ परिवर्तित हो गई थी, अत: उसके भेद हो गए थे। इसको यास्क ने प्राच्य तथा उदीच्य के रूप में बताया है।

(६) जन-साधारण जादू-टोनों में विश्वास करते थे तथा जादू-टोनों की भाषा संस्कृत थी जिसे निश्चय जन-साधारण समझते थे।

(७) ह्वेनसांग ने उस काल में होने वाले शास्त्रार्थों का माध्यम संस्कृत को ही बताया है।

(८) वात्स्यायन ने लिखा है कि शिष्ट पुरुष के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है।

(९) प्राचीन काल में विभिन्न विद्याओं की शिक्षा संस्कृत में ही दी जाती थी ।

(१०) पाणिनि के अनुसार पुत्र के रेफ को द्वित्व होता है किन्तु लौकिक भाषा में नहीं अर्थात् लौकिक भाषा बोलचाल की संस्कृत थी । पुस्तकों में प्रयुक्त साहित्यिक संस्कृत थी ।

(११) पतंजलि के अनुसार व्याकरण की सहायता से भाषा के शब्दों के सही उच्चारण का ज्ञान होता है । अर्थात् भाषा संस्कृत ही थी ।

(१२) पंचतन्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि संस्कृत ही जन भाषा थी ।

(१३) संस्कृत साहित्य में शिष्ट लोगों की भाषा संस्कृत मानी गई है, स्त्री तथा शूद्र प्राकृत का प्रयोग करते थे । तात्पर्य यह है कि संस्कृत समाज के किसी न किसी वर्ग की भाषा अवश्य थी ।

इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा जा सकता है कि संस्कृत जन-साधारण की भाषा अवश्य थी । बाद में जैसे-जैसे संस्कृत विकास के पथ पर बढ़ती रही पाली, प्राकृत आदि रूप बनते रहे । संस्कृत समाज की सामान्य भाषा थी यही कारण है कि भारतीयों का प्राचीनतम धार्मिक एवं अन्य साहित्य संस्कृत में ही पाया जाता है ।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की रचनात्मक विशेषताएँ

(१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा श्लिष्ट योगात्मक थी ।

(२) वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत में रूप संख्या कम हो गयी तथा भाषा व्याकरण-नियमों में बंध गई ।

(३) लौकिक संस्कृत में वैदिक संस्कृत की तुलना से संगीतात्मकता कम हो गयी तथा स्वराघात अधिक विकसित हो गया ।

(४) वैदिक संस्कृत में धातुओं का निश्चित अर्थ था; लौकिक संस्कृत में थोड़ा परिवर्तन हो गया ।

(५) वाक्य में शब्दों का क्रम निर्धारित था अर्थात् कर्ता, क्रिया तथा कर्म का वाक्य में कहीं भी प्रयोग हो सकता था ।

(६) वैदिक संस्कृत में उपसर्ग पृथक् प्रयुक्त होते थे लौकिक संस्कृत में शब्द के साथ प्रयुक्त होने लगे ।

(७) संस्कृत में ३ लिंग पुरुषलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग पाये जाते हैं ।

(८) संस्कृत में ३ वचन—एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन पाये जाते हैं ।

(९) संस्कृत में अधिकांश शब्द तत्सम शब्द हैं । थोड़े से तद्भव तथा बाहरी शब्द पाये जाते हैं ।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा :--लौकिक संस्कृत लोक भाषा के रूप में विकसित होती रही । शनैः शनैः लौकिक संस्कृत ही परिवर्तित होकर 'प्राकृत' के रूप में विकसित हुई । साधारणतः 'प्राकृत' का समय ५०० ई० पू० से १००० ई० तक पाया जाता है । 'प्राकृत' की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है । इस तथ्य को प्राकृत के वैयाकरण स्वीकार करते हैं । हेमचन्द्र, मार्कण्डेय प्रभृति विद्वानों ने अपने इन कथनों में–'प्रकृतिः संस्कृतं । तत्र भवं प्राकृतमुच्यते' से यही तथ्य प्रस्तुत किया है । वस्तुतः संस्कृत भाषा के समय की बोलचाल भाषा से विकसित होकर प्राकृत बनी ।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल को तीन कालों में बाँटा गया है–

(१) प्रथम प्राकृत काल (५०० ई० पू० से ईस्वी प्रारम्भ तक)

(२) द्वितीय प्राकृत काल (ईस्वी प्रारम्भ से ५०० ई० तक)

(३) तृतीय प्राकृत काल (५०० ई० से १००० ई० तक)

(१) **प्रथम प्राकृत काल**--(५०० ई० पू० से ईस्वी प्रारम्भ तक) इस काल को पुनः दो भागों में बाँटा गया है–(अ) पालि तथा (ब) शिलालेखी अथवा अशोकी प्राकृत ।

(अ) पालि–'पालि' नाम के विषय में अनेक विचार हैं । इस नाम का सबसे पहला प्रयोग चतुर्थ शताब्दी के 'दीपवंस' ग्रन्थ में किया गया जिसका अर्थ 'बुद्ध-वचन' था । जिस भाषा में बुद्ध ने अपने विचार व्यक्तियों के सामने व्यक्त किए तथा उनको धार्मिक साहित्य के रूप में सुरक्षित किया गया उसे पाली भाषा कहते हैं । वस्तुतः इस भाषा को पहले क्षेत्र के नाम से मागधी, अर्धमागधी भी कहा गया है । 'पालि' नाम का अधिक प्रयोग पाश्चात्य विद्वानों ने किया है ।

'पालि' शब्द की उत्पत्ति के विषय में निम्नलिखित मत हैं–

(१) 'अभिधानप्पदीपिका' नामक ग्रन्थ में पाली का प्रयोग 'पंक्ति' के अर्थ में किया गया है यथा–'पंक्ति वीथ्यावलिस्सेनि पालि रेखा च राजि च' तथा पालि शब्द की उत्पत्ति पाल रक्षणे धातु से मानी गई है–'पा पाल्येति रक्खतीति पालि' ।

(२) आचार्य बुद्धघोष ने 'अट्ठ कथाओं' में पालि का प्रयोग बुद्ध-वचन के लिए तथा मूल त्रिपिटक के पाठ के लिए किया है । 'ईमानि ताव पालियं अट्ठकथायं पन…' 'इति पि पालि' 'नेव पालियं न अट्ठकथा दिस्सति' जैसे कथनों में 'पालि' का अनेकशः उल्लेख किया है ।

(३) 'दीपवंश' नामक ग्रन्थ में भी 'पालि' का प्रयोग बुद्ध-वचन के लिए किया गया है ।

(४) 'परमत्थदीपिनी' में आचार्य धम्मपाल ने 'अयाचितो ततागच्छतीति आगतीति पि पालि' जैसे कथनों द्वारा 'मूल त्रिपिटक' के पाठ के लिए पालि शब्द प्रयुक्त किया है ।

(५) भिक्षु जगदीश काश्यप ने 'परियाय' से पालि की उत्पत्ति मानी है। परियाय < पलियाय < पालि। पालि' का अर्थ बुद्ध-वचन लिया गया है।

(६) वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत के समक्ष 'पल्लि' ग्रामीण भाषा कही जाती थी। पल्लि से 'पालि' शब्द बना है।

(७) भण्डारकर तथा वाकरनागल के अनुसार प्राचीन प्राकृत से पालि शब्द बना है। प्राकृत < पाकट < पाअड पाअल < पालि।

(८) कुछ विद्वानों के अनुसार 'पाल' (रक्षा करना) से 'पालि' बना अर्थात् इस भाषा में बुद्ध वचनों की रक्षा की गई।

(९) कुछ लोगों के अनुसार 'प्रालेय' अथवा 'प्रालेयक' (पड़ोसी) से 'पालि' की उत्पत्ति हुयी है।

(१०) भिक्षु सिद्धार्थ पाठ से 'पालि' की उत्पत्ति मानते हैं (पाठ > पालि > पाडि)।

(११) डा० मैक्सवेलेसर ने 'पाटलि' से 'पालि' की उत्पत्ति मानी है।

(१२) राजवाडे के मत से 'प्रकट' शब्द से पालि बना है। (प्रकट > पाअड > पाअल > पालि)।

(१३) श्री विधुशेखर भट्टाचार्य का मत है पालि शब्द पंक्ति से बना है क्योंकि पंक्ति को पालि भी कहा जाता है (तन्ति बुद्धवचनं पत्ति पालि) पंक्ति से पालि का विकास इस प्रकार बताया है--पंक्ति > पत्ति > पत्ति > पट्टि > पल्लि > पालि।

इस प्रकार 'पालि' भाषा को बुद्ध उपदेशों की भाषा मानी जाती है। बुद्ध की भाषा मागधी थी अतः 'पालि' का उससे सम्बन्ध होना चाहिए किन्तु विवेचन से यह पता चलता है कि पालि का विकास मागधी या उस क्षेत्र की किसी भाषा से नहीं हुआ है। यह भाषा बुद्ध-कालीन न होकर उनके ३००-४०० वर्ष बाद की है (अर्थात् ३ तीसरी शताब्दी ई० पू० की है)। परन्तु कुछ विद्वान् इस बात के समर्थक हैं कि बुद्ध ने जनभाषा में अपने उपदेश दिए थे ताकि अधिक से अधिक व्यक्ति उनको समझ सकें तथा उन पर आचरण कर सकें। अतः बुद्धकालीन जन-भाषा पालि ही थी। 'चुल्लवग्ग' की एक कथा द्वारा यह बताया गया है कि बुद्ध की इच्छा थी लोग उनके उपदेशों को अपनी-अपनी भाषाओं में पढ़ें।

'पालि' भाषा का साहित्य बुद्ध से सम्बन्धित है। 'पालि' साहित्य को 'पिटक' तथा 'अनुपिटक' नामक दो भागों में बाँटा गया है। इस साहित्य में 'जातक', 'धम्मपद', मिलिन्दपञ्हो, बुद्ध घोष की अट्ठकथा एवं महावंश तथा व्याकरण, कोश, दर्शन से सम्बन्धित पुस्तकें लिखी गई हैं। बुद्ध-धर्म मानने वाले देशों (लंका, ब्रह्मा, थाइलैण्ड, चीन, जापान) की भाषाओं पर भी 'पालि' का किसी न किसी रूप में प्रभाव पड़ा है।

पालि भाषा का क्षेत्र–'पालि' किस क्षेत्र की भाषा थी इसको निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है। मगध राज्य (पाटिली पुत्र) बौद्ध धर्म का केन्द्र था। वहाँ की भाषा मागधी थी। लंका के लोग पालि को 'मागधी' ही कहते हैं। ग्रियर्सन, विंडिश, चाइल्डर्स, गाइगर प्रभृति विद्वान् भी पालि को मगध राज्य की भाषा मानते हैं।

पालि तथा मागधी में कुछ अन्तर भी पाया जाता है—मागधी भाषा पूर्वी भाषा की विशेषताओं से युक्त है। श, ष, स, के स्थान पर मागधी में 'श्' ही प्रयुक्त होता है जबकि पालि में इनके स्थान पर स् का प्रयोग किया जाता है। मागधी में र् तथा ल् के लिए केवल 'ल्' का प्रयोग होता है र् नहीं पाया जाता है। पालि में 'र्' तथा 'ल्' दोनों का प्रयोग किया जाता है। मागधी भाषा में पुँल्लिग तथा नपुंसक लिंग अकारान्त शब्दों के कर्त्ता एकवचन में 'ए' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है जबकि पालि भाषा में 'ओ' प्रत्यय प्रयुक्त किया जाता है। 'ल' का केवल प्रयुक्त होना (तथा र् का अभाव) मागधी भाषा को प्राच्य भाषाओं से सम्बन्धित करता है जबकि 'र्' तथा 'ल' दोनों का प्रयोग पालि को मध्यदेशीय भाषा से सम्बन्धित करता है। इस प्रकार दोनों भाषाओं में कई प्रकार से अन्तर पाया जाता है। इन थोड़े अन्तरों के अतिरिक्त दोनों में अत्यधिक समानता पाई जाती है। रीज, डैविड्स तथा ग्रियर्सन आदि विद्वान् पालि को मागधी ही मानते हैं।

पालि के क्षेत्र के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए हैं। 'रीज डैविड्स' के अनुसार बुद्ध कोसल के क्षत्रिय थे। अतः कोसल की भाषा पालि ही थी। 'ल्यूडर्स' के अनुसार बुद्ध के उपदेश अर्धमागधी में दिए गए थे तथा कुछ समय बाद उनका अनुवाद पालि में किया गया था। आर० ओ० फ्रैंक ने पालि को विन्ध्य प्रदेश की भाषा कहा है। इसी मत के समर्थक स्टेनकोनो (Stein kono) हैं। ई० कुट्टन (E. Kuttan) एवं वेस्टरगार्ड (Westergard) 'पालि' को उज्जयिनी क्षेत्र की भाषा मानते हैं। ओल्डनवर्ग कलिङ्ग क्षेत्र की भाषा 'पालि' को मानते हैं। मैक्सवैलेसर के अनुसार पालि पाटलीपुत्र की भाषा थी। आर० सी० चाइल्डर्स 'पालि' को मगध क्षेत्र की भाषा स्वीकार करते हैं। गायगर 'पालि' को मागधी मिश्रित लोकभाषा मानते हैं जिसका क्षेत्र मगध था। जेम्स एल्विस ने कहा है कि मगध की भाषा मागधी में ही बुद्ध ने उपदेश दिए थे। इस प्रकार ऊपर के मतों से प्रकट होता है कि 'पालि' कहाँ की भाषा थी, इस बात पर विद्वान् एक मत नहीं हैं। बुद्ध ने उपदेश अपनी भाषा मागधी में दिए होगें किन्तु समय बीतने पर उन उपदेशों का अनुवाद तत्कालीन लोकभाषा या राष्ट्रीय भाषा में किया गया जो 'पालि' नाम से अभिहित की गई।

पालि भाषा की ध्वनियाँ—वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत का विकास

हुआ । संस्कृत काल में कुछ वैयाकरणों ने व्याकरण बनाकर संस्कृत को नियमों से आबद्ध कर दिया । संस्कृत साहित्यिक रचनाओं की भाषा बनकर रह गई तथा उस काल की लोकभाषा प्रगति पथ पर बढ़ती रही तथा वही जनभाषा 'पालि' कहलायी। वैदिक संस्कृत की ध्वनियाँ अधिकांशतः उसी प्रकार लौकिक संस्कृत में सुरक्षित रहीं, केवल 'ळ', 'ळह' जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ध्वनियों का अभाव हो गया । 'पालि' भाषा में संस्कृत की ही अधिकाँश ध्वनियाँ गृहीत हुयी हैं फिर भी संस्कृत की अनेक ध्वनियाँ नहीं पाई जाती हैं । (१) 'पालि' में जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ध्वनियाँ नहीं पाई जाती हैं । (२) पालि में ॠ, ऋ, लृ, ऐ तथा औ ध्वनियाँ भी लुप्त हो गयी हैं । (३) पालि में 'एँ' तथा 'ओं' नवीन स्वर (ए तथा ओ के प्रतीक) पाये जाते हैं । (४) पालि में विसर्ग का भी लोप हो गया है । (५) पालि में केवल 'स्' पाया जाता है तथा श् और ष् का लोप हो गया है । (६) वैदिक ध्वनि 'ळ' तथा 'ळह' ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है । दो स्वरों के बीच के 'ड' तथा 'द' के स्थान पर 'ड' 'डह' का प्रयोग किया जाता है । (७) 'ह' ध्वनि जब य्, र्, ल्, व् अथवा अनुनासिक के साथ जुड़ती है तो उसका विशेष रूप से उच्चारण किया जाता है। पालि भाषा की ध्वनियाँ इस प्रकार हैं--

स्वर–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, एँ, ओ

व्यंजन-कण्ठय–क्, ख्, ग्, घ्, ङ्

तालव्य–च्, छ्, ज्, झ् ञ्

मूर्धन्य–ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ळ्, ळह्

दन्त्य–त्, थ्, द्, ध्, न्,

ओष्ठ्य–प्, फ्, ब्, भ् म्

अन्तस्थ य्, र्, ल् व्,

ऊष्म–स्

प्राणध्वनि–ह् ।

पालि भाषा की मुख्य विशेषताएँ –पालि भाषा की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं--

(१) वैदिक संस्कृत की कुछ ध्वनियों का लोप हो गया जैसा कि ध्वनियों के विषय में ऊपर बताया जा चुका है । कुछ वैदिक अघोष (ध्वनियाँ) व्यंजन पालि में सघोष हो गए हैं--क > ग, च > ज, थ > घ । विपर्यय, विषमीकरण, समीकरण एवं स्वरभक्ति जैसी विशेषताएँ पाई जाती हैं ।

(२) पालि पर अपने से पहले की तथा समकालीन भाषाओं का रूपगत एवं ध्वनिगत प्रभाव पाया जाता है ।

(३) लौकिक संस्कृत की तरह पालि भी वैदिक संस्कृत के (रूप तथा ध्वनि

की दृष्टि से) बहुत समीप है। पालि के रूप में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। प्राचीन पालि वैदिक संस्कृत के तथा बाद की पालि लौकिक संस्कृत के समीप है जो इसके परिवर्तित रूप को बताता है।

(५) पालि में वैदिक तथा लौकिक संस्कृत की अपेक्षा रूपों की अधिक संख्या पाई जाती है।

(६) द्विवचन का प्रयोग नहीं पाया जाता। परन्तु लिंग तीन पाये जाते हैं।

(७) आत्मनेपद का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है।

(८) व्यंजनान्त प्रातिपदिकों की संख्या बहुत कम है।

(९) पालि में बलात्मक एवं संगीतात्मक स्वराघात पाये जाते हैं उसी प्रकार जैसे वैदिक संस्कृत में हैं।

(१०) पालि में विदेशी शब्द बहुत कम हैं सबसे अधिक शब्द तद्भव पाये जाते हैं। तत्सम तथा देशज शब्द भी पाये जाते हैं।

ब--शिलालेखी (अशोकी) प्राकृत--प्रथम प्राकृत काल के अन्तर्गत दो भाग थे (१) पालि एवं (२) शिलालेखी प्राकृत। यहाँ शिलालेखी प्राकृत के विषय में वर्णन किया जा रहा है। इन प्राकृतों में शिलालेखों की भाषा आती है। अशोक ने पत्थर पर जिस भाषा में आज्ञाएँ, उपदेश उत्कीर्ण कराये थे उसी को शिलालेखी प्राकृतों कहा गया है। इसे 'लाट-प्राकृत' भी कहते हैं क्योंकि लाटों पर लेख खुदवाये गए थे। ये लेख किसी एक क्षेत्र की भाषा में नहीं हैं। जिन जिन क्षेत्रों में अशोक ने धर्म सम्बन्धी तथा शासन सम्बन्धी निर्देश उत्कीर्ण कराये उनमें उन उन क्षेत्रों की भाषा का प्रयोग किया गया है। इन लेखों की लिपि ब्राह्मी तथा खरोष्ठी है। इन लेखों से उस समय की कई बोलियों का ज्ञान होता है। इन लेखों की भाषा के ये पाँच रूप पाये जाते हैं--(१) उत्तरी पश्चिमी, (२) दक्षिणी पश्चिमी, (३) पूर्वी, (४) मध्यदेशी एवं (५) दक्षिणी। इन लेखों की भाषा में ध्वनिगत एवं रूपगत भेद पाये जाते हैं।

शिलालेखी प्राकृत की विशेषताएँ--(१) शिलालेखी प्राकृतों में तीनों श्, स्, ष् पाये जाते हैं जबकि पाली में केवल 'स' ही मिलता है।

(२) वचन दो पाये जाते हैं--एकवचन तथा बहुवचन। द्विवचन का प्रयोग नहीं हुआ है।

(३) रूप बहुत कम पाये जाते हैं।

(४) आत्मनेपद का प्रयोग नहीं मिलता है।

(५) लिङ्ग तीनों--पुरुषलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग पाये जाते हैं।

(६) स्वरांत प्रातिपादिकों की अधिकता है।

(७) आगम, लोप, विपर्यय, समीकरण, विषमीकरण, ह्रस्वीकरण, दीर्घीकरण

घोषीकरण, तालव्यीकरण मूर्द्धन्यीकरण के रूप में ध्वनि विकास पाया जाता है।

(८) पालि से यह भाषा अत्यधिक मिलती है।

द्वितीय प्राकृत काल (ई० प्रा० से ५०० ई० तक)—इस काल को केवल 'प्राकृत काल' के नाम से जाना जाता है। 'प्राकृत' शब्द के विभिन्न विद्वानों ने अनेक अर्थ किए हैं। कुछ विद्वान् इस मत को मानते हैं कि प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है जबकि कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि 'प्राकृत' संस्कृत के पूर्व प्रचलित थी अथवा संस्कृत की ही समकालीन जनभाषा थी। कुछ विद्वानों के अनुसार पालि का समय ६०० ई० पू० से २०० ई० पू० तथा प्राकृत का समय २०० ई० से ६०० ई० तक था। इनके बीच २०० ई० पू० से २०० ई० तक अर्थात् ४०० वर्ष का काल सन्धिकाल था जिसमें प्राकृत के तीन रूप पाये जाते हैं · (अ) अश्वघोष के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत (१०० ई०), (ब) धम्मपद की प्राकृत (२०० ई०) तथा (स) निय प्राकृत (३०० ई०), यहाँ ये तीनों प्राकृत द्वितीय प्राकृत काल के अन्तर्गत रखी गई हैं।

प्राकृत शब्द की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत हैं। अधिकांशतः यही स्वीकार करते हैं कि प्राकृत का विकास संस्कृत भाषा से हुआ है। 'प्राकृतसर्वस्व' में प्राकृत की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है—'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं प्राकृतमुच्यते'। तात्पर्य यह है कि संस्कृत से प्राकृत उत्पन्न हुई है। हेमचन्द्र ने भी इस बात को इस प्रकार कहा है--'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्,' अर्थात् यहाँ भी प्राकृत को संस्कृत से प्रादुर्भूत बताया गया है। नमिसाधु ने काव्यालंकार टीका में भी व्याकरण नियमों से रहित लोकभाषा को प्राकृत कहा है, यथा 'सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहित-संस्कारः सहजो वचन-व्यापारः प्रकृतिः तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्।' इस कथन से स्पष्ट होता है कि एक ही काल की दो भाषाएँ संस्कृत तथा प्राकृत हैं। भाषा का नियमबद्ध संस्कार किया साहित्यिक रूप 'संस्कृत' नाम से प्रसिद्ध हुआ जबकि व्याकरण नियम रहित जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त बातचीत का सहज रूप 'प्राकृत' नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिंह देवमणि ने 'वाग्भट्टालंकार टीका' में प्राकृत की परिभाषा इस प्रकार की है--'प्रकृतेः संस्कृताद् आगतं प्राकृतम्'। प्रेमचन्द्र तर्कवागीश ने 'काव्यादर्श टीका' में प्राकृत को संस्कृत से उत्पन्न बताया है यथा--'संस्कृतरूपायाः प्रकृतेः उत्पन्नत्वात् प्राकृतम्'। 'प्राकृतसंजीवनी' में इसी तथ्य का समर्थन किया गया है--प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः'। 'प्राकृतचन्द्रिका' में भी 'प्राकृत' का संस्कृत से विकास बताया गया है--'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्'। दशरूपक (धनिक) में यही बात इन शब्दों में व्यक्त की गई है--"प्राकृतेरागतं प्राकृतं, प्रकृतिः संस्कृतम्" इस प्रकार ऊपर उन मतों को बताया गया है जो यह मानते हैं कि संस्कृत से प्राकृत का विकास हुआ है।

कुछ विद्वान् प्राकृत की व्युत्पत्ति 'प्राक्+कृत' अर्थात् 'पहले बनी' के अर्थ

में ग्रहण करते हैं। अतः उनका कहना है कि प्राकृत का विकास संस्कृत से पहले हो गया था। पिशेल भी इस मत को मानते हैं। भाषा का अध्ययन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि प्राकृत संस्कृत से विकसित भाषा हो सकती है। यदि इसका विकास संस्कृत से नहीं हुआ तो यह कहा जा सकता है कि ये संस्कृत के समकालीन प्राकृतेति अर्थात् सामान्य जन के बोलचाल की भाषा थी तथा संस्कृत शिष्ट पुरुषों द्वारा व्यवहृत एवं संस्कार की हुई साहित्यिक भाषा थी। जैसा कि इनके नामों से स्पष्ट है--संस्कृत अर्थात् संस्कार की हुई भाषा (व्याकरणनियमों से बद्ध, परिमार्जित रूप वाली भाषा) एवं प्राकृत--(प्रकृतीनां जनानां भाषा), प्राकृत (साधारण) जनों की भाषा। प्राचीन प्राकृत विभिन्न शिलालेखों में उत्कीर्ण मिलती है। जैसा कि बताया गया हैं पालि तथा प्राकृत के मध्य कई सौ वर्षों का सन्धिकाल रहा है, उस काल की साहित्यिक रचनाओं में प्राचीन प्राकृत का रूप पाया जाता है, उसे तीन भागों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैं-

(अ) **अश्वघोष के नाटकों में प्रयुक्त**--इन नाटकों की प्राप्ति मध्य एशिया में हुई थी। इनमें ईस्वी की प्रथम शताब्दी में प्रचलित प्राकृत रूप पाया जाता है। संस्कृत से प्रभावित इन नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत में प्राचीन मागधी, अर्द्धमागधी तथा प्राचीन शौरसेनी का प्रयोग मिलता है। यह साहित्यिक रचनाओं में प्रयुक्त प्राकृत का पहला रूप है।

(ब) **धम्मपद की प्राकृत**--खरोष्ठी लिपि में खोतान से प्राप्त 'धम्मपद' में २०० ई० के आसपास का 'प्राकृत' रूप पाया जाता है। यह भाषा पश्चिमोत्तर भारत में प्रचलित थी।

(स) **निय प्राकृत**--चीनी तुर्किस्तानी के निय क्षेत्र में खरोष्ठी लिपि में लिखे कुछ लेख १९१४ तक प्राप्त हुए हैं। निय क्षेत्र के नाम से इन लेखों की भाषा को 'निय प्राकृत' नाम दिया गया है। ३०० ई० के आस पास की प्राकृत का रूप पाया जाता है। यह पश्चिमी भारत में बोली जाती थी।

ऊपर की प्राकृतों के रूप वर्तमान भारत के बाहर पाये गए हैं।

अन्य प्राकृतें-'प्राकृत' अपने समय में लोकभाषा थी, लेकिन कालान्तर में इस भाषा को व्यवस्थित रूप देने के लिये कई व्याकारणों की रचना की गई। उन व्याकरणों मे प्राकृतों के भेद बताए गए हैं। प्राकृतों का धार्मिक दृष्टिकोण से विभाजन इस प्रकार है-पालि, अर्द्धमागधी, जैन महाराष्ट्री, तथा जैन शौरसैनी। साहित्य के दृष्टिकोण से प्राकृत को चार भागों में बाँटा गया है--(१) महाराष्ट्री, (२) शौरसेनी, (३) मागधी तथा (४) पैशाची। वास्तव में प्राकृत जन साधारण द्वारा व्यवहृत होती थी, अतः वैयाकरणों ने इसके व्याकरण बनाकर कई भागों में विभाजित किया है। प्राकृत के सबसे पहले व्याकरणाचार्य वररुचि थे जिन्होंने अपने 'प्राकृत-प्रकाश' में प्राकृत के

ये चार भेद किए हैं--(१) महाराष्ट्री, (२) पैशाची, (३) मागधी, (४) शौरसेनी। जैन आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'प्राकृत व्याकरण' में सात भेद किए हैं, जिनमें उपरिलिखित चार भेदों के अतिरिक्त ३ भेद और सम्मिलित हैं--

(१) आर्ष प्राकृत, (२) चूलिका, (३) पैशाची।

दण्डी द्वारा प्राकृतों के निम्नलिखित भेद बताए गए हैं–

(१) महाराष्ट्री, (२) शौरसेनी, (३) गौड़ी, (४) लाटी एवं (५) मागधी। प्राकृत के इन भेदों के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न विद्वानों ने कुछ अन्य भेद भी प्राकृतों में गिनाए हैं। इनके नाम हैं–बाह्लीकी, शाकारी, ढक्की, चंडाली, शाबरी, आमीरिका, अवन्ती, भूतभाषा, दाक्षिणात्य तथा गौड़ी आदि। केकय प्राकृत, याद्री प्राकृत, नगर प्राकृत तथा 'पांचाली प्राकृत' आदि का भी उल्लेख मिलता है। इस प्रकार प्राकृतों के कई भेद पाये जाते हैं किन्तु विद्वानों ने मुख्यतः ५ भेद माने हैं–

(१) शौरसेनी
(२) पैशाची
(३) महाराष्ट्री
(४) अर्द्ध मागधी
(५) मागधी

(१) **शौरसेनी**–इस प्राकृत का क्षेत्र शूरसेन (मथुरा के आसपास का क्षेत्र) था। यह क्षेत्र संस्कृत का केन्द्र था अतः यहाँ की प्राकृत संस्कृत से प्रभावित है। संस्कृत नाटकों में स्त्री पात्रों के लिए शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया गया है। 'कर्पूर मंजरी' नाटिका में इसी प्राकृत का प्रयोग मिलता है। जैन ग्रन्थों में भी इसका प्रयोग किया गया है। अवन्ती तथा अभीरी शौरसेनी से सम्बन्धित रूप हैं। शौरसेनी प्राकृत मध्यदेश की महत्त्वपूर्ण प्राकृत रही है। इस प्रकार प्राकृत की विशेषताएँ ये हैं–

(१) दो स्वरों के बीच की 'त्' तथा 'थ्' ध्वनियों का रूप क्रमशः द् तथा ध् हो जाता है जैसे संस्कृत–गच्छति शौरसेनी–गच्छदि। सं०–कथय शौर० कधेहि।

(२) क्ष के स्थान पर 'क्ख' हो जाता है–इक्षु–इक्खु, कुक्षि का कुक्खि।

(३) शौरसेनी में आत्मनेपद का प्रयोग नहीं होता है।

(२) **पैशाची**-पैशाची प्राकृत में साहित्य नहीं पाया जाता है केवल गुणाढ्य की 'बडुकहा' का उल्लेख मिलता है। 'पिशाच' जाति का वर्णन महाभारत में आता है, ये उत्तरी पश्चिमी काश्मीर के निवासी थे। पैशाची प्राकृत को कई अन्य नामों से भी सम्बोधित किया गया है। पैशाचिका, पैशाचिकी, ग्राम्य भाषा, भूतभाषा, भूतभाषित आदि इसके अन्य नाम हैं। वररुचि पैशाची प्राकृत को संस्कृत से विकसित मानते हैं। ग्रियर्सन का मत है कि यह प्राकृत 'दरद' भाषा से प्रभावित है। 'हम्मीर-

मर्दन' नाटक में कुछ पात्रों द्वारा पैशाची प्राकृत का प्रयोग किया गया है। पैशाची प्राकृत को कई प्रकारों में विभाजित किया गया है। मार्कण्डेय के अनुसार इसके तीन भेद हैं–कैकेय, पांचाल तथा शौरसेन। लेसेन ने भी इसके तीन भेद किए है-(१) मागध, (२) ब्राचड (३) पैशाचिक।

पैशाची की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं–

(१) कहीं-कहीं 'र' के स्थान पर 'ल' तथा 'ल' के स्थान पर 'र' पाया जाता है। कुमार=कुमाल एवं रुद्रं=लुद्दं।

(२) 'ष' का प्रयोग नहीं मिलता। इसके स्थान पर 'श' या 'स' पाया जाता है।

(३) दो स्वरों के मध्य आने वाले घोष व्यंजन (स्पर्श व्यंजनों में तृतीय एवं चतुर्थ) अघोष व्यंजन (अर्थात् प्रथम तथा द्वितीय) हो जाते हैं।

(४) दो स्वरों के बीच के स्पर्श व्यंजनों का लोप नहीं होता है।

(५) आत्मनेपद एवं परस्मैपद के प्रत्यय प्रथम पुरुष एकवचन में पाये जाते हैं।

(३) **महाराष्ट्री**–महाराष्ट्र क्षेत्र में महाराष्ट्री प्राकृत बोली जाती थी। कुछ विद्वानों के अनुसार यह प्राकृत शौरसेनी प्राकत तथा शौरसेनी अपभ्रंश के मध्य की भाषा कही जा सकती है। महाराष्ट्री प्राकृत का काव्य साहित्य में अधिक प्रयोग किया गया है। महाराष्ट्री प्राकृत को महत्वपूर्ण माना गया है जैसा कि कहा गया है 'महाराष्ट्रायां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदु:'। संस्कृत के नाटकों में भी इसका बहुत प्रयोग हुआ है। गीतिकाव्य, काव्य, नाटक इस प्राकृत में लिखे गए हैं। गाहा सत्तसई (हाल रचित), रावणवहो (प्रवरसेन रचित), वज्जालग्ग (जयवल्लभ रचित) तथा जैन धर्म के साहित्य में महाराष्ट्री, प्राकृत का प्रयोग किया गया है। गद्य साहित्य भी रचा गया है। इसे 'जैन महाराष्ट्री' भी कहा गया है क्योंकि जैन धर्म का साहित्य अधिक पाया जाता है। कुछ विद्वान् इसे सम्पूर्ण भारत की भाषा मानते हैं।

महाराष्ट्री प्राकृत की विशेषताएँ

( ) महाराष्ट्री प्राकृत में दो स्वरों के मध्य के अल्पप्राण स्पर्श व्यञ्जन का क, त, प, द, ग आदि का लोप हो जाता है। जैसे–गच्छति–गच्छइ।

(२) स तथा श के स्थान पर 'ह' हो जाता है–(तस्य के स्थान पर ताह, अनुदिवसम्–अणुदिअहं।

(३) अपादान एकवचन में 'अहि' प्रत्यय जुड़ता है। जैसे दूरात्–दूराहि।

(४) अधिकरण एकवचन में 'ए' या 'म्मि' प्रत्यय लगाए जाते हैं। लोके=लोए। लोकेस्मिन्=लोअम्मि।

(५) पूर्वकालिक क्रिया के लिए 'ऊण' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है–

पृष्ट्वा=पुच्छिऊण ।

(६) कर्मवाच्य में 'य्' के स्थान पर 'इज्ज' का प्रयोग होता है गम्यते=गमिज्जइ ।

(७) दो स्वरों के मध्य आने वाले महाप्राण स्पर्श के स्थान पर 'ह' हो जाता है अर्थात् ख, थ, फ, घ, ध के स्थान पर केवल 'ह' होता है। जैसे मुख=मुह, गाथा=गाहा, वधः=वहो कथा=कहा, क्रोधः=कोहो, कविः=कइ आदि ।

(४) **अर्द्धमागधी**–इस प्राकृत का क्षेत्र कोशल प्रदेश था। इस प्राकृत की मागधी तथा शौरसेनी से थोड़ी-थोड़ी समानता है। मागधी का प्रभाव अधिक होने से अर्द्धमागधी कहा गया है। जैन लोग इसे 'आर्षी' कहते हैं। जैनों (श्वेताम्बर) के ११ अंश तथा १२ उपाङ्ग इसी भाषा में रचे गए हैं। साहित्यिक नाटकों में इसका प्रयोग किया गया है। अर्द्धमागधी का प्रयोग, 'प्रबोध-चन्द्रोदय' एवं 'मुद्रा-राक्षस' में भी हुआ है। इसे राजपुत्रों, धनिकों एवं गुप्तचरों की भाषा भी बताया गया है। इसे 'जैन प्राकृत' भी कहते हैं।

अर्द्धमागधी की मुख्य विशेषताएँ–

(१) इस प्राकृत में ष्, एवं 'श्' के लिए मात्र 'स्' पाया जाता है।

(२) दन्त्य व्यंजन के स्थान पर मूर्द्धन्य हो जाता है।

(३) दो स्वरों के बीच का व्यंजन 'य' ध्वनि में बदल जाता है। जैसे सागर का सायर।

(४) प्रथमा एकवचन के रूप एकारान्त तथा ओकारान्त दोनों पाये जाते हैं।

(५) कहीं-कहीं च वर्ग के लिए त वर्ग का प्रयोग किया जाता है। जैसे चिकित्सा=तेइच्छा ।

(६) गद्य एवं पद्य की भाषा में अन्तर मिलता है।

(७) यहाँ र् तथा ल् दोनों ध्वनियों का प्रयोग हुआ है।

मागधी–यह प्राकृत मगध प्रदेश में बोली जाती थी। इसी से इसे मागधी नाम दिया गया है। यह वैदिक संस्कृत की प्राच्यविभाषा से उत्पन्न मानी जाती है। वररुचि के अनुसार इसका विकास शौरसेनी से हुआ है। संस्कृत नाटकों के निम्न पात्रों की भाषा 'मागधी' है। अपने प्राचीनतम रूप में अश्वघोष की रचनाओं में पाई जाती हैं। इसमें विशेष साहित्य नहीं पाया जाता है। इसका अन्य नाम 'गौडी' भी है।

मागधी की प्रमुख विशेषताएँ–

(१) र् ध्वनि नहीं पाई जाती है। र् के स्थान पर 'ल' का प्रयोग किया जाता है। जैसे राजा=लाजा ।

(२) यहाँ केवल 'श' पाया जाता है। स्, ष् नहीं पाये जाते हैं। जैसे समर

=शर्मले, पुरुष=पुलिशे ।

(३) 'ज' के स्थान पर 'य' हो जाता है तथा 'झ' के स्थान पर 'म्ह' हो जाता है । जानाति=याणादि, झटिति=म्हति ।

(४) 'स्थ' तथा 'र्थ' के स्थान पर 'स्त' का प्रयोग होता है जैसे उपस्थित=उवस्तिद, अर्थवती=अस्तवदी हो जाते हैं ।

(५) संयुक्त व्यंजन 'द्य', 'र्य', 'र्ज' के स्थान पर 'य्य्' हो जाता है (अद्य का अय्य, कार्य का कय्य, दुर्जन=दुय्यण) ।

(६) कहीं-कहीं र्ज' के स्थान पर 'ञ्ञ' हो जाता है । जैसे वर्जति का वञ्ञदि ।

(७) संस्कृत में प्रथमा एकवचन के विसर्ग के स्थान पर मागधी में 'ए' हो जाता है जैसे–देवः=देवे ।

(८) मागधी के अन्य रूप चाण्डाली, ढक्की, शावरी, बाह्लीकी, शकारी आदि हैं जिनमें साहित्य नहीं पाया जाता है ।

प्राकृत भाषाओं की विशेषताएँ--पालि तथा प्राकृत भाषाओं में साम्य पाया जाता है फिर भी उनमें अन्तर है जो इस प्रकार है–

(१) पालि में एक 'स' पाया जाता है । प्राकृतों में नीय प्राकृत में तीनों श् ष् स् पाये जाते हैं । मागधी में केवल 'श' एवं पैशाची में श ष् तथा कहीं-कहीं मात्र 'स' पाया जाता है ।

(२) मागधी प्राकृत में 'र' का अभाव है एवं उसके स्थान पर 'ल' पाया जाता है । कहीं-कहीं 'र' का 'ल' एवं 'ल' का 'र' हो जाता है ।

(३) शब्द के प्रारम्भ में आये 'य' के स्थान पर 'ज' का प्रयोग मिलता है ।

(४) 'न' के स्थान पर 'ण' अधिक पाया जाता है ।

(५) प्राकृतों में व्यंजनान्त शब्दों का अभाव है ।

(६) आत्मनेपद का प्रयोग बहुत कम हुआ है ।

(७) वैदिक संस्कृत एवं पालि की अपेक्षा प्राकृतों में रूप बहुत कम पाये जाते हैं ।

(८) प्राकृत भाषाएँ वियोगात्मक हो गयीं हैं ।

(९) शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो गया है ।

(१०) प्राकृत भाषाओं में तद्भव शब्दों की अधिकता है । देशज शब्द भी पाये जाते हैं ।

(११) द्विवचनों का अभाव पाया जाता है ।

(१२) प्राकृत भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन (समीकरण, लोप, स्वर भक्ति) अधिक हुआ है ।

(१३) कारक संख्या में कमी हो गयी । चतुर्थी तथा षष्ठी के एक प्रकार के रूप पाये जाते हैं ।

(१४) दश गणों के विभाजन में शिथिलता आ गई ।

अपभ्रंश–मध्य आर्य भाषा का तृतीय रूप 'अपभ्रंश' के नाम से जाना जाता है । यह प्राकृत एवं वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की भाषा है । प्राकृत भाषाएँ जब व्याकरणों के नियमों में जकड़ गईं तो उनका साहित्यिक रूप स्थिर हो गया किन्तु जनभाषा अपनी गति से आगे बढ़ती रही तथा साहित्यिक प्राकृत एवं जन-भाषा में अन्तर हो गया । उस काल की जनभाषा में प्रयोग किये जाने वाले व्याकरण विरुद्ध प्रयोगों को 'अपभ्रंश' नाम दिया गया । अपभ्रंश का अर्थ भ्रष्ट, बिगड़ा, अशुद्ध प्रयोगों से था । शनैः-शनैः लोकभाषा में अपभ्रंश प्रयोगों का आधिक्य हो गया । बाद में अपभ्रंश के रूप में इसे मान्यता मिल गयी । 'अपभ्रंश' को कई नामों से अभिहित किया गया है, जैसे अपभ्रंष्ट, अवहंस, अवहत्थ, अवहट्ठ, आभीरोक्त, देशभाषा, देसी एवं ग्रामीण भाषा आदि ।

अपभ्रंश भाषाओं का समय ५०० ई० से १००० ई० तक अथवा ६०० ई० से १२०० ई० तक माना जाता है । 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग पतंजलि मुनि ने २०० ई० पू० अपाणिनीय शब्दों के लिए किया था क्योंकि गौ शब्द के अनेक अपभ्रंश शब्द गावी, गौणी, गोता, गोपोतलिका आदि का लोकभाषा में प्रचलन हो गया था । अशुद्ध या भ्रष्ट शब्दों के लिए भरत, दण्डी एवं भर्तृहरि जैसे विद्वान् 'अपभ्रंश' नाम का प्रयोग करते हैं । ६०० ई० से भाषा के अर्थ में 'अपभ्रंश' का प्रयोग भामह के 'काव्यालंकार' तथा वैयाकरण चंड के 'प्राकृत-लक्षणम्' में पाया जाता है । यद्यपि 'अपभ्रंश' के उदाहरण ३०० ई० के आसपास रचे गए भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में पाये जाते हैं । ६०० ई० में हुए बल्लभीपति धरसेन ने अपने पिता गुहसेन को संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश रचना में चतुर बताया है यथा--'संस्कृत-प्राकृतापभ्रंशभाषा-त्रयप्रतिबद्धप्रबन्धरचनानिपुणान्तःकरणः' । ९०० ई० के आसपास आचार्य रुद्रट ने अपभ्रंश का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है । १२०० ई० के आसपास हेमचन्द्र ने अपभ्रंश का व्याकरण (शब्दानुशासन नामक) रचा । अपभ्रंश में ६०० ई० से १५०१ ई० तक काव्य रचना हुई हैं । अपभ्रंश में रचे गए प्रमुख ग्रन्थ रइधू का 'करकंड चरिउ', पुष्पदंत रचित 'आदि पुराण', धर्मसूरिचरित 'जम्बूस्वामी राजा', सरहरचित 'दोहाकोश', स्वयंभू का 'पउमचरिउ', रामसिंह रचित 'पाहुडदोहा' एवं धनपाल रचित 'भविसयन्तकहा' आदि हैं ।

अपभ्रंश किस क्षेत्र में बोली जाती थी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है । अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि अपभ्रंश का सबसे पहले विकास पश्चिमोत्तर भारत में हुआ था । डा० बाबूराम सक्सेना मध्यदेशीय शौरसेनी अपभ्रंश को उस

समय की परिमार्जित भाषा स्वीकार करते हैं। कीथ के मतानुसार अपभ्रंश गूजरों तथा अभीरों की भाषा थी। राजशेखर का मत है कि अपभ्रंश मरुभूमि, टक्क तथा मायादेश के निवासी भी बोलते थे।

अपभ्रंश के अनेक भेद माने गए हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में अपभ्रंश के अनन्त भेद माने गए हैं। नमिसाधु ने काव्यालंकार टीका में अपभ्रंश के ३ भेद बताए हैं--(१) उपनागर, (२) आभीर, (३) ग्राम्य। 'प्राकृत-सर्वस्व' में मार्कण्डेय ने भी अपभ्रंश के ३ भेद इस प्रकार किए हैं--(१) नागर, (२) उपनागर, (३) ब्राचड़। अपभ्रंश के २७ भेदों का उल्लेख मिलता है--कार्णाट, कांच्य, गुर्जर, द्राविड़, आभीर, मध्यदेशीय, बैताल, गौड़, ओढ़ वैवपश्चात्य, कोन्तल, पाण्डय, कलिग्य, सैहल, प्राच्य, कैकय, मालव, टक्क, पांचाल अवन्त्य, नागर, बार्बर, उपनागर, वैदर्भ, लाट, ब्राचड आदि। ये भेद भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की दृष्टि से किए गए हैं। डा० जी० वी० तगारे ने मात्र तीन भेद माने माने हैं-(१) दक्षिणी, (२) पश्चिमी तथा (३) पूर्वी। याकोबी ने अपभ्रंश को ४ भेदों में बाँटा है--(१) पूर्वी, (२) पश्चिमी, (३) उत्तरी, (४) दक्षिणी। डा० नामवर सिंह ने अपनी 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' पुस्तक में अपभ्रंश के दो भेद (१) पश्चिमी तथा (२) पूर्वी माने हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपभ्रंश के भेदों के विषय में अनेक मत हैं। अपभ्रंश के सम्बन्ध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अपभ्रंश से ही आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है, इनकी संख्या १३-१४ है। अपभ्रंश के केवल दो-तीन रूपों से इतनी भाषाओं का विकास असम्भव लगता है अतः अपभ्रंश के रूप अधिक रहे होंगे।

अपभ्रंश की प्रमुख विशेषताऐं-

(१) ध्वनि सम्बन्धी विशेषताऐं--

(१) अपभ्रंश में प्रायः उन्हीं ध्वनियों का प्रयोग हुआ है जो प्राकृत में पाई जाती थीं। 'ऋ' का लिखित रूप था किन्तु स्वर की तरह उच्चारण का अभाव हो गया था। तीनों श, ष, स के स्थान पर केवल स का प्रयोग मिलता है (परन्तु मागधी अपभ्रंश में तीनों के स्थान पर 'श' पाया जाता है)।

(२) दीर्घ अन्तिम स्वर का ह्रस्व हो जाता है अथवा लोप हो जाता है (सन्ध्या=संझ, प्रिया=प्रिय, गर्भिणी > गब्भिणी)।

(३) अन्तिम स्वर से पहले स्वर की मात्रा उसी प्रकार रहती है।

(४) द्वित्व व्यंजन का प्रयोग नहीं होता एवं प्रथम अक्षर को दीर्घ बना दिया जाता है जैसे कृष्ण=कान्ह।

(५) प्रारम्भ में आने वाले स्पर्श व्यंजन महाप्राण में बदल जाते हैं। यथा→

कीलका > खिलियइँ ।

(६) अपभ्रंश में उकार की अधिकता पाई जाती है, यथा–पियासु, मूलू, कारणु, जगु आदि ।

(७) अपभ्रंश में व्यञ्जनों का विपर्यय भी प्राप्त होता है––जैसे दीर्घ शब्द का दीहर होना ।

(८) अपभ्रंश भाषाओं में म का व, क्ष का 'क्ख' या 'च्छ' 'स्म' का 'म्ह' हो जाता है । (यथा–कमल > कवॅल, पक्षी > पक्खी या पच्छी, अस्मै > अम्ह)

(९) प्रारम्भ में आने वाले 'य' के स्थान पर 'ज' हो जाता है जैसे–युगल > जुगल, याति > जाति ।

(१०) 'व' के स्थान पर 'ब' पाया जाता है–वचन > बअण । 'ष्ण' के स्थान पर 'न्ह' हो जाता है, कृष्ण > कान्ह ।

(११) अपभ्रंश में ड, द, न, र के स्थान पर 'ल' हो जाता है । (नवनीत > लोण, प्रदीप्त > पलित्त)

(१२) र् एवं ऋ के समीप का दन्त्य व्यञ्जन मूर्धन्य हो जाता है ।

(१३) 'र्' का आगम पाया जाता है । पश्यति > प्रस्सदि ।

(१४) दो व्यंजनों के मिलने पर एक व्यञ्जन शेष रहता है एवं पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो जाता है कस्य > कस्स > कासु (यहाँ स् तथा य मिलने पर एक व्यंजन स् शेष रह गया है एवं 'क' का स्वर दीर्घ हो गया) तस्य > तासु ।

(१५) स्वरभक्ति, अपिनिहित का प्रयोग मिलता है ।

पदरचना सम्बन्धी विशेषतायें–

(१६) अपभ्रंश का संस्कृत से सम्बन्ध बहुत कम हो गया है ।

(१७) अपभ्रंश में वियोगात्मकता अधिक हो गयी है ।

(१८) अपभ्रंश में धातु तथा नाम रूपों की संख्या बहुत कम हो गयी है ।

(१९) नपुंसक लिंग का बहुत कम प्रयोग हुआ है ।

(२०) अपभ्रंश भाषाओं में कारकों के नये चिह्न मिलते हैं जैसे करण के लिए सहुँ, तण, सम्प्रदान के लिए केहि, रेसि, अपादान के लिए थिउ, होन्त, सम्बन्ध कारक के लिए केर, कर, का एवं अधिकरण के लिए महे, मज्झ शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा ।

(२१) अपभ्रंश भाषा में अकारान्त पुँल्लिग प्रातिपदकों की संख्या बढ़ गई ।

(२२) कारकों के रूप कम होकर केवल छः रह गए । कारक तीन वर्गों में विभाजित हो गए १–कर्ता, कर्म, सम्बोधन; २–करण अधिकरण; ३–सम्प्रदान, अपादान एवं सम्बन्ध ।

(२३) वाक्यरचना में शब्द-स्थान निश्चित हो गया।

(२४) 'ड' का प्रयोग अधिक होने लगा।

(२५) प्रथमा तथा द्वितीया में शब्दों का प्रयोग बिना विभक्ति के होने लगा।

(२६) तृतीया तथा सप्तमी में एकवचन में एँ तथा इँ, एवं बहुवचन में हि, हिँ का प्रयोग अधिक होने लगा। एकवचन में ए, इ, अहि, एँहि, एहि, इण, एल का भी प्रयोग होता था।

(२७) चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी के एकवचन के लिए 'ह', हे, हु, हो एवं बहुवचन के लिए हि, हिँ का प्रयोग होने लगा था।

(२८) धातु रूपों में लट्, लोट्, लृट् के रूप ही शेष रह गए।

(२९) अपभ्रंश में लट् के रूप लुप्त हो गए।

(३०) लृट् में स तथा ह से युक्त शब्द प्राप्त होते हैं यद्यपि 'ह' का अधिक प्रयोग हुआ है।

(३१) लङ् लकार में 'ज्ज' की अधिकता है–करिज्जइ।

(३२) भूतकाल के लिए 'क्त' प्रत्यय अधिक प्रयुक्त होने लगा।

(३३) पूर्वकालिक क्रिया में एवि, अवि, हवि, इउ, ई, एप्पि, आदि का प्रयोग होता था किन्तु कालान्तर में 'इ' के प्रयोग की अधिकता हो गई।

(३४) क्रियार्थक संज्ञा के लिए 'अण्' प्रत्यय अधिक प्रयुक्त होने लगा।

अवहट्ट :--'अवहट्ट' भाषा का समय अपभ्रंश तथा आधुनिक भाषाओं के मध्य माना जाता है। साधारण रूप से अपभ्रंश भाषाओं का समय १०००–११०० ई० तक माना जाता है। आधुनिक भाषाओं का विकास १४ वीं शताब्दी में हो चुका था। ११०० ई० से १४वीं शताब्दी के बीच प्रारम्भ में अपभ्रंश का प्रभाव अधिक रहा, धीरे-धीरे वह कम हो गया तथा आधुनिक भाषाओं का रूप विकसित होने लगा। आधुनिक भाषाओं के लिए यह सन्धिकाल माना जाता है। अपभ्रंश से ही अवहट्ट नाम का विकास हुआ है। 'अवहट्ट' को देशी, पुरानी हिन्दी या परवर्ती अपभ्रंश नाम भी दिए गए हैं। इस समय की भाषा में कई रचनाएँ हुई हैं--(१) संनेहयरासक, (२) प्राकृतपैंगलम्, (३) वर्णरत्नाकर, (४) उक्ति-व्यक्तिप्रकरण, (५) कीतिलता एवं (६) ज्ञानेश्वरी आदि।

(३) **आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ**– आधुनिक भारतीय आर्यआषाओं का विकास अपभ्रंश के भिन्न-भिन्न रूपों से हुआ है। 'अवहट्ट' के उत्तरार्ध में आधुनिक आर्यभाषाओं की प्रवृत्तियाँ प्रमुख हो गयीं तथा धीरे-धीरे आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ। किन अपभ्रंशों से किस भारतीय आधुनिक भाषा का विकास हुआ यह पीछे भारतीय आर्य भाषाओं के विभाजन के समय आधुनिक भारतीय आर्य-

भाषाओं के विवरण में बताया जा चुका है। आधुनिक भारतीय भाषाएँ इस प्रकार हैं –

(१) **सिन्धी** - इस भाषा का विकास ब्राचड अपभ्रंश से हुआ है। इसकी मुख्य विशेषता 'त' का 'ट' तथा 'द' से 'ड' होना है। वर्तमान काल में सिन्धी पाकिस्तान के सिन्ध प्रदेश में बोली जाती है। भारत में इस भाषा के बोलने वाले कच्छ, बम्बई, अजमेर, दिल्ली में अधिक पाये जाते हैं तथा थोड़ी थोड़ी संख्या में भारत के अन्य क्षेत्रों में भी हैं। इस भाषा का प्रसिद्ध ग्रन्थ शाहजो रिशालो' है। प्रमुख कवि अब्दुल करीम, शाह लतीफ, सचल, और सामी आदि हैं। सिन्धी की लिपि 'लंडा' (अरबी से प्रभावित) एवं नागरी लिपि है। सिन्धी की प्रमुख बोलियाँ कच्छी, थलेरी, लारी, सिरैकी, बिचोली हैं। इनमें 'बिचोली' का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास हुआ है।

(२) **लहँदी**– यह भाषा पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) एवं पश्चिमोत्तर क्षेत्र में बोली जाती है। इसका विकास पैशाची एवं कैकय अपभ्रंश से हुआ है। लहंदा, के अन्य नाम जटकी, हिंदकी, डिलाही, उच्ची आदि हैं। इसकी ४ प्रमुख बोलियाँ पोठवारी, धन्नी, मुल्तानी, एवं लहंदा हैं। इसका साहित्य नहीं के बराबर है। यह (लहंदा) फारसी लिपि में लिखी जाती है।

(३) **पूर्वी पंजाबी**– आधुनिक पंजाब के क्षेत्र में यह भाषा बोली जाती है कैकय (पैशाची) अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है। शौरसेनी एवं टक्क अपभ्रंशों का भी इस पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। पहले यह 'लंडा' लिपी में लिखी जाती थी अब इसके लिए 'गुरुमुखी' लिपी का प्रयोग किया जाता है। इसकी सबसे प्रसिद्ध बोली 'डोगरी' है। अब इसमें साहित्य रचना प्रारम्भ हो गयी है। यह पंजाब में राजकाज की भाषा है।

(४) **पहाड़ी**– पहाड़ी भाषाओं का विकास खश अपभ्रंश से माना जाता है। इसके ३ भाग हैं–(१) पूर्वी पहाड़ी, (२) मध्य पहाड़ी, (३) पश्चिमी पहाड़ी। पूर्वी पहाड़ी के अन्तर्गत नेपाली मुख्य बोली है। नेपाली के अन्य नाम गुरखाली, खसखुरा भी हैं। इसमें साहित्य भी लिखा जा रहा है। नेपाल में राजभाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। मध्य पहाड़ी में गढ़वाली तथा कुमायूँनी मुख्य बोलियाँ हैं। आधुनिक समय में साहित्य रचना प्रारम्भ हो गयी है। पश्चिमी पहाड़ी पर राजस्थानी का अधिक प्रभाव है। जौनसारी, सिरमौरी, चम्बाली आदि २० बोलियाँ पाई जाती हैं। सभी पहाड़ी भाषाएँ प्रायःनागरी लिपि में लिखी जाती हैं।

(५) **गुजराती**– गुजराती भाषा का क्षेत्र गुजरात प्रान्त है। इसका विकास नागर अपभ्रंश से हुआ है। इस भाषा की लिपि प्राचीन नागरी से निकली हुई है। गुजराती में प्राचीन साहित्य पाया जाता है। नरसी मेहता गुजराती के प्रसिद्ध कवि हुए हैं।

(६) **भीली**– यह राजस्थानी एवं गुजराती से प्रभावित बोली है तथा इसका क्षेत्र भी राजस्थान एवं गुजरात सीमा क्षेत्र में है। साहित्य के नाम पर लोक-गीत पाये जाते हैं।

(७) **पश्चिमी हिन्दी**– पश्चिमी हिन्दी में पाँच प्रमुख बोलियाँ सम्मिलित की जाती हैं जिसमें ब्रजभाषा, खड़ी बोली, बुन्देली, बांगरू, कन्नौजी सम्मिलित हैं। इनमें ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ब्रजभाषा में हिन्दी का प्राचीन साहित्य पाया जाता है। खड़ी बोली वर्तमान समय में देश की राष्ट्रभाषा है। इसमें आधुनिक साहित्य समृद्ध रूप में पाया जाता है। पाँच बोलियों के अतिरिक्त हिन्दी तथा अरबी-फारसी शब्दों से मिश्रित बोली 'उर्दू' है। उर्दू लिखने के लिए अरबी लिपि का प्रयोग किया जाता है। 'निभाड़ी' बोली भी पश्चिमी हिन्दी में अब सम्मिलित की जाती है।

(८) **पूर्वी हिन्दी**– पूर्वी हिन्दी का विकास अर्द्धमागधी से हुआ हैं। इसके अन्तर्गत अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी बोलियाँ आती हैं। इनमें अवधी का अधिक महत्त्व है। इसमें लिखा गया साहित्य हिन्दीभाषा की अमूल्य निधि है।

हिन्दी के बोलने वाले सन् १९६१ में १७ करोड़ के लगभग थे जो अब २५ करोड़ से अधिक हैं।

(९) **राजस्थानी**– नागर अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है। इसके अन्तर्गत मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी आदि बोलियाँ सम्मिलित की जाती हैं। राजस्थानी की लिपि नागरी है।

(१०) **बिहारी**– इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। मैथिली, मगही, भोजपुरी इसकी प्रधान बोलियाँ हैं। मैथिली का साहित्य सम्पन्न है। इसके प्रमुख कवि विद्यापति हैं। नागरी, मैथिली तथा महाजनी लिपियों में यह लिखी जाती है। इसके बोलने वाले चार-पाँच करोड़ हैं।

(११) **बंगाली**– इस भाषा का विकास (पूर्वी) मागधी अपभ्रंश से हुआ है। इस भाषा में साहित्य धनी है। यह भारत में बंगाल प्रान्त तथा बांगला देश में बोली जाती है। भारत तथा बांगला देश के दस करोड़ से अधिक व्यक्ति बंगाली भाषा बोलते हैं यह भाषा सुनने में बहुत अच्छी लगती है। इस भाषा के प्रमुख कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर थे।

(१२) **उड़िया**– इस भाषा पर बंगाली भाषा का प्रभाव है। चार सौ वर्ष प्राचीन साहित्य मिलता है। इस भाषा में मराठी एवं तेलगू शब्द भी अधिक पाये जाते हैं। वर्तमान समय में यह उड़ीसा प्रदेश में बोली जाती है।

(१३) **असमिया**– असमिया या असमी भाषा का विकास मागधी (पूर्वोत्तरी) अपभ्रंश से हुआ है। यह बंगाली से अधिक मिलती है। प्राचीन साहित्य भी इस भाषा में पाया जाता है। इसके बोलने वाले १९६१ में ३८ लाख थे।

(१४) **मराठी**– इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। इसकी लिपि

नागरी है। इसका पुराना एवं नया साहित्य हर प्रकार से समृद्ध है । नामदेव इसमें प्रसिद्ध कवि थे। १९६१ में ३ करोड़ ३३ लाख व्यक्ति इसे बोलते थे।

(१५) **सिंघली एवं मालद्वीपी**—यह सौराष्ट्र के समीप की भाषा से संम्बन्धित है। सिंहली का ही पुराना रूप 'एलु' है जो मराठी से प्रभावित है। यह मालद्वीप में भी बोली जाती है।

(१६) **जिप्सी**—उपर्युक्त भारतीय भाषाओं में कुछ लोग जिप्सी भाषा को भी सम्मिलित करते हैं। प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी में कुछ खानाबदोश जातियाँ भारत से पश्मोत्तर दिशा में विदेशों को चली गई थी। इनकी भाषा में विदेशी प्रभाव अधिक पड़ा है। इनको रोमानी या हबूड़ी कहा जाता है। ये यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका एवं एशियाई देशों में पाये जाते हैं।

भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण

आधुनिक भारतीय भाषाओं को अनेक भाषा-विज्ञानियों ने विभाजित किया है। इन विभाजनों में पाश्चात्य विद्वान् हार्नले, बेबर, ग्रियर्सन आदि के एवं भारतीय विद्वानों में डा० सुनीति कुमार चटर्जी तथा धीरेन्द्र वर्मा के वर्गीकरण अधिक प्रसिद्ध हैं।

हार्नले महोदय ने भारतीय आर्य भाषाओं का सम्यक् अध्ययन करके सन् १८८० में अपनी पुस्तक 'गौडीय भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' (Comparative Grammar of the Gaudian Languages) की रचना की थी। इस पुस्तक में उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि आर्य लोग भारत में दो समूहों में दो बार में आए। पहली बार भारत में आने वाले आर्य पंजाब क्षेत्र में निवास करते थे। दूसरी बार जो आक्रमणकारी आर्य आए थे उन्होंने पहले आए हुए आर्यों को अपने स्थान से खदेड़ दिया। ये लोग भाग कर पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशाओं में फैल कर निवास करने लगे तथा पूर्वागत आर्यों के स्थान पंजाब क्षेत्र में बाद में आने वाले आर्य रहने लगे। दोनों दल भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते थे। पहले आने वाले आर्यों का मुख्य निवास स्थान पंजाब क्षेत्र के आस पास भिन्न दिशाओं में फैल जाने के कारण बाहरी आर्यों की संज्ञा दी जाती है तथा बाद में आने वाले आर्यों को जो पंजाब या मध्यदेश में रहते थे भीतरी आर्यों की। इस प्रकार आर्यों के आगमन काल एवं उनके विस्तार को आधार बना कर हार्नले ने अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया जो इस प्रकार है—

(१) पूर्वी गौडियन—पूर्वी हिन्दी, बंगला, असमिया, उड़िया।
(२) पश्चिमी गौडियन— पश्चिमी हिन्दी (राजस्थानी सहित), गुजराती, सिंधी, पंजाबी।

(३) उत्तरी गौडियन–गढ़वाली, नेपाली आदि पहाड़ी भाषाएँ।

(४) दक्षिणी गौडियन–मराठी।

डा० ग्रियर्सन ने डा० हार्नले से प्रभावित होकर अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। लेकिन उन्होंने माना है कि आर्य दो दलों में आये, दोनों दलों की भाषा भिन्नयें थीं तथा यह माना है कि एक दल मध्य देश या पंजाब के आस पास के क्षेत्र में रहने लगा तथा बाद में आने वाला दल या दूसरा दल मध्य देश के चारों ओर फैलकर रहने लगा। इन्होंने मध्य देश के आर्यों को अन्त-रंग या भीतरी क्षेत्र का माना है तथा मध्यदेश के चारों ओर रहने वालों को बहिरंग या बाहिरी क्षेत्र का माना है। इसी आधार पर उन्होंने भाषाओं के दो भेद माने हैं –(१) अंतरंग या भीतरी तथा (२) बहिरंग या बाहिरी। अंतरंग भाषाओं में उन्होंने पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, भींली, खानदेशी एवं राजस्थानी तथा पहाड़ी (पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी) भाषाओं की गणना की है। बहिरंग भाषाओं में लहँदा, सिन्धी, मराठी, उड़िया, बिहारी, बंगला असमिया भाषाओं की गणना की है। डा० ग्रियर्सन का वर्गीकरण इस प्रकार है––

(क) बहिरंग उपशाखा–

प्रथम–उत्तर-पश्चिमी समुदाय

(१) लहँदा, (२) सिन्धी

द्वितीय–दक्षिणी समुदाय

(३) मराठी

तृतीय–पूर्वी समुदाय

(४) उड़िया

(५) बिहारी

(६) बंगला

(७) असमिया

(ख) मध्य उपशाखा–

चतुर्थ–बीच का समुदाय

(८) पूर्वी हिन्दी

(ग) अन्तरंग उपशाखा–

पंचम–केन्द्रीय या भीतरी समुदाय

(९) पश्चिमी हिन्दी (ब्रजभाषा, खड़ी बोली)

(१०) पंजाबी (पूर्वी पंजाब की भाषा)

(११) गुजराती

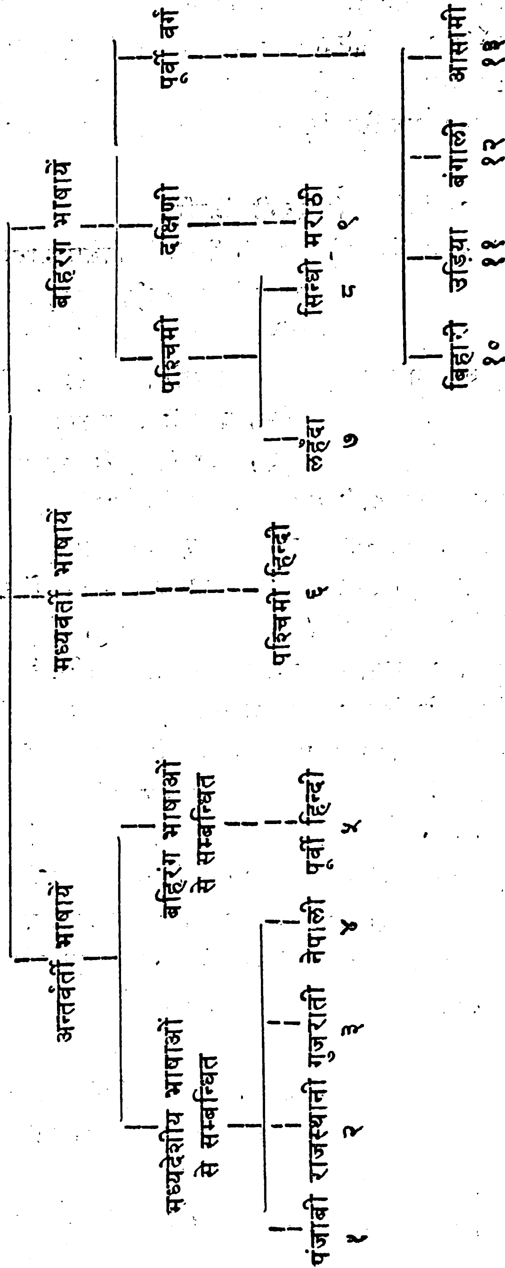
(१२) भीली

(१३) खानदेशी

डॉ० ग्रियर्सन का वर्गीकरण

आधुनिक आर्यभाषायें

- बहिरंग शाखा
  - पश्चिमोत्तरीय समुदाय
    - लहँदा १
    - सिन्धी २
  - दक्षिणीसमुदाय
    - मराठी ३
  - पूर्वीसमुदाय
    - उड़िया ४
    - बंगाली ५
    - आसामी ६
    - बिहारी ७
- मध्यवर्ती शाखा
  - मध्यसमुदाय
    - पूर्वी हिन्दी ८
- अन्तरंग शाखा
  - केन्द्रीय समुदाय
    - पश्चिमी हिन्दी ९
    - पंजाबी १०
    - गुजराती ११
    - भीली १२
    - खानदेशी १३
    - राजस्थानी १४
  - पहाड़ी समुदाय
    - नेपाली १५
    - मध्यपहाड़ी १६
    - पश्चिमीपहाड़ी १७



डॉ० ग्रियर्सन का संशोधित वर्गीकरण
आधुनिक आर्यभाषायें
अन्तर्वर्ती भाषायें
मध्यवर्ती भाषायें
बहिरंग भाषायें
मध्यदेशीय भाषाओं से सम्बन्धित
बहिरंग भाषाओं से सम्बन्धित
पश्चिमी
दक्षिणी
पूर्वी वर्ग
पंजाबी १
राजस्थानी २
गुजराती ३
नेपाली ४
पूर्वी हिन्दी ५
पश्चिमी हिन्दी ६
लहँदा ७
सिन्धी ८
मराठी ९
बिहारी १०
उड़िया ११
बंगाली १२
आसामी १३

(१४) राजस्थानी

षष्ठ–पहाड़ी समुदाय

(१५) पूर्वी पहाड़ी या नेपाली (गोर्खाली या खसकुरा)

(१६) मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी (कुमांयूनी, गढ़वाली)

(१७) पश्चिमी पहाड़ी (जौनसारी, सिरमौरी, क्योंठाली, कुल्लुई, चम्बाली)

कुछ समय बाद ग्रियर्सन ने अपने वर्गीकरण में सुधार किया जो इस प्रकार है–

(क) मध्यदेशी – (पश्चिमी हिन्दी)

(ख) अन्तवर्ती–(१) पश्चिमी हिन्दी से विशेष सम्बन्ध रखने वाली (पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी, पूर्वी, पश्चिमी, मध्य)।

(२) बहिरंग से सम्बद्ध (पूर्वी हिन्दी)

(ग) बहिरंग भाषाएँ–(१) पश्चिमोत्तरी (लहँदा, सिन्धी)

(२) दक्षिणी (मराठी)

(३) पूर्वी (बिहारी, उड़िया, बंगाली, असमी)

ग्रियर्सन ने काश्मीरी भाषा को 'दरद' शाखा के अन्तर्गत माना है।

ग्रियर्सन ने ध्वनितत्त्व, रूपतत्त्व एवं शब्द समूह के आधार पर अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। अतरंग तथा बहिरंग भाषाओं में तुलना करके बताया है कि बहिरंग की भाषाओं में परस्पर समानता पायी जाती है तथा बहिरंग भाषाएँ अन्तरंग भाषाओं से ध्वनि, रूप एवं शब्द समूह की दृष्टि से भिन्न हैं।

डा० ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय भाषाओं गुजराती, मराठी, बंगला आदि की तुलना करके अपना मत प्रस्तुत किया है। उन्होंने वैदिक संस्कृत, संस्कृत जैसी प्राचीन भाषाओं को अपने विभाजन का आधार नहीं बनाया है। बहुत सी भाषागत विशेषताएँ जो पहले की भाषाओं में नहीं थी बाद की विकसित भाषाओं में उत्पन्न हो गयी होंगी। डा० सुनीति कुमार चटर्जी ग्रियर्सन द्वारा किए गए वर्गीकरण से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। श्री चटर्जी ने अपने ग्रन्थ 'बंगला भाषा का उद्भव और विकास' के प्रथमखण्ड (परिशिष्ट अ) में ग्रियर्सन के अन्तरंग एवं बहिरंग भाषाओं में अन्तर के कारणों का खण्डन करते हुये उनकी आलोचना की है।

ध्वनितत्त्व

(१) डा० ग्रियर्सन ने बताया है कि बहिरंग उपशाखा की उत्तर पश्चिमी (सिन्धी, काश्मीरी आदि) एवं पूर्वी (बिहारी आदि) बोलियों में अन्त्य स्वर इ, उ, ए पाये जाते है परन्तु अन्तरंग उपशाखा की पश्चिमी हिन्दी में ये लुप्त हो गए हैं।

यथा–बहिरंग (बाहरी) उपशाखा की भाषा–काश्मीरी–अछि
सिन्धी-अखि
बिहारी (मैथिल-भोजपुरी)–आँखि
) यहाँ अन्त्य स्वर 'इ' है

परन्तु अन्तरंग उपशाखा की पश्चिमी हिन्दी में -आंख्। यहाँ इ, उ, ए से कोई भी अन्त्य स्वर नहीं आया है।

डा० चटर्जी द्वारा खण्डन-प्रायः समस्त भारतीय आर्य भाषाओं में अन्त्य स्वर कभी न कभी प्रयोग किये जाते थे परन्तु अब कुछ भारतीय भाषाओं में लुप्त हो गये हैं (हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि में) किन्तु कुछ में पाये जाते हैं (उड़िया, पूर्वी हिन्दी, सिन्धी)। ग्रियर्सन के मत के विपरीत बहिरंग भाषा बंगला में अन्त्य स्वर उकार का लोप देखा जा सकता है, जैसे 'चोख्' (सं० चक्षु=आंख) एवं अन्तरंग भाषा ब्रज-भाषा में अन्त्य स्वर भी पाये जाते हैं जैसे- मालु (माल=धन), सबु (=सब), अकालु (=अकाल), बांटु (=बांट, भाग)। इसी प्रकार के उदाहरण अवधी में भी पाये जाते हैं।

(२) डा० ग्रियर्सन के अनुसार बहिरंग उपशाखा की भाषाओं में दो स्वरों के बीच आने वाला 'स्' परिवर्तित होकर 'ह' हो जाता है, जबकि अन्तरंग भाषा पश्चिमी हिन्दी में इस तरह नहीं होता है। (जैसे अन्तरंग भाषा में 'कोस' तो बरिरंग में 'कोह')

डा० चटर्जी द्वारा खण्डन-दो स्वरों के बीच के 'स्' का 'ह' मे बदलना मात्र बहिरंग उपशाखा की भाषाओं में ही नहीं अपितु अन्तरंग उपशाखा की पश्चिमी हिन्दी में भी पाया जाता है, जैसे-संस्कृत करिष्यति <करिस्सदि <करिसई=करिहइ। (यहाँ 'करिसइ' का 'स' 'ह' में परिवर्तित हो गया है) इसी प्रकार के अन्य उदाहरण हैं-सं०-एकादश> ग्यारह, सं० द्वादश=बारह (खड़ी बोली) एवं सं० केसरिन् < केहरि (ब्रजभाषा)।

इसके विपरीत बहिरंग भाषा लँहदा में करिष्यति का 'करेसी' रूप पाया जाता है जहाँ स् मूल रूप में वर्तमान है। इस प्रकार ग्रियर्सन का मत उचित नहीं।

(३) डा० ग्रियर्सन के अनुसार बहिरंग उपशाखा में 'स' के स्थान पर 'श' हो जाता है परन्तु अन्तरंग उपशाखा में यह परिवर्तन नहीं होता है।

डा० चटर्जी द्वारा खण्डन-मागधी प्राकृत से बंगला आदि पूर्वी भाषाओं का विकास हुआ है। मागधी प्राकृत में ऊष्म ध्वनियों स्, ष्, श् के स्थान पर केवल 'श' का ही प्रयोग हुआ है। यही विशेषता बंगला भाषा में पायी जाती है। परन्तु शब्द के प्रारम्भ में आने वाला स् बदल कर ह् हो जाता है जबकि असमी में ख्' में बदल जाता है। इस प्रकार पूर्वी भाषाओं में ही ध्वनि गत अन्तर पाया जाता है। बहिरंग उप-शाखा की 'लहंदा' में भी स् के स्थान पर 'ह' पाया जाता है। मराठी में भी 'स' या 'ष' को 'श्' सदैव नहीं होता है अपितु केवल उस समय होता है जब स्, ष्, ध्वनि के पश्चात इ, ई, ए, य ध्वनियों में से कोई आ रही हो। जैसे सं० ज्योतिषिन् <मराठी-जोशी। परन्तु सं० 'शम' का 'सवणें' में श् के स्थान पर स् हुआ। इस प्रकार सभी बहिरंग भाषाओं

को एक मानकर अन्तरंग से भिन्नता दिखाना उचित नहीं है।

अन्तरंग भाषा हिन्दी की उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृत से हुई है अतः उस प्राकृत के अनुकूल हिन्दी में 'स्' का प्रयोग किया जाता है। अतः ग्रियर्सन द्वारा इस कारण के आधार पर अन्तरंग एवं बहिरंग उपशाखाओं का भेद करना उचित नहीं है।

(४) डा० ग्रियर्सन के अनुसार बहिरंग भाषाओं में महाप्राण ध्वनियाँ अर्थात् वर्गों की दूसरी तथा चौथी ध्वनियाँ अल्पप्राण अर्थात् वर्गों की प्रथम तथा तृतीय ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं। परन्तु अन्तरंग (भीतरी) उपशाखा की पश्चिमी हिन्दी में यह परिवर्तन नहीं है।

डा० चटर्जी द्वारा खण्डन—डा० ग्रियर्सन के मत के विपरीत अन्तरंग उपशाखा की भाषा पश्चिमी हिन्दी में भी महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण में परिवर्तित हो जाती हैं। जैसे–सं० 'भगिनी' का हिन्दी में 'बहिन' हो जाता है। साथ ही बहिरंग उपशाखा की भाषा उड़िया में महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण ध्वनि में नहीं भी बदलती है जैसे–सं० 'भगिनी' का 'भैणी' (उड़िया) हो जाता है। इस प्रकार हिन्दी में अल्पप्राण से महाप्राण होना भी पाया जाता है जैसे–सं० 'वेश' <'बेश' <हिन्दी० भेस। सं० का विभूति <बिभूति <हिन्दी० भभूत। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि डा० ग्रियर्सन का महाप्राण तथा अल्पप्राण ध्वनियों के आधार पर बहिरंग एवं अन्तरंग भेद करना उपयुक्त नहीं है।

(५) डा० ग्रियर्सन के अनुसार 'म्ब' ध्वनि बहिरंग उपशाखा की भाषाओं में 'म्' के रूप में तथा अन्तरंग उपशाखा की भाषाओं में 'ब्' के रूप में पायी जाती है।

डा० चटर्जी द्वारा खण्डन—डा० ग्रियर्सन का उक्त मत भी पूर्णतया सही नहीं कहा जा सकता है। बहिरंग उपशाखा की भाषा 'बंगला' में 'निम्बुक' के स्थान पर 'नेबू' या लेबू रूप मिलता है। यहाँ 'म्ब' ध्वनि के स्थान पर 'ब' ध्वनि पाई जाती है। इसी प्रकार अन्तरङ्ग उपशाखा की पश्चिमी हिन्दी में 'ब्' ध्वनि के स्थान पर म् ध्वनि भी पायी जाती है, जैसे–निम्ब का 'नीम' एवं 'जम्बुक' का जामुन' रूप प्राप्त होता है। इस प्रकार इस आधार पर भी बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग भाषाओं का भेद करना अनुपयुक्त है।

(६) डा० ग्रियर्सन के अनुसार बहिरङ्ग उपशाखा की भाषाओं में 'ल' या 'ड़' के लिए 'र' का प्रयोग किया जाता है।

डा० चटर्जी द्वारा खण्डन—डा० ग्रियर्सन का यह मत भी पूर्णतया सही नहीं है क्योंकि अन्तरङ्ग भाषाओं में ब्रज भाषा, अवधी, खड़ी बोली में भी 'ल' या 'ड़' के स्थान पर 'र' का प्रयोग मिलता है जैसे गर (गला), जर (जल), किवार (किवाड़)

भीर (भीड़) आदि अत: ग्रियर्सन का उपर्युक्त मत भी उचित नहीं है ।

डा० ग्रियर्सन के अनुसार बहिरङ्ग (बाहरी) उपशाखा की भाषाओं में 'द' ध्वनि के लिए 'ड' ध्वनि का प्रयोग किया जाता है ।

डा० चटर्जी ने इसका खण्डन किया है तथा बताया है कि उक्त मत पूर्णतया सही नहीं है अन्तरङ्ग (भीतरी) उपशाखा की हिन्दी में 'द' के स्थान पर 'ड' ध्वनि का प्रयोग पाया जाता है जैसे सं० दृष्टि के लिए डीठि, देहली के लिए ड्योढी, दर्भ के लिए डाम, दण्ड <दण्डा, दंश < डसना, द्व्यर्द्ध > डेढ़ आदि में 'द' के स्थान पर 'ड' प्रयुक्त हुआ है ।

रूपतत्त्व

डा० ग्रियर्सन ने रूपतत्त्व सम्बन्धी अन्तर बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग भाषाओं में बताए हैं । डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसकी भी आलोचना की है ।

(१) डा० ग्रियर्सन के अनुसार स्त्री प्रत्यय 'ई' का प्रयोग बहिरङ्ग उपशाखा की पूर्वी तथा पश्चिमी भाषाओं में मिलता है जबकि अन्तरङ्ग उपशाखा की भाषा में इसका अभाव है ।

डा० चटर्जी द्वारा खण्डन–ग्रियर्सन का यह मत समीचीन नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि स्त्री प्रत्यय 'ई' का प्रयोग प्राय: समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में पाया जाता है एवं अन्तरङ्ग उपशाखा की भाषाओं में भी मिलता है । यह प्रत्यय संस्कृत के स्त्री प्रत्यय टाप् (आ) के लिए हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में प्रयुक्त हुआ है । हिन्दी में गाती, दौड़ी, लगी, गई, लड़की, बेटी, रसीली छोटी, बड़ी आदि शब्दों में स्त्री प्रत्यय 'ई' देखा जा सकता है । अत: डा० ग्रियर्सन का यह मत है कि 'ई' स्त्री-प्रत्यय का प्रयोग केवल बहिरङ्ग उपशाखा की भाषाओं में किया जाता है, उचित नहीं है ।

(२) डा० ग्रियर्सन के अनुसार बहिरङ्ग उपशाखा की भाषाएँ (जो प्राचीन काल में संयोगावस्था से वियोगावस्था में पहुँच गई थीं) अब वियोगावस्था से फिर संयोगावस्था की ओर बढ़ रही हैं जब कि अन्तरङ्ग उपशाखा की भाषाएँ वियोगात्मक ही हैं ।

डा० चटर्जी द्वारा खण्डन–ग्रियर्सन का यह मत भी उचित नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग उपशाखाओं की भाषाओं में संयोगात्मक रूप समान रूप से प्राप्त होते हैं । यह रूप भाषा के विकास (वियोगावस्था से संयोगावस्था की ओर बढ़ने) के प्रतीक नहीं हैं । अपितु इस प्रकार के रूप संस्कृत कारक चिह्नों के बचे हुए रूप हैं । इस प्रकार के अवशिष्ट रूप प्राय: सभी भारतीय आर्य भाषाओं में देखे जा सकते हैं । पश्चिमी हिन्दी में भी जो अन्तरङ्ग उपशाखा के अन्तर्गत सम्मिलि

की जाती हैं इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं– मानहिं, मौनहिं, घोड़हि (घोड़े को) भूखों (भूख से) आदि । अतः यह तर्क बहिरङ्ग तथा अन्तरङ्ग भाषाओं में अन्तर नहीं कर सकता है ।

(३) डा० ग्रियर्सन का मत है कि बहिरङ्ग भाषाओं में ही विशेषणात्मक प्रत्यय 'ल' का प्रयोग हुआ है अन्तरङ्ग उपशाखा की भाषाओं में नहीं ।

डा० चटर्जी के अनुसार यह मत ठीक नहीं है क्योंकि अन्तरंग उपशाखा की हिन्दी भाषा में 'ल' प्रत्यय का भी प्रयोग उचित रूप से मिलता है, जैसे- रंगीला, हठीला, भड़कीला, कटीला, खर्चीला, चमकीला आदि ।

(४) डा० ग्रियर्सन के अनुसार बहिरंग उपशाखा में भूतकाल की क्रियाओं के साधारण रूपों द्वारा कर्त्ताओं के पुरुष एवं वचन का बोध होता है क्योंकि कर्ता के पुरुष अनुरूप ही भूतकाल की क्रिया का रूप बदलता रहता है । जैसे बंगला भाषा में देखा जा सकता है– (से) मारिलो (अन्य पुरुष)

(तुमि) मारिले (मध्यम पुरुष)

(आमि) मारिलाम् (उत्तम पुरुष)

इन रूपों से कर्त्ता का ज्ञान हो जाता है यदि कहा जाय कि 'मारिलाम्', तो अर्थ हुआ 'मैंने मारा' । मराठी भाषा में भी इसी प्रकार कर्ता के अनुसार भूतकाल की क्रिया का रूप बदलता रहता है जैसे 'गेलो' से अर्थ हुआ 'मैं गया 'क्योंकि यह उत्तम पुरुष का क्रिया रूप है । इसी प्रकार 'गेला' से अर्थ हुआ 'वह गया' यह प्रथम पुरुष भूतकाल की क्रिया है ।

ग्रियर्सन के अनुसार अन्तरंग उपशाखा की भाषाओं में भूतकालिक क्रियाएँ सब पुरुषों में समान रूप से रहती हैं–

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	उसने गाया	उन्होंने गाया
मध्यम पुरुष	तूने गाया	तुमने गाया
उत्तम पुरुष	मैंने गाया	हमने गाया

यहां 'गाया' भूतकालिक क्रिया सभी पुरुषों में समान रही है तथा क्रिया 'गाया' देखकर यह निश्चय नहीं किया जा सकता है कि इसका कर्त्ता किस पुरुष का है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि बहिरंग उपशाखा की भाषाओं में भूतकाल की क्रिया कर्त्ता के पुरुष का ज्ञान कराती है जब कि अन्तरंग उपशाखा की भाषाओं की भूतकाल की क्रिया से कर्त्ता के पुरुष को नहीं जाना जा सकता है । इस प्रकार दोनों उपशाखाएँ भिन्न-भिन्न हैं । उनके क्रिया (भूतकालीन) रूपों के प्रयोग में भेद हैं ।

डा० ग्रियर्सन द्वारा दिए गए उपर्युक्त तर्क को डा० चटर्जी ने अस्वीकार किया है । डा० चटर्जी का मत है कि प्राकृत भाषा के समय से क्रिया के कृदन्तीय रूपों का

प्रचलन हो गया था । चटर्जी के अनुसार पश्चिमोत्तरी (लहंदा एवं सिन्धी), पश्चिमी (हिन्दी, राजस्थानी गुजराती), तथा दक्षिणी (मराठी) भाषाओं में कर्मवाच्य के क्रिया रूप पाये जाते हैं जबकि पूर्वी भाषाओं में अवधी, विहारी, बंगला, उड़िया, असमिया आदि में कर्तृवाच्य के क्रिया रूप पाये जाते है। इसी से भूतकालिक क्रिया रूपों के प्रयोग में भिन्नता पाई जाती हैं । अतः क्रिया रूपों के आधार पर भाषाओं के बहिरंग तथा अन्तरंग उपशाखा भेद नहीं किए जा सकते हैं । क्रिया रूपों की दृष्टि से बहिरंग उपशाखा की भाषाएँ लहंदा, सिन्धी, मराठी अतरंग उपशाखा की भाषा हिन्दी से समानता रखती हैं।

(५) डा० ग्रियर्सन के अनुसार बहिरंग उपशाखा की भाषाओं में सर्वनाम भूतकालिक क्रियाओं में स्थायी रूप से जुड़ा रहता है। इसके विपरीत अतरंग उपशाखा की भाषाओं में सर्वनाम अपने स्वतंत्र रूप में रहता है । डा० चटर्जी के अनुसार बहिरंग की सभी भाषाओं की भूतकालिक क्रियाओं में सर्वनाम स्थायी रूप से जुड़ा हुआ नहीं पाया जाता है ।

शब्दसमूह

डा० ग्रियर्सन का मत है कि शब्द समूह की दृष्टि से बहिरंग भाषाओं में समानता पाई जाती है । किन्तु उनका यह मत भी ठीक नहीं है । असमी-पंजाबी में हिन्दी-पंजाबी से अधिक अथवा बंगाली-मराठी में बंगाली-हिन्दी से अधिक, एवं बंगाली-सिन्धी में बंगाली-हिन्दी से अधिक समानता शब्द-समूह की दृष्टि से नहीं पाई जाती है ।

उपर्युक्त तर्कों को देखकर जाना जा सकता है कि डा० ग्रियर्सन द्वारा किया गया बहिरंग तथा अन्तरंग उपशाखा भेद, उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है । श्री रामप्रसाद चन्द्र ने बताया है कि अन्तरंग भाग में रहने वाले आर्य डालिको सिफैलिक जाति के थे एवं बहिरंग क्षेत्र के आर्य ब्रैमा सिफैलिक जाति के थे । दोनों की भाषाओं में अन्तर था । अतः अन्तरंग एवं बहिरंग भाषाओं में भी अन्तर होना स्वाभाविक है । इस मत के विरोध में कहा जाता है कि लहंदा तथा पश्चिमी पंजाबी भाषी आर्य एवं उत्तर प्रदेश के कान्य-कुब्ज ब्राह्मण पृथक्-पृथक् आर्य जाति के होने चाहिये, किन्तु वंशावलियों के आधार पर दोनों एक ही जाति के आर्य हैं । भिन्न नहीं बहिरंग क्षेत्र के बंगाली आर्य अपने को मध्यदेश (अन्तरंग) क्षेत्र के आर्यों की सन्तान मानते हैं । इस प्रकार बहिरंग तथा अन्तरंग क्षेत्र के आर्य जातियों का अन्तर स्पष्ट नहीं होता है एवं उचित नहीं माना जा सकता है । आर्यों का आगमन एक ही बार में हुआ था तथा उनका निवास क्षेत्र 'सप्त सैन्धव' क्षेत्र था अतः आर्यों का दो बार आगमन मानकर बहिरंग तथा अन्तरंग भेद करना अनुचित ही है । भारत का मध्यदेश सदैव राजनीति का केन्द्र रहा है यहाँ की भाषा राष्ट्र की भाषा रही है । वर्तमान काल की पश्चिमी

हिन्दी भी इसी क्षेत्र की भाषा है। पश्चिमी क्षेत्र की भाषाओं की गणना पूर्वी भाषाओं के साथ करना उचित नहीं का जा सकता है। बहिरंग तथा अन्तरंग का भेद भी उचित नहीं है।

डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने पश्चिमी हिन्दी को केन्द्रीय भाषा मानकर तथा भारतीय आर्यभाषाओं के विकास को ध्यान में रखते हुए अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है–

(क) उदीच्य (उत्तरी) वर्ग–
(१) सिन्धी
(२) लहंदा
(३) पंजाबी
(ख) प्रतीच्य (पश्चिमी) वर्ग
(४) गुजराती
(५) राजस्थानी
(ग) मध्यदेशीय
(६) पश्चिमी हिन्दी
(घ) प्राच्य (पूर्वी) वर्ग
(७) पूर्वी हिन्दी
(८) बिहारी
(९) उड़िया
(१०) बंगला
(११) असमिया
(ङ) दाक्षिणात्य (दक्षिणी) वर्ग
(१२) मराठी

डा० चटर्जी ने अपने वर्गीकरण में पहाड़ी भाषाओं को राजस्थानी में सम्मिलित कर लिया है। काश्मीरी भाषा की उत्पत्ति वे दरद भाषाओं से मानते हैं। इसी प्रकार सिंहली भाषा पश्चिमी गुजराती की लाट भाषा से ५०० ई० पू० विकसित हुई थी। हबूड़ी अथवा जिप्सी भाषाओं की उत्पत्ति पश्चिमोत्तर भारत में प्रचलित प्राकृत से ५०० ई० में हुई थी।

डा० ग्रियर्सन द्वारा किया गया वर्गीकरण अब अवैज्ञानिक माना जाता है। डा० चटर्जी के वर्गीकरण को देखकर डा० ग्रियर्सन ने अपने वर्गीकरण में संशोधन करके पुन: आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण किया जो ग्रियर्सन के पूर्व वर्गीकरण के साथ ही बताया गया है।

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने डा० चटर्जी के वर्गीकरण की ही भाँति अपना वर्गीकरण निम्न प्रकार किया है–

(क) उदीच्य (उत्तरी)
१– सिन्धी
२– लहंदा
३– पंजाबी
(ख) प्रतीच्य (पश्चिमी)
४– गुजराती
(ग) मध्यदेशीय
५– राजस्थानी
६– पश्चिमी हिन्दी
७– पूर्वी हिन्दी
८– बिहारी
(घ) प्राच्य (पूर्वी)
(९) उड़िया
(१०) बंगला
(११) असमी
(ङ) दाक्षिणात्य (दक्षिणी)
(१२) मराठी

डा० धीरेन्द्र वर्मा भी डा० चटर्जी की तरह पहाड़ी को राजस्थानी से सम्बन्धित मानते हैं।

बेवर ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विभाजन अनेक वर्गों में जैसे उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी तथा मध्यदेशीय आदि में किया है।

डा० भोलानाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक भाषा-विज्ञान में कहा है कि "वस्तुतः वर्गीकरण का आशय यह है कि उसके आधार पर भाषाओं की मूलभूत विशेषताएँ स्पष्ट हो जायँ। उपर्युक्त किसी भी वर्गीकरण में यह बात नहीं है। ऐसी स्थिति में ये सारे व्यर्थ हैं। इनके आधार पर कोई भाषावैज्ञानिक निर्णय नहीं निकाला जा सकता।" डा० तिवारी ने अपना वर्गीकरण निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है–

(१) शौरसेनी या मध्यवर्ती– पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती।
(२) मागधी या पूर्वीय– बिहारी, बंगाली, असमी, उड़िया।
(३) अर्धमागधी या मध्यपूर्वीय– पूर्वी हिन्दी।
(४) महाराष्ट्री या दक्षिणी– मराठी।
(५) ब्राचड पैशाची या पश्चिमोत्तरी– सिन्धी, लहंदा, पंजाबी

यह वर्गीकरण क्षेत्रीय आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

श्री राममूर्ति मेहरोत्रा ने उपर्युक्त वर्गीकरण को उपयुक्त नहीं माना है। उन्होंने पश्चिमी हिन्दी को केन्द्रीय भाषा स्वीकार करके शेष सब भाषाओं को पूर्वी

एवं पश्चिमी वर्गों में बाँटा है, जो इस प्रकार है–

(अ) पश्चिमी भाषाएँ–

१– सिन्धी
(२) पंजाबी
(३) लहंदा
(४) राजस्थानी
(५) गुजराती
(६) मराठी
(७) पहाड़ी

(आ) केन्द्रीय भाषाएँ–

(१) पश्चिमी हिन्दी

(इ) पूर्वी भाषाएँ–

(१) पूर्वी हिन्दी
(२) बिहारी
(३) बंगला
(४) उड़िया
(५) असमी

आचार्य किशोरीदास बाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय भाषाविज्ञान' में छठवें अध्याय में रूपतत्त्व को आधार बनाकर भारतीय आर्यभाषाओं को ३ वर्गों में विभाजित किया है। यह वर्गीकरण निम्न प्रकार है–

(१) कृदन्त प्रधान भाषाएँ
(२) तिङन्तप्रधान भाषाएँ
(३) अनुभय प्रधान भाषाएँ (जिन भाषाओं में कृदन्त तथा तिङन्त दोनों में कोई प्रधान नहीं हैं।

कृदन्त प्रधान भाषाएँ– इन भाषाओं को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है।

(अ) **उत्तर-पश्चिमी शाखा**- इस शाखा की भाषाएँ 'आ' (पुँल्लिग) प्रत्यय प्रधान हैं। इनमें खड़ी बोली, बांगरू, हरियानवी तथा पंजाबी भाषाओं की गणना की जाती है।

उदाहरण-हिन्दी– लड़का जाता है। (वर्तमान काल के रूप 'जाता' तथा 'जादा' में 'आ' प्रत्यय का प्रयोग है)

पंजाबी– मुंडा जाँदा ए। जादा में 'आ' प्रत्यय का प्रयोग है।

(आ) **पश्चिमी शाखा**– इन भाषाओं में 'ओ' प्रत्यय मिलता है। इस प्रकार

की भाषाओं में गुजराती, कच्छी, सिन्धी तथा राजस्थानी सम्मिलित की जाती हैं। आयो, गयो जैसी 'ओ' प्रत्यय वाली क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है जैसे–

सिन्धी– राम जो छोकरो आयो। गुजराती– राम नो छोकरो आयो। जयपुरी– राम को छोरो आयो। जोधपुरी– राम रो छोरो आयो।

तिङन्त प्रधान भाषाएँ– इन भाषाओं में क्रिया रूपों में स्त्री तथा पुरुष का भेद नहीं पाया जाता है। इनमें बंगाली, उड़िया, असमिया भाषाएँ सम्मिलित की जाती हैं।

उदाहरण– राम गेलो (राम गया)
माया गेलो (माया गई)
छेले जाच्छे (लड़का जाता है)
मेये जाच्छे (लड़की जाती है)

इन वाक्यों में स्त्रीलिंग एवं पुँल्लिंग के लिए एक ही क्रिया रूप पाये जाते हैं।

अनुभय प्रधान भाषाएँ– ये भाषाएँ वे हैं जिनमें कृदन्त एवं तिङन्त दोनों का प्रयोग होता है किन्तु दोनों में से कोई प्रधान नहीं है। इस प्रकार की भाषाएँ ३ शाखाओं में विभाजित हैं–

(अ) **उत्तरी शाखा**– इसमें पहाड़ी भाषाएँ (i) पूर्वी-नेपाली, (ii) मध्यवर्ती–गढ़वाली, कुमायूनी, (iii) पश्चिमी– जौनसारी, सिरमौरी, क्योंठाली, कुल्लुई, चम्बाली सम्मिलित हैं।

मध्यवर्ती शाखा– इस शाखा में ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बिहारी (भोजपुरी, मैथिली, मगही) भाषाएँ सम्मिलित हैं।

दक्षिणी शाखा–इस शाखा में मालवी, छत्तीसगढ़ी, मराठी आदि सम्मिलित हैं।

आचार्य वाजपेयी ने अवधी को उत्तरी अवधी (लखनऊ, फैजाबाद, बाराबंकी आदि) एवं दक्षिणी अवधी (प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद आदि) में, ब्रजभाषा को उत्तरी ब्रजभाषा (केन्द्र मथुरा) तथा दक्षिणी ब्रजभाषा (केन्द्र ग्वालियर) में बांटा है। पंजाबी तथा खड़ी बोली के बीच की 'बांगरू' तथा राजस्थानी तथा खड़ी बोली के बीच की बोली 'ब्रजभाषा' को माना है।

श्री सीताराम चतुर्वेदी ने सम्बन्ध सूचक परसर्गों को आधार बनाकर भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण किया है। यह वर्गीकरण वैज्ञानिक न होने के कारण अधिक मान्य नहीं हो सका है। यह वर्गीकरण इस प्रकार है–

'का' परसर्ग प्रधान भाषाएँ– हिन्दी, पहाड़ी, जयपुरी, भोजपुरी
'दा' परसर्ग प्रधान भाषाएँ– पंजाबी, लहंदा
'जो' परसर्ग प्रधान भाषाएँ– सिन्धी, कच्छी
'नो' परसर्ग प्रधान भाषाएँ– गुजराती
'एर' परसर्ग प्रधान भाषाएँ– बंगाली, उड़िया, असमी

इन वर्गीकरणों के अतिरिक्त अन्य भाषाविज्ञानी प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं से उत्पत्ति के आधार पर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार करते हैं-

(१) शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न– १– पश्चिमी हिन्दी
२– राजस्थानी
३– गुजराती

(२) केकय अपभ्रंश से उत्पन्न– १– लहंदा (पं० पंजाबी)
२– पंजाबी (पूर्वी पंजाबी)
(यह शौरसेनी से प्रभावित है)

(३) ब्राचड अपभ्रंश से उत्पन्न– १– सिन्धी

(४) दरदी अपभ्रंश से उत्पन्न– १– काश्मीरी

(५) खस अपभ्रंश से उत्पन्न– पहाड़ी (पूर्वी, मध्य, पश्चिमी)
(राजस्थानी से प्रभावित)

(६) अर्द्धमागधी अपभ्रंश से उत्पन्न– अवधी (पूर्वी हिन्दी)

(७) मागधी अपभ्रंश से उत्पन्न– १– बिहारी (भोजपुरी, मैथिली, मगही)
२– बंगाली
३– असमिया
४– उड़िया

(८) महाराष्ट्री अपभ्रंश से उत्पन्न– १– मराठी

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपनी अपनी तरह से किया है। वस्तुतः कौन सा वर्गीकरण पूर्ण है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। भाषाओं के वर्गीकरण के लिए यह आवश्यक है कि भाषाओं की प्रकृति में कुछ न कुछ समानता हो। यह नहीं कि एक भाषा सुदूर पूर्व की है तो दूसरी भाषा पश्चिमी सीमा क्षेत्र की तथा दोनों को एक ही वर्ग में सम्मिलित कर दिया गया है जैसा कि डा० ग्रियर्सन के वर्गीकरण में बहिरंग उपशाखा की भाषाओं में देखा जाता है। भाषाओं के वर्गीकरण में कोई न कोई वैज्ञानिक आधार होना आवश्यक है। उत्पत्ति एवं क्षेत्रीय दृष्टि से भाषाओं को बिभिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। भारतीय आर्यभाषाओं को उपयुक्त रूप से निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

प्रथम वर्ग– पश्चिमोत्तरी भाषाएँ– लहंदा, पंजाबी, पहाड़ी, काश्मीरी

द्वितीय वर्ग– पश्चिमी भाषाएँ– सिन्धी, राजस्थानी, गुजराती

तृतीय वर्ग– केन्द्रीय भाषाएँ– पश्चिमी हिन्दी।

चतुर्थ वर्ग– पूर्वी भाषाएँ– पूर्वी हिन्दी, बिहारी, बंगला, असमी, उड़िया।

पञ्चम वर्ग– दक्षिणी भाषाएँ– मराठी।

भारतवर्ष के भाषा परिवार

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति अत्यन्त प्रचीन है। अत्यन्त प्राचीन समय से यहाँ विदेशों से कई जातियाँ आई तथा यहाँ बस गई। बाहर से आने वाली इन जातियों की भाषा व संस्कृति भिन्न-भिन्न थी। सभी भारतीय जनसमूह में घुल-मिल गये। विदेशी लोगों के आगमन से भारत में भाषा सम्बन्धी विविधता उत्पन्न हो गयी। वर्तमान समय में भारत में अनेक भाषा-परिवारों की भाषाएँ पाई जाती हैं। भारत में पाये जाने वाले प्रमुख भाषा परिवार इस प्रकार हैं–

(१) आग्नेय परिवार
(२) तिब्बत चीनी परिवार
(३) द्रविड़ परिवार
(४) भारोपीय परिवार
(५) अवर्गीकृत भाषापरिवार

(१) **आग्नेय परिवार** (Austric)–आग्नेय या आस्ट्रिक भाषापरिवार से सम्बन्धित भाषाएँ भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में बोली जाती हैं। भारत में बोली जाने वाली भाषाओं को तीन शाखाओं में विभाजित किया जाता है–(१) खासी शाखा, (२) निकोबारी शाखा, (३) मुण्डा या कोल शाखा।

(१) **खासी शाखा**–इस शाखा की भाषाएँ मोन-खोर लोगों की भाषाओं से प्रभावित हैं। ये भाषाएँ थाईलैण्ड, ब्रह्मा तथा पूर्वी भारत में आसाम के आदिवासियों द्वारा बोली जाती हैं। इनमें खासी, मोनख्मेर एवं पलौंक आदि मुख्य हैं। भारत में खासी बोली खासी तथा जयन्तिया पहाड़ियों के क्षेत्र में बोली जाती है।

(२) **निकोबारी शाखा**–भारत के निकोबार द्वीपों की भाषा है।

(३) **मुण्डा या कोल शाखा**–ये भाषायें पश्चिमी बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु राज्यों के क्षेत्रों में बोली जाती हैं। प्रमुख रूप से मुण्डा भाषायें मध्य प्रदेश में आदिवासियों द्वारा बोली जाती हैं। हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र में नेपाल सीमा के सहारे मुण्डा भाषाएँ पाई जाती हैं।

मुण्डा भाषाएँ उत्तर में आर्य भाषाओं से तथा दक्षिण में द्रविड़ भाषाओं से घिरी हुई हैं। मुण्डारी बोली से 'मुण्डा' शब्द लिया गया है जिसका अर्थ-मुखिया होता है। 'मुण्डा' भाषाओं को दो वर्गों में बांटा गया है–(१) पूर्वी शाखा तथा (२) पश्चिमी शाखा। पूर्वी शाखा की प्रमुख बोलियाँ–सन्थाली, मुण्डारी, हो, कोडा, भूमिज, कोखा आदि हैं एवं पश्चिमी शाखा की प्रमुख बोलियाँ खड़िया, जुआडू, शबर, कुकू, कनावरी आदि हैं। इन बोलियों में अधिक प्रसिद्ध बोलियाँ सन्थाली, मुण्डारी, शबर एवं कनावरी हैं।

मुण्डा भाषाओं का अन्य भारतीय भाषाओं पर प्रभाव

(१) मुण्डा भाषाओं की क्रियाओं का प्रभाव भोजपुरी, मैथिली, मगही बोलियों पर पड़ा है ।

(२) पूर्वी भाषाओं (भोजपुरी, बांग्ला आदि) की क्रियाओं का रूप दोनों (स्त्री पुरुष) लिंगों में समान रहना मुण्डा भाषाओं का प्रभाव है ।

(३) चीजों को 'कोड़ी' या बीस-बीस की संख्या में गिनना मुण्डा भाषाओं के प्रभाव को बतलाता है ।

(४) 'गंगा' शब्द का अर्थ मुण्डा भाषाओं में नदी का द्योतक है । बंगला, काश्मीरी, सिंहली में नदी के लिए गङ्गा शब्द ही प्रयुक्त होता है । बाद में आर्य भाषाओं में नदी विशेष का बोधक हो गया ।

(५) अनेक आग्नेय भाषाओं के शब्द संस्कृत एवं हिन्दी में आए हैं--संस्कृत के ताम्बूल, लवंग, मातंग, कुलिंग, आदि, हिन्दी का हांडी शब्द मुण्डा भाषाओं से लिए गये है ।

(६) मुण्डा भाषाओं का प्रभाव भारत की तिब्बत-चीनी शाखा पर भी पाया जाता है । बीस की संख्या गिनना, सर्वनाम (उत्तम पुरुष) के द्विवचन तथा बहुवचन के दो-दो रूपों का प्रयोग । सजीव एवं निर्जीव प्राणी बोधक शब्दों में अन्तर आदि के द्वारा इन भाषाओं पर मुण्डा भाषाओं का प्रभाव लक्षित होता है ।

(२) **तिब्बत–चीनी परिवार**– तिब्बत-चीनी परिवार से प्रभावित भारत के उत्तरी एवं पूर्वी क्षेत्र की बोलियाँ इस परिवार में सम्मिलित की जाती हैं । इस भाषा के बोलने वाले आसाम, काश्मीर तथा हिमालय के क्षेत्रों में पाये जाते हैं । इस परिवार की प्रभुख दो शाखाएँ हैं जिनके बोलने वाले भारत में पाये जाते हैं–(१) थाई-चीनी शाखा तथा (२) तिब्वती-बर्मी शाखा ।

(१) **थाई-चीनी शाखा**–की बोलियाँ शान, खाम्ती, तथा आहोम हैं । शान बोली थाईलैण्ड तथा उत्तरी ब्रह्मा में बोली जाती है । खाम्ती बोली शान की ही उपशाखा है । इसके बोलने वाले पूर्वी आसाम में पाये जाते हैं जिनकी संख्या पाँच-छः हजार के आसपास है आहोम बोली भी शान से सम्बन्धित है । 'आहोम' जाति के व्यक्ति ब्रह्मा की ओर से १२२८ ई० में आसाम के ब्रह्मपुत्र क्षेत्र में आए थे तथा वहीं बस गए । 'आशाम' या 'आशान' से 'आहोम' बना एवं इसी 'आहोम' से आसाम नाम विकसित हुआ है । पूर्वी भाषाओं की भाँति असमी में 'स्' के स्थान पर 'ह्' ध्वनि प्रयुक्त होती है । अत: आहाम् शब्द 'आसाम' का प्रतीक है । इनकी भाषा कालान्तर में आर्यभाषा असमिया से प्रभावित हो गयी ।

(२) **तिब्बती-बर्मी शाखा**–के अन्तर्गत ३ भेद किए जा सकते हैं–(१) तिब्बती हिमालयी, (२) असमी-बर्मी एवं (३) उत्तर-असमी ।

तिब्बती-हिमालयी–इस शाखा की प्रधान बोली तिब्बती है। भारत में तिब्बती की दो बोलियाँ–लद्दाखी एवं बाल्ती क्रमशः लद्दाख तथा बाल्तिस्तान की बोलियाँ हैं। इनमें साहित्य नहीं है। तिब्बती की अन्य बोलियाँ हैं–लिम्बू, सुन्वार, गुरुङ्ग, मूर्मि, मंगरी तथा नेवारी। ये बोलियाँ मध्य हिमालय क्षेत्र में बोली जाती हैं। नेवार लोग नैपाल के मूलवासी हैं। इसी से 'नैपाल' नाम विकसित हुआ है। नेवारी में बौद्धधर्म सम्बन्धी साहित्य पाया जाता है। तिब्बती-हिमालयी उपशाखा की अन्य बोलियाँ रोंग (लेप्चा), धिमाल, कनावरी, कनाशी, मंचाटी, चम्ब-लाहुली, रंगोली, बुनन, आदि हैं। असमी-बर्मी उपशाखा–इसके अन्तर्गत बोडो (कछारी), गारो, त्रिपुरी एवं नागा भाषाएँ, मेइथेइ, लुशेइ, तथा बर्मी बोलियाँ आती हैं।

तिब्बती-चीनी परिवार की भाषाओं का अन्य भारतीय भाषाओं पर प्रभाव

(१) अहोम भाषा का असमी आर्यभाषा पर प्रभाव पड़ा है। अहोम के कई शब्द असमी में घुल मिल गए हैं।

(२) हिन्दी भाषा में 'लुंगी' शब्द तिब्बती-वर्मी भाषा से आया है।

(३) तिब्बती-चीनी परिवार के प्रभाव से बंगला, असमी, उड़िया आदि आर्यभाषाओं के क्रिया रूप में लिंग भेद नहीं पाया जाता है।

(४) तिब्बती-बर्मी परिवार के प्रभाव से असमिया तथा पूर्वी बंगाली में च् ध्वनि 'स्' (त्स) एवं 'ज्' ध्वनि 'ज' (द्ज्) में बदल जाती है।

तिब्बती-चीनी परिवार की भाषाएँ आर्यभाषाओं से भी प्रभावित हुई हैं जो निम्नलिखित उदाहरणों से देखा जा सकता है-

(१) नेवारी भाषा पर आर्यभाषाओं का एवं संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव है। यह मैथिली से बहुत प्रभावित है।

(२) तिब्बती-चीनी परिवार की बोली मेइथेइ बंगाली लिपि में लिखी जाती है।

(३) तिब्बती तथा ब्रह्मी भाषा की लिपियाँ भारतीय लिपियों से विकसित हुई हैं।

(४) तिब्बती-व्याकरण पर संस्कृत व्याकरण का अधिक प्रभाव है।

(५) तिब्बती तथा ब्रह्मी भाषाओं का साहित्य पालि साहित्य से प्रभावित है।

(६) चीनी भाषा अयोगात्मक हैं जब कि तिब्बती तथा ब्रह्मी भाषाएँ बहुत अधिक योगात्मक हो चुकी हैं। यह आर्य भाषाओं के प्रभाव के कारण हुआ है।

(३) **द्रविड़ परिवार**–द्रविड़ परिवार की भाषाएँ दक्षिणी भारत में बोली जाती हैं। इस परिवार की कुछ भाषाएँ मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा में भी बोली जाती हैं। इन भाषाओं का सम्बन्ध मोहनजोदड़ों, हड़प्पा स्थानों से एवं सिन्धु घाटी सभ्यता से जोड़ते हैं। ये भाषाएँ परप्रत्यय संयोगी हैं।

द्रविड़ परिवार की मुख्य भाषाएँ तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम् हैं । इन भाषाओं को ४ वर्गों में बांटा जाता है–(१) द्रविड़ वर्ग, (२) आन्ध्र वर्ग, (३) मध्यवर्ती वर्ग एवं (४) बहिरङ्ग वर्ग । द्रविड़ वर्ग में तमिल भाषा अत्यन्त प्राचीन है तथा इसमें उन्नत साहित्य पाया जाता है । तमिल भाषा तमिलनाडु में बोली जाती है । इसके कुछ बोलने वाले उत्तरी लंका में भी पाये जाते हैं । इसमें ८वीं शताब्दी से अब तक का साहित्य पाया जाता है, यद्यपि तमिल में ३०० ई० पू० का 'तालकाप्पियम्' व्याकरण भी पाया जाता है । तमिल की लिपि 'बट्टडुत्तु' हैं जो अशोककालीन ब्राह्मी लिपि से विकसित मानी गई है । लिखने की शैली को शन्तमिड्' तथा बोलचाल की शैली को 'काडुन्तमिड्' कहते हैं ।

तेलुगु आन्ध्र वर्ग की भाषा है जो आध्र प्रान्त में बोली जाती है । द्रविड़ भाषाओं में इसके बोलने वाले सबसे अधिक हैं । इसमें भी प्राचीन साहित्य पाया जाता है जो ११०० ई० से मिलता है । तेलुगु पर संस्कृत भाषा का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है । सभी शब्दों के स्वरान्त होने से यह सुनने में बहुत मधुर लगती है । इस भाषा के प्रसिद्ध कवि त्यागराज हैं । मैसूर के कुछ क्षेत्रों में भी इसका प्रचलन है ।

कन्नड़ भाषा कर्नाटक प्रदेश (मैसूर प्रदेश) में बोली जाती है । यह भी अत्यन्त प्राचीन भाषा है । इसका सबसे प्राचीन रूप ४५० ई० के 'हल्मिदी' शिलालेख में पाया गया है । इसकी लिपि तेलुगु से मिलती है । तमिल भाषा का भी प्रभाव पाया जाता है । इसका प्राचीन तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ नृपतुङ्ग रचित 'कविराजमार्ग' है जो ८५० ई० के आसपास की रचना है । इसमें उन्नत साहित्य पाया जाता है ।

मलयालम् आधुनिक केरल प्रान्त की भाषा है । मलयालम् शब्द मलै (=पर्वत) + आलम–(=प्रदेश) शब्दों से बना है जिसका अर्थ होता है 'पहाड़ी प्रदेश' । तमिल से नवीं शताब्दी में मलयालम् का विकास हुआ है । यह तमिल की पुत्री कही जाती है । इस पर संस्कृत का प्रभाव अधिक पाया जाता है । इसमें १३वीं शताब्दी से साहित्य मिलता है । मलयालम् की लिपि तमिल से मिलती है । लकादीव में भी मलयालम् बोली जाती है । वर्तमान समय में उन्नत साहित्य पाया जाता है ।

द्रविड़ परिवार की एक बोली 'तुडु' है जो कन्नड़ क्षेत्र के दक्षिण पश्चिम में बोली जाती है । यह कन्नड़ लिपि में लिखी जाती है । कांडगु (कुर्गी) कुर्ग में प्रचलित है । नीलगिर के आदिवासी कोट, तोडा तथा वडगु बोलियों का प्रयोग करते हैं । 'गोंडी' बोली मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बरार, आंध्र के गोंड लोगों द्वारा बोली जाती है । 'मल्तो' बोली राजमहल पहाड़ी क्षेत्र के पास तथा कुरुख या ओरांँव विहार तथा उड़ीसी क्षेत्रों में बोली जाती है ।

कन्धी बोली (कुई) उड़ीसा के वन प्रान्तो में तथा कोलामी बरार प्रदेश के पश्चिमी भाग में प्रचलित हैं । ये बोलियाँ तेलगु के अधिक समीप हैं। इस परिवार की

'ब्राहुई' बोली वर्तमान पाकिस्तान के विलोचिस्तान क्षेत्र में बोली जाती है जो चारों ओर आर्यभाषाओं से घिरी होने पर भी जीवित है ।

द्रविड़ भाषाओं का अन्य भारतीय भाषाओं पर प्रभाव-

(१) भारतीय आर्यभाषाओं में मूर्द्धन्य ध्वनियाँ द्रविड़ परिवार से ली गई है । मूर्द्धन्य ध्वनियाँ ट, ठ, ड ढ, ण हैं ।

(२) भारतीय आर्यभाषाओं में केवल मराठी भाषा में तीन लिंग (स्त्री लिग, पुँल्लिग, नपुंसक लिंग) पाये जाते हैं जो द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव के कारण ही है ।

(३) आर्य भाषाओं में सोलह पर आधारित नाप (रुपया आना सेर-छटांक) द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव के कारण है ।

(४) द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव के कारण 'र' के स्थान पर 'ल' तथा 'ल' के स्थान पर 'र' पाया जाता है जैसे सं० हरिद्रा > हल्दी एवं गला > गर ।

(५) द्रविड़ भाषाओं से संस्कृत में कई शब्द आए हैं । मयूर, माला, मुकुट, मीन, शठ, पट्टन, वल्लरी, वलय, नीर, विल, विडाल, चंदन, कुंडल, कुटी, कटु, अर्क, अनल आदि इस प्रकार के शब्द हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्रविड़ भाषा परिवार का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव पड़ा है । इसके विपरीत द्रविड़ परिवार की भाषाओं पर भी संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है । अनेक संस्कृत शब्द द्रविड़ भाषाओं में घुल-मिल गए हैं । द्रविड़ भाषाओं की लिपियों का विकास ब्राह्मी लिपि से माना जाता है ।

(४) भारोपीय भाषा परिवार

भारोपीय परिवार की आर्य शाखा (हिन्द-ईरानी) की भाषाएँ भारत में बोली जाती हैं । इस शाखा को ३ भागों में बांटा जाता है-(१) ईरानी, (२) दरदी, (३) भारतीय आर्य भाषाएँ । इरानी भाषा के भी दो भाग हैं पश्चिमी ईरानी तथा पूर्वी ईरानी । पश्चिमी ईरानी तथा फारसी भारत में कहीं भी प्रचलित नहीं है । पूर्वी ईरानी की बलोच, अफगानी या पश्तो, पामीर की गाल्चा आदि बोलियाँ अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान में बोली जाती हैं । वर्तमान भारत की सीमा से बाहर हैं । प्राचीनकाल में जब अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान भारत के अंग थे तो इनकी गणना भारतीय भाषाओं में की जा सकती थी । अफगानी भाषा एवं साहित्य सिन्धी, लहंदा जैसी भारतीय भाषाओं से प्रभावित है ।

दरदी शाखा की 'शीना' बोली गिलगित घाटी में बोली जाती है । 'दरदी' की एक बोली काश्मीरी भी है । यह शारदा तथा फारसी लिपि में लिखी जाती है । चित्राली, काफिरी, ब्रोक्चा में आ, गार्वी, कोहिस्तानी आदि 'दरदी' की अन्य बोलियाँ हैं ।

भारतीय आर्यभाषाएँ :--भारतीय आर्यभाषाओं का क्षेत्र भारत है । ये भाषाएँ ३ भागों में बांटी गई हैं–(१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ, (२) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ, (३) आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ । (१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं में वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत तथा भाषाएँ आती हैं । इस भाषाओं में वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, तथा अन्य संस्कृत काव्य एवं ग्रन्थ सम्मिलित हैं । इनका समय २००० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक साधारणतः माना जाता है ।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में पालि भाषा तथा उसका साहित्य, प्राकृतें, तथा अपभ्रंश भाषाएँ सम्मिलित हैं । इन भाषाओं का समय ५०० ई० पू० से १००० तक माना जाता है ।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ उत्तरी भारत में पश्चिम से पूर्व तक पाई जाती हैं । इनमें लहंदा (प० पंजाब), काश्मीरी, पंजाबी (पूर्वी पंजाब), सिन्धी, गुजराती, झीली, खानदेशी, पश्चिमी हिन्दी (ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली), पूर्वी हिन्दी (अवधी), पहाड़ी, (पूर्वी पहाड़ी-नेवारी या गोर्खाली, या खसकुरा, मध्य महाड़ी-कुमायूँनी, गढ़वाली, पश्चिमी पहाड़ी-चम्बाली, जौनसारी, कुल्लुई, क्योंठाली, (सिरमौरी), बिहारी (भोजपुरी, मैथिली, मगही) बंगाली, असमिया, उड़िया, मराठी आदि बोलियाँ सम्मिलित हैं । इनके अतिरिक्त सिंहली तथा हबूड़ी या जिप्सी बोलियों की भी भारतीय आर्य-भाषाओं में गणना की जाती है । सिंहली भाषा ५०० ई० पू० गुजराती (कुछ लोगों के अनुसार महाराष्ट्री) से अलग होकर लंका पहुँची । यह संस्कृत तथा पालि से अत्यधिक प्रभावित है । जिप्सी या हबूड़ी भी ५०० ई० में भारत से बाहर गई । इस पर विदेशी भाषाओं का अधिक प्रभाव पड़ा । सभी आर्यभाषाओं का साहित्य समृद्ध है । इनमें विश्व का प्राचीनतम साहित्य पाया जाता है । इन भाषाओं का अध्ययन करने के बाद ही तुलनात्मक भाषाविज्ञान का यथार्थ रूप से प्रारम्भ हुआ । भारत में वर्तमान समय में आधुनिक आर्यभाषा हिन्दी का महत्त्व अधिक बढ़ गया है । यह देश के बीच में स्थित है एवं वर्तमान काल में राष्ट्रभाषा पद पर सुशोभित है ।

अवर्गीकृत भाषाएँ–उपर्युक्त भाषा परिवारों के अतिरिक्त भारत के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित जंगली आदिवासियों की महत्त्वहीन भाषाएँ भी हैं, इनको किसी भाषा परिवार में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार की भाषाओं में 'करेन' तथा 'मान' भारत से बाहर ब्रह्मा में प्रचलित हैं । उ० पू० काश्मीर की बुरुशास्की या खजुना इसी तरह की बोली है । अण्डमानी भी अवर्गीकृत भाषा है । मोहनजोदड़ो हड़प्पा की भाषाएँ भी किसी परिवार में नहीं रखी जा सकी हैं ।

५ वाक्य-विज्ञान
(SYNTEX)

ध्वनियों के मिलने से शब्द तथा पदों का निर्माण होता है। पदों के मिलने से वाक्य बनता है। 'वाक्यविज्ञान' के अन्तर्गत वाक्य रचना का भाषावैज्ञानिक विवेचन किया जाता है। 'वाक्य' की रचना सार्थक शब्द समूह के द्वारा होती है। पतंजलि के अनुसार 'वाक्य शब्दों का वह समूह है जिससे पूर्ण अर्थ प्रकट होता है।' 'वाक्य' भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। हम विभिन्न शब्दों को एक साथ बोलकर वाक्य बना लेते हैं तथा वाक्य के द्वारा अपना अभिमत प्रकट करते हैं। शब्द भी यद्यपि अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हैं किन्तु उनका वास्तविक अर्थ वाक्य में भलीभाँति प्रयुक्त होने पर जाना जाता है। शब्द तथा पद में भी अन्तर होता है। किसी सार्थक ध्वनि समूह को 'शब्द' कहा जाता है परन्तु शब्द (ध्वनि-समूह) जब वाक्य के अनुरूप यथास्थान कुछ विकार के साथ प्रयुक्त होता है तो उसे 'पद' कहते हैं। पद' तथा वाक्य में किस का महत्त्व अधिक है इसके विषय में विद्वान् एक मत नहीं हैं। कुछ मनीषियों के मत में वाक्य ही प्रमुख है तथा 'पद' उसके खण्डित अंश हैं। इस मत को अन्विताभिधानवाद या भर्तृहरि का मत कहा जाता है। अन्य मनीषियों के अनुसार 'पद' का अस्तित्व ही प्रमुख है। वाक्य तो पदों का समूह है। इस मत को अभिहितान्वयवाद कहा जाता है। आधुनिक काल में प्रथम मत ही अधिक मान्य है कि वाक्य ही प्रधान है एवं वही भाषा की छोटी से छोटी इकाई है जिससे पूर्ण अर्थ का ज्ञान होता है।

सामान्यतः 'वाक्य' कहने से दो बातों का ध्यान आता है–प्रथम वाक्य पदों का समूह होता है तथा द्वितीय पूर्ण अर्थ प्रकट करता है। परन्तु विद्वान् इस बात पर एक मत नहीं है। वाक्य कई शब्दों का भी समूह होता है तथा एक शब्द से भी वाक्य का आशय समझ लिया जाता है जैसे–तुम स्कूल गए थे। उत्तर–हाँ; प्रश्न–तुमने किताब कब खरीदी ? उत्तर-आज। इन वाक्यों में 'तुम स्कूल गए थे' शब्द समूहों का वाक्य है। इसके उत्तर में कहा गया– हाँ' भी पूर्ण वाक्य का अर्थ प्रकट कर रहा है। इसी प्रकार 'तुमने किताब कब खरीदी' ? पूर्ण वाक्य है तथा उसके उत्तर में कहा गया 'आज' शब्द भी पूरा अर्थ प्रकट कर रहा है अर्थात् 'किताब आज खरीदी'। अतः

यह पूर्णतः सत्य नहीं कि वाक्य शब्दों का समूह (अर्थात् एक से अधिक शब्दों का) होता है।

वाक्य की परिभाषा करते हुए विश्वनाथ ने लिखा है कि 'वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः'। अर्थात् आकांक्षा, योग्यता, तथा आसक्ति से युक्त प्रयोग किए गए पद समूह को वाक्य कहा जाता है। इन तीनों से रहित पदों के समुदाय को वाक्य नहीं कह सकते। योग्यता, आकांक्षा तथा आसक्ति के बिना कहे गए शब्द समूह वाक्य नहीं कहलाते; जैसे मैं, आज, वह, पुस्तक, घर, बकरी, आदि। 'मैं घर को' कह कर यह आकांक्षा करनी पड़ती है कि 'जा रहा हूँ'। इस प्रकार आकांक्षित पदों का प्रयोग करने पर वाक्य बनता है। आकांक्षा करने के साथ पदों में योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सम्बन्ध करने में रुकावट न होना योग्यता कहलाती है। 'आग से सींचता है' वाक्य हो सकता था किन्तु इसमें योग्यता गुण नहीं आता क्योंकि आग जलाती है: सींचती नहीं। आकांक्षा तथा योग्यता के साथ पदों की सन्निधि आवश्यक है। जो वस्तुएँ प्रकरण से सम्बन्धित होती हैं तथा उनके बीच में व्यवधान नहीं होता तो उसे सन्निधि या आसक्ति कहते है। व्यवधान भी दो तरह से होता है–वस्तु के बीच अधिक काल का होना या मध्य में अनुपयुक्त वस्तु का आ जाना; जैसे 'राम' कहकर बहुत देर तक कुछ न कहकर 'जाता है' कहा जाय तो काल-व्यवधान से यह वाक्य नहीं होगा। इसी प्रकार 'पक्षी आकाश में नदी की बाढ़ उड़ा, यहाँ (क) पक्षी आकाश में उडा (ख) नदी की बाढ़, दो वाक्य हैं यहाँ 'आकाश में' तथा 'उड़ा' के बीच 'नदी की बाढ़' अनुपयुक्त रूप से आने के कारण वाक्य नहीं है।

इस प्रकार आकांक्षा, योग्यता तथा आसक्ति से युक्त पद समूह को वाक्य कहते हैं। छोटे-छोटे वाक्यों का समूह 'महावाक्य' कहलाता है।

वाक्यों के दो प्रकार होते हैं–एक तो वे वाक्य होते हैं जिनका हम अपनी बातों में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के वाक्य छोटे-छोटे होते हैं तथा मौखिक रूप से प्रयुक्त होते हैं। इन्हें बोल चाल के वाक्य कहा जाता है। दूसरे प्रकार के वाक्य वे होते हैं जो लिखित होते हैं जिनका प्रयोग शिक्षित समुदाय करता है, इन्हें लिखित वाक्य कहा जाता है।

वाक्यों के दो भाग होते हैं–प्रथम को अग्र तथा बाद वाले को पश्च कहते हैं। इन्हें अन्य नामों से भी सम्बोधित किया जाता है; जैसे उद्देश्य-विधेय, कर्ता क्रिया-सत्त्व-आख्यात आदि। इस प्रकार के भाग अनपढ़ व्यक्तियों की बोली में अधिक पाये जाते हैं। शिक्षित समुदाय वाक्य को एक बार में ही कह देगा अथवा उसे कई छोटे-छोटे वाक्यों में कहेगा। व्यक्ति के द्वारा जो कहा जाता है उसे विधेय अथवा आख्यात कहा जाता है जिसके लिए कहा जाता है उसे उद्देश्य या सत्त्व कहा जाता है। 'मोहन पढ़ता

है' इस वाक्य में 'मोहन' उद्देश्य तथा 'पढ़ता है' विधेय है। अन्य रूप में इन्हीं को कर्ता एवं क्रिया कह सकते हैं। वाक्यों में कर्ता, क्रिया, कर्म, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया-विशेषण, संयोजक एवं अव्यय शब्द पाये जाते हैं किन्तु सभी का पाया जाना आवश्यक नहीं है। भिन्न-भिन्न भाषाओं में वाक्य में शब्दों का स्थान अपने अपने अनुकूल होता है। संस्कृत भाषा में वाक्यरचना करते समय, कर्ता, कर्म, क्रिया आदि का कोई निश्चित स्थान नहीं है उन्हें यथावसर आगे-पीछे प्रयुक्त कर दिया जाता है किन्तु हिन्दी भाषा में पहले कर्ता, तब कर्म तथा सबसे बाद में क्रिया का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी भाषा में वाक्य बनाते समय सबसे पहले कर्ता, उसके बाद क्रिया तथा तत्पश्चात् कर्म का प्रयोग किया जाता है। इन भाषाओं में वाक्य के भीतर पद का स्थान बदलने से अर्थ में अन्तर आ जाता है। जैसे 'राम शिव भजते हैं' अथात् राम शिव का स्मरण करते हैं। किन्तु राम के स्थान पर शिव रखने से वाक्य का अर्थ बदल बदल जायगा। यही बात अंग्रेजी आदि भाषाओं के लिए कही जा सकती है–

वाक्यों के प्रकार––संसार की भाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् भाषा वैज्ञानिकों ने वाक्यों को चार भागों (प्रकारों) में विभाजित किया है।

(१) अयोगात्मक (व्यास-प्रधान)
(२) प्रश्लिष्ट योगात्मक (समास प्रधान)
(३) अश्लिष्ट योगात्मक (प्रत्यय प्रधान)
(४) श्लिष्ट योगात्मक (विभक्ति प्रधान)

(१) **अयोगात्मक (व्यास-प्रधान)**–इस प्रकार के वाक्यों में शब्द पृथक् पृथक् रहते हैं तथा उनका स्थान क्रम निश्चित होता है। शब्द के स्थान बदलने पर अर्थ में अन्तर जाता है। इस प्रकार के वाक्य चीनी आदि एकाक्षर भाषाओं में पाये जाते हैं। आधुनिक अंग्रेजी, हिन्दी जैसी भाषाएँ वियोगात्मक हो रही हैं तथा इनमें शब्द का स्थान निश्चित हो गया है। भाषा के अयोगात्मकता के साथ साथ शब्द-स्थान का महत्त्व बढ़ जाता है।

(२) **प्रश्लिष्ट योगात्मक (समास प्रधान)**––इस प्रकार के वाक्यों में शब्द परस्पर मिल-जुल जाते हैं तथा उनका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो जाता है। वाक्यों में कर्ता, कर्म, क्रिया आदि के जुड़े रहने से वाक्य एक शब्द बन जाता है। जैसे मैक्सिन भाषा में क=खाना, नकत्ल=मांस, नेवत्ल=मैं होता हूँ। इन तीनों शब्दों को मिलाकर 'नीनकक' शब्द जैसा वाक्य बना जिसका अर्थ होता है=मैं मांस खाता हूँ। इसी प्रकार चेरोकी भाषा में–अमोखल=नाव, नातन=लाना, निन=हम। इन शब्दों को मिलाकर 'नाधोलिनिन' बना इसका अर्थ हुआ 'हमारे लिए एक नाव लाओ'।

(३) **अश्लिष्ट योगात्मक (प्रत्यय प्रधान)**--इस प्रकार के वाक्यों में प्रत्ययों की बहुलता होती है । प्रत्यय जोड़कर शब्द तथा वाक्य बनाये जाते हैं । मूल शब्द तथा प्रत्यय स्पष्ट दिखाई देते हैं । इस प्रकार के वाक्य तुर्की भाषा में अधिक पाये जाते हैं । तुर्की भाषा में एव=घर, इस शब्द में प्रत्यय जोड़ने पर एवलेर=अनेक घर । एवलेरिम=मेरे घर । (शब्द) वाक्य बनते हैं ।

(४) **श्लिष्ट योगात्मक (विभक्ति प्रधान)**–इस प्रकार के वाक्यों में विभक्तियों की प्रधानता रहती है । धातु के साथ विभक्तियाँ इस प्रकार मिल जाती हैं कि उनका अस्तित्व पृथक् नहीं रहता है । संस्कृत इसी प्रकार की भाषा है । लता+सु (प्रथमा एक वचन का प्रत्यय)=लता होता है, विभक्ति शब्द में मिल जाता है । सेमेटिक हैमेटिक तथा भारोपीय परिवार की भाषाओं में इसी प्रकार के वाक्य पाये जाते हैं ।

व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से वाक्यों के प्रकार–

व्याकरणिक रचना के दृष्टिकोण से वाक्यों के तीन प्रकार हैं–

(१) **साधारण वाक्य**–इस वाक्य में एक उद्देश्य तथा एक विधेय होता है ।

(२) **संयुक्त वाक्य**–इस वाक्य में दो या अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं ।

(३) **मिश्रित वाक्य**–इस तरह के वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य तथा दूसरे आश्रित उपवाक्य होते हैं । आश्रित वाक्य–संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य तथा क्रिया विशेषण उपवाक्य होते हैं ।

अर्थ के अनुसार वाक्य कई प्रकार के होते हैं, जैसे–

(१) विस्मय बोधक
(२) संदेह बोधक
(३) आज्ञा बोधक
(४) प्रश्न बोधक
(५) निषेध बोधक
(६) इच्छा बोधक

वाक्यरचना में परिवर्तन के कारण

(१) **दूसरी भाषा का प्रभाव पड़ना**–किसी भषा पर जब दूसरी भाषा का किसी कारण प्रभाव पड़ता है तो भाषा की वाक्यरचना भी प्रभावित होती है। उदाहरणार्थ देखा जा सकता है कि हिन्दी भाषा की वाक्यरचना फारसी तथा अंग्रेजी से प्रभावित हुई है । बड़े-बड़े वाक्य लिखना अथवा छोटे-छोटे वाक्य बनाना, कभी कभी क्रिया के पश्चात् कर्म को स्थान देना, आदि अंग्रेजी भाषा के प्रभाव के कारण है। 'कि' जोड़ कर वाक्य रचना फारसी प्रभाव को प्रकट करती है। पूर्ण विराम के अतिरिक्त अन्य विरामों (कॉमा, सेमी कॉमा) का प्रयोग कर वाक्य को नियमित करके

इच्छानुसार आकार देना विदेशी प्रभाव के कारण ही है।

(२) **ध्वनि विकास से विभक्तियों का घिसना**–विकास के पद पर बढ़ती हुई भाषाओं की सम्बन्ध प्रकट करने वाली विभक्तियाँ घिस कर लुप्त हो जाती हैं तो अर्थ को स्पष्ट करने के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता हैं। इस दशा में भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर उन्मुख हो जाती है। भाषा की वाक्य-रचना भी बदल जाती है। वाक्य में शब्दों के स्थान क्रम का महत्त्व बढ़ जाता है।

(३) **अधिक बल देने के हेतु सहायक शब्दों का प्रयुक्त होना**–किसी शब्द पर अधिक बल देने के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग होने लगता है तो वाक्यरचना में अन्तर आ जाता है। सहायक शब्दों के प्रयोग करने के कारण विभक्तियों का धीरे-धीरे लोप हो जाता है तथा परसर्गों का प्रयोग बढ़ जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं (प्राकृत एवं अपभ्रंश) में वाक्यों के गठन में यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

(४) **बोलने वालों की मानसिक स्थिति के कारण**–मनुष्य की मानसिक दशा का भी वाक्यों की रचना पर प्रभाव पड़ता है। अतः वाक्यरचना में परिवर्तन आता रहता है। प्रसन्न चित्त व्यक्ति अपनी बात सहजता से अच्छी तरह पूरे वाक्यों में प्रकट करता है। दुःखी व्यक्ति अपनी बात छोटे-छोटे सरल सुबोध वाक्यों द्वारा दूसरे तक पहुँचाता है। युद्ध के समय वाक्य सीधे सादे तथा वस्तुस्थिति बताने वाले होते हैं। इन कारणों के अतिरिक्त कभी-कभी अज्ञानता, नवीनता के प्रति झुकाव आदि कारणों से वाक्य रचना में परिवर्तन होते हैं।

वाक्य में शब्द स्थान निर्धारण (पद-क्रम)––वाक्यगठन में शब्दों का कहाँ स्थान हो ? यह अध्ययन करना वाक्यविज्ञान का विषय है। वाक्य में शब्द स्थान के दृष्टिकोण से दो तरह की भाषाएँ पाई जाती हैं--(१) कुछ भाषाओं में वाक्य-रचना करते समय पदों का क्रम निर्धारित रहता है तथा स्थानान्तर करने से वाक्य के अर्थ में अन्तर आ जाता है। (२) दूसरी कुछ भाषाएँ इस प्रकार की है जिनमें वाक्य बनाते समय शब्दों का क्रम निर्धारित नहीं होता तथा शब्द (पद) वाक्य में आगे पीछे कहीं भी प्रयुक्त किए जा सकते हैं तथा अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(१) जिन भाषाओं में वाक्य में पद-क्रम निर्धारित रहता है, उनमें चीनी भाषा प्रमुख है। इसके अतिरिक्त कुछ आधुनिक भारोपीय भाषाओं में यही लक्षण प्रतीत होते हैं। अंग्रेजी तथा हिन्दी आदि भाषाओं में भी वाक्य में पद-क्रम निर्धारित सा है। चीनी भाषा में-'पा ताङ् शेन'=पा शेन को मारता है तथा शब्द-क्रम बदल कर 'शेन ताङ् पा'=शेन पा को मारता है, हुआ। यहाँ शब्द क्रम का महत्त्व अधिक है। हिन्दी में शब्द क्रम निर्धारित है। वाक्य में पहले कर्ता रखते हैं तब कर्म तथा बाद में क्रिया आती है। जब विशेषण एवं क्रिया विशेषण का प्रयोग किया जाता है तो विशेषण को संज्ञा शब्द के पहले तथा क्रियाविशेषण को क्रिया के पहले प्रयोग किया

जाता हैं । अंग्रेजी भाषा में वाक्यरचना के समय कर्ता, कर्म तथा क्रिया इस क्रम से साधारण वाक्य बनाते हैं । हिन्दी तथा अंग्रेजी में प्रश्नवाचक शब्द का वाक्य के पहले प्रयोग करते हैं । चीनी भाषा में प्रश्नवाचक शब्द वाक्य के अन्त में प्रयोग किया जाता है । कभी कभी किसी बात को बल देकर कहना होता है तो वाक्य का पद-क्रम परिवर्तित हो जाता है । 'तुमको यह काम करना है' इस वाक्य को बल देने के लिए इस प्रकार कह देते हैं–'तुमको करना है यह काम' या 'यह काम करना है तुमको' यह हिन्दी के विषय में है, यही बात अन्य भाषाओं में भी है ।

(२) जिन भाषाओं में वाक्य-रचना में पद-क्रम निश्चित नहीं है, वे भाषाएँ संस्कृत, फारसी, अरबी, लैटिन, ग्रीक आदि हैं । संस्कृत में 'रामः पुस्तकम् अपठत्' = राम ने पुस्तक पढ़ी इसको इस भाँति भी लिखा जा सकता है 'रामः अपठत् पुस्तकम्' या 'पुस्तकं रामः अपठत्' या 'अपठत् रामः पुस्तकम् । इस प्रकार संस्कृत वाक्य-गठन में शब्दक्रम का स्थान निश्चित नहीं है । विभक्तियों एवं प्रत्ययों से सम्बन्धतत्त्व का बोध हो जाता है ।

यही बात फारसी के लिए कही जा सकती है कि शब्द-क्रम बदलने से अर्थ में परिवर्तन नहीं आता है ।

वाक्य एवं स्वराघात–वाक्य में स्वराघात का भी महत्त्व होता है । स्वराघात के कारण अर्थ में अन्तर आ जाता है । संगीतात्मक स्वराघात द्वारा शंका, निराशा, प्रश्न, आश्चर्य आदि मनोभावों को प्रकट किया जाता है । सुर पर भिन्न भिन्न प्रकार बल देकर इन भावों को प्रकट करते हैं । बलात्मक स्वराघात द्वारा किसी पद पर विशेष बल दिया जाता है तथा उसे वाक्य में प्रमुख बना दिया जाता है । बल देने के लिए वाक्य के पद यथाक्रम रह सकते हैं अथवा पद-क्रम में परिवर्तन भी हो सकता है । जैसे 'मैं आज बाजार से अपनी पुस्तक खरीदूँगा' । इस वाक्य में जिस शब्द पर बल दिया जाय उसी तरह का अर्थ समझा जायगा । 'मैं' शब्द पर बल देने से अर्थ होगा कि मैं ही पुस्तक खरीदूँगा अन्य नहीं । 'आज' शब्द पर बल देने से तात्पर्य होगा पुस्तक 'आज' ही खरीदूँगा दूसरे दिन नहीं । इसी प्रकार 'खरीदूँगा' शब्द पर बल देने से अर्थ होगा पुस्तक अवश्य खरीदी जाएगी । इस प्रकार वाक्य में भिन्न-भिन्न शब्दों पर बल देकर अर्थ में अन्तर उपस्थित कर लिया जाता है ।

वाक्य तथा पद-लुप्त होना--कभी-कभी वाक्य पूर्ण रूप से बोले जाते हैं परन्तु कुछ वाक्य पूरे नहीं बोले जाते तथा कुछ शब्दों से अर्थ समझ लिया जाता है । जैसे 'मोहन आज यहाँ आयेगा' में प्रश्न करने पर कि 'मोहन यहाँ कब आयेगा' उत्तर दिया जाय–'आज' यहाँ 'आज' से यह अर्थ समझ लिया जाता है कि 'मोहन आज यहाँ आएगा ।' 'मैं कल नहीं जाऊँगा' को 'नहीं जाऊँगा' कह दिया जाता है । 'तुमने इस पुस्तक को पढ़ा है' वाक्य को इस प्रकार भी कह दिया जाता है 'तुमने इसे पढ़ा' या 'इसे पढ़ा है' ।

इस प्रकार पदों का लोप करके छोटे वाक्य बोलकर काम चला लेते हैं। बातचीत में इस प्रकार के वाक्य अधिकतर बोले जाते हैं। 'पदों का लोप' वाक्य को संक्षिप्तीकरण करने के कारण होता है। पद-लोप से वाक्य-गठन पर भी प्रभाव पड़ता है। वाक्य कई शब्द से लेकर एक शब्द तक के हो जाते हैं।

वाक्य रूपान्तरण (Transformation) :–वाक्य रूपान्तरण के द्वारा वाक्यों को व्याकरण की सहायता से परिवर्तित कर दिया जाता है। चॉम्स्की तथा हैरिस नामक विद्वानों ने इसे वाक्यविज्ञान में स्थान दिया है। रूपान्तरण के अन्तर्गत एक मूल वाक्य से व्याकरण की सहायता से अन्य वाक्य बनाने के नियमों का अध्ययन किया जाता है। साधारण वाक्य से प्रश्नवाचक एवं नकारात्मक वाक्य बना लिए जाते हैं। अंग्रेजी उदाहरण इस प्रकार हैं–

(१) He is eating. (साधारण वाक्य)
(२) Is he eating ? (प्रश्नवाचक वाक्य)
(३) He is not eating. (नकारात्मक वाक्य)

इसी प्रकार–

(१) I go. (साधारण)
(२) Do I go ? (प्रश्नवाचक)
(३) I do not go. (नकारात्मक)

पहले उदाहरण में प्रश्नवाचक बनाने के लिए पद-क्रम बदल दिया है तथा नकारात्मक बनाने के लिए नकारात्मक शब्द जोड़ा गया है। दूसरे उदाहरण में प्रश्न वाचक बनाते समय (Do) अन्य शब्द का प्रयोग हुआ है तथा नकारात्मक वाक्य बनाने में Do के साथ नकारात्मक शब्द का प्रयोग किया गया है। वाक्य-परिवर्तन (रूपान्तरण) के हर भाषा के अपने सिद्धान्त या नियम होते हैं।

वाक्य रूपान्तरण का हिन्दी उदाहरण निम्न प्रकार है–

(१) वह पढ़ रहा है। (साधारण वाक्य)
(२) क्या वह पढ़ रहा है ? (प्रश्नवाचक वाक्य)
(३) वह नहीं पढ़ रहा है। (नकारात्मक वाक्य)

रूपविज्ञान (Morphology)–इसको पद-विज्ञान भी कहते हैं। रूपविज्ञान में भाषा की पद-रचना, पद-विकास तथा उसके कारणों का अध्ययन किया जाता है। भाषा का मुख्य अवयव वाक्य होता है। वाक्य शब्दों में विभाजित किए जाते हैं तथा शब्द का निर्माण ध्वनियों से होता है। शब्द स्वतन्त्र रूप से रहते हैं किन्तु वाक्य में प्रयुक्त करने पर शब्द में कुछ विकार आ जाता है तथा शब्द का वाक्य के अन्य शब्दों से सम्बन्ध रहता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द को 'पद' कहते हैं। मोहन, मैं, घर, आना आदि शब्द हैं।

ये शब्द अलग अलग अर्थ का को प्रकट करते हैं तथा इनमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु इनके प्रयोग से वाक्य बनाया जाए तो इन शब्दों में थोड़ा विकार आ जायगा; जैसे 'मोहन मेरे घर आया' वाक्य में मोहन कर्ता के स्थान पर आया है, घर कर्म के स्थान पर है, 'आया' 'आना' का भूतकालिक रूप है। इस प्रकार शब्द थोड़े विकृत होकर वाक्य में प्रयुक्त हुए हैं। इन शब्दों को 'पद' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। 'मोहन', 'मेरे', 'घर', 'आया' ये सभी शब्द 'पद' हुए।

प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण पाणिनि ने संस्कृत में पद की परिभाषा इस प्रकार की है— 'सुप्तिङन्तं पदम्' अर्थात् सुप् तथा तिङ् जिनके अन्त में हों, उन्हें पद कहते हैं। प्रकृति (मूल रूप) तथा प्रत्यय (सम्बन्धतत्त्व) के मिलने से 'पद' या 'रूप' बनता है। पतंजलि के इन शब्दों के अनुसार 'नापि केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवलः प्रत्ययः' अकेले 'प्रकृति' या 'प्रत्यय' का प्रयोग नहीं किया जा सकता अर्थात् इन दोनों के योग से बने 'पद' या 'रूप' का वाक्य में प्रयोग किया जाता है। 'रामः गच्छति' मे 'राम' मूल रूप है, शब्द है किन्तु 'रामः' पद है।

संसार की कुछ भाषाओं में जैसे चीनी आदि में वाक्य में प्रयोग करने पर (मूल) के रूप में कोई विकार नहीं होता है। अतः वहाँ 'शब्द' तथा 'पद' का अन्तर ज्ञात करना कठिन होता है। शब्द वाक्य में प्रयुक्त होकर पद बन जाता है। आधुनिक भारोपीय भाषाओं में कुछ इस प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं। 'आम पेड़ से गिरता है', 'मैं आम खाता हूँ', इन दो उदाहरणों में 'आम' शब्द पद है यह पहले वाक्य में कर्ता के स्थान पर प्रयोग किया गया है तथा द्वितीय वाक्य में कर्म के स्थान पर आया है। डॉ० बाबूराम सक्सेना ने सामान्य भाषाविज्ञान' में पद की परिभाषा इस प्रकार की है—"पद उस ध्वनिसमूह को कहते हैं जिनका वाक्य में भाषा के अनुसार सम्बन्ध-तत्त्व अर्थ-तत्त्व अथा उन दोनों के अर्थ का बोध कराने के लिए प्रयोग होता है। यदि ध्वनि समूह है तो एकत्र और कभी-कभी अनेकत्र भी उसके अंशों की स्थिति है।"

'रूप' की परिभाषा करते हुए ऋषि गोपाल ने 'हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन' नामक पुस्तक में लिखा है—"शब्दों के साथ जो प्रत्यय जुड़कर उन्हें वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बनाते हैं, उन्हीं को रूप कहा जाता है। इन्हीं रूपों के वैज्ञानिक विश्लेषण को रूप-विज्ञान (Morphology) कहा जाता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द तथा पद की परिभाषा इस प्रकार है—**शब्द**— 'अर्थवान् ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं।' भारोपीय भाषाओं में शब्द रचना करते समय उपसर्ग तथा प्रत्यय लगाये जाते हैं। कुछ भाषाओं (प्रश्लिष्ट योगात्मक) में सम्पूर्ण वाक्य एक शब्द का आकार ग्रहण कर लेता है। एकाक्षर परिवार की भाषाओं में वाक्य बनाते समय शब्द में विकार नहीं आता। शब्द का रूप सदैव एक सा रहता है।

पद—शब्द का वाक्य में प्रयोग किया गया रूप पद कहलाता है। वाक्य में

प्रयुक्त होने पर शब्द में कुछ परिवर्तन या विकार आ जाता है तो उसे 'पद' कहते हैं।' अयोगात्मक भाषाओं में वाक्य बनाने पर वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के रूप में कोई विकार (परिवर्तन) नहीं होता है। अत. वाक्य में प्रयुक्त शब्द 'पद' कहे जा सकते हैं अन्यथा पद और शब्द का रूप एक सा ही रहता है। योगात्मक भाषाओं में शब्दों में संबन्ध तत्त्व)प्रत्यय) जोड़ कर पद बनाए जाते हैं।

वाक्यों में प्रयुक्त पदों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। **प्रथम** वह भाग जिससे अर्थ का ज्ञान होता है जो मूलरूप में रहता है अर्थात् मूल शब्द तथा **द्वितीय** वह भाग जो मूल रूप से संयुक्त होकर अर्थ प्रकट करता है अर्थात् मूल शब्द से जुड़ने वाले संबन्ध बोधक शब्द, विभक्ति तथा प्रत्यय आदि। इनमें प्रथम भाग **'अर्थस्तत्व'** कहलाता है तथा दूसरा भाग **'संबन्धतत्त्व'** कहलाता है। सम्बन्धतत्त्व अर्थ-तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्ध को बताता है। वाक्य के गठन के लिए संबन्धतत्त्व की आवश्यकता होती है। अर्थतत्त्वों के आपसी संबन्ध बताने वाले शब्दों (या रूपों) पर विवेचना करने के कारण रूप-विज्ञान' (या पदविज्ञान, रूपविचार, पद-रचना आदि) कहा जाता है।

संबन्ध तत्त्व के प्रकार–अनेक भाषाओं का अध्ययन करके संबन्ध-तत्त्व के कई भेद किए गए हैं जो इस प्रकार हैं–

(१) **स्वतन्त्र शब्द**–अनेक भाषाओं में सम्बन्ध-तत्त्व के प्रतीक शब्द अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं अर्थात् सम्बन्ध-तत्त्व अर्थतत्त्व से संयोजित न होकर स्वतन्त्र रहते हैं। अंग्रेजी में ऑन (On), इन (In), टू (To), टिल (Till), फ्रॉम (From), अप (Up), देट (That), देन (Than), एबव (Above) आदि इसी प्रकार के स्वतन्त्र शब्द हैं। कभी-कभी सम्बन्ध तत्त्व बताने के लिए दो स्वतन्त्र शब्दों का प्रयोग होता है जैसे If (इफ) ·····Then (देन), आइदर-----ऑर (Either····or) इसी प्रकार के शब्द हैं। संस्कृत में 'इति,' अपि, एव, अथ, आदि, च आदि भी इस तरह के शब्द हैं। हिन्दी भाषा में पर, तक, को, का, में आदि स्वतन्त्र शब्द हैं। चीनी भाषा में संबन्ध-तत्त्व सूचक शब्दों को रिक्त (Empty) कहते हैं, अन्य शब्द पूर्ण (Full) कहलाते हैं। प्रमुख रिक्त शब्द त्सुंग (=से), लि(=पर) यु (=को) तथा त्सि (=का) हैं। हिन्दी में यदि.....तो, जैसे... वैसे, ज्यों...त्यों, आदि संबन्ध-तत्त्व सूचक दो दो स्वतन्त्र शब्द हैं।

(२) **शब्द-स्थान**–किन्हीं किन्हीं भाषाओं में वाक्य में शब्द के स्थान से सम्बन्धतत्त्व का ज्ञान होता है। चीनी आदि भाषाओं में वाक्य के अन्तर्गत शब्द-स्थान का अत्यधिक महत्त्व है ; जैसे–न्गो ता नी=मैं तुझे मारता हूँ।

नी ता न्गो=तू मुझे मारता है।

यहाँ पहले वाक्य में 'न्गो' कर्ता है तथा 'नी' कर्म है किन्तु दूसरे वाक्य में

शब्द का स्थान बदलने से 'नी' कर्ता तथा 'गो' कर्म हो जाता है। संस्कृत के समासों में शब्द स्थान का अत्यन्त महत्त्व है।

यथा- राजपुत्र=राजा का पुत्र (राजकुमार)

पुत्रराज=पुत्रों का राजा (श्रेष्ठपुत्र)

राजसदन=राजा का घर

सदन राज=घरों का राजा (श्रेष्ठ घर या अच्छा घर)

अंग्रेजी में भी शब्दों के स्थान का महत्त्व निम्न शब्दों में देखा जा सकता है- लाइट हाउस या पावर हाउस-

यहाँ शब्द स्थान बदलने पर अर्थ में अन्तर आ जाता है। इसी प्रकार Hari beats Ramesh को यदि इस तरह कहा जाय 'Ramesh beats Hari' तो अर्थ बदल जाएगा।

(३) **प्रत्यय**-अर्थतत्त्व के साथ सम्बन्धतत्त्व प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में आवश्यकतानुसार जोड़े जाते हैं। बान्टू भाषापरिवार की भाषाओं (अफ्रीकी परिवार) में सम्बन्ध सूचक प्रत्यय अर्थतत्त्व के प्रारम्भ में जोड़े जाते हैं। इस प्रकार योजित प्रत्यय को **पुरः प्रत्यय संयोग** (आदिसर्ग, पूर्वसर्ग, पूर्वप्रत्यय, परसर्ग) कहते हैं। अर्थतत्त्व के मध्य में जोड़े जाने वाले प्रत्यय को **मध्य प्रत्यय संयोग** कहते हैं। इस प्रकार के प्रत्यय मुण्डा भाषाओं में प्रयोग किए जाते हैं। अर्थतत्त्व के अन्त में जोड़े जाने वाले **परप्रत्यय संयोग** (अन्तसर्ग, प्रत्यय) कहलाते हैं। इस प्रकार के शब्द द्रविड़ भाषाओं तथा तुर्की भाषा में पाये जाते हैं। संस्कृत हिन्दी तथा अंग्रेजी में भी परप्रत्यय संयोगी शब्द बनाये जाते हैं-

(अ) **पुरः प्रत्यय** (Perfix)-अर्थतत्त्व (मूलशब्द या प्रकृति) के पूर्व कुछ जोड़ कर शब्द बनाए जाते हैं, इन्हें पुरः प्रत्यय संयोगी कहते हैं। संस्कृत के भूतकाल के रूप बनाते समय पुरः प्रत्यय का प्रयोग करते हैं 'पठ्' धातु का भूतकाल में एक रूप 'अपठत्' बनता हैं। इसमें 'अ' पुरः प्रत्यय के रूप में आया है। बांटू परिवार की काफिर भाषा में 'ति' (=हम) होता है इसके आगे प्रत्यय जोड़ कर 'कुति' (हमको) बनाया जाता है। इसी प्रकार 'नि' (=उन) से 'कुनि' (=उनको), शब्द बना। अंग्रेजी भाषा में रि-सीव (Re-ceive), डि-सीव (De-ceive) रि-टर्न (Re-turn), रि-सर्च (Re-search) आदि पुरः प्रत्यय संयोगी शब्द हैं। पुरः प्रत्यय को पूर्व सर्ग, पूर्वप्रत्यय, परसर्ग या आदिसर्ग भी कहते हैं।

(ब) **मध्य प्रत्यय** (Infix)-अर्थतत्त्व या मूल शब्द के मध्य में सम्बन्ध तत्त्व के जुड़ने को 'मध्य प्रत्यय संयोग' कहते हैं। मुण्डा भाषाओं में इस प्रकार के प्रयोग अधिक पाये जाते हैं। जैसे-मंझि (=मुखिया) से बना मध्य प्रत्यय संयोगी शब्द मपंझि (=मुखिया गण) है। यहाँ शब्द के मध्य में बहुवचन सूचक 'प' प्रत्यय आया।

है। इसी प्रकार दल (=मारना से) बनता है दपल (=परस्पर मारना)। हिन्दी में 'करना' से 'करवाना,' 'मारना' से 'मरवाना,' 'देना' से 'दिलवाना,' इसी भाँति बने शब्द हैं। संस्कृत में करोति (=करता है) से 'कारयति' (करवाता है), गम्यते, युध्यते, छिनद्धि जो क्रमशः गम्, युध्, छिद् धातुओं से बने हैं, इसी प्रकार के शब्द हैं।

(ख) अन्त्य प्रत्यय (Suffix)–अर्थतत्त्व (मूल शब्द) के अन्त में जोड़े गए प्रत्यय को अन्त्य प्रत्यय संयोग (अंतसर्ग, विभक्ति-प्रत्यय) कहते हैं। संस्कृत भाषा में अन्त्य प्रत्यय संयोगी शब्द अधिकता से पाये जाते हैं। संस्कृत शब्दों में लगने वाली विभक्तियाँ अन्त्य प्रत्यय ही हैं। 'बालकस्य' (बालक का) में 'स्य' अन्त्य प्रत्यय है। अंग्रेजी में क्रिया शब्द के बाद ed एवं ing का प्रयोग अन्त्य प्रत्यय की तरह होता है Kill से Killed, Go से Going शब्द 'अन्त्य-प्रत्यय संयोगी' शब्द हैं। हंगरी भाषा में जार (=बन्द करना), से जारत (=बन्द करवाता है) पर प्रत्यय संयोगी शब्द है।

(४) **ध्वनि गुण (मात्रा, सुर, बलाघात)**-ध्वनि गुण अर्थात् मात्रा, सुर तथा बलाघात से संबन्धतत्त्व का बोध होता है। कुछ भाषाओं में इनका अधिक महत्त्व है।

मात्रा–मात्रा के प्रयोग से अर्थ में अन्तर आ जाता है हिन्दी भाषा में ये उदाहरण दृष्टव्य हैं–

रखना–रखाना, भरना–भराना,
करना–कराना, चलना–चलाना

सुर–कुछ भाषाओं में सुरभेद (उच्चारण में सुर की असमानता) के कारण अर्थ में अन्तर आ जाता है। चीनी भाषा में सुर का विशेष महत्त्व है, जहाँ चार मुख्य सुर हैं। किसी बोली में छः से आठ सुर हैं। अफ्रीकी 'फुल' भाषा में मिवरत' एक सुर से कहने से अर्थ होता है 'मैं मार डालूंगा' यदि 'त' पर बल देकर कहें तो अर्थ 'मैं नहीं मारूँगा'। वैदिक संस्कृत ग्रीक आदि भाषाओं में सुर का विशेष महत्त्व था।

बलाघात– बलाघात एवं स्वराघात का संस्कृत, ग्रीक, स्लैवोनिक, लिथुआनियन आदि भाषाओं में अत्यन्त महत्त्व है। अंग्रेजी का कॉन्डक्ट (Conduct) 'क' पर बल देकर बोलने से संज्ञा होता है तथा 'ड' पर बल देकर बोलने से क्रिया होता है।

(५) **अपश्रुति (आन्तरिक परिवर्तन)**–अन्तर्मुखी विभक्ति-प्रधान भाषाओं में अर्थतत्त्व (मूल शब्द) के बीच सम्बन्धतत्त्व मिल जाता है। सेमेटिक एवं हैमेटिक भाषाओं में इस प्रकार के शब्द पाये जाते हैं। अरबी भाषा में–किताब (पुस्तक) से कुतुब (पुस्तकें) तथा हिमार (गधा) से हमीर (गधे) इस प्रकार के शब्द हैं। संस्कृत दशरथ से दाशरथि, पुत्र से पौत्र, आदि अंग्रेजी में Foot से Feet, Tooth से

Teeth, Sing से Sung इसी प्रकार बने शब्दों के उदाहरण हैं । अपश्रुति को ध्वनि-प्रतिष्ठापन भी कहते हैं ।

(६) **द्वित्व (ध्वनि द्विरावृत्ति)**–ध्वनियों या शब्दों की कई बार आवृत्ति से सम्बन्ध तत्त्व का ज्ञान होता है । आवृत्ति अर्थतत्त्व के प्रारम्भ मध्य एवं अन्त में हो सकती है । हिन्दी में दिन-दिन' (प्रतिदिन) में 'प्रति' के लिए आवृत्ति हुई है । एक अफ्रीकी भाषा में Irik इरिक=चलना से Irik-rik' 'इरिक-रिक'=वह चलता है । इसी प्रकार श्री लंका की एक बोली के शब्द Manao 'मानाओ'=(चाहना से) 'मानाओ नाओ' Manao-nao (=चाहते हैं) बनता है । इसी तरह के उदाहरण अन्य भाषाओं में भी देखे जा सकते हैं ।

(७) **ध्वनि विनियोजन**–अर्थतत्त्व की ध्वनियों को कम करके अथवा बढा कर संबन्धतत्त्व को बना लिया जाता है । 'फ्रेन्च' भाषा में इसके कुछ उदाहरण पाये जाते हैं–स्त्रीलिंग में बोलने का रूप Sul (सुल) होता है तो लिखने का रूप Soule होता है पुंलिंग में बोलने का रूप 'Su' होता है तथा लिखने का 'Soul' होता है । इसी प्रकार अन्य शब्द देखे जा सकते हैं ।

(८) **अभावात्मक (शून्य सम्बन्धतत्त्व)**–जब अर्थतत्त्व (मूल-शब्द) में कुछ जोड़ा नहीं जाता तथा शब्द से ही सम्बन्धतत्त्व का काम निकाल लिया जाता है तो उसे अभावात्मक या शून्य सम्बन्ध तत्त्व कहते हैं । संस्कृत में इस प्रकार के शब्द विद्युत्, मरुत्, सरित्, नदी, जलमुक्, स्त्री, वारि आदि हैं । इनका यह रूप ही (विना विकार के) प्रथमा एक वचन को प्रकट करता है, अत: इनमें शून्य सम्बन्धतत्त्व का बोध होता है । हिन्दी में 'जा' (तुम जाओ), 'आ' (तुम आओ), 'खा' (तू खा) आदि इसी तरह के शब्द हैं । अंग्रेजी में 'शीप' (Sheep), 'फिश' (Fish) शब्द बिना परिवर्तन के एकवचन तथा द्विवचन को बताते हैं । तमिल भाषा में भी इस प्रकार के शब्द पाये जाते हैं जो अपने मूल रूप के अतिरिक्त सम्बन्धतत्त्व को बताते हैं जैसे–मनिदन' के दो अर्थ हैं 'आदमी तथा आदमी का' । इसी प्रकार 'अवन' के भी दो अर्थ होते है–वह तथा उसका । मूल शब्दों में किसी तरह का परिवर्तन न होने तथा उसी तरह प्रयोग करने से इनको अभावात्मक या शून्य सम्बन्धतत्त्व कहा गया है ।

इन सम्बन्धतत्त्वों में भाषाएँ किसी एक विशेष तत्त्व को ही प्रयोग में नहीं लातीं अपितु कई सम्बन्धतत्त्वों का भाषाओं में प्रयोग किया जाता है ।

सम्बन्धतत्त्व तथा अर्थतत्त्व का सम्बन्ध – संबन्धतत्त्व तथा अर्थतत्त्व में पारस्परिक सम्बन्ध सब भाषाओं में समान नहीं पाया जाता है । इन दोनों में संबन्ध इस प्रकार होते हैं–

(१) **पूर्ण संयोग**– जब अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व परस्पर घनिष्ठभाव से मिल जाते हैं तो उसे पूर्ण संयोग कहते हैं । एक ही शब्द द्वारा दोनों तत्त्वों का बोध

होता है। सेमेटिक तथा भारोपीय भाषाएँ इसी प्रकार की भाषाएँ हैं। वस्तुतः शून्य सम्बन्धतत्त्व के शब्द भी पूर्ण संयोग के अन्तर्गत आते हैं। अरबी भाषा में 'क़् त् ल' (=मारना) से 'क़तल' (=उसने मारा), क़ातिल (मारने वाला), क़िल्ल (शत्रु), क़ितल (प्रहार), 'क़ुतिल' (वह मारा गया), यक़्तुलु (वह मारता है), मक़्तूल (जो मारा जाय), तक़ातुल (एक दूसरे को मारना), 'क़ुत्ताल' (कतल करने वाले), मुक़ातला (परस्पर लड़ना), मक़तल (कतल करने का स्थान) तथा तक़लील (अनेक हत्यायें करना) आदि रूप बनते हैं। इनमें अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व परस्पर घुल मिल गए हैं जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा में विभिन्न शब्द रूपों में अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व परस्पर घनिष्ठ भाव से मिल जाते हैं; जैसे रामः (राम ने), रामम् (राम को), रामाय (राम के लिए) आदि रूप हैं। अंग्रेजी में भी इस प्रकार के शब्द पाये जाते हैं; जैसे ब्रिंग (Bring) से ब्राट (Brought)।

(२) **अपूर्ण संयोग**--इस प्रकार के संयोग में किसी शब्द में मिलने वाले अर्थ तत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व पूरी तरह से घुलते-मिलते नहीं अपितु दोनों की सत्ता बनी रहती है और उन्हें शब्द में स्पष्टतया पहिचाना जा सकता है। इनका संयोग तिलतण्डुलवत् होता है नीरक्षीरवत् नहीं। तुर्की तथा द्रविड़ भाषाओं में इसी प्रकार के शब्द पाये जाते हैं। अंग्रेजी में भूतकालिक क्रिया रूप जिनमें 'ed' लगाया जाता है, इस प्रकार के शब्द हैं, जैसे–Talk से Talked, Ask से Asked, आदि। तमिल में पुत्तहम् (=पुस्तक) से पुत्तहङ्गड् 'पुस्तकें' एवं कन्नड़ भाषा में सेवक से 'सेवक-रु' तथा 'सेवक-रन्नू' तथा तुर्की भाषा में एव (घर) से एवलेर (=कई घर) तथा (एवलेरइम (=मेरे घर) इसी प्रकार के अपूर्ण संयोग वाले शब्द हैं।

(३) **दोनों स्वतन्त्र**---कुछ भाषाओं में अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व दोनों की सत्ता पूरी तरह से स्वतन्त्र होती है इसके दो प्रकार होते हैं --(१) चीनी भाषाओं में मिलने वाला रूप चीनी आदि भाषाओं में दो प्रकार के शब्द पूर्ण शब्द तथा रिक्त शब्द होते हैं। पूर्ण शब्द से अर्थतत्त्व जाना जाता है तथा रिक्त शब्दों का प्रयोग सम्बन्धतत्त्व प्रकट करने के लिए किया जाता है। चीनी भाषा स्थान प्रधान भाषा है, अतः शब्दों के स्थान से सम्बन्धतत्त्व का ज्ञान कर लिया जाता है परन्तु कभी-कभी रिक्त शब्दों का भी प्रयोग करते हैं–

चीनी भाषा में–पूर्ण शब्द →वो=मैं   रिक्त शब्द ती=का
उलत्सु=लड़का

रिक्त शब्द का प्रयोग करके वाक्य बनेगा–'वो ती उलत्सु' जिसका अर्थ हुआ मेरा लड़का'।

भारोपीय परिवार की भाषाओं में a, au, de, du, फ्रेन्च के; to, from अंग्रेजी के; ने, को, से 'हिन्दी के' तथा 'इति' संस्कृतभाषा के इसी प्रकार के शब्द हैं। ये शब्द अर्थतत्त्व से मिलते नहीं तथा अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखते हैं।

(२) इस प्रकार का रूप अमरीका की चिनूक (Chinook) आदि भाषाओं में पाया जाता है जहाँ पहले सभी सम्बन्धतत्त्व का प्रयोग किया जाता है उसके बाद सभी अर्थतत्त्व का प्रयोग होता है। 'चिनूक' भाषा के वाक्य का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है–

वह–उसने–वह–से। मारना–आदमी–औरत–लाठी=उस आदमी ने औरत को लाठी से मारा।

(४) **अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व की समानता**–कुछ भाषाओं में प्रत्येक अर्थ-तत्त्व के साथ एक सम्बन्धतत्त्व जोड़ा जाता है अतः दोनों की संख्या समान होती है। वाक्य में एक संबन्धतत्त्व के स्थान पर कई सम्बन्धतत्त्व हो जाते हैं। अतः सम्बन्ध तत्त्व का आधिक्य हो जाता है। अफ्रीका की 'बान्टू परिवार' की भाषा 'सोविया' में से निम्नलिखित उदाहरण देखा जा सकता है–

मु=एक वचन सूचक प्रत्यय
न्तु=व्यक्ति
लोटु=सुन्दर

इन शब्दों को मिलाकर इस प्रकार वाक्य बनता है–
मु-न्तु मु–लोटु=(एक) सुन्दर आदमी।

इन भाषाओं में संज्ञा के हर विशेषण में विभक्तियों का प्रयोग करना पड़ता है। संस्कृत आदि भाषाओं में यही स्थिति थी। किन्तु हिन्दी आदि भाषाओं में संज्ञा के साथ बहुवचन सूचक चिह्न लगा दिया जाता है। संसार की विभिन्न भाषाओं में अनेक प्रकार के सम्बन्धतत्त्व मिलते हैं।

हिन्दी में सम्बन्धतत्त्व का प्रयोग–हिन्दी भाषा में कई तरह के सम्बन्ध-तत्त्वों का प्रयोग किया जाता है। प्रायः हर भाषा में कई सम्बन्धतत्त्व पाये जाते हैं किन्तु प्रधानता किसी एक या दो की ही होती है। हिन्दी में भी स्थानप्रधान (अर्थात् वाक्य में जिनका स्थान नियत रहता है)। सम्बन्धतत्त्व तथा स्वतंत्र शब्द वाले सम्बन्धतत्त्व अधिक प्रयोग में लाए जाते हैं। चीनी भाषा के रिक्त शब्दों की भाँति ने, का, से, का, में, पर आदि सम्बन्ध सूचक शब्द पाये जाते हैं। अपश्रुति सम्बन्ध-तत्त्व जैसे पुत्र से पौत्र, दशरथ से दाशरथि, करता से करती आदि, अपूर्ण संयोग वाले सम्बन्ध तत्त्व, स्वराघात एवं बलाघात के उदाहरण भी पाये जाते हैं। पूर्ण संयोग वाले शब्द जैसे पढ़ना से पढ़ा, जीना से जिया, करना से किया, जैसे शब्द भी पाये जाते हैं।

सम्बन्धतत्त्व से मुख्य रूप से लिंग, पुरुष, वचन, कारक एवं काल आदि की पहचान होती है। यही सम्बन्धतत्त्व के प्रमुख कार्य भी कहे जा सकते हैं।

लिङ्ग–लिंग दो प्रकार के होते हैं– स्त्रीलिंग तथा पुँल्लिंग । परन्तु निर्जीव पदार्थों को नपुंसक लिंग में भी रखते हैं । संसार की विभिन्न भाषा साहित्यों में लिंग विभाजन प्रकृत्या नहीं है । संस्कृत में एक ही शब्द या उसके समानार्थी स्त्रीलिंग, पुंल्लिग तथा नपुंसक लिंग तीनों में पाये जाते हैं । जैसे स्त्री का बोधक 'दारा' शब्द पुँल्लिंग है तथा 'कलत्रम्' नपुंसक लिंग है । 'पुस्तकम्' नपुंसक लिंग है लेकिन 'ग्रन्थ' पुंल्लिंग है । कुछ शब्द सदैव पुँल्लिंग में प्रयोग किए जाते हैं यद्यपि उनमें स्त्रीलिंग जाति (मादा) भी पायीं जाती हैं । इसी प्रकार कुछ जीवों के सूचक शब्द स्त्रीलिंग में होते हैं यद्यपि उनमें पुरुष (नर) जाति भी पायी जाती है । लिंग दो प्रकार से व्यक्त किए जाते हैं–

(१) **प्रत्यय संयुक्त करके**–हाथी से हथिनी, शेर से शेरनी, अंग्रेजी में लायन (शेर) से लायनेस (शेरनी), एक्टर (अभिनेता) से एक्ट्रेस (अभिनेत्री) आदि ।

(२) **स्वतंत्र शब्द जोड़ कर**–अंग्रेजी भाषा में नर के साथ He (ही) तथा मादा के साथ She (शी) का प्रयोग करते हैं जैसे ही-गोट (बकरा) तथा शी-गोट (बकरी)। मुंडा भाषा में कूल का अर्थ बाघ है अत: नर बाघ के लिए 'अडिया-कूल' तथा मादा बाध के लिय 'एंगा-कूल' का प्रयोग करते हैं । इस प्रकार स्त्री तथा पुरुष सूचक शब्दों का प्रयोग करके लिंग भेद किया जाता है ।

(३) **विपरीत शब्द प्रयोग करके**–हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में स्त्रीलिंग तथा पुँल्लिंग शब्दों के सूचक विपरीत शब्दों का प्रयोग करके लिंग व्यक्त किए जाते हैं– जैसे भाई (पुँल्लिंग) – बहिन (स्त्रीलिंग), राजा–रानी. माता–पिता, वर–वधू, बुआ–फूफा । ब्यॉय–गर्ल, फादर–मदर, काऊ–ओक्स, डॉग–विच आदि हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओं के इसी तरह के उदाहरण हैं ।

कुछ भाषाओं में लिंग के अनुसार संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि रूप बदलते रहते हैं एवं कुछ भाषाओं में नहीं भी बदलते हैं । कुछ बोलियों में छः लिंग तक पाये जाते हैं (जैसे 'चेचेन' काकेशस परिवार की बोली में) ।

पुरुष–पुरुष तीन प्रकार के होते है– प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष । इनके प्रयोग के आधार पर कुछ भाषाओं में क्रिया रूपों में अन्तर हो जाता है किन्तु कुछ भाषाओं में नहीं होता है । 'वह जाता है,' 'तुम जाते हो,' 'मैं जाता हूँ' इन वाक्यों में 'वह' प्रथम पुरुष के साथ 'जाता है' क्रिया, 'तुम' मध्यम पुरुष के साथ 'जाते हो' क्रिया तथा 'मैं' उत्तम पुरुष के साथ 'जाता हूँ' क्रियारूपों का प्रयोग हुआ है । मुख्य क्रिया 'जाना' है जो पुरुषों के अनुसार परिवर्तित हुई है । इसी प्रकार संस्कृत में सः गच्छति, त्वं गच्छसि, तथा अहं गच्छामि में क्रिया रूप पुरुष रूपों के अनुसार बदल गए हैं । अंग्रेजी में भी यह परिवर्तन पाया जाता है जैसे--He goes 'ही गोज' तथा 'यू गो' (You go) आदि । कभी-कभी 'इज गोइंग', 'आर गोइंग',

'शैल गो', 'विल गो' जैसे क्रिया रूप भी बनते हैं। अरबी, फारसी भाषाओं में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है किन्तु चीनी भाषा में पुरुषों के प्रयोग से क्रिया रूपों में अन्तर नहीं आता है ।

वचन–वचन प्रमुख रूप से दो होते हैं–एकवचन तथा बहुवचन । परन्तु संस्कृत में द्विवचन तथा अफ्रीकी भाषाओं में त्रिवचन भी पाये जाते हैं। वचन प्रयोग से संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया एवं विशेषण रूपों में अन्तर आ जाता है। 'बालक पुस्तक पढ़ता है' में बालक एक वचन है किन्तु बहुवचन में प्रयोग करेंगे तो 'बालक (बहुत से) पुस्तकें पढ़ते हैं' वाक्य में संज्ञा तथा क्रिया रूपों में परिवर्तन हो गया है। एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि में प्रत्यय जोड़े जाते हैं। हिन्दी के यों, ओं, एँ आदि अंग्रेजी में एस (S) तथा ई-एस (es) आदि का प्रयोग किया जाता है । कुछ भाषाओं में बहुवचन बनाने के लिए स्वतंत्र शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

कारक–कारकों (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण तथा सम्बोधन) के प्रयोग द्वारा सम्बन्धतत्त्व का ज्ञान होता है। संज्ञा तथा सर्वनाम के कारक रूपों का प्रयोग किया जाता है। संज्ञा शब्दों से क्रिया रूप बनाने अथवा क्रिया से संज्ञा रूप बनाने, विशेषण से संज्ञा, संज्ञा से विशेषण, क्रिया विशेषण बनाने अथवा प्रेरणार्थक या नकारात्मक वाक्य बनाने में संवन्धतत्त्वों की सहायता ली जाती है।

काल–काल (समय) तीन भागों में बाँटा जाता है – वर्तमान काल, भूतकाल तथा भविष्य काल। पुनः इनके उपभेद किए जाते हैं। भिन्न-भिन्न कालों को प्रकट करने के लिए सम्वन्धतत्त्वों की सहायता ली जाती है । अंग्रेजी में Shall, Will जैसे स्वतंत्र शब्द भी जोड़े जाते हैं अथवा भूतकाल में ed जोड़ कर रूप बनाते हैं। कभी रूप इतना बदल जाता है कि सम्बन्ध-तत्त्व तथा अर्थतत्त्व का ज्ञान नहीं होता है; जैसे 'जाना' से भूतकाल में 'गया' या अंग्रेजी में Go से Went रूप बनते हैं। संसार की विभिन्न भाषाओं में भिन्न भिन्न प्रकार से काल (Tense) के विभाजन किए गए हैं। संस्कृत में अकेले भूतकाल के ही ३ भेद हैं–अनद्यतन, परोक्ष तथा सामान्य ।

वाच्य–संस्कृत भाषा में तीन वाच्य पाये जाते हैं–(१) कर्तृवाच्य, (२) कर्मवाच्य, (३) भाववाच्य । जब किसी वाक्य में कर्ता पर अधिक बल दिया जाता है तो उसे कर्तृवाच्य कहते हैं। जब वाक्य में कर्म पर अधिक बल दिया जाता है तो कर्मवाच्य होता है। जब क्रिया पर अधिक बल दिया जाता है तो उसे भाव-वाच्य नाम दिया जाता है। इन तीनों रूपों में कर्तृवाच्य में सकर्मक तथा अकर्मक धातु रूपों का प्रयोग हो सकता है, कर्मवाच्य में सकर्मक का एवं भाववाच्य में अकर्मक धातुओं

का प्रयोग किया जाता है। वाच्य के निर्माण में सम्बन्धतत्त्व की अपेक्षा होती है।

पद-संस्कृत में दो प्रकार की धातुएँ पाई जाती हैं-(१) आत्मनेपदी तथा (२) परस्मैपदी। जब क्रिया का फल कर्ता के लिए होता है तो उसे आत्मनेपद कहते हैं परन्तु जब क्रिया का फल दूसरे को प्राप्त होता है तो उसे परस्मैपद कहते हैं। 'पुस्तकं लभते' यहाँ लभते रूप आत्मनेपदीय है किन्तु 'पुस्तकं पठति' में 'पठति' रूप परस्मैपदीय है। प्रेरणार्णक, इच्छार्थक, आदि क्रिया के भेद हैं। अन्य भारतीय भाषाओं में आत्मनेपद, परस्मैपद जैसा विभाजन अब नहीं मिलता है।

रूप परिवर्तन की दिशाएँ

प्राय: शब्दों के विषय में देखा जाता है कि उनके रूप सदा एक प्रकार के नहीं रहते हैं, उनमें विकार या परिवर्तन होते रहते हैं। इसी को पदों या शब्दों का रूप परिवर्तन (रूप विकार) कहते हैं।

ध्वनि परिवर्तन तथा रूप परिवर्तन में अन्तर है। ध्वनि परिवर्तन का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है जबकि रूप परिवर्तन का क्षेत्र उसकी अपेक्षा कम व्यापक (अर्थात् संकुचित) होता है। शब्द के रूप विकार से कुछ शब्द ही प्रभावित होते हैं एवं उनका रूप परिवर्तित हो जाता है किन्तु शब्द के नवीन रूप के साथ प्राचीन रूप का भी प्रचलन बना रहता है। यथा संस्कृत में 'गो' शब्द के रूप परिवर्तित होकर कई शब्द गावो, गोणी, गोता, गोपोतालिका आदि बन गए थे परन्तु दोनों ही प्रकार के शब्द प्रचलित थे। (पतञ्जलि के अनुसार) पद या शब्द की किसी ध्वनि में विकार उत्पन्न हो जाने को ध्वनि परिवर्तन कहते हैं। ध्वनि परिवर्तन में पूर्ववर्ती ध्वनि के स्थान पर अन्य ध्वनि स्थान ले लेती है तथा उस प्रकार के सभी शब्दों को प्रभावित कर देती है जिसकी ध्वनि में परिवर्तन हुआ है। इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन का क्षेत्र विशाल या व्यापक होता है। ध्वनि विकार होने पर पूर्ववर्ती ध्वनि वाले शब्दों का प्रचलन बन्द हो जाता है परन्तु रूप परिवर्तन में शब्दों के पूर्ववर्ती तथा नवीन दोनों रूप पाये जाते हैं।

रूप परिवर्तन के अन्तर्गत शब्दों के प्राचीन रूपों के विनाश तथा परिवर्तित होकर नये रूप बनने पर विचार किया जाता है। इस प्रकार रूप परिवर्तन की दिशायें दो हैं-(क) शब्दों के पुराने रूपों का विनाश तथा (ख) नये रूपों का विकास या उत्पत्ति। भाषा के हर व्याकरण के अंगों में प्राचीन काल से वर्तमान समय तक अनेक परिवर्तन हुए हैं। जो शब्द रूप हमारे मस्तिष्क के लिए भार होते हैं एवं अनेक होते हैं उनके स्थान पर समान नियम वाले समान रूप वाले शब्दों का प्रचलन हो जाता है। अंग्रेजी में दो प्रकार के क्रिया रूप पाये जाते थे। बली क्रियायें तथा निर्बल क्रियायें थीं। बली क्रियाओं के अनेक रूपों को याद रखना कठिन था तथा निर्बल क्रिया रूप बनाने में सुगमता थी। अत: बली क्रिया रूप अधिक मात्रा में लुप्त

हो गए हैं। इसी प्रकार लौकिक संस्कृत तथा वैदिक संस्कृत में देखा जाता है। अनेक वैदिक संस्कृत अपवाद लौकिक संस्कृत में नहीं पाये जाते हैं। यही प्रवृत्ति प्राकृत, पालि आदि में थी।

अर्थ स्पष्ट करने के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है। नवीनता के प्रति मानव का झुकाव होता है। अतः नये शब्दों का प्रचलन बढ़ने लगता है। हिन्दी भाषा में परसर्गों का प्रयोग इन्हीं कारणों से अधिक हुआ है।

रूप विकार की दोनों दिशाओं को भारतीय आर्यभाषाओं के विकास के अध्ययन द्वारा बड़ी सुगमता से जाना जा सकता है। संस्कृत व्याकरण में शब्दों को चार भागों में बाँटा गया है—नाम (सुबन्त), आख्यात, (तिङन्त), उपसर्ग तथा निपात (अथवा अव्यय)। सुबन्त से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण का, तिङ्न्त से क्रिया, उपसर्ग से शब्द के प्रारम्भ में जुड़ने वाले प्रत्ययों का एवं निपात से अव्यय का बोध होता है।

नाम–संस्कृत वैयाकरणों ने नाम-शब्दों को दो भागों में बांटा है--(१) अजन्त (स्वरान्त) तथा हलन्त (व्यंजनान्त)। इन दोनों प्रकार के शब्दों के रूप तीन वचनों तथा आठ कारकों में चलते हैं। संस्कृत के रूप कुछ विभक्तियों तथा कुछ वचनों में समान चलते हैं; अतः यह अपनी पूर्ववर्ती मूल भारोपीय भाषा की अपेक्षा कुछ सरल हो गयी थी। संस्कृत में लिंगों में कुछ रूप पंचमी तथा षष्ठी एकवचन तथा तृतीया, चतुर्थी, पंचमी के द्विवचन, चतुर्थी, पंचमी के बहुवचन में प्रायः समान रूप में पाये जाते हैं। इसी प्रकार नपुंसकलिंग के प्रथमा तथा द्वितीया में तीनों वचनों में लगभग समान रूप पाये जाते हैं। वास्तव में इस प्रकार रूपों की विविधता में कुछ कमी आई थी। यही प्रवृत्ति आगे भाषाविकास के साथ बढ़ती रही तथा पालि में रूपों की विविधता और कम हो गयी तथा संस्कृत के तीन वचन पालि में एक वचन तथा बहुवचन इन दो रूपों में शेष रह गए। रूपों में एकरूपता अधिक हो गयी।

पालि एवं प्राकृतों की सरलता की ओर बढ़ने की प्रवृति अपभ्रंश काल में और अधिक तीव्र हो गयी, शब्द रूपों की समानता अधिक हो गयी। अनेकता बहुत कम हो गयी। पालि तथा प्राकृतों में प्रातिपदिक स्वरान्त बन गए थे परन्तु अपभ्रंश काल में इनमें भी विविधता कम हो गयी। अपभ्रंश के अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व बनाने की प्रवृत्ति बहुत अधिक हो गयी। कथा > कहि, निशा > निशि, पूजा > पुज्ज, मालती > मालइ आदि ह्रस्व प्रवृत्ति को बताते हैं। अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त प्रातिपदिकों की अधिकता हो गयी। सबसे अधिक अकारान्त प्रातिपदिकों का प्रयोग होने लगा। संस्कृत के आठ कारक रूपों में से अपभ्रंश काल तक तीन कारक रूप शेष रह गए। इनमें प्रथमा, द्वितीया तथा सम्बोधन में समान रूप पाये जाते हैं। इसी प्रकार तृतीया तथा सप्तमी और चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी विभक्तियों

के रूप समान पाये जाते हैं। 'दो' संख्या को बताने के लिये 'दुइ' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा तथा सहुँ (करण कारक के लिए), केहिं (सम्प्रदान) जैसे परसर्गों का प्रयोग किया जाने लगा।

अपभ्रंश के पश्चात् वर्तमान हिन्दी भाषा में रूपों की अनेकता में बहुत कमी हो गयी। स्वरान्त प्रातिपदिकों का पुनः व्यञ्जनान्त उच्चारण होने लगा है। हिन्दी में अन्त्य स्वर 'अ' का उच्चारण अब सुनाई नहीं देता है। आसमान, रमेश, साँप जैसे शब्द अब आसमान्, रमेश्, सांप् के रूप में उच्चरित होते हैं। इसके अतिरिक्त स्वरान्त शब्द भी पाये जाते हैं। हिन्दी में एकवचन तथा बहुवचन शब्द पाए जाते हैं। अब हिन्दी में विकारी तथा अविकारी शब्द रूप मिलते हैं। वाक्य में प्रयोग करते समय कारकों के प्रयोग से जिन शब्दों में कुछ न कुछ विकार आ जाते हैं, उन्हें विकारी शब्द कहते हैं। जिनमें कोई विकार नहीं होता वे अविकारी शब्द हैं। हिन्दी में विभक्तियों का अर्थ शब्द के बाद जुड़ने वाले प्रत्ययों (पर-प्रत्ययों) द्वारा जाना जाता है। इनके प्रयोग में भी समानता अधिक पाई जाती है जैसे करण तथा अपादान एवं सम्प्रदान एवं सम्बन्ध में कम भेद दिखाई पड़ता है।

सर्वनाम--सर्वनाम शब्दों का प्रयोग संज्ञा शब्दों के स्थान पर किया जाता है। पुरुषवाचक सर्वनाम (प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा उत्तम पुरुष) का प्रयोग संस्कृत काल से ही होता रहा है। पुरुषवाचक सर्वनाम के तीनों पुरुषों प्रथम पुरुष (तत्), मध्यम पुरुष (युष्मद्), तथा उत्तम पुरुष (अस्मद्) में चलते हैं। इनके सम्बोधन रूप नहीं चलते हैं। हिन्दी भाषा में सर्वनामों के लिंग में परिवर्तन नहीं होता है। 'वह खाता है।' 'वह खाती है।' वाक्यों में 'वह' सर्वनाम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

विशेषण--संस्कृत में विशेष्य के अनुसार विशेषण भी बदल जाता है। हिन्दी भाषा में विशेषणों में लिंग के अनुसार परिवर्तन होता जाता है। परन्तु स्त्रीलिंग के विशेषणों में एकवचन ही रहता है, बहुवचन का प्रयोग नहीं होता है; 'लाल घोड़ी' तथा 'लाल घोड़ियाँ। परन्तु पुंलिंग शब्दों के विशेषणों में एकवचन तथा बहुवचन के प्रयोगों में अन्तर पाया जाता है; जैसे अच्छा लड़का, अच्छे लड़के। हिन्दी विशेषण का परिवर्तन विशेष्य के अनुसार नहीं होता है।

हिन्दी में तुलना करने के लिये 'से' या 'से अधिक' का प्रयोग किया जाता है। 'रमा मोहन से बड़ी है' अथवा 'श्यामा राधा से अधिक चतुर है' इन वाक्यों में विशेषणों के किसी रूप का प्रयोग नहीं किया गया है। संस्कृत में तुलना करने के लिये 'तर' तथा 'तम' प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है परन्तु आधुनिक आर्यभाषाओं में इन प्रत्ययों का प्रयोग नहीं देखा जाता है। हिन्दी में अधिकता के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे 'सबसे', 'सबमें', 'सबसे अधिक आदि। रमेश सबसे लम्बा व्यक्ति है,' 'राम सबमें चतुर लड़का है,' 'श्याम सबसे अधिक पढ़ता है' आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं।

लिंग--संसार की विभिन्न भाषाओं में लिंग विभाजन समान रूप से नहीं पाया जाता है। लिंगों की संख्या में भी अन्तर पाया जाता है। संस्कृत में तीन लिंग-पुँल्लिग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसक लिंग पाये जाते हैं। इनका विभाजन भी किसी विशेष नियम से नहीं है। संस्कृत में एक ही अर्थ वाले शब्द भिन्न-भिन्न लिंगों में पाये जाते है। अपभ्रंश में केवल दो ही लिंग भेद-पुंल्लिग तथा स्त्रीलिंग पाये जाते हैं। कुछ संस्कृत शब्द जैसे आत्मा, अग्नि, वायु, पवन आदि पुंल्लिग हैं किन्तु हिन्दी में इनका प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है। यही दशा 'देवता' शब्द की है जो संस्कृत में स्त्रीलिंग माना जाता है परन्तु हिन्दी में इसका प्रयोग पुँल्लिग में किया जाता है।

वर्तमान भारतीय भाषाओं में से हिन्दी, राजस्थानी, सिन्धी, पंजाबी में दो लिंग पाये जाते हैं जबकि मराठी, गुजराती, सिंहली भाषाओं में तीनों लिंग पाये जाते हैं परन्तु बंगाली, असमिया तथा उड़िया भाषा में तिब्बती-बर्मी भाषाओं के प्रभाव के कारण लिंग भेद नहीं पाया जाता है। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त संसार की अन्य भाषाओं में लिंग विभाजन में अन्तर पाया जाता है। इटैलियन, स्पेनिश एवं फ्रेन्च भाषाओं में दो लिंग-स्त्रीलिंग एवं पुँल्लिग पाये जाते हैं जबकि ग्रीक, लैटिन, जर्मन, रूसी तथा अंग्रेजी में तीन प्रकार के लिंग पाये जाते हैं। कुछ भाषाओं में जैसे चीनी तथा जापानी भाषाओं में लिंग भेद नहीं पाया जाता है। संसार की कुछ बोलियाँ इस प्रकार की भी है, जिनमें छः से बीस प्रकार के लिंग भेद पाये जाते हैं।

वचन--वचन के विषय मे भिन्न-भिन्न भाषाओं में अन्तर पाया जाता है। कहीं ३ वचन हैं तो कहीं दो वचन हैं। आधुनिक आर्यभाषाओं में अधिकांशतः एकवचन और बहुवचन इन दो रूपों का प्रयोग किया जाता है फिर भी मराठी जैसी भाषाओं में तीन वचन पाये जाते हैं। ग्रीक, अरबी, संस्कृत भाषाओं में द्विवचन भी मिलता है। द्विवचन का प्रयोग सम्भवतः युग्मक (जोड़ों) को बताने में अवश्य होता रहा होगा। इस प्रकार के उदाहरण वैदिक संस्कृत में पाये जाते है-इन्द्राग्नी (इन्द्र तथा अग्नि), द्यावापृथिवी (आकाश एवं पृथ्वी), मित्रावरुणौ (मित्र तथा वरुण) आदि। इसी प्रकार पितरौ 'माता-पिता' कर्णौ (दोनों कान), अक्षिणी (दोनों आँखें), लाभालाभौ, जयाजयौ (जय-पराजय) आदि दो चीजों को बताने में द्विवचन का प्रयोग किया जाता था। द्वन्द्व समास के रूप में द्विवचन का प्रयोग होता था। पालि में द्विवचन का अभाव पाया जाता है। यही दशा प्राकृत अपभ्रंश तथा हिन्दी आदि भाषाओं में है। इनमें द्विवचन सूचक शब्द दुइ' या दो का प्रयोग किया जाने लगा है। यूरोपीय भाषाओं में भी दो वचन (एकवचन तथा बहुवचन) का प्रयोग होता है। कुछ अफ्रीकी भाषाओं में त्रिवचन तथा कुछ मैलेनेशियन भाषाओं में त्रिवचन के अतिरिक्त चतुर्वचन भी पाये जाते हैं।

हिन्दी में बहुवचन के लिए प्रत्ययों (यां, ओं, ए, ऑ आदि) एवं समूहवाचक शब्दों (जैसे लोग, समूह, गण वृन्द) का प्रयोग करते हैं, जैसे लतासमूह, मनुष्यगण, बदमाश लोग, छात्र वृन्द आदि। कभी कभी बहुवचन बोधक प्रत्यय न जोड़कर संख्या-वाची शब्द का प्रयोग करके बहुवचन बना लेते हैं। जैसे--सौ मनुष्य तथा पाँच अमरूद में मनुष्य तथा अमरूद शब्द बहुवचन हैं।

कारक- संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में समान रूप से कारक नहीं पाये जाते हैं। प्राचीन भाषाओं में विभक्तियाँ अधिक थीं। बाद में इनकी संख्या कम होती गई है। मूल भारोपीय भाषा में आठ विभक्तियाँ मानी गई है। इस प्रकार संस्कृत भाषा में आठ विभक्तियाँ हैं जिनके एक वचन, द्विवचन एवं बहुवचन में रूप चलते हैं। बाद की भारतीय भाषाओं में इनकी संख्या क्रमशः कम होती गई। पालि, प्राकृत में एक विभक्ति से एक से अधिक कारकों का प्रयोग किया जाने लगा तथा कुछ पाँच-छह रूप शेष बचे थे। अपभ्रंश में कारकों के मात्र तीन वर्ग रह गये तथा एक विभक्ति से कई कारकों का काम लिया जाने लगा। वर्तमान हिन्दी में अपभ्रंश के अवशेष कारक चिह्न रह गए हैं।

संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में विभक्तियों की संख्या कम पाई जाती है। ग्रीक, लिथुआनी तथा रूसी भाषा में सात विभक्तियाँ, पुरानी चर्च स्लाव भाषा में छः विभक्तियाँ, लैटिन तथा ट्यटानी में पाँच, अल्वानी में चार, आर्मीनी तथा पुरानी अंग्रेजी में तीन विभक्ति रूप पाये जाते हैं। आधुनिक भारतीय आर्यभाषा हिन्दी में भी विभक्ति रूपों के अवशेष दो प्रकार के पाये जाते हैं, जिन्हें विकारी तथा अविकारी कहते हैं। इन भाषाओं की तुलना में 'जार्जियन' भाषा में विभक्ति रूपों की अधिकता है उसमें कुल तेइस विभक्ति रूप मिलते हैं।

आख्यात--आख्यात (क्रियाओं) के अन्तर्गत काल (Tense), गण, वाच्य, पुरुष- वचन एवं वृत्ति Mood) आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। क्रियाओं से काम का होना, न होना ही ज्ञात नहीं होता अपितु उनके द्वारा आज्ञा, इच्छा, सम्भा-वना, सदेह, निश्चय आदि वृत्तियों (Moods) का भी ज्ञान होता है। इसी दृष्टि से संस्कृत भाषा में लकारों का प्रयोग मिलता है। कुल लकार इस प्रकार हैं--लट् लकार (वर्तमान काल),लिट् (परोक्ष भूत), लङ् (अनद्यतन भूत), लुङ् (सामान्य भूत), लुट् (अनद्यतन भविष्यत्), लृट् (सामान्य भविष्यत्), लोट् (आज्ञा), विधिलिङ् (विधि), आशीर्लिङ् (आशीः), लृङ् (क्रियातिपत्ति)। इन धातुओं का विभाजन दश गणों में किया गया है। ये गण हैं--भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि, चुरादि। इन गणों की धातुओं को पदों में बाँटा गया है-आत्मनेपद तथा परस्मैपद एवं उभयपद। वाच्य तीन होते हैं--कर्तृ वाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य। हर धातु के रूप ३ पुरुषों--उत्तम, मध्यम तथा अन्य में एवं तीन वचनों (एक बचन,

द्विवचन, बहुवचन) में पाये जाते हैं। इस प्रकार इन धातु रूपों के अतिरिक्त कृदन्तीय रूपों का भी प्रयोग होता था।

संस्कृत भाषा के रूपों की अधिकता थी, जो बाद में विकसित होने वाली भाषाओं में क्रमशः कम होती गई। पालि में भ्वादि, दिवादि, स्वादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि एवं चुरादि ये सात गण, शेष रह गए। कुछ लकार रूपों का भी प्रचलन समाप्त हो गया। आशीर्लिङ्, लुट लकार लुप्त हो गए। लुङ् लकार (सामान्य भूत) का प्रयोग भूतकाल के लिए होने लगा। आत्मनेपद तथा द्विवचन का भी प्रयोग समाप्त हो गया। इस प्रकार संस्कृत के कई रूप पालि में आकर समाप्त हो गए तथा रूपों की संख्या में कमी हो गयी।

'प्राकृत' काल में रूपों की संख्या और कम हो गयी। वाच्य कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य ही रह गए। एकवचन तथा बहुवचन शेष रहे तथा द्विवचन का लोप हो गया। काल (Tense) में वर्तमान, भविष्य, आज्ञा तथा विधि ही शेष रह गए। भ्वादि गण के आधार पर रूप बनने लगे अन्य गणों का अभाव हो गया। अपभ्रंश काल में धातु रूप बहुत कम हो गए। रूपों में वर्तमान एवं भविष्य काल के रूपों का ही प्रयोग शेष रह गया। संस्कृत की व्यञ्जनान्त धातुएँ स्वरान्त हो गईं। धातु रूप भ्वादि गण की भाँति चलने लगे तथा परस्मैपद शेष रहा। दोनों पदों का भेद भी समाप्त हो गया। तिङन्त रूपों के प्रयोग में कमी आ गई तथा कृदन्त रूपों का प्रचलन अधिक हो गया। कृदन्त रूपों के साथ वर्तमान तथा भविष्यत् काल के विभिन्न भागों को बताने के लिए सहायक क्रियाओं को प्रयुक्त किये जाने लगा। इसी समय धातुओं के रूप संश्लिष्ट रूपों से वियोगात्मक होने लगे। क्रिया रूप को स्पष्ट करने के लिए संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग अधिक होने लगा, जैसे-- मैं देखता हूँ', 'तू देखता है,' एवं 'वह देखता है' इन वाक्यों में 'देखता' कृदन्तीय रूप है जो तीनों पुरुषों में समान रूप से प्रयुक्त हुआ है। पुरुषों की पहचान 'हूँ' 'है' के प्रयोग से सहजता से हो जाती है। हिन्दी में विधि, आशीः तथा आज्ञा, क्रियातिपत्ति भावों को एक समान क्रिया रूपों द्वारा प्रकट किया जाने लगा। हिन्दी में क्रिया में कृदन्तीय रूपों की अधिकता के कारण क्रिया पुँल्लिग या स्त्रीलिंग के अनुरूप परिवर्तित हो जाती है जबकि बंगाली भाषा में तिङन्त रूप की अधिकता के कारण क्रिया लिंग के अनुसार नहीं बदलती है। पुँल्लिग तथा स्त्रीलिंग में क्रिया समान रूप से प्रयुक्त की जाती है; जैसे--मोहन जाच्चे (मोहन जाता है) तथा राधा जाच्चे (राधा जाती है)। इसी प्रकार संस्कृत में 'मोहनः गच्छति' एवं 'राधा गच्छति' वाक्यों में क्रिया में लिंग भेद के कारण परिवर्तन नहीं हुआ है। हिन्दी क्रिया रूपों से एकवचन एवं बहुवचन का ज्ञान हो जाता है परन्तु बंगाली भाषा में क्रिया रूप से वचन भेद का ज्ञान नहीं होता है। जैसे--

संस्कृत--	हिन्दी–	बंगाली–
बालकः खादति	बालक खाता है	छेले खाच्चे
बालकाः खादन्ति	बालक खाते हैं	छेलेरा खाच्चे

हिन्दी में कुल ६०० धातुएँ पाई जाती हैं जिनमें ३९३ मूल धातुएँ हैं तथा १८९ यौगिक धातुएँ हैं । यौगिक धातुएँ आवश्यकतानुसार बाद में निर्मित की गईं हैं । यह धातु संख्या संस्कृत भाषा की तुलना में बहुत कम है । संस्कृत में २००० धातुएँ थीं जिनमें ८०० धातुएँ प्राचीन साहित्य में तथा २०० धातुएँ वैदिक साहित्य में प्रयोग की गई हैं ।

उपसर्ग--हिन्दी में संस्कृत उपसर्गों का प्रयोग तत्सम शब्दों के साथ पाया जाता है । तद्भव शब्दों के साथ संस्कृत के उपसर्गों का प्रयोग नहीं पाया जाता है । हिन्दी में सम्पूर्ण क्रियाएँ तद्भव हैं । हिन्शी में 'उ', नि, जैसे उपसर्ग हैं इनके प्रयोग से उजड़ना, निठल्ला, निखट्टू जैसे शब्द बनते हैं । उपासना, पराजय, संहार, उपसंहार जैसे उपसर्ग युक्त शब्द हिन्दी में संस्कृत तत्सम शब्दों से बनते हैं ।

निपात--नाम शब्दों से जुड़ने वाले उपसर्ग निपात कहलाते हैं तथा इनमें अव्यय शब्दों की भी गणना होती है । उपसर्गों का स्वतन्त्र रूप से प्रयोग नहीं किया जा जा सकता है किन्तु अव्ययों का स्वतन्त्र प्रयोग किया जाता है । यही इन दोनों में भेद पाया जाता है । संस्कृत में अव्यय शब्दों के रूप नहीं चलते । अतः इनका रूप परिवर्तित नहीं होता है । यत्र, तत्र, सर्वत्र अन्यत्र, प्रायः, सदा, उच्चैः (ऊपर), नीचैः, (नीचे), आदि संस्कृत अव्यय शब्द हैं । हिन्दी में यहाँ, वहाँ, इधर, उधर, ही, यहाँ, वहाँ, आह, ओह, हाय, जब, तब, और, भी, पर, ए, ओ, अरे, आदि अव्यय शब्द हैं । क्रिया विशेषण तथा पूर्वकालिक क्रियाएँ भी अव्यय के अन्तर्गत आती हैं ।

इस प्रकार इन शब्द रूपों–नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात आदि के द्वारा रूप परिवर्तन की दोनों दिशाओं का (अर्थात् प्राचीन रूपों का नाश तथा नवीन रूपों का निर्माण) ज्ञान हो जाता है । एक भाषा से जब नवीन भाषा का विकास होता है तो शब्दों का रूप परिवर्तन देखा जाता है ।

रूप परिवर्तन के कारण----भाषा शब्दों के रूप परिवर्तन के कई कारण होते हैं । रूप परिवर्तन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं--

(१) **सरल बनाने की प्रवृत्ति**–मनुष्य सरलता की ओर शीघ्र आकर्षित हो जाता है । भाषा के अनेक शब्द रूपों को स्मरण रखना मस्तिष्क के लिए बोझ स्वरूप होता है । अतः मनुष्य उन शब्द रूपों को सरलता से ग्रहण कर लेता है जो समान नियमों पर बने होते हैं । अतः शब्द रूपों की विविधता को अपनाना मनुष्य के लिए कठिन होता है । धीरे-धीरे शब्दों के समान रूपों का प्रचलन अधिक हो जाता है एवं उनमें एकरूपता आ जाती है । संस्कृत के अनेक शब्द रूप प्राकृत, अपभ्रंश में आकर कम हो

गए । उनकी अनेकरूपता समाप्त हो गयी । समान नियम वाले समान शब्द रूपों की व्यवहार में अधिकता हो गयी । हिन्दी में यह प्रवृत्ति और अधिक पाई जाती है । हिन्दी में दो लिंग (स्त्री-पुरुष), दो वचन (एक वचन तथा बहुवचन) तथा दो विभक्ति रूप (विकारी-अविकारी) शेष रह गए जबकि इनकी संख्या संस्कृत में अधिक थी ।

इसी प्रकार की दशा विश्व की अन्य भाषाओं में भी पाई जाती है । अंग्रेजी भाषा में बहुवचन बनाने के लिए कई प्रत्यय शब्दों में जोड़े जाते थे, जैसे एस (S), ई-एस (es), एन (en) आदि किन्तु बाद में एस (S) प्रत्यय का ही प्रचलन अधिक हो गया तथा अन्य प्रत्यय लुप्त हो गए । अंग्रेजी में Cow (काऊ) का बहुवचन Kine (काइन) था, आई (eye) का बहुवचन आइन (eine या eyne) था, परन्तु एस (S) के अधिक प्रयोग से अब काऊ का 'काउज' (Cows) तथा आई से आइस (eyes) रूप पाये जाते हैं । इस प्रकार एस (S) के प्रयोग से बहुवचन बनाने से एकरूपता आई है । संस्कृत में भी अकारान्त शब्द सबसे अधिक पाये जाते हैं । उनके प्रभाव से प्राकृतों में भी उन्हीं के समान शब्द रूप बनाए जाने लगे । पुत्रस्य, सर्वस्व जैसे संस्कृत शब्दों की समानता पर प्राकृत में पुत्तस्य, सव्वस शब्द बने हैं । इसी प्रकार आग्गेस्स, वाउस्स शब्दों का निर्माण हुआ है । इस प्रकार मनुष्य के सरलता की ओर झुकने के कारण शब्दों के सरल रूप बना लिए जाते हैं ।

(२) **सादृश्य**--मानव का भाषा के जिन शब्दों से अधिक परिचय रहता है उसी आकार में हम अन्य शब्दों को भी परिवर्तित कर लेते हैं अर्थात् ज्ञात शब्दों के सादृश्य पर नये शब्द गढ़ (ढाल) लिए जाते हैं । संस्कृत के क्त्वा (त्वा) तथा ल्यप् (य) प्रत्ययों के जोड़ने से पूर्वकालिक क्रिया बनती थी किन्तु 'क्त्वा' के प्रयोगाधिक्य के कारण पालि में केवल 'क्त्वा' प्रत्यय ही प्रयोग किया जाने लगा । पालि में 'गन्त्वा' से पूर्वकालिक रूप 'आगन्त्वा' बनता है जबकि संस्कृत में यही रूप गत्वा से आगत्य, या आगम्य (ल्यप्) बनेगा । इसी प्रकार अंग्रेजी भाषा में शैल' से 'शुड' (Should) तथा Will विल से वुड Would के आधार पर उसी के समान Can कैन से कुड (Could) बना लिया गया है ।

इसी प्रकार अंग्रेजी क्रियारूपों में भूतकाल के रूपों में (ed) का प्रयोग अधिक होने लगा है । हिन्दी में सम्बन्ध कारक 'मेरे' का अधिक प्रयोग होने से इसी आधार पर अन्य कारकों में रूप बना लिए गए हैं । 'मुझ को' मुझसे तथा तुमको, तुम से के स्थान पर मेरे को, मेरे से तथा तेरे को, तेरे से, जैसे प्रयोग भी किए जाने लगे हैं । संस्कृत में हस्तिना (तृ० एकवचन) की समानता पर मुनिना, भानुना जैसे रूप भी बनाए जाते हैं । हिन्दी में 'पाश्चात्य' शब्द के सादृश्य पर पूर्वीय के स्थान पर 'पौर्वात्य' शब्द निर्मित कर लिया गया है । ध्वनि परिवर्तन में प्रयत्न-लाघव का जो महत्त्व है, वही महत्त्व रूप-परिवर्तन में सरलता एवं सादृश्य का है ।

(३) **विचारधारा में परिवर्तन**-समाज पर अन्य धर्मों, समाजों अथवा महापुरुषों के प्रभाव पड़ने से व्यक्तियों की विचारधारा में परिवर्तन आ जाता है। इसका प्रभाव यह होता है कि पहले से व्यवहृत कार्यों की शब्दावली के प्रयोग में कमी आ जाती है तथा बाद वाली विचारधारा से सम्बन्धित शब्द अधिकता से प्रयोग किए जाने लगते हैं। वैदिक काल में यज्ञ कार्यों में प्रयुक्त शब्द, बौद्ध काल में यज्ञों की उपेक्षा के कारण अप्रचलित हो गए तथा बौद्धों के कर्मकाण्डों से संबन्ध रखने वाले शब्द प्रयोग किए जाने लगे। वस्त्रभूषा, भोजन, धर्म आदि में परिवर्तन होने पर शब्द प्रयोग भी बदल जाते हैं। अनेक हिन्दू लोग मुस्लिम प्रभाव से मुसलमान बन गए तो नये शब्दों का अधिक प्रयोग करने लगे तथा मुसलमान हिन्दू धर्म संबन्धी शब्दों का प्रयोग करने लग गये। धीरे धीरे उनके द्वारा बोले जाने वाले शब्द रूपों में भी अन्तर आ गया। इस प्रकार किसी एक विचारधारा की प्रमुखता होने पर उसके शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाने लगता है।

(४) **अज्ञान**-अज्ञान के कारण कभी कभी नवीन शब्दों की उत्पत्ति हो जाती है। रखा, मरा, धरा के समान ही 'करा' रूप बनना चाहिए किन्तु दिया, लिया आदि के समान 'किया' रूप प्रचलित हो गया है। 'श्रेष्ठ' शब्द सबसे अधिक 'उत्कृष्ट' के लिए आता था किन्तु अज्ञानवश श्रेष्ठतर एवं श्रेष्ठतम शब्द बनते हैं। चतुर से चतुराई के आधार पर सुन्दर से सुन्दरताई जैसे शब्द भी बना लिए गये हैं। सुन्दरताई, कुटिलताई, मित्रताई, सुघरताई ऐसे ही शब्द हैं इसी प्रकार सौन्दर्यता, लावण्यता जैसे शब्द भी अज्ञानवश बना लिए गए हैं।

(५) **नवीनता**-भाषा के पुराने शब्दों को छोड़ कर नये शब्दों का प्रयोग मनुष्य नवीनता के प्रति स्वाभाविक रूप से आकृष्ट होकर करते हैं। अतः शब्दों में परिवर्तन करके उनका प्रयोग किया जाने लगता है अथवा शब्दों पर नये अर्थ आरोपित कर लिए जाते हैं। 'रीति' के स्थान पर 'शैली,' शैली-शिल्प, रचना-विधान, कल्पना से परिकल्पना, प्रयोग से संयोग, मृदुता से मार्दव, प्रखरता से प्राखर्य्य, उज्ज्वल से औज्ज्वल्य, प्रचुरता से प्राचुर्य, वस्तु के लिए विषय-वस्तु जैसे नवीन शब्द प्रयोग पूर्व-प्रचलित शब्दों के अर्थ में किए जाने लगे हैं। 'मैं' के स्थान पर 'हम' के प्रयोग की अधिकता हो गई है। इस प्रकार नवीनता के कारण शब्दों के रूप में परिवर्तन आ जाता है।

(६) **स्पष्टता**-शब्दों का स्पष्ट अर्थ प्रकट करने के लिए शब्दों के रूप में परिवर्तन हो जाता है। 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग बढ़ने से बहुवचन के अर्थ को बताने के लिए 'हम लोग' प्रयोग किया जाने लगा है। इसी प्रकार तुम से 'तुम लोग' बहुवचन के लिए प्रयोग किया जाता है। संस्कृत के अनेक शब्दों के रूप पालि, प्राकृत में कई विभक्तियों में एक समान बनते थे। इससे अर्थ स्पष्ट होना कठिन होता

था ; अतः बाद में अर्थस्पष्टता के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा। बाद में यही शब्द हिन्दी में घिस कर कारक चिह्नों या परसर्गों के रूप में प्रयुक्त होने लगे। उदाहरण के रूप में संस्कृत 'रात्रि' के रूप बाद की विकसित भाषाओं में इस प्रकार बनने लगे–तृतीया रत्तिया

चतुर्थी	रत्तिया
पंचमी	रत्तिया

तृतीया	एक वचन (रत्ति)	एक वचन (वधू)
चतुर्थी	रत्तिया	वधुया
पंचमी	रत्तिया	वधुया
षष्ठी	रत्तिया	वधुया
सप्तमी	रत्तिया	वधुया

इन रूपों को देखकर कहा जा सकता है कि कई विभक्तियों में इनके समान रूप से अर्थस्पष्टता में बाधा आने लगी होगी। अतः अर्थ स्पष्ट करने के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग होने लगा।

(७) **बलप्रयोग**–शब्द पर बल देने के लिए लोग नये ढंग से शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं। इस तरह 'अनेक' से 'अनेकों' 'मैं' से 'हम' जैसे शब्द बल देने के लिये प्रयोग किए जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य विभिन्न कारणों से भाषा के प्रचलित शब्द रूपों में परिवर्तन करता रहता है। इस प्रकार नये शब्द रूपों से शब्दों के रूप में परिवर्तन होता रहता है। इन्हीं सबका रूप परिवर्तन के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है।

६ | अर्थविज्ञान

भाषा में अर्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि शब्दसमुदाय से वाक्य का निर्माण होकर भाषा का शरीर बनता है तो उस शरीर में अर्थ आत्मा की भूमिका का निर्वाह करता है। शब्द और अर्थ का स्वाभाविक एवं नित्य सम्बन्ध है। यदि अर्थ रहित शब्दों का उच्चारण किया जाय तो वह तथ्यहीन ही होगा। महाकवि कालिदास ने भी शब्द और अर्थ के नित्य सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि–

"वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये"।

इसी आशय को हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास जी ने भी इस प्रकार चित्रित किया है–

"गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।"

जिस प्रकार से विना अग्नि के सूखा ईंधन भी जलाया नहीं जा सकता है उसी तरह विना अर्थ बोध हुए विषय को शब्द द्वारा भी प्रकाशित नहीं किया जा सकता है।

अर्थ शब्द की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए वाक्यपदीयकार ने कहा है कि–

"जिस शब्द के उच्चारण से जब जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वही उसका अर्थ है। अर्थ का अन्य कोई लक्षण नहीं हो सकता"–

यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।
तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्॥

इस तरह यह स्पष्ट हो गया है कि जिसकी प्रतीति शब्द के द्वारा होती है, उसे अर्थ कहते हैं। जिस तरह से भाषा के बाह्य रूप का परिवर्तन होता रहता है, उसी तरह उसके अर्थ में भी परिवर्तन होता रहता है। इस अर्थ परिवर्तन के बहुत से कारण हैं। अर्थ के इस परिवर्तन को अर्थविकास भी कहा गया हैं क्योंकि भाषा से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के परिवर्तन को विकास ही कहा गया है।

अर्थपरिवर्तन की दिशायें–अर्थविज्ञान के प्रतिष्ठित विद्वान् 'ब्रील' महोदय ने अर्थविकास की तीन दिशाओं को स्वीकार किया है–

(१) अर्थविस्तार (Expansion of meaning or Widening)

(२) अर्थसंकोच (Contraction of meaning or narrowing)

(३) अर्थान्तरण अथवा अर्थसंक्रमण अथवा अर्थादेश (Transference of meaning)

(१) **अर्थविस्तार**– जब कोई शब्द अपने सीमित अर्थ में ही प्रयुक्त न होकर व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है तो उसे अर्थविस्तार कहते हैं। उदाहरण के लिये 'तेल' शब्द पहले केवल 'तिल' के तेल के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था परन्तु अब 'तेल' सभी प्रकार के यहाँ तककि 'मिट्टी के तेल' के लिए भी प्रयुक्त किया जाने लगा है। इसी प्रकार सादृश्य, साहचर्य, सामीप्य आदि कारणों से अर्थों में विस्तार होता गया है। निम्न उदाहरणों को देखें–

शब्द	मूलार्थ	अर्थविस्तार
मण्डप	माड़ को पीने वाला	विशेष उत्सवों में छाया जाने वाला मण्डप
प्रवीण	वीणा वादन में कुशल	चतुर
कुशल	कुशों को लाने वाला	दक्ष

(२) **अर्थसंकोच**– जब कोई शब्द पहले तो व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता रहा हो, परन्तु धीरे-धीरे किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा हो तो उसे अर्थसंकोच कहते हैं; जैसे अंग्रेजी का Deer और संस्कृत का 'मृग' शब्द पहले सामान्य जानवर का बोधक था परन्तु सम्प्रति वह केवल 'हरिण' के लिए ही प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार 'गो' शब्द पहले गमन के अर्थ में प्रयुक्त होता था परन्तु आज उसका प्रयोग केवल 'गाय' के लिए किया जाता है। 'ब्रील' का विचार है कि जो जाति या देश जितना ही अधिक सभ्य होगा उसकी भाषा में उतना ही अधिक अर्थसंकोच होगा। कतिपय उदाहरण दर्शनीय हैं–

शब्द	मूलार्थ	अर्थसंकोच
भार्या	जिसका भरण पोषण किया जाय	पत्नी
द्विज	ब्राह्मण, पक्षी, दाँत	ब्राह्मण
पय	दूध, जल	दूध

(३) **अर्थादेश**– अर्थादेश में एक अर्थ के स्थान पर या पुराने अर्थ के स्थान पर अन्य या नवीन अर्थ हो जाता है अर्थात् पहले किसी शब्द का कुछ अर्थ था और अब उससे इतर दूसरा अर्थ हो गया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक अर्थ के लोप होने तथा उसके स्थान पर नये अर्थ आ जाने को अर्थादेश कहा गया है। जैसे– असुर का अर्थ पहले देवताबोधक था परन्तु इस समय असुर शब्द राक्षस या दैत्य के लिए प्रयोग किया जाने लगा है। इसी तरह 'साहस' पहले डकैती आदि कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता था परन्तु आजकल वह अच्छे अर्थ के बोधक के रूप में प्रस्तुत

किया गया है। इसे हम अर्थोत्कर्ष की श्रेणी में रख सकते हैं। इसी तरह महाराज' शब्द 'प्रभुता' को बोधित करने वाला पर था आज तो वह 'रोटी बनाने वाले' तक के लिए भी प्रयोग किया जाने लगा है। इसे अर्थापकर्ष कहेंगे।

अर्थपरिवर्तन के कारण– यह समस्त संसार ही निरन्तर परिवर्तनशील है। समय चक्र के साथ ही सम्पूर्ण पदार्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। मानव के विचार भी हमेशा एक से नहीं होते हैं। भाषा भी परिवर्तनशील है। अतः उसके शब्दों एवं अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। इन परिवर्तनों के मूल कारणों को समझ पाना कठिन है, क्योंकि ये कारण अत्यधिक संश्लिष्ट होते हैं। कतिपय प्रमुख अर्थपरिवर्तन के कारण प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

(१) **बल का अपसरण**– शब्द के उच्चारण करने में यदि किसी एक ही अर्थ पर अधिक बल दिया जाता है या उसी अर्थ के लिए वह बार-बार उच्चरित होता है तो शेष अर्थ बलहीन होकर लुप्त हो जाते हैं तथा जिस पर बल दिया जाता है वही अर्थ शेष रहता है। जैसे– 'अरि' शब्द के वैदिक साहित्य में शत्रु, घर, ईश्वर आदि अर्थ स्वीकार किये गये थे परन्तु सम्प्रति वह केवल 'शत्रु' के लिए प्रयोग किया जाता है।

(२) **पीढ़ी परिवर्तन**– इसके मूल में अनुकरण की अपूर्णता है। मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है, वह अपने पूर्वपुरुषों का अनुकरण करता है। अनुकरण करते समय उससे कुछ न कुछ गल्ती अवश्य हो जाती है जिससे पीढ़ी परिवर्तन के साथ अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे– प्राचीन युग में पत्तों पर लिखा जाता था, परन्तु आधुनिक काल में कागज आदि पर लिखने से भी प्राचीन काल के पत्र' के सदृश उस कागज, चिट्ठी आदि को भी पत्र के नाम से पुकारा जाता है।

(३) **अन्य भाषा से शब्दों का उधार लेना**– कभी-कभी संसर्ग या आवश्यकतावश एक भाषा को दूसरी भाषा से शब्द लेना पड़ता है। परन्तु ऐसी दशा में शब्दों का आदान प्रदान तो आसानी से हो जाता है, लेकिन उनके अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। जिस तरह संस्कृत का 'भक्त' (भात) शब्द अरबी में 'बहत' का रूप धारण करता है परन्तु वहाँ पर उसका अर्थ 'खीर' हो जाता है। इसी तरह फारसी में 'मुर्ग' सामान्य पक्षी का बोधक है लेकिन हिन्दी में आकर वही 'मुर्ग' शब्द एक पक्षीविशेष 'मुर्गा' के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा है।

(४) **एक भाषाभाषी लोगों का प्रवास**– जब एक भाषा-भाषियों का समूह कई वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है, तो उन विभिन्न वर्गों के लोग एक ही भाषा के शब्दों को भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग करने लगते हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत का 'वाटिका' शब्द जो बगीचा का वाचक है, बंगला में 'घर' के अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा है। इसी तरह संस्कृत के 'युग' अंग्रेजी के (Yoke) एवं संस्कृत का मृग (जानवर) और फारसी का मुर्ग (पक्षी) मूलतः एक ही शब्द है।

(५) **वातावरण में परिवर्तन**– वातावरण में परिवर्तन होने से भी शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसे– घर के सगे भाई से सभा में कहे गये 'भाइयों' और 'बहनों' में 'भाई' शब्द दूसरे अर्थ का बोधक है। इसी तरह जब पत्नी सोते हुए 'पति' को 'अरे भाई उठो न' कह कर बुलाती है तो उस 'भाई' शब्द का अर्थ दूसरा हो जाता है।

(६) **नामकरण**– जब नई-नई वस्तुएँ बनती हैं तो उनके नामकरण की समस्या सामने आती है। कभी-कभी तो उसकी सामग्री के आधार पर नामकरण कर दिया जाता है। जैसे– 'शीशे' को अंग्रेजी में (Glass) कहते हैं। 'गिलास' पहले भारतवर्ष में बनाये गये थे अतः यहाँ उससे बनी वस्तु को भी 'ग्लास' कहा जाने लगा।

(७) **नम्रता प्रदर्शन**– नम्रता प्रदर्शन से भी अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। जैसे लोग नम्रता दिखाने के लिए अपने घर को 'गरीब खाना', 'अन्धे' को 'सूरदास' आदि से पुकारने लगते हैं। इसी तरह यदि कोई आदमी किसी के लड़के को देखकर पूछता है कि यह किसका लड़का है तो उत्तर देने वाला नम्रता प्रदर्शित करते हुए कहता है कि यह 'आप ही का लड़का है।"

(८) **अशोभन शब्दों के स्थान पर शोभन शब्दों का प्रयोग**–मनुष्य का स्वभावतः गुण होता है कि वह अशोभन शब्दों को न प्रयोग करके शोभन शब्दों का प्रयोग करता है। उदाहरणार्थ किसी की मृत्यु होने पर मनुष्य उसे गंगालाभी, गोलोकवासी या स्वर्गवासी आदि शब्दों से पुकारते हैं। इसी तरह 'लाश' को 'मिट्टी,' 'चिराग बुझाने' को 'चिराग बढ़ाना' आदि कहकर पुकारते हैं।

(९) **आत्मश्लाघा की भावना**– जब मनुष्य अपने वैदुष्य का प्रदर्शन करना चाहता है तो वह कभी-कभी क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग भी करता है, जिससे शब्द सुनने में मधुर प्रतीत होते हैं परन्तु उनका अर्थ बदला हुआ रहता है। जैसे– महापंडित (मूर्ख), वैयाकरणखसूचि (प्रतिभारहित) आदि।

(१०) **अधिक वर्णों के स्थान पर कम वर्णों का प्रयोग**– मनुष्य कम से कम परिश्रम से अधिक फल की इच्छा करता है। बोलचाल की भाषा में भी इसी प्रक्रिया को अपनाता है। उदाहरणार्थ 'रेल' पर चलने के कारण ट्रेन को 'रेलगाड़ी' कहा जाता है लेकिन अब पटरी वाचक 'रेल' शब्द को ही लोग 'रेलगाड़ी' के लिए प्रयोग करते हैं। इसी तरह मोटरकार के लिये 'मोटर' या 'कार', साइकिल-रिक्शा के लिए केवल 'रिक्शा', शब्द प्रयुक्त होते हैं।

(११) **सादृश्य**– सादृश्य के कारण भी कभी-कभी अर्थ परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ– 'प्रश्रय' का अर्थ विनय, शिष्टता, नम्रता है। आश्रय शब्द इसी के सदृश है। अतः इसका प्रयोग भी 'आश्रय' या 'सहारा' इत्यादि के अर्थ में किया जाने लगा है।

(१२) **पुनरावृत्ति–** शब्दों का बार-बार प्रयोग भी अर्थविकास का कारण हो जाता है। उदाहरणार्थ 'अचल' शब्द पर्वत का वाचक है। किन्तु 'विन्ध्याचल पर्वत,' मलयगिरि पर्वत इत्यादि शब्दों से उन्हीं विन्ध्य आदि पर्वतों का आशय लिया जाता है। इसी तरह कुछ लोग 'फूलों का गुलदस्ता' आदि का प्रयोग भी करते हैं। इसी प्रकार 'डबलरोटी' को 'पावरोटी' कहकर लोग 'पाव' का अर्थ 'डबल' लगाने लगे हैं जबकि पाव का अर्थ 'रोटी' है।

(१३) **एक शब्द का दो रूपों में प्रचलन–** जब किसी एक शब्द का दो रूपों में प्रचलन किया जाता है तो उन दोनों रूपों में से किसी एक में कुछ भेद कर लिया जाता है। जैसे– 'स्तन' और 'थन' ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के बोधक हैं, परन्तु इन दोनों में भेद करने के लिए 'स्तन' स्त्री जाति के लिए तथा 'थन' पशु जाति के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

(१४) **अज्ञानता–** अज्ञानता के कारण भी अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। जैसे– ज्ञान अर्थ में ही अभिज्ञान (स्मृति का प्रयोग)।

(१५) **एक वर्ग के एक शब्द में अर्थपरिवर्तन–** जब एक वर्ग के किसी एक शब्द के अर्थ में परिवर्तन कर दिया जाता है तो वह उस वर्ग के दूसरे शब्दों पर भी अपना प्रभाव डालता है। जैसे– जब 'वर' दुर्लभ हो गया तो वह 'दूलह' कहलाने लगा। फिर वधू भी दुलही या दुलहिन के नाम से पुकारी जाने लगी।

(१६) **व्यंग्य–** व्यंग्य के कारण भी शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे– पूरे देवता, अक्ल के ठेकेदार आदि से मूर्ख का अर्थ लिया गया है।

(१७) **भावावेश–** भावावेश में भी शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे– प्यार में लोग बच्चों को शैतान या बदमाश तक भी कह डालते हैं।

(१८) **अलंकार–** भावों को अत्यधिक स्पष्ट करने के लिए अलंकारों तथा मुहावरों का प्रयोग करते हैं। जैसे छिपे रुस्तम, कालानाग, शैतान की खाला आदि शब्द अपने अन्दर मार्मिक अर्थों को आत्मसात् किये रहते हैं। आचार्य 'ब्रील' का मत है कि अन्य कारणों की अपेक्षा अलंकारों से अर्थ पूर्णतया बदल जाता है।

साहित्यशास्त्रियों ने शब्दों के द्वारा विशेष अर्थ व्यञ्जना के निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किये हैं–

(१) संयोग, (२) विप्रयोग, (३) साहचर्य, (४) विरोध, (५) अर्थ, (६) प्रकरण, (७) लिङ्ग, (८) सन्निधि, (९) सामर्थ्य, (१०) औचित्य, (११) देश, (१२) काल, (१३) व्यक्ति और, (१४) स्वर।

संयोग– इसके द्वारा शब्द का अर्थ नियमित हो जाता है। जैसे– 'शंखचक्र-युत हरि लखै''। यहाँ पर शंख तथा चक्र के संयोग से अनेकार्थ बोधक हरिशब्द विष्णु का वाचक बन जाता है।

उपर्युक्त कारणों के विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि अर्थपरिवर्तन के बहुत से कारण होते हैं। वक्ता अपनी रुचि, आवश्यकता, प्रसंगादि के अनुसार यथा-स्थान उनमें परिवर्तन करते हैं। अतः इन कारणों को निश्चित सीमा रेखा में नहीं बाँधा जा सकता है।

बौद्धिक नियम– अर्थपरिवर्तन के बहुत से कारणों में से कुछ कारण बुद्धि से सम्बन्धित हैं। भाषा में जब अर्थ के अनुसार परिवर्तन होता है तो उन परिवर्तनों में बुद्धि ही कारण रूप में प्रयुक्त होती है। उन कारणों का विचार करके जो नियम बनाये गये हैं उन नियमों को बौद्धिक नियम कहा गया है। अर्थ के अध्ययन के सन्दर्भ में इस नियम के प्रथम उद्भावक आचार्य ब्रील माने गये हैं। इसके बाद बहुत से विद्वानों ने इस विषय पर अपना मत व्यक्त किया है। इन बौद्धिक नियमों का विवेचन इस प्रकार किया गया है–

(१) **विशेषीकरण का नियम** (The Law of Specialization)–जब किसी एक अर्थ, रूप, सम्बन्ध आदि को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक शब्द प्रयोग किये जाते हैं और फिर धीरे-धीरे उनमें केवल एक दो शब्द शेष रह जाते हैं तो इसे 'विशेष भाव' का नियम कहते हैं। क्योंकि वक्ता अनेक से एक की ओर आकृष्ट होता है अतएव विशिष्टता के मूल में होने के कारण इसे विशेषीकरण का नियम कहा गया है। जैसे– प्राचीन समय में संस्कृत में तृतीया विभक्त के एक वचन में 'आ' और 'ना' दोनों प्रकार के प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता था; जैसे– हरिणा, शम्भुना, विष्णुना, वारिणा, साधुना इत्यादि 'ना' वाले रूप तथा विश्वपा पत्या, हाहा आदि 'आ' वाले रूप। लेकिन सम्प्रति 'आ' वाले रूपों का क्रमशः ह्रास होता जा रहा है और 'ना' वाले रूपों का प्रचार हो रहा है। इसी प्रकार तरप्, तमप्, ईयस् तथा इष्ठन् प्रत्ययों के विषय में हम कह सकते हैं कि संख्यावाचक शब्दों में 'तम' का संक्षित रूप 'म' अधिक प्रयोग किया जाने लगा है। जैसे– प्रथम, पंचम, अष्टम, नवम, दशम। 'ईयस्' प्रत्यय से बने संख्या वाचक दो ही शब्द इस समय प्राप्य हैं; जैसे– द्वितीय, तृतीय। 'इष्ठ' का 'थ' केवल चतुर्थ और षष्ठ रूप में सुरक्षित है। इस तरह हम देखते है कि एक शब्द या प्रत्यय ने अनेक प्रत्ययों के बीच से विशिष्टता प्राप्त कर ली है। अतः यह विशेषीकरण का नियम है।

(२) **भेदीकरण का नियम** (The Law of differentiation)– अनेक शब्द समान अर्थ में प्रयुक्त होते रहते हैं। ऐसे शब्दों को पर्यायवाची शब्द कहते हैं। इन पर्यायवाची शब्दों का सूक्ष्म रूप से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उन समानार्थवाची शब्दों में भी उनके मौलिक अर्थ की दृष्टि से कुछ भिन्नता रहती है। समानार्थक शब्दों की इस भिन्नता को रखने वाले नियम को भेदीकरण कहा गया है। उदाहरणार्थ कुशल, प्रवीण आदि शब्द समानार्थक होने के कारण पर्यायवाची हैं

परन्तु सूक्ष्मदृष्टि से विश्लेषण करने पर इनमें भेद स्पष्ट दिखायी पड़ता है। इसी तरह डाक्टर, वैद्य, हकीम, कविराज आदि शब्द पर्यायवाची होते हुए भी अपने भेद से युक्त हैं। इसी तरह Child, Tot, Mite Imp Brat, Calf, Kid, Colt तथा Urchin आदि शब्दों का अर्थ बच्चा है। परन्तु इनका प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया जाता है। डा० पी० डी० गुणे ने लिखा है– Differentiation is defined as the international ordered process by which words apparently synonymous have nevertheless taken different meaning and can no longer be used indescriminately."

अर्थात् भाषा में भेदीकरण उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा पर्यायवाची प्रतीत होने वाले शब्द भी भिन्न अर्थ ग्रहण कर लेते हैं और उनका एक दूसरे स्थान पर मनमाना प्रयोग नहीं किया जा सकता। यह प्रवृत्ति विश्व की सभी भाषाओं में मिलती है।

(३) **अर्थोद्योतन का नियम** (The law of irradication)– जब किसी शब्द के अर्थ का उत्कर्ष या अपकर्ष हो जाता है तो इस प्रकार उसके अर्थ भी परिर्वतित हो जाते हैं। इस अर्थपरिवर्तन करने वाले नियम को अर्थोद्योतन का नियम कहा गया है। उदाहरणार्थ– डाक्टरी, मास्टरी, आदि शब्दों में अर्थद्योतकता का ही नियम प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह प्राचीन काल में संस्कृत में प्रयुक्त होने वाला 'आ' स्त्री प्रत्यय नहीं था, जैसा कि संज्ञा पुँल्लिग गोपा, विश्वपा आदि शब्दों से स्पष्ट है। लेकिन अधिकांश स्त्रीलिङ्ग शब्दों के अन्त में प्रयुक्त होने के कारण 'आ' में नवीन अर्थद्योतकता आ गयी और वह स्त्रीलिङ्ग बोधक शब्द बन गया।

(४) **विभक्तियों के अवशेष का नियम** (The law of survival of inflections)– जब भाषा अपनी प्रकृति के अनुसार संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर अग्रसर होती है तो ऐसी स्थिति में ध्वनिलोप के कारण विभक्तियाँ प्रायः लुप्त हो जाती हैं तो सामान्यतया यह माना जाता है कि विभक्तियाँ समाप्त हो गयीं। लेकिन ऐसा होता नहीं है अपितु विभक्तियाँ यत्र-तत्र प्रयुक्त होती रहती हैं। इसी को विभक्तियों के अवशेष का नियम कहा गया है। उदाहरण स्वरूप हिन्दी में संस्कृत की विभक्तियाँ लुप्त हो गयी हैं तथा उनके स्थान पर कारक चिह्न या परसर्गों का प्रयोग किया जाने लगा है, फिर भी यत्र-तत्र लुप्त विभक्तियाँ भाषा में दृष्टिगत होती हैं जैसे– दैवात्, साधारणतया, हठात् आदि।

(५) **भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम** (The Law of False perception)– अज्ञानता के कारण जो अर्थ परिवर्तन हो जाता है, उसे मिथ्याप्रतीतिका नियम कहा गया है। मिथ्या बात को भ्रम के कारण सत्य स्वीकार कर लेना ही 'मिथ्याप्रतीति' है। उदाहरणार्थ– संस्कृत में 'अ' शब्द 'नहीं' का बोधक है। संस्कृत में 'असुर' शब्द

का अर्थ देवता था लेकिन अ' के आधार पर असुर=जो देवता नहीं है दैत्य या राक्षस अर्थ हो गया। अंग्रेजी का (Oxen) शब्द भी ऐसा है। इस शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'उक्षन्' शब्द से है लेकिन अंग्रजी के बहुवचन के द्योतक 'en' प्रत्यय के आधार पर OX एकवचन से Oxen बहुवचन हो गया है।

(६) **सादृश्य या उपमान का नियम** (Law of Analogy)–मानव स्वभावतः अनुकरणशील है। भाषा में भी वह वर्तमान शब्द के सादृश्य पर नये शब्दों का निर्माण कर लेता है। इसी तरह सादृश्य के आधार पर जो अर्थपरिवर्तन किया जाता है उसको सादृश्य या उपमान के नियम की संज्ञा दी गई है। उदाहरणार्थ भारोपीय काल में उत्तमपुरुष वर्तमान काल के दो रूप प्रचलित थे- मि' और 'ओ'। लेकिन उपमान के कारण यह भेद क्रमशः समाप्त हो गया है। संस्कृत में विद्वानों ने 'मि' तथा ग्रीक में 'ओ' को स्वीकार किया है।

इन उपर्युक्त नियमों के अतिरिक्त कतिपय विद्वानों ने (१) नव-प्राप्ति का नियम (Law of new acquisition) तथा (२) अनुपयोगी रूपों के विलोम का नियम (Law of extinction) भी स्वीकार किये हैं। लेकिन ये दोनों नियम सामान्यतः सादृश्य या उपमान नियम में अन्तर्निहित हो जाते हैं।

बौद्धिक नियम एवं ध्वनिनियम की तुलना– यहाँ यह प्रश्न उठता है कि बौद्धिक नियम एवं ध्वनि नियम में क्या-क्या साम्य तथा वैषम्य है ? बौद्धिक नियम ध्वनि के समान ही देशकाल की सीमाओं से परे हैं। इन नियमों का प्रयोग किसी भी देश की भाषा में किसी भी काल में अपना कार्य कर सकते हैं। ध्वनि नियम अपवाद युक्त होते हैं और उनका कार्य क्षेत्र एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत होता है जबकि बौद्धिक नियम अपवाद रहित होते हैं तथा उनके कार्य की कोई निश्चित सीमा नहीं होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ध्वनिनियम कम व्यापक है और कम अकाट्य अर्थात् सर्वत्र व्यापक एवं पूर्णरूपेण अकाट्य नहीं होते हैं जब कि बौद्धिक नियम अधिक व्यापक और अकाट्य प्रकृति के नियम होते हैं। इस तरह ध्वनि नियमों तथा बौद्धिक नियमों में पर्याप्त पार्थक्य है।

---

७ | ध्वनि-विज्ञान

भाषाविज्ञान में ध्वनि-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य के मुख से निकली शब्द ध्वनियों का विस्तृत अध्ययन ध्वनिविज्ञान में किया जाता है। कान से सुनाई देने वाले किसी भी शब्द को ध्वनि कहते हैं। भाषाविज्ञान के अन्तर्गत भाषा से सम्बन्धित सार्थक शब्द को ध्वनि कहते हैं। संस्कृतभाषा में 'ध्वनि शब्दे' धातु से ध्वनि शब्द की उत्पत्ति हुई है। ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं–(१) भाषा ध्वनि (Speech Sound) एवं (२) ध्वनिग्राम (Phoneme)।

भाषाविज्ञान में ध्वनि को भाषा ध्वनि भी कहते हैं। भाषाध्वनि की परिभाषा करते हुए डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने लिखा है कि–"मानव के ध्वनियंत्र द्वारा उत्पादित तथा निश्चित श्रवण गुणों से युक्त ध्वनि को भाषा-ध्वनि कहते हैं।"

डा० भोलानाथ तिवारी ने भाषाध्वनि की परिभाषा अपने ग्रन्थ 'भाषा विज्ञान' में इस प्रकार की है– 'भाषाध्वनि वह ध्वनि है जिसे मनुष्य अपने मुंह के नियत स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित करे और श्रोता जिसे उसी अर्थ में ग्रहण करे।"

प्रो० डेनियल जोंस ने अपनी परिभाषा इस प्रकार की है–'ध्वनि मनुष्य के विकल्पहीन, नियत स्थान और निश्चित प्रयत्न द्वारा उत्पादित और श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा अविकल्प रूप से गृहीत शब्द-लहरी है।"

डा० भोलानाथ तिवारी ने भाषाध्वनि की परिभाषा करते हुए पुनः अपने ग्रन्थ में लिखा है–'भाषाध्वनि' भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है, जिसका उच्चारण और श्रोतव्यता की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यक्तित्व हो।'

भाषाध्वनि या भाषणध्वनि का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में भी किया गया है। डा० डैनियल जोन्स एवं डा० चटर्जी इसी को संध्वनि कहते हैं। उनका मत है कि सध्वनि का निश्चित तथा अपरिवर्तनीय रूप होता है। जबकि केनियन तथा अन्य विद्वानों ने भाषाध्वनि को ध्वनिग्राम का पर्याय माना है। आर्मफील्ड ने भाषाध्वनि के लिए संध्वनि तथा ध्वनिग्राम दोनों का ही प्रयोग किया है।

ध्वनिग्राम–ध्वनिग्राम को ध्वनि श्रेणी, ध्वनितत्त्व के नाम से भी सम्बोधित किया

जाता है। किसान, दिन, निर्धन, आनन्द, अपना आदि इन शब्दों में 'न' को साधारणतः केवल एक ध्वनि 'न' माना जायेगा, किन्तु सूक्ष्म विवेचन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि सभी शब्दों में आई 'न' ध्वनि पृथक्-पृथक् हैं। इस प्रकार कुल सातध्वनियाँ हैं। प्रत्येक शब्द में 'न' की अपनी विशिष्ट ध्वनि हैं। हर 'न' ध्वनि का श्रावक गुण भी अलग-अलग इसी प्रकार कल, जल्दी, लाना शब्दों में भी प्रत्येक 'ल्' की ध्वनि अलग-अलग है। इस प्रकार ये ध्वनियाँ अलग-अलग होते हुए भी एक ही परिवार की सदस्य हैं अतः परस्पर सम्बद्ध भी हैं। इन सब ध्वनियों का अध्ययन ध्वनिग्राम के अन्तर्गत करते हैं। डा० भोलानाथ तिवारी ने अपने 'भाषाविज्ञान' में लिखा है-"किसी भाषा में किसी भी ध्वनि के ये विभिन्न रूप ही संध्वनि कहलाते हैं, और उनका सामूहिक रूप से सबको ढक लेने वाला एक नाम ध्वनिग्राम (Phoneme) कहलाता है।" ऊपर के उदाहरण में 'न' तथा 'ल' ये दो 'ध्वनिग्राम' हैं तथा इन दोनों की क्रमशः सात तथा तीन 'संध्वनियाँ' हैं। ध्वनिग्राम के अन्तर्गत अनेक संध्वनियां निहित रहती हैं। संध्वनि (भाषाध्वनि) का क्षेत्र सीमित होता है जबकि ध्वनि का क्षेत्र विस्तृत होता है। के० एल० पाइक (K. L. Pike) ने ध्वनिग्राम की परिभाषा इस प्रकार की है-'ध्वनिग्राम किसी भाषा विशेष की ध्वनियों में विश्लेषण करने के उपरान्त प्राप्त की गई सार्थक इकाई है।' (The phoneme is one of thc significant units of sounds arrived at far a particular languagl.) इस प्रकार उत्पन्न ध्वनियों को अघोष ध्वनियाँ कहते हैं।

श्वासनली तथा भोजननली को अलग करने वाली नलिकाओं की दीवार गले में जिस स्थान पर समाप्त होती है, उस चौड़े स्थान में ये दोनों नलिकाएँ खुलती हैं उस स्थान को गलबिल या उपालिजिह्वा (Pharynx) कहते हैं जो मुख विवर तथा नासिक विवर से जुड़ा होता है तथा वहीं खुलता है।

गले में जहां नलिकाओं की दीवार समाप्त होती है उस स्थान पर मांस का एक लचीला परदा होता है जो श्वासनलिका तथा भोजननली के बीच बना होता है तथा भोजन करने के समय श्वासनली को ढक लेता है ताकि भोजन श्वासनली में न जापाए। इसको अभिकाकल या स्वरयंत्रमुखावरण (Epiglottis) कहते हैं।

मुख विवर तथा नासिका विवर के मिलन स्थल पर जिह्वा के रूप का मांस का एक छोटा भाग स्थित होता है जिसे अलिजिह्वा या कौआ (Uvula) कहते हैं। (१) जब यह शिथिल रहता है तो श्वासवायु मुखविवर एवं नासिकाविवर दोनों से प्रवेश करती तथा निकलती है। इससे अनुनासिक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। (२) बहुत ढीला होने पर यह मुखविवर को ढक लेता है तथा श्वासवायु एक नासिका विवर से होकर गुजरती है। (३) कौआ के तनने की स्थिति में नासिकाविवर बन्द हो जाता है तथा श्वास मुँह से होकर गुजरती है। इस प्रकार अनुनासिक ध्वनि उत्पन्न होती हैं। मुखविवर नासिकाविवर तथा श्वास तथा प्रश्वास के

प्रमुख साधन हैं। मुखविवर में वायु के प्रवेश करने से ध्वनिअवयव ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इन ध्वनि उत्पन्न करने वाले अवयवों को 'वाग्यन्त्र' कहते हैं।

बोलते समय जीभ मुँह में कई स्थानों को स्पर्श करती है जिससे कई तरह की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। ये स्थान हैं-कठोर तालु (Hard Palate) ('कोमल तालु से लगा भाग), कोमल तालु (Palate) मूर्द्धा, (Cerebrum), तथा वर्स्व (Alveole, Teeth ridge) हैं। कण्ठ के साथ जुड़ा कोमल भाग को कोमल तालु कहते हैं। कोमल तालु से जुड़ा कठोर भाग मूर्द्धा कहलाता है। कठोर तालु का आगे का भाग जो दाँतों से सम्बद्ध है, वर्स्व कहलाता है। इसका दूसरा नाम वर्त्स भी है। इसी को मसूढा भी कहते हैं। वर्स्व का नीचे का भाग दांत हैं।

मुख का कोमल एवं गतिशील भाग जिह्वा है जिसकी सहायता से अनेक ध्वनियाँ उत्पन्न होती है। जिह्वा को ५ भागों में विभाजित किया जा सकता है- (अ) जिह्वा-मूल (Root), (ब) जिह्वा-पश्च (Back-dorsum), (स) जिह्वा-मध्य (Middle), (द) जिह्वा-अग्र (Front) तथा जिह्वा-नोंक (Tip)।

मुख के बाहर से दिखाई देने वाले सामने भाग में ओष्ठ होते हैं। ये दो होते हैं ऊपरी ओष्ठ तथा अधरोष्ठ। इन दोनों की सहायता से ओष्ठ्य वर्ण का उच्चारण किया जाता है। वस्तुतः इन दोनों में ऊपर का भाग ओष्ठ तथा निम्न भाग अधर कहलाता है।

इस प्रकार यह भली-भांति जाना जा सकता है कि ध्वनियों के उत्पन्न करने में उपरिलिखित ध्वनि-अवयवों का महत्त्वपूर्ण स्थान है एवं ध्वनि-अवयव कई प्रकार के होते हैं जो विभिन्न प्रकार से कार्य करते हैं।

(१) **ध्वनियों का वर्गीकरण**-प्राचीन भारतीय वैयाकरणों ने ध्वनियों को स्वर तथा व्यञ्जन इन दो भागों में वर्गीकृत किया है। इन वैयाकरणों का विचार है कि बिना स्वर की सहायता के व्यञ्जन का उच्चारण नहीं किया जा सकता है। अतः व्यञ्जन के उच्चारण के लिए स्वरों की सहायता आवश्यक है। यूनानी वैयाकरण डामोनिशस थ्रैक्स के अनुसार भी व्यञ्जन उनको कहते हैं जिनका उच्चारण स्वर के सहयोग से होता है। जब किसी स्वर के उच्चारण में एक मात्रा (ह्रस्व के उच्चारण) से अधिक तथा दो मात्रा (दीर्घ स्वर के उच्चारण) से कम समय लगता है अर्थात् डेढ़मात्राकाल लगता है तो उसे दीर्घार्ध कहते हैं- वैसा', 'है' जैसे शब्दों में 'ऐ' का पूरी तरह उच्चारण नहीं होता है।

(२) **जिह्वा के विभागों की दृष्टि से**-स्वर उच्चारण करते समय जीभ का अगले, मध्य के तथा पिछले भाग में कोई भाग थोड़ा उठता है अतः इनको आधार बनाकर स्वरों के भी कई भेद हैं-अग्र स्वर, मध्य स्वर एवं पश्च स्वर। इ, ई, ए-अग्रस्वर, उ, ऊ, ओ- पश्च स्वर तथा अ-मध्य स्वर माने जाते हैं।

(३) **मुख खुलने की दृष्टि से**--स्वर उच्चारण करते समय मुख कितना खुलता है, कम या अधिक; इस दृष्टि से स्वरों को कई भेदों में बाँटा गया है-विवृत, अर्द्धविवृत, अर्द्ध संवृत तथा संवृत । जब मुख विवर अधिक खुलता है तो उस समय उच्चारण किए गए स्वर 'विवृत' कहलाते हैं; जैसे 'आ' जब जीभ का विशेष भाग अधिक ऊपर उठता है तथा मुख विवर अत्यन्त संकरा (संवृत) होता है तो इस प्रकार के स्वर 'संवृत्त' कहलाते हैं जैसे ई, ऊ, आदि । इन दोनों अवस्थाओं के बीच की प्रमुख दो दशाएँ अर्द्ध विवृत तथा अर्द्ध संवृत कहलाती हैं । 'अर्द्ध विवृत' स्वर के उच्चारण की दशा में मुख 'अर्द्ध संवृत' की अपेक्षा अधिक खुलता है । विवृत स्वर 'ऑ' तथा अर्द्ध संवृत स्वर 'ए' तथा 'ओ' हैं ।

(४) **ओष्ठों की स्थिति की दृष्टि से**--स्वर-उच्चारण के समय ओष्ठों की स्थिति की दृष्टि से स्वरों का विभाजन किया जाता है । बोलते समय ओठों की दो स्थितियाँ होती हैं-वृत्ताकार (गोल) तथा अवृत्ताकार (फैली हुई) । इस दृष्टि से वृत्ताकार स्वर हैं उ तथा ऊ आदि । अवृत्ताकार स्वर हैं आ, ए आदि । इनका एक विभाजन इस प्रकार भी किया जाता है-विस्तृत स्वर--ई, पूर्ण विस्तृत स्वर--ए, उदासीन स्वर-अ, स्वल्प वृत्ताकार स्वर-ऑ, तथा पूर्ण वृत्ताकार स्वर-ऊ आदि । ये विभाजन भी बोलते समय ओष्ठों की स्थिति के अनुसार ही हैं ।

(५) **कोमल तालु तथा कौवे (अलिजिह्व) की दृष्टि से**-कोमल तालु एवं कौवा (अलिजिह्व) इन दोनों की स्थिति जब इस प्रकार की होती है कि नासिका मार्ग अवरुद्ध होने के कारण वायु केवल मुख से निकलती है तो अननुनासिक या मौखिक स्वरों की (अ, आ, ए आदि) उत्पत्ति होती है । जब वायु मुख एवं नासिक दोनों से निकलती है तो अनुनासिक या नासिक्य स्वर (अँ, आँ, इँ) उत्पन्न होते हैं ।

स्वरों के दो भेद किए जा सकते हैं । अनुनासिक स्वर भी दो प्रकार के होते हैं-(१) पूर्ण अनुनासिक तथा (२) अपूर्ण अनुनासिक ॥ 'कहाँ' शब्द में 'हाँ, के साथ का आँ पूर्ण अनुनासिक है । तथा 'राम' शब्द में 'आ' अपूर्ण अनुनासिक है ।

(६) **मुँह की मांसपेशियों की दृढ़ता या शिथिलता की दृष्टि से**--मुँह की मांसपेशियों की दृढ़ता या शिथिलता की दृष्टि से भी स्वरों के भेद किए जाते है । जब स्वर उच्चारण में मांसपेशियाँ कठोर (कड़ी) हो जाती हैं तो उन्हें दृढ़ (Tense) स्वर (जैसे ई, ऊ) कहते हैं । जब स्वर उच्चारण में मांसपेशियाँ शिथिल रहती हैं तो उन्हें शिथिल (lax vowels) स्वर कहते हैं ।

(७) **स्वरतंत्रियों की स्थिति की दृष्टि से**--स्वरतंत्रियों की स्थिति की दृष्टि से भी स्वरों को कई भागों में बांटा गया है । स्वरों के उच्चारण के समय स्वरतंत्रियों के उच्चारण स्वर की सहायता के बिना नहीं हो सकता है । स्वर का उच्चारण किसी ध्वनि की सहायता से किया जा सकता है । संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने समस्त ध्वनि

समूह को १४ (चौदह) सूत्रों में विभाजित किया है। इन सूत्रों को माहेश्वर सूत्र भी कहते हैं-(१)अइउण्, (२)ऋलृक्,(३)एओङ्,(४) ऐऔच्,(५)हयवरट्, (६)लण् (७) ञमङणनम् (८) झभञ्, (९) घढधष्,(१०)जबगडदश्,(११) खफछठथचटतव्, (१२) कपय्,(१३)शष्सर्, (१४) हल् । इन सूत्रों के अन्तिम (हलन्त) व्यञ्जन स्वर रहित हैं। इन सूत्रों की सहायता से प्रत्याहार बनाकर समस्त ध्वनियों का वर्गीकरण किया है।

साधारण रूप से ध्वनियों को स्वर तथा व्यञ्जन इन दो भागों में विभाजित किया गया है। ऊपर बताया जा चुका है कि स्वर किसी भी ध्वनि की सहायता से उच्चरित होते हैं तथा व्यंजनों का उच्चारण स्वर की सहायता से किया जाता है। स्वर की परिभाषा इस प्रकार की जाती है–"स्वर वह ध्वनि है जिसके उत्पादन में विवर खुला रहता है और जिससे श्वास वायु बिना रुकावट के बाहर निकल जाती है।' (A Sound produced with a vibration of the vocal cords by the unobstructed passage of air through the oral cavity.) व्यञ्जन की परिभाषा इस प्रकार की गई है–"व्यञ्जन वह ध्वनि है जिसके उत्पादन में श्वास वायु के निःसरण में किसी न किसी प्रकार का गतिरोध पैदा किया जाता है। ('A Sound produced by an obstruction or blocking or some other restriction of the free passage of the air, exhaled from the lungs through the oral cavity.)

स्वर एवं व्यञ्जन की तरह पाश्चात्य विद्वानों ने भी ध्वनियों का कई नामों से विभाजन किया है। श्रवण प्रभाव के आधार पर पाइक ने ध्वनियों के दो भेद- वक्वॉइड (Vocoid) तथा कान्ट्वॉइड (Contoid) किए हैं। हेफनर ने ध्वनियों को आक्षरिक (Syllabic) तथा अनाक्षरिक (Nonsyllabic) इन दो भेदों में बांटा है।

स्वर की विशेषताएँ इस प्रकार है-(१) स्वरों का उच्चारण अकेले सहजता से किया जा सकता है जब कि अधिकांश व्यञ्जनों का उच्चारण स्वरों की सहायता से होता है। (२) स्वरों का देर तक उच्चारण सम्भव है जबकि कुछ व्यञ्जनों के छोड़कर अधिकांश का देर तक उच्चारण करना सम्भव नहीं है। (३) स्वरों के उच्चारण में हवा बिना अवरोध के मुख से निकलती है जब कि व्यञ्जनों के उच्चारण में वायु अवरोध सहित निकलती है। (४) प्रायः स्वर आक्षरिक (Syllabic) हैं तथा कुछ को छोड़कर प्रायः सब व्यंजन अनाक्षरिक (Non Syllabic) हैं। श्रवणीयता के आधार पर स्वर व्यञ्जनों की अपेक्षा अधिक मुखर होते हैं।

स्वरों का वर्गीकरण–स्वरों को कई प्रकार से विभाजित किया जाता है जैसा कि निम्न प्रकार देखा जा सकता है–

(१) **मात्रा (काल परिमाण) की दृष्टि से**-स्वरों के उच्चारण में लगने वाले

समय के आधार पर स्वरों को तीन भागों में बाँटा गया है-(१) ह्रस्व (Short) (२) दीर्घ (Long) तथा (३) प्लुत (Protracted)। ह्रस्व स्वर (अ या इ) के उच्चारण काल को एक मात्रा काल कहते हैं। दीर्घ स्वर के उच्चारण काल को २ मात्रा काल तथा प्लुत के उच्चारण काल को तीन मात्रा काल माना जाता है। आ, ई, ऊ आदि दीर्घ स्वर हैं तथा 'ओ३म्' शब्द प्लुत है। 'प्लुत' स्वरों के उदाहरण वेदों में भी बहुत कम पाये जाते हैं। स्वरों के इन तीन भेदों के अतिरिक्त दो और भेद-ह्रस्वार्ध तथा दीर्घार्ध भी किए गये हैं। जब किसी स्वर के उच्चारण में अर्ध मात्रा काल लगता है तो उसे ह्रस्वार्ध कहते हैं--जैसे स्थान, स्मिथ के बोलते समय 'इ'। "(Language by the analytical procedures developed from the basic premises previously presented.)" ब्लूमफील्ड ने बताया है कि 'ध्वनिग्राम विशिष्ट ध्वनि-रूप की सबसे छोटी इकाई है।' (A minimum unit of distinctive sound feature of phoneme.) एच. ए. ग्लीसन ने ध्वनिग्राम की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'ध्वनि ग्राम भाषा के उच्चरित स्वरूप की वह न्यूनतम विशेषता है है जिसके द्वारा एक कही गयी बात का कही जाने वाली किसी अन्य बात से अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है।' (We may define a phoneme as a minimum feature of the expression System of a spoken language by which one thing that may by said is distinguished from any other thing which might have been said.)

इस प्रकार ध्वनिग्राम में विशिष्ट ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। एवं यह भाषा की न्यूनतम इकाई है। ध्वनिविज्ञान में ध्वनि सम्बन्धी अध्ययन किया जाता है। ध्वनि-उच्चारण, उनकी रचना तथा अर्थ आदि की विवेचना ध्वनि-विज्ञान में की जाती है। ध्वनियों की उत्पत्ति मनुष्य के फेफड़ों से निकलने वाली वायु द्वारा होती है। ससार के कुछ क्षेत्रों में (जैसे अफ्रीका) इस प्रकार की भाषाएँ भी पाई जाती हैं जिनकी ध्वनियाँ मनुष्य द्वारा खींची गई साँस से उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार की ध्वनियों को अन्त: स्फोटात्मक या अन्तर्मुखी ध्वनियाँ कहा जाता है।

श्वास प्रक्रिया एवं ध्वनि उच्चारण में सहायक अवयव (ध्वनि यंत्र)

ध्वनि उच्चारण में कई अवयव सहायक होते हैं। श्वास एवं प्रश्वास प्रक्रिया से ध्वनियों की उत्पत्ति होती । ध्वनि उच्चारण में सहायक अंगों का वर्णन इस प्रकार है-

शरीर के भीतर दो मार्ग गए हैं-प्रथम श्वास नली कहलाता है तथा दूसरा भोजन नली। श्वास नली से वायु फेफड़ों तक जाती है तथा इसी के सहारे फिर मुंह तथा नाक द्वारा बाहर निकल जाती है। भोजन नली भोजन एवं पानी को पेट तक

पहुँचाने का कार्य करती है। इन दोनों नलिकाओं की सहायता से ध्वनि उच्चारण कार्य होता है।

श्वास नली का एक सिरा फेफड़ों से जुड़ा होता है तथा दूसरे सिरे पर स्वर यन्त्र (Larynx or sound box) स्थित होता है। इसके ऊपर की ओर अमिकाकल होता है। स्वर यंत्र एक छोटे सन्दूक की भाँति होता है। यह कंठपिटक या टेंटुए (Adam's apple) से जुड़ा रहता है।

गले में जो उभरा हुआ भाग होता है उसे कंठपिटक या टेंटुआ कहते हैं। इस स्थान पर श्वास नली कुछ मोटी होती है अत: कुछ अंश गले के बाहर निकल आता है।

स्वर यंत्र के ऊपरी भाग में टेंटुए से गले की ओर फैली दो पतली तथा लचीली झिल्लियाँ बनी होती हैं। इन्हीं झिल्लियों को स्वर तन्त्रियाँ (Vocal Chords or cords) कहते हैं। इनकी आकृति त्रिभुजाकार होती है। इन स्वरतन्त्रियों के सामने के सिरे (टेटुएँ के पास) परस्पर जुड़े होते हैं तथा पीछे के सिरे कोमल हड्डियों से जुड़े होते हैं। ये झिल्लियाँ भीतर की थोड़ी सी सांस से हटकर पृथक् हो जाती हैं। सांस निकलने पर फिर पास आ जाती हैं।

स्वरतन्त्रियों के बीच के खाली (या खुले) स्थान को काकल या स्वरयंत्र मुख (glottis) कहते हैं। श्वास नली द्वारा जाने वाली हवा यहीं से होकर जाती है। वायु निकलते समय यदि स्वरतन्त्रियों के पीछे के दोनों सिरे खिचकर पास आ जाती हैं तो स्थान कम होने के कारण वायु स्वरतन्त्रियों से रगड़ते हुए निकलती है जिसके कारण स्वरतन्त्रियों में कम्पन उत्पन्न होता है इस प्रकार उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ सघोष ध्वनियाँ कहलाती हैं। जब स्वरतंत्रियाँ अपने स्वाभाविक स्थान पर ही रहती हैं तो उनके मध्य खाली स्थान होने से वायु बिना रगड़े निकल जाती है और स्वरतन्त्रियों में कम्पन नहीं होता है। समीप आ जाने से जब घर्षण करती हुई वायु निकलती है तो उन्हें 'घोष' स्वर कहते हैं, जब स्वरतन्त्रियाँ एक दूसरे से दूर होती हैं तो वायु बिना घर्षण किए सरलता से निकल जाती है एवं मांसपेसियों में कम्पन नहीं होता है इस प्रकार के स्वरों को 'अघोष स्वर' कहते हैं। अघोष स्वरों को जपित या फुसफुसाहट स्वर भी कहते हैं। घोष तथा जपित स्वर के मध्य की स्वर ध्वनि को अर्द्ध-घोष या मर्मर स्वर भी कहते हैं।

इस प्रकार मुख्य विभाजन के अतिरिक्त स्वरों के गौण भाग भी किए जा सकते हैं।

व्यंजनों का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो प्रकार स्थान तथा प्रयत्न के अनुसार किया जाता है। नीचे ध्वनियों (मुख्यत: व्यञ्जनों) का वर्गीकरण किया गया है।

ध्वनियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में यह बताया जा चुका है कि इन्हें दो भागों में बांटा जाता है-(१) ध्वनियों के उच्चारण स्थान के अनुसार तथा (२) ध्वनियों के उच्चारण प्रयत्न के अनुसार । ध्वनियों के उच्चारण में जिन ध्वनि उत्पादक विशिष्ट अवयवों की सहायता ली जाती है उन्हें 'स्थान' कहते हैं तथा ध्वनियों की उत्पत्ति ध्वनियंत्र के जिन अवयवों का जो योगदान रहता है उसे 'प्रयत्न' कहते हैं 'प्रयत्न' के दो भेद होते हैं-(१) आभ्यन्तर प्रयत्न तथा (२) बाह्य प्रयत्न । वाग्यन्त्र या मुखविवर में जो प्रयत्न होते हैं उन्हें 'आभ्यन्तर' प्रयत्न तथा स्वर यन्त्र आदि में होने वाले प्रयत्न 'बाह्य' प्रयत्न कहे जाते हैं ।

स्थान के अनुसार ध्वनियों (प्रमुखतया व्यञ्जनों) का वर्गीकरण

कण्ठ्य-कौए (अलिजिह्वा) तथा मूर्धा के मध्य कोमल तालु (Soft Palate or Velum) स्थित होता है। जीभ का पिछला भाग जब कोमल तालु का स्पर्श करता है तो इन ध्वनियों की उत्पत्ति होती है। वस्तुतः इन ध्वनियों को 'कोमल तालव्य' कहना उचित है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में बताया गया है कि कवर्ग का उच्चारण जिह्वा मूल द्वारा हनुमूल (कोमल तालु) को स्पर्श करने पर होता है। यथा-'हनुमूले जिह्वा-मूलेन कवर्गे स्पर्शयति' । कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि त्रुटि पूर्वक कवर्ग ध्वनियों को कण्ठ्य मान लिया गया है। कण्ठ्य ध्वनियाँ हैं क्, ख्, ग्, घ, बाद में कण्ठ्य ध्वनि में 'ह्' की भी गणना की गई है। प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि भी 'पाणिनीयशिक्षा' में 'जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तः' के अनुसार कवर्ग ध्वनियों की उत्पत्ति जिह्वामूल से मानते हैं। भट्टोजिदीक्षित ने अकार, कवर्ग, ह तथा विसर्ग ध्वनियों का उच्चारण स्थान कण्ठ बतलाया है—'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः' । डा० मगलदेव शास्त्री के अनुसार संस्कृत में 'कण्ठ' से 'कोमल तालु' का अर्थ ग्रहण किया जाता है।

तालव्य-इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ का अगला भाग कठोर तालु का स्पर्श करता है। तालव्य ध्वनियाँ हैं-इ, चवर्ग, य, श (इचुयशानां तालु)। प्राचीन कथन-'तालौ जिह्वामध्येन चवर्गे' के अनुसार जीभ के मध्य भाग द्वारा तालु को स्पर्श करने से चवर्ग ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

डा० उदय नारायण तिवारी चवर्ग ध्वनियों को वर्त्स्य मानते हैं क्योंकि जीभ के अग्रभाग का 'वर्त्स' से स्पर्श होने पर इनकी उत्पत्ति होती है। डा० भोलानाथ तिवारी का भी यही मत है। कुछ विद्वानों के अनुसार चवर्ग ध्वनियों के उच्चारण में स्थान तथा प्रयत्न दोनों दृष्टियों से प्राचीन काल की तुलना में अब अन्तर हो गया है।

मूर्धन्य-कठोर तालु का पिछला भाग जो कोमल तालु से लगा हुआ है वह मूर्धा कहलाता है। 'त्रिभाष्यरत्न' में 'मूर्धा' शब्द का अर्थ निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है-

'मूर्धाशब्देन वक्त्रविवरोपरिभागो विवक्ष्यते' अर्थात् मूर्धा शब्द के द्वारा मुख-

विवर का सबसे ऊपरी भाग समझना चाहिए। मुखविवर का ऊँचा भाग होने से पाणिनि इसे 'शिरस्' (=सिर) कहते हैं। मूर्धन्य ध्वनियों के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग मुड़कर (प्रतिवेष्टित होकर) मूर्धा को छूता है। 'जिह्वाग्रेण प्रतिवेष्ट्य मूर्धनि टवर्गे'–'तैत्तिरीय प्रातिशाख्य' तथा 'मूर्धन्यानां जिह्वाग्रं प्रतिवेष्टितम्'–अथर्व प्रातिशाख्य' के कथनों द्वारा यह स्पष्ट बताया गया है कि मूर्धन्य ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का अगला भाग प्रतिवेष्टित होकर मूर्धा का स्पर्श करता है। मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं–ऋ, ट, ठ, ड, ढ, र तथा ष (ऋटुरषाणां मूर्धा)। संस्कृत की टवर्ग ध्वनियों का उच्चारण वर्तमान काल में हिन्दी जीभ की नोक से तालु स्पर्श करके किया जाता है अतः डा० भोलानाथ तिवारी इन ध्वनियों को 'कठोर तालव्य' मानते हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा भी इन ध्वनियों को 'तालव्य' कहना उपयुक्त समझते हैं।

विद्वानों का विचार है कि मूर्धन्य ध्वनियाँ मूल भारोपीय भाषा में नहीं थीं। आर्यों के द्रविड़ भाषाओं के सम्पर्क में आने के बाद भारतीय आर्य भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियों का समावेश हुआ। परन्तु ज्यॉर्ज बूलर ने बताया है कि मूर्धन्य ध्वनियाँ संस्कृत की ही ध्वनियाँ थीं।

मूर्धन्य ध्वनियों में टवर्ग के साथ ऋ, र् ष् ध्वनियाँ भी गिनी जाती हैं। पाणिनि ने इन्हें मूर्धन्य ध्वनियाँ कहा है यथा–'स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषाः'। इसके विपरीत तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में 'र' का उच्चारण दन्त-मूलीय (alveolar) माना है यथा–'रेफे जिह्वाग्रं येन प्रत्यग् दन्तमूलेभ्यः' (अर्थात् रेफ के उच्चारण में जीभ की नोक का पीछे का भाग दन्तमूल के पीछे छूता है)। 'ऋ' का उच्चारण पाणिनि के अनुसार मूर्धन्य है (–स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषाः)। परन्तु तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में 'ऋ' के उच्चारण को 'वर्त्स्य' माना गया है ('जिह्वाग्रं ऋकारर्कारलकारेषु वर्त्स्वेषूपसंहरति') (ऋ, ॠ आदि के बोलने में जीभ का अग्र भाग वर्त्स्व की ओर उठता है)।

मूर्धन्य ऊष्म के विषय में 'प्रतिज्ञा-सूत्र' में कहा गया है कि 'ष्' टवर्ग के अतिरिक्त अन्य व्यंजन के साथ जुड़ता है अथवा नहीं जुड़ता उसका उच्चारण 'ख' की तरह किया जाता है (अथो मूर्धन्योष्मणोऽसंयुक्तस्य टुमृते संयुक्तस्य च खकारोच्चारणम्)।

दन्त्य–जिन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ का अग्र भाग दांतों को स्पर्श करता है उन्हें दन्त्य ध्वनि कहते हैं (लृतुलसानां दन्ताः–लृ, त, थ, द, ध, ल, एवं स का उच्चारण दाँतों की सहायता से होता है।)

तवर्ग के अतिरिक्त लृ, ल तथा स् ध्वनियों को दन्त्य माना जाता है। ऋक् प्रातिशाख्य (१/४१) के अनुसार 'लृ' का उच्चारण जिह्वामूलीय है किन्तु तैत्तिरीय प्रातिशाख्य (२/१८) के अनुसार इसका उच्चारण दन्तमूलीय या वर्त्स्य है। दन्त्य ध्वनियों के भी तीन भेद सम्भव है-(१) अग्रदन्त्य (प्राग्दन्त्य या पुरोदन्त्य), (२) अन्तर्दन्त्य (मध्य दन्त्य), (३) पश्चदन्त्य या दन्तमूलीय। ये भेद जीभ की नोक द्वारा

दांतों के अग्र भाग, मध्य भाग एवं दन्तमूल को स्पर्श करने के आधार पर बनाये जाते हैं। कुछ विद्वान् 'न्' का उच्चारण 'वर्स्व्य' मानते हैं।

ओष्ठ्य-द्व्योष्ठ्य-जिन ध्वनियों के उच्चारण में दोनों ओष्ठों का उपयोग करते हैं तो उन्हें ओष्ठ्य-द्व्योष्ठ्य ध्वनियाँ कहते हैं। ये ध्वनियाँ हैं-उ, प, फ, ब, भ तथा ⌣ प ⌣ फ (उपध्मानीय) यथा-'उपूपध्मानीयानामौष्ठौ'। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में पवर्ग की ध्वनियों को द्व्योष्ठ बताया गया है (ओष्ठाभ्यां पवर्गे २/३९)।

दन्त्योष्ठ्य-इस प्रकार की ध्वनियों के उच्चारण में नीचे का ओठ ऊपर की दन्तपंक्ति को स्पर्श करता है। 'व्' ध्वनि दाँत तथा ओठ की सहायता से उत्पन्न होती है। (वकारस्य दन्तोष्ठम्)। अंग्रेजी की व तथा फ (V, F) एवं फारसी की (फ) ध्वनियाँ भी इसी प्रकार की दन्त्योष्ठ ध्वनियाँ हैं।

नासिक्य-नासिका विवर की सहायता से उत्पन्न होने वाली सघोष ध्वनियों को नासिक्य ध्वनि कहते हैं। अनुनासिक ध्वनियों का उच्चारण मुख तथा नासिका दोनों की सहायता से किया जाता है (मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः) अनुस्वार का उच्चारण नासिका की सहायता से होता है। अनुस्वार बिन्दु (ं) द्वारा तथा अनुनासिक अर्धचन्द्र बिन्दु (ँ) द्वारा प्रकट किया जाता है। अनुनासिक ध्वनि स्वतन्त्र ध्वनि नहीं है जबकि अनुस्वार की स्वतन्त्र सत्ता है। अनुनासिक ध्वनि उस वर्ण के साथ मिला कर बोली जाती है जिस वर्ण पर अनुनासिक चिह्न होता है किन्तु अनुस्वार की पृथक् श्रुति होती है तथा 'ङ्' की भाँति ध्वनि होती है। 'शिक्षापंजिका' टीका में अनुस्वार के विषय में कहा है-'स्वरम् अनुभवति इति अनुस्वारः' अर्थात् स्वर के पश्चात् उत्पन्न होने के कारण 'अनुस्वार' कहते हैं। 'पाणिनीयशिक्षा' में अनुस्वार उच्चारण को 'अलाबुवीणा' के घोष की तरह बताया है एवं कहा गया है कि अनुस्वार के पश्चात् यदि ये पाँच वर्ण-ह्, र्, श्, ष्, स् आएँ तो उसका शुद्ध उच्चारण किया जाता है जैसा कि कहा गया है-

'अलाबुवीणानिर्घोषोऽदन्तमूल्यः स्वराननु ।
अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च ॥'

(पाणिनीयशिक्षा १५-१६ श्लोक)

अनुस्वार पूर्वस्वर का नासिक्यीकरण है या स्वतन्त्र नासिक्य ध्वनि है ? इस विषय पर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है।

वर्स्व्य (Alveolar or Posts Dental)-दांतों के पीछे के उभरे एवं खुरदरे से भाग को 'वर्स्व' कहा जाता है। यह कठोर तालु का अग्र भाग है। इसी को वर्त्स या 'ऊपरी मसूड़ा' कहा जाता है। 'त्रिभाष्यरत्न' में 'वर्स्व' की परिभाषा इस प्रकार दी है-(वर्स्वेऽविति दन्तपंक्तेरुपरिष्टादुच्चप्रदेशोऽवित्यर्थः) अर्थात् वर्स्व (ऊपरी) दन्तपंक्ति के पीछे स्थित उभरे भाग को कहते हैं। जीभ की नोक के वर्स्व का स्पर्श होने से इन ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है। न, ल, र, न्ह, ल्ह इसी प्रकार की ध्वनियाँ

हैं। डा० सुनीति कुमार चटर्जी, श्यामसुन्दरदास तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि संस्कृत तवर्ग ध्वनियों को 'वर्त्स्य' मानते हैं।

काकल्य–स्वरतन्त्रियों के बीच के स्थान को 'काकल' या 'स्वरयंत्रमुख' कहते हैं तथा यहाँ से उत्पन्न ध्वनियाँ 'काकल्य' कहलाती हैं। वायु की गति के आधार पर ये ध्वनियाँ 'काकल्य स्पर्श' एवं काकल्य संघर्षी नाम से दो प्रकार की होती हैं। कुछ विद्वानों (जैसे डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि) के मत से विसर्ग (:) यथा 'ह' काकल्य संघर्षी ध्वनियाँ हैं। अन्य विद्वान् इन ध्वनियों क उरस्य मानते हैं जैसा कि 'ऋक्-प्रातिशाख्य' में कहा गया है 'केचिद् एता उरस्यौ' अर्थात् कुछ लोग (विसर्ग एवं ह्) इन दोनों को उरस्य मानते हैं।

कण्ठ्य एवं तालु ए, ऐ ध्वनियों की उत्पत्ति कण्ठ तथा तालु की सहायता से होती है 'एदैतोः कण्ठतालु'।

कण्ठ एवं ओष्ठ–ओ तथा औ ध्वनियाँ कण्ठ तथा ओष्ठ की सहायता से उच्चरित होती हैं 'ओदौतोः कण्ठोष्ठम्'।

उपालिजिह्वीय–उपालिजिह्वा स्थान कंठपिटक तथा अलिजिह्वा के मध्य स्थित है। इसकी सहायता से उत्पन्न ध्वनियों को 'उपालिजिह्वीय' कहा जाता है। इस प्रकार की ध्वनियाँ अरबी भाषा में 'ऐन' (अ) तथा 'बड़ी हे' आदि हैं।

अलिजिह्वीय या जिह्वामूलीय--जिह्वामूल एवं अलिजिह्वा की सहायता से उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ अलिजिह्वीय कहलाती है। क् तथा ख् के पूर्व आने वाले विसर्ग की ध्वनि जिह्वामूलीय मानी जाती है। अरबी की क्, ग् आदि ध्वनियाँ भी इसी प्रकार की हैं।

'प्रयत्न' के अनुसार ध्वनियों का वर्गीकरण–उच्चारण करने के अनेक प्रयत्नों के आधार पर व्यञ्जनों को निम्न वर्गों में बांटा जाता है:--

(१) **स्पर्श या स्फोटक** (Mute, Explosive, Stop or Contanct)–

सघोष या अघोष होकर कंठपिटक से निकली वायु जब मुख में ओठों एवं जिह्वा के कारण थोड़ी देर पूरी तरह रुक कर फिर तेजी से बाहर जाती है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ स्पर्श (व्यञ्जन) कहलाती हैं। मुख से वायु झटके से बाहर निकलती है अतः इनको स्फोटक भी कहते हैं। स्पर्श वर्ण क् से प्रारम्भ होकर म् तक कुल २५ हैं। इनमें पांच वर्ग कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग सम्मिलित हैं।

(२) **घर्ष या संघर्षी** (Fricative, or Spirant)--जब ध्वनि उच्चारण के समय ध्वनि उत्पन्न करने वाले अवयव अधिक पास आ जाते हैं तथा वायु रगड़ती हुई बाहर निकलती है तो इस प्रकार की ध्वनि को संघर्षी ध्वनि कहते हैं। ध्वनि के काकल से ओठ तक भिन्न-भिन्न अवयवों से वायु के घर्षण होने के कारण कई ध्वनि

भेद किए जा सकते हैं। संस्कृत की श्, ष्, स्, ह्, संघर्षी ध्वनियाँ हैं। इनको ऊष्म ध्वनियाँ भी कहते हैं (शल उष्माण:)। इन ऊष्म ध्वनियों का उच्चारण स्वर के बिना भी किया जा सकता है। श्, ष्, स् अघोष ध्वनियाँ हैं। 'ह्' ध्वनि सघोष है। 'हश: संवारा नादा घोषाश्च' से भी यह निश्चित है कि 'ह्' सघोष ध्वनि है। कुछ लोग 'ह्' को अघोष भी मानते हैं।

(३) **स्पर्श-घर्ष या स्पर्श-संघर्षी** (Affricate or Semiplosive)–ध्वनि उच्चारण के समय वायु पूरी तरह अवरुद्ध होकर (स्पर्श करके) फिर रगड़ती हुई धीरे-धीरे बाहर निकलती है। यह स्थिति स्पर्श और घर्ष के बीच की है। हिन्दी में च्, छ्, ज्, झ् ध्वनियाँ स्पर्श-घर्ष ध्वनियाँ मानी जाती हैं। (संस्कृत में चवर्ग स्पर्श ध्वनियाँ मानी जाती हैं)।

(४) **अनुनासिक** (Nasal Stops)–मुख तथा नासिका दोनों से जब वायु निकल कर ध्वनि उच्चरित करती है तो इस प्रकार की ध्वनियों को अनुनासिक ध्वनि कहा जाता है। जैसा अष्टाध्यायी में पाणिनि ने लिखा है–'मुखनासिका-वचनोऽनुनासिक:'। अनुनासिक ध्वनियाँ ये हैं-ङ्, ञ्, ण्, न्, म् अर्थात् वर्गों के पञ्चम वर्ण। हिन्दी में दो अन्य ध्वनियाँ 'न्ह' तथा 'म्ह्' को भी अनुनासिक ध्वनि माना जाता है। न् तथा म् इन दो अनुनासिक ध्वनियों का अधिक प्रयोग किया जाता है।

(५) **पार्श्विक** (Lateral)–ध्वनि उच्चारण करते समय जब जीभ की नोक कठोर तालु को स्पर्श करके वायु को रोक लेती है तो वायु जीभ के एक या दोनों किनारों की ओर से (पार्श्वों से) निकल जाती है। इस प्रकार उत्पन्न हुई ध्वनियों को पार्श्विक ध्वनियाँ कहते हैं। बोलते समय जिह्वा के एक पार्श्व या दोनों पार्श्वों से निकलने वाली वायु के आधार पर इसके दो भेद हैं--(१) एक पार्श्विक ध्वनि तथा (२) उभय पार्श्विक या द्विपार्श्विक ध्वनि। हिन्दी में ल्' तथा 'ल्ह' पार्श्विक ध्वनियाँ मानी जाती हैं (जैसे लड़का, अल्हड़ शब्दों में)। संसार की अनेक भाषाओं में पाई जाने वाली पार्श्विक ध्वनियों के आधार पर इनक तीन भेद हैं–(१) वर्त्स्य, (२) तालव्य तथा (३) मूर्धन्य। इनमें वर्त्स्य पार्श्विक ध्वनि के भी दो भेद–शुक्ल पार्श्विक तथा कृष्ण पार्श्विक किए जाते हैं।

(६) **लुंठित या लोड़ित** (Rolled)–जब बोलते समय बाहर निकलती वायु प्रभाव से कौआ हिलकर जीभ के पिछले भाग को स्पर्श करे अथवा जीभ की नोक वर्त्स्व को अनेक बार छुए तो इस प्रकार उत्पन्न ध्वनियाँ लुंठित कहलाती है। इनमें अल्पप्राण सघोष ध्वनियाँ आती हैं। हिन्दी की 'र' तथा 'र्ह' ऐसी ही ध्वनियाँ हैं। ये ध्वनियाँ शब्द के मध्य अधिक पायी जाती हैं। इस प्रकार के उदाहरण – 'रजाई,' 'कर्हानो' (ब्रज०–कराहना) शब्दों में देखे जा सकते हैं। ये ध्वनियाँ दो प्रकार की होती है 'वर्त्स्य लुंठित' तथा 'अलिजिह्वीय लुंठित'।

(७) **उत्क्षिप्त** (Flapped)–ध्वनि उच्चारण के समय जीभ की नोक या कौए में एक बार ही तेज टक्कर लगने से ध्वनि उत्पन्न होती है उसे उत्क्षिप्त ध्वनि कहते हैं। इसके तीन भेद हैं– वर्स्व्य उत्क्षिप्त, मूर्धन्य उत्क्षिप्त, तथा अलिजिह्वीय उत्क्षिप्त। हिन्दी में 'ड़्' तथा 'ढ़्' उत्क्षिप्त (मूर्धन्य) ध्वनियाँ हैं। वैदिक संस्कृत की 'ळ्', 'ळ्ह्' उत्क्षिप्त (मूर्धन्य) ध्वनियाँ हैं। प्रसिद्ध विद्वान् मारिओ पेई उत्क्षिप्त ध्वनियों को लुंठित ध्वनियों का ही भेद मानते हैं।

(८) **अर्द्ध स्वर** (Semi vowels)–इन ध्वनियों को स्वर तथा व्यञ्जन ध्वनियों के मध्य रखा जाता है क्योंकि इनमें दोनों के गुण पाये जाते हैं। ये स्वरों की भांति मुखर स्वराघात वहन करने में समर्थ तथा अक्षर संघटना में समर्थ नहीं हैं। स्वरों के इन तीन गुणों के अभाव से इन्हें स्वरों की श्रेणी में नहीं रखा जाता है। इनमें स्वल्प मुखरता, स्वराघातहीनता, अक्षरसंघटना करने की असमर्थता आदि व्यञ्जनों के से गुण पाये जाते हैं। संस्कृत में अर्द्ध स्वरों को 'अन्तः स्थ' बताया गया है इनके अन्तर्गत य्, व्, र्, ल् आते हैं। डा॰ सरयू प्रसाद अग्रवाल ने लिखा है कि "कभी-कभी ध्वनियों का उच्चारण मध्यम रूप में होता है। वे न पूर्णतया स्वर होते हैं और न व्यञ्जन। ऐसी ध्वनियों को 'अर्ध स्वर' (Semi vowels) के नाम से पुकारा जाता है।"–(भाषाविज्ञान और हिन्दी)। इसी से मिलती परिभाषा श्री राजेन्द्र द्विवेदी की है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'भाषाशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश' में लिखा है कि– "इनके उच्चारण में मुख द्वार संकीर्ण तो करते हैं पर इतना नहीं कि रगड़ (संघर्ष) हो। इन्हें अर्द्ध स्वर या व्यञ्जन और स्वर के बीच की ध्वनि माना जाता है।" अन्तःस्थ वर्ण (य्, व्, र्, ल्) व्यंजनधर्मी हैं किन्तु स्वरवत् भी माने गये हैं क्योंकि इनका अपने समस्थानीय स्वरों (इ,उ, ऋ, ऌ) से अत्यधिक सम्बन्ध है एवं इनमें अन्तर्परिवर्तन भी होता है जैसे 'इको यणचि' सूत्र से विधान है कि इ, उ, ऋ, ऌ के स्थान पर क्रमशः य् व्, र्, ल्, हो जाते हैं तथा 'इग्यणः सम्प्रसारणम्' सूत्र से सम्प्रसारण होने पर पुनः इ, उ, ऋ, ऌ में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी समीपता के कारण इनको स्वरवत् भी माना गया है। हिन्दी में य्, व् अर्द्ध स्वर माने जाते हैं। र् तथा ल-व्यंजन हैं एवं ऋ, ऌ का स्वर की भाँति प्रयोग लुप्त हो गया है।

'प्रयत्न' की दृष्टि से ध्वनियों का वर्गीकरण—प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं—आभ्यतर एवं बाह्य। मुख विवर के अन्दर होने वाले प्रयत्नों को 'आभ्यन्तर प्रयत्न' कहते हैं। कंठ के नीचे जो प्रयत्न किये जाते हैं वे 'बाह्य प्रयत्न' कहलाते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न के अनुसार स्वरों को चार प्रकारों में तथा व्यञ्जनों को आठ प्रकारों में बांटा गया है। ये स्वर तथा व्यञ्जन के विभेद निम्न प्रकार हैं –

स्वरों के प्रकार–

(१) **संवृत स्वर**–जब ध्वनि उच्चारण के समय मुख द्वार संकुचित रहता है तो उस प्रकार उत्पन्न ध्वनि को संवृत स्वर कहते हैं जैसे–इ-ई, उ-ऊ।

(२) **अर्द्ध संवृत स्वर**–जब उच्चारण करते समय मुख आधा संकुचित होता है तो उस समय उत्पन्न ध्वनि अर्द्ध-संवृत होती है । उच्चारण की दृष्टि से संवृत ध्वनि की ओर झुकी होती है । इस प्रकार के अर्द्ध संवृत स्वर ए तथा ओ हैं ।

(३) **अर्द्ध विवृत-स्वर**–जब ध्वनि उच्चारण के समय मुख आधा खुलता है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि अर्द्ध विवृत स्वर कहलाती है । यह ध्वनि उत्पन्न होने की दृष्टि से विवृत ध्वनि की ओर झुकी होती है । इस प्रकार की ध्वनियाँ – ए तथा औ हैं ।

(४) **विवृत–स्वर**---ध्वनि उच्चारण के समय जब मुख द्वार पूरा खुलता है तो उस समय उत्पन्न ध्वनि को विवृत-स्वर कहते हैं जैसे– अ, आ ।

जीभ के अगले, मध्य तथा अन्तिम भाग की सहायता से जिन स्वरों की उत्पत्ति होती है उन्हें अग्रस्वर, मध्यस्वर तथा पश्चस्वर कहते हैं । अग्रस्वर–ई ए, ऐ मध्य स्वर–अ, तथा पश्च स्वर–आ ऊ और ओ हैं ।

(५) **स्पर्श व्यंजन**--जब वायु मुख में ध्वनि उत्पन्न करने वाले अवयवों को स्पर्श करती हुई निकलती हैं तो स्पर्श ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं । इस प्रकार की स्पर्श ध्वनियाँ (व्यञ्जन) हैं–क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ ।

स्पर्श संघर्षी--जब वायु मुख में अवरुद्ध होकर उच्चारण अवयवों से रगड़ती (घर्षण करती) निकलती है तो इस प्रकार उत्पन्न होने वाली ध्वनियों को स्पर्श संघर्षी कहा जाता है । संस्कृत की स्पर्श संघर्षी ध्वनियाँ हैं--च, क, ज, झ ।

संघर्षी--ध्वनि उच्चारण के समय अधिक संकुचित मुख द्वार से वायु घर्षण करती हुई निकलती है तो उस समय उत्पन्न ध्वनियाँ संघर्षी ध्वनि कहलाती हैं । इस प्रकार की ध्वनियाँ हैं– फ, ब, स, ज, श, ख, ग, ह ।

अनुनासिक--जब वायु उच्चारण करते समय मुख विवर तथा नासिक विवर से होकर बाहर जाती है तो अनुनासिक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं । वर्गों के पञ्चम वर्ण अर्थात् ञ, म, ङ, ण, न अनुनासिक ध्वनियाँ हैं ।

पार्श्विक--जब बाहर आती हुई वायु को जीभ ऊपर तालु से स्पर्श करके रोक लेती है तो वायु जीभ के एक या दोनों पार्श्वों की ओर से निकलती है उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि को पार्श्विक ध्वनि कहते हैं जैसे 'ल' ।

लुंठित--जब ध्वनि उच्चारण करते समय जीभ कई बार मुखद्वार को खोलती बन्द करती है तो उस समय होने वाली ध्वनि 'लुण्ठित' कहलाती है । जैसे 'र' ।

उत्क्षिप्त--जब जीभ की नोक परिवेष्टित होकर तालु को छूकर मुख विवर को झटके से खोल देती है तो जो ध्वनि उत्पन्न है उसे उत्क्षिप्त ध्वनि कहते हैं ।

जैसे– ड, ढ ।

अर्धस्वर--बोलते समय मुख के अधिक संकुचित होने से वायु स्वर की तरह ध्वनि करती बाहर निकल जाती है तो उसे अर्द्धस्वर कहते हैं; जैसे--य, व ।

बाह्य प्रयत्न के अनुसार ध्वनियों के ग्यारह भेद–

बाह्य प्रयत्न के अनुसार ध्वनियों को ११ भागों में बाँटा गया है जो इस प्रकार हैं--

(१) विवार, (२) संवार, (३) श्वास, (४) नाद, (५) अघोष, (६) घोष, (७) अल्पप्राण, (८) महाप्राण, (९) उदात्त, (१०) अनुदात्त, (११) स्वरित ।

कुछ विद्वान् 'बाह्य प्रयत्नों' को तीन भागों में बाँटते हैं--

(१) स्वरयन्त्रीय प्रयत्न (कण्ठ्य)--श्वास तथा नाद ।

(२) औरस्य या उरस्य प्रयत्न--महाप्राण तथा अल्पप्राण ।

(३) अनुनासिक प्रयत्न--अननुनासिक तथा अनुनासिक ।

कुछ ध्वनिविद् (महाभाष्यकार आदि) के अनुसार 'बाह्य प्रयत्न' आठ प्रकार के होते हैं--

विवार--संवार, श्वास--नाद, घोष--अघोष, अल्पप्राण--महाप्राण ।

प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् कैयट एवं भट्टोजि-दीक्षित आदि ने इन विभागों में उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित को सम्मिलित करके बताया हैं कि बाह्य 'प्रयत्न' कुल ग्यारह प्रकार के होते हैं--

(१) विवार, (२) संवार, (३) श्वास, (४) नाद, (५) अघोष, (६) घोष, (७) अल्पप्राण, (८) महाप्राण, (९) उदात्त, (१०) अनुदात्त, (११) स्वरित ।

विवार--इस दशा में स्वरतन्त्रियाँ एक दूसरे से दूर स्थित रहती हैं तथा गल-बिल फैला रहता है इस समय उत्पन्न ध्वनि प्रयत्न को विवार कहते हैं ।

संवार-जब ध्वनि उत्पन्न करते समय स्वरतन्त्रियाँ समीप आ जाती हैं तो उस समय होने वाले प्रयत्न को संवार कहते हैं ।

श्वास--जब ध्वनि उच्चारण के समय स्वरतन्त्रियाँ दूर दूर स्थित होती हैं तो वायु (श्वास-निश्वास) बिना घर्षण किए निर्बाध रूप से निकलती है । इस प्रकार के प्रयत्न को 'श्वास' प्रयत्न कहते हैं ।

ध्वनि-समूह को संस्कृत वैयाकरणों ने पाँच भागों में विभाजित किया है जो इस प्रकार हैं--

स्पृष्ट--स्पर्श वर्णों के उच्चारण का जो 'प्रयत्न' किया जाता है उसे 'स्पृष्ट' कहते हैं । इन ध्वनियों को बोलते समय जिह्वा मुख के विभिन्न स्थानों का पूरी तरह स्पर्श करती है । 'क' से 'म' तक के वर्णों को स्पृष्ट या स्पर्श कहते हैं ('कादयो मावसानाः स्पर्शाः) ।

ईषत्स्पृष्ट--जब जीभ ध्वनि उच्चारण अवयवों का थोड़ा स्पर्श करती है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि को ईषत् स्पृष्ट ध्वनि कहते हैं। इन ध्वनियों की स्थिति स्वर तथा व्यञ्जन के बीच की होती है। अतः इनको अन्तःस्थ' भी कहा जाता है। इन ध्वनियों को 'अर्ध स्वर' भी कहते हैं। ईषत्स्पृष्ट ध्वनियाँ य, र, ल, व हैं (यणोऽन्तस्थाः)।

ईषद् विवृत (ईषद्विवृत)–इनके उच्चारण के समय मुख पूरी तरह खुल जाता है। इनको ऊष्म ध्वनियाँ भी कहते है। ऊष्म ध्वनियाँ है--श, ष, स तथा ह (शल ऊष्माणः)।

विवृत–इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ थोड़ा ऊपर उठती है किन्तु मुख विवर खुला रहता है। इस प्रकार के उच्चारण प्रयत्न को 'विवृत' कहते हैं। विवृत स्वर हैं -अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ए, ऐ, ओ, औ (अचः स्वराः)।

संवृत--जब ध्वनि उच्चारण के समय जिह्वा द्वारा कोई विशेष कार्य नहीं किया जाता तथा उसकी दशा निष्क्रिय जैसी होती है। इस प्रकार अ' ध्वनि उत्पन्न होती है। डा० तारापुरवाला के अनुसार संवृत-ध्वनि उच्चारण में जीभ का अग्र तथा पश्च भाग थोड़े उठते हैं तथा जिाह्व का बीच का भाग थोड़ा धँस जाता है। वर्गों के प्रथम, द्वितीय वर्णों एवं श्, ष्, स्, का बाह्य प्रयत्न विवार, श्वास, अघोष होता है (खरो–विवाराः श्वासा अघोषाश्च)। वर्गों के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण तथा य, व, र, ल, ह (अर्थात् हश, प्रत्याहार के वर्ण) का बाह्य प्रयत्न--संवार, नाद, घोष है(हशः सवारा नादा घोषाश्च)।

स्वर ध्वनियों के अनेक भेद होते हैं। प्रमुखतः मात्रा काल के अनुसार ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत तीन प्रकार के भेद होते हैं, इनमें से प्रत्येक को उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित भेदों में बाँटा गया है। पुनः प्रत्येक स्वर के अनुनासिक एवं अननुनासिक भेद होते हैं। इस प्रकार अ, इ, उ, ऋ स्वरों के अठारह भेद, दीर्घ न होने से ऋकार एवं ऌकार के १२--१२ भेद तथा ए, ऐ, ओ, औ के ह्रस्व न होने से १२ (बारह) भेद होते हैं।

बाह्य प्रयत्न के आधार पर ध्वनियों के ग्यारह भेद होते हैं

(१) **विवार**–जब गला खुलकर ध्वनि का उच्चारण करता है, उस समय जो ध्वनियाँ निकलती हैं वे 'विवार' कहलाती हैं।

(२)**संवार**-स्वरतन्त्रियों के बन्द रहने की स्थिति में जो ध्वनियाँ निकलती हैं, वे संवार कहलाती हैं।

(३) **श्वास**--इसमें श्वास निर्बाध रूप से चलती है।

(४) **नाद**--'संवार' की स्थिति में अर्थात् स्वरतन्त्रियों के पास पास स्थित होने से गलबिल संकुचित हो जाता है तथा वायु घर्षण करती हुई बाहर निकलती हुई

है तो उसे 'नाद' कहते हैं।

(५) **घोष**–'नाद' की स्थिति में अर्थात् गलविल संकुचित होने पर जब हवा स्वरतन्त्रियों से रगड़कर ध्वनि उत्पन्न करती है तो उसे 'घोष' कहते हैं। वर्गों के तीसरे, चोथे तथा पाँचवें वर्ण (अर्थात् ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड ढ ण, द, ध, न, ब, भ, म) घोष कहलाले है।

(६) **अघोष**–'श्वास' की स्थिति में अर्थात् स्वरतन्त्रियों के दूर-दूर रहने पर बिना घर्षण के वायु बाहर निकलती है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाली कम्परहित ध्वनि को 'अघोष' कहते हैं। वर्गों के पहले तथा दूसरे वर्ण (अर्थात् क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प फ,) इसी प्रकार के 'अघोष' वर्ण हैं।

(७) **अल्पप्राण**–फेफड़ों से बाहर आती श्वास वायु का वेग जब कम रहता है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ 'अल्पप्राण' कहलाती हैं। जैसे–क, च, त, प आदि।

(८) **महाप्राण**--फेफड़ों से बाहर आती श्वास वायु का वेग जब अधिक रहता है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ 'महाप्राण' कहलाती हैं। वर्गों के दूसरे एवं चौथे वर्ण 'महाप्राण' ध्वनियाँ हैं (जैसे--ख, घ, छ, झ, आदि)।

(९) **उदात्त**--जब किसी स्वर को उच्च सुर (आरोह) से बोला जाता है तो उसे 'उदात्त' कहते हैं। जैसी कि (अष्टाध्यायी १।२।२९ में) परिभाषा है–उच्चै–रुदात्तः'।

(१०) **अनुदात्त**–जब किसी स्वर का मध्य या निम्न सुर (अवरोह)से उच्चा-रण किया जाय तो उसे अनुदात्त' कहते हैं (नीचैरनुदात्तः) ।

(११) **स्वरित**--जिस स्वर में उदात्त एवं अनुदात्त सुर(Tone)से होकर अन्त अनुदात्त सुर उच्चारण से करते हैं, उसे स्वरित कहते हैं। जैसा कि कहा है-समाहारः स्वरित इन तीनों उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का सम्बन्ध केवल स्वरों से होता है।

ध्वनिगुण--ध्वनियों के उच्चारण में अनेक विविधताएँ पाई जाती हैं। किसी ध्वनि का उच्चारण कम समय में तथा किसी ध्वनि का उच्चारण अधिक समय में होता है। किसी ध्वनि को कहते समय अधिक बल दिया जाता है तथा किसी ध्वनि पर कम। किसी स्वर को ऊँचे सुर में बोलते हैं तो किसी ध्वनि को निम्नसुर में। इस प्रकार ध्वनियों में भिन्नता पाई जाती है। इनको ही ध्वनियों के गुण कहते हैं। ये गुण होते हैं मात्रा या परिमाण (uantity) सुर तथा बलाघात।

मात्रा--ध्वनि उच्चारण में लगने वाली कालावधि (समय)को ध्वनि की मात्रा कहते हैं। स्वरों के विषय में मात्रा विचार करते हैं। जितने समय में एक ह्रस्व स्वर का उच्चारण किया जाता है उसे एक मात्रा काल कहते हैं। दीर्घ स्वर उच्चारण को दो मात्रा काल मानते हैं। प्लुत के उच्चारण में ३ मात्रा काल का समय लगता है।

ह्रस्व मात्रा को '।' (खड़ी पाई से), दीर्घ मात्रा को ऽ (अंग्रेजी एस वर्ण की भाँति) एवं प्लुत को '३' (तीन) चिह्न से प्रकट किया जाता है। मात्रा के दो भेद माने जाते हैं-ह्रस्वार्द्ध तथा दीर्घार्द्ध। वैदिक मन्त्रों में १/४, १/२, ३/४ आदि मात्राओं का ध्वनि विभाजन पाया जाता है। संसार की कुछ भाषाओं में मात्रा का अधिक महत्त्व है। मात्रा भेद होने पर अर्थ भेद भी हो जाता है। भारतीय विद्वानों ने स्वरों के अतिरिक्त व्यञ्जनों के मात्रा भेद बताए हैं। व्यञ्जन का उच्चारण अर्धमात्रा काल का माना जाता है। इसके अतिरिक्त अणु ध्वनि चौथाई मात्रा काल की तथा परमाणु ध्वनि १/८ मात्रा काल की होती है। वाजसनेयि प्रातिशाख्य में कहा गया है:-व्यञ्जनमर्द्धमात्रा, तदर्द्धमणु, परमाण्वर्द्धाणुमात्रा।

बलाघात (बलात्मक स्वराघात)--किसी ध्वनि पर शक्ति डालकर या बल देकर उच्चारण करना बलाघात कहलाता है। बलाघात युक्त ध्वनि का उच्चारण ऊँचे सुर से किया जाता है। वायु फेफड़ों से अधिक तेजी से निकलती है। ध्वनि पर बल पड़ने से उच्चारण ऊँचे सुर से होता है। बलाघात ध्वनि बोलते समय प्रयोग की जाती है। लिखते समय इसका प्रयोग नहीं होता है। बलाघात के तीन प्रकार हैं--सबल (Strong), समबल (Medium), तथा निर्बल (Weak)। बोलते समय जब सबसे अधिक शक्ति लाई जाय (बल दिया जाय) तो उसे सबल बलाघात कहते हैं। जब बोलते समय सबल से कम बल (शक्ति, जोर) दिया जाय तो उसे समबल, तथा उच्चारण के समय सबसे कम शक्ति लगाई जाती है तो उसे निर्बल बलाघात कहते हैं। बलाघात शब्दों पर या वाक्यों पर पाये जाते हैं। बलाघात वाली ध्वनि की सही स्थिति होती है एवं उसके पास की दीर्घ ध्वनि ह्रस्व हो जाती है या निर्बल होकर समाप्त हो जाती है। अघोष ध्वनियों पर बलाघात अधिक पाया जाता है क्योंकि वायु बिना अवरुद्ध हुए तेजी से बाहर निकलती है किन्तु सघोष ध्वनियों पर बलाघात कम होता है क्योंकि वायु अवरुद्ध होकर धीरे धीरे बाहर निकलती है। हिन्दी भाषा में शब्दों की उपान्त ध्वनि पर बलाघात होता है जिसके कारण अकारान्त शब्दों के अन्तिम अक्षरों का रूप हलन्त जैसा हो जाता है। जैसे आम् (आम), कल् (कल), कमल (कमल्) आदि।

सुर (संगीतात्मक स्वराघात) (pitchaccent)–सुर स्वरतन्त्रियों से सम्बन्ध रखते हैं। स्वरतन्त्रियों में खिंचाव आने से अनेक सुर उत्पन्न होते हैं। स्वरतन्त्रियों में कम्पन होने से इनकी उत्पत्ति सघोष ध्वनियों में ही होती है, अघोष में नहीं। संगीतात्मक स्वरघात पर ही संगीत के सातों स्वर–सा, रे, ग, म, प, ध, नि एवं तीन सप्तक मन्द्र, मध्य तथा तार आधारित होते हैं। वैदिक काल में तीन सुर थे–उदात्त, अनुदात्त, तथा स्वरित। उदात्त ऊँचे सुर (Tone) को, अनुदात्त नीचे सुर को तथा दोनों गुणों से समन्वित सुर को स्वरित कहते थे। उदात्त सुर को अचिह्नित रखा जाता था।

अनुदात्त के नीचे पड़ी रेखा (–) तथा स्वरित स्वर के नीचे खड़ी रेखा (।) का प्रयोग किया जाता था ।

संसार की अनेक भाषाओं में सुरों की संख्या भिन्न-भिन्न है । चीनी भाषा की मन्दारिन बोली में चार सुर होते हैं । चीनी भाषा के कुछ शब्दों के अर्थ सुर भेद के कारण अट्ठानवे तक हो सकते हैं । अफ्रीकी भाषाएँ दुआला तथा होटन्टाट भाषाओं में भी तीन सुर पाये जाते हैं ।

रूपात्मक स्वराघात––प्रायः हर व्यक्ति के स्वर की अपनी विशेषता होती है । कभी-कभी बिना देखे व्यक्ति की बोली सुनकर ही हम पहिचान लेते है कि अमुक व्यक्ति है । यह व्यक्ति की ध्वनि उच्चारण विशिष्टता के कारण सम्भव होता है । हर व्यक्ति के कण्ठस्वरों में कुछ न कुछ सूक्ष्म अन्तर विद्यमान रहता है । व्यक्तिगत कण्ठस्वरों की विशेषता को ही रूपात्मक स्वराघात कहते हैं । व्यक्तियों की ध्वनि की विशेषता स्वरतन्त्रियों की रचना के आधार पर होती है । भाषाविज्ञान में कुछ विद्वान् रूपात्मक स्वराघात के भेद को स्वीकार नहीं करते और न कोई महत्त्व प्रदान करते हैं । इसका कोई निश्चित आधार नहीं है ।

ध्वनिगुण के वस्तुतः तीन ही प्रमुख भेद हैं–मात्रा, बलाघात तथा सुर । ये ध्वनिगुण संसार की भाषाओं में न्यूनाधिक रूप में अवश्य पाये जाते हैं ।

भाषणध्वनि (Speech Sound)–जो शब्द हम को सुनाई देते हैं उन्हें ध्वनि कहा जाता है । यह किसी भी तरह उत्पन्न हो सकती है किन्तु भाषाविज्ञान में मनुष्य के ध्वनियंत्र से उत्पन्न शब्द को ध्वनि माना गया है । साधारण ध्वनि से भाषाविज्ञान में सम्मिलित ध्वनि के अन्तर को बताने के लिए मनुष्य ध्वनियंत्र से निकलने वाली ध्वनि को भाषा-ध्वनि या भाषण-ध्वनि (Speech Sound Phone) कहा जाता है । डा० भोलानाथ तिवारी ने 'भाषाविज्ञान' में भाषण ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार की है–"भाषाध्वनि भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है, जिसका उच्चारण और श्रोतव्यता की दृष्टि से स्वतंत्र व्यक्तित्व हो ।"

कुछ विद्वानों ने भाषण-ध्वनि या भाषा-ध्वनि के स्थान पर 'संध्वनि' शब्द का प्रयोग किया है ।

संध्वनि–मनुष्य द्वारा उत्पन्न ध्वनियों में अन्तर होता है । यदि एक ही ध्वनि का कई बार उच्चारण किया जाय तो प्रत्येक बार ध्वनि में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य होता है । साधारणतः इसे नहीं सुना जाता है किन्तु ध्वनियों के सूक्ष्म परीक्षण से यह भलीभांति निश्चित हो गया है कि एक ही ध्वनि को कई बार बोला जाय तो ध्वनियों में अन्तर होता है । जल्दी, बालू, लो, बाल्टी शब्दों में 'ल' का स्वतंत्र रूप से जो उच्चारण होता है वह नहीं है । इन शब्दों में हर शब्द की 'ल्' ध्वनि में अन्तर विद्यमान है । 'जल्दी' में 'ल' ध्वनि आगे आने वाले 'द्' वर्ण के कारण दन्त्य है तथा

'बालू' एवं 'लो' शब्दों में प्रकृति 'ल्' का उच्चारण ऊ एवं ओ के प्रभाव से थोड़ा पीछे हट गया है। 'बाल्टी' में 'ल' ध्वनि ट' वर्ण के प्रभाव से मूर्द्धन्य की तरह हो गया है। इन चारों शब्दों में 'ल' ध्वनि में सूक्ष्म अन्तर के कारण चार प्रकार हो गए हैं। इसी प्रकार ध्वनियों के अनेक भेद हो सकते हैं। अतः कहा जा सकता है कि एक ही ध्वनि के इन अनेक रूपों को संध्वनि (Allophone) कहते हैं। डा० भोलानाथ तिवारी ने संध्वनि की परिभाषा करते हुए लिखा है–"किसी भाषा में किसी भी ध्वनि के ये विभिन्न रूप ही संध्वनि (Allophone) कहलाते हैं।

ध्वनिग्राम (Phoneme)–एक ही ध्वनि के सूक्ष्म अन्तर से अनेक भेद होते हैं, जैसे 'संध्वनि के अन्तर्गत 'ल' ध्वनि को देखा। हर ध्वनि के लिए अलग-अलग लिपिचिह्न नहीं होते हैं उन्हें एक ही सजातीय ध्वनि से बताया जाता है जैसे ऊपर 'ल' के तीन-चार भेदों को सजातीय 'ल' ध्वनि से प्रकट किया गया है। इस प्रकार की सजातीय ध्वनियों के समूह को ध्वनिग्राम कहा जाता है। ध्वनिग्राम के ध्वनि-श्रेणी या ध्वनिमात्र भी अन्य नाम हैं। आधुनिक भाषाविज्ञानी जिसे ध्वनिग्राम (Phoneme) कहते है उसी को प्राचीन वैयाकरणों ने वर्ण अथवा अक्षर (Letter) कहा है। किसी संध्वनि के स्थान पर अन्य संध्वनि के प्रयोग से अर्थ में परिवर्तन नहीं होता है किन्तु किसी ध्वनिग्राम के स्थान पर अन्य ध्वनिग्राम रख दिया जाय तो अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। डा० भोलानाथ तिवारी ने ध्वनिग्राम की परिभाषा इस प्रकार की है–"किसी भाषा में किसी भी ध्वनि के ये विभिन्न रूप ही संध्वनि (Allophone) कहलाते हैं और उनका सामूहिक रूप से सब को ढ़क लेने वाला एक नाम ध्वनिग्राम (Phoneme) कहलाता है।"

मूल स्वर–इन्हें मानस्वर अथवा आदर्श स्वर (Cardinal Vowels) भी कहते हैं। भाषाओं में पाये जाने वाले स्वरों के स्वरूप को आठ मूलस्वरों से निश्चित किया जाता है। इनका निर्धारण मुख के कम या अधिक खुलने, जीभ के अगले, पिछले एवं मध्य भाग के ऊपर उठने पर निर्भर होता है। ये भाषाओं में पाये नहीं जाते हैं। ये स्वरों के मानदण्ड का काम करते हैं। इन स्वरों में चार अग्रस्वर माने गए है एवं चार पश्चस्वर हैं। अग्रस्वर 'ई, ए, ऐ, अइ' हैं तथा जीभ के अगले भाग की सहायता से बोले जाते हैं। पश्चस्वर–'ऊ, ओ, औ, आ' हैं इनकी उत्पत्ति जीभ के पिछले भाग की सहायता से होती है। मूलस्वर (Monophthong) की उत्पत्ति एक ही बार (एक झटके) में होती हैं। जब एक ही बार (एक झटके) में एक से अधिक स्वरों का उच्चारण होता है तो उन्हें संयुक्तस्वर अथवा संध्यक्षर (Diphthong) कहते हैं।

जीभ का अगला भाग 'ई' स्वर उच्चारण में सबसे अधिक उठता है तथा पिछला भाग 'ऊ' उच्चारण में सबसे अधिक उठता है। स्वरतन्त्रियों के पास आ जाने पर (जैसे

ई-ऊ उच्चारण को) 'संवृत्त' स्वर तथा स्वरतन्त्रियों के दूर-दूर स्थित रहने पर ('अइ', 'आ' के उच्चारण समय) विवृत स्वर उत्पन्न होते हैं। 'विवृत' के समीप के उच्चारण ('ए, औ') को अर्द्धविवृत तथा 'संवृत' के समीप के उच्चारण (ए, ओ) को 'अर्द्ध संवृत' कहते हैं।

'विवृत' से 'संवृत' की ओर बढ़ने पर ओठों की गोलाई बढ़ जाती है जैसे आ (विवृत) से 'ऊ' (संवृत) की ओर बढ़ने पर। 'संवृत' से 'विवृत' की ओर बढ़ने पर ओठ फैल जाते हैं जैसे ऊ से आ की ओर बढ़ने पर।

संयुक्तस्वर (संध्यक्षर) (Diphthong)–जिन दो या अधिक स्वरों का उच्चारण श्वास के एक झटके में बिना विराम के एक स्वरवत् हो सकता है उसे संयुक्त स्वर या सन्ध्यक्षर कहते हैं। यदि स्वरों का उच्चारण विराम लेकर किया जाता है तो उन्हें संयुक्त स्वर नहीं कह सकते हैं। एक झटके में उच्चारण करने से संयुक्तस्वर एक ध्वनिवत् सुनाई देता है। अथर्व प्रातिशाख्य (१/४०) में बताया है–'संध्यक्षराणि संस्पृष्टवर्णान्येकवर्णवद् वृत्तिः' अर्थात् 'सध्यक्षरों में एकाधिक स्वरों का मिलन होने पर भी वे समानाक्षरवत् ही माने जाते हैं।' संसार की कुछ भाषाओं में तीन या अधिक स्वर के संयुक्त स्वर पाये जाते हैं। हिन्दी भाषा में 'कउआ' शब्द के तीन स्वर उच्चारण में एक स्वरवत् सुनाई देते हैं–'अ+उ+आ' (कउआ में) एक स्वर की भाँति हो जाते हैं। वर्तमान काल में ऐ (अइ) तथा औ (अउ) संयुक्त स्वर माने गये हैं। ए(=अ इ) तथा ओ (=अ उ) पहले संयुक्त स्वर थे, फिर इनका उच्चारण समानाक्षर की भाँति होता था।

फुसफुसाहट वाले स्वर (Whispered Vowels)–फुसफुसाहट (कानाफूसी या धीमी बातचीत) के समय स्वरतंत्रियों के पास-पास होने पर भी तनाव के अभाव में वायु बिना घर्षण किए अघोष होकर बाहर निकलती है। इस समय उत्पन्न होने वाले स्वरों की फुसफुसाहट का विशेष महत्त्व न होने से उन्हें (इस प्रकार के अघोष स्वरों को) स्वाभाविक न मानकर स्वरों में सम्मिलित नहीं करते हैं।

क्लिक ध्वनि (Clicks)–साधारणतः फेफड़ों से वायु बाहर निकलती है तो ध्वनियंत्रों की सहायता से ध्वनि उच्चारण होता है। संसार की कुछ भाषाओं में ध्वनियों का उच्चारण वायु को भीतर खींचते समय करते हैं। इस प्रकार उत्पन्न ध्वनियों को क्लिक (Click) ध्वनि कहते हैं। इन ध्वनियों को अन्तर्मुखी द्विस्पर्श या अन्तः स्फोट द्विस्पर्श भी कहते हैं। क्लिक ध्वनियों के उच्चारण में मुख में दो स्थानों पर स्पर्श या अवरोध होता है तथा हवा बाहर से भीतर जाती है। वर्तमान समय में दक्षिण अफ्रीका के बान्टू, हौटेन्टाट तथा बुशमैन भाषा परिवारों में क्लिक ध्वनियाँ पाई जाती हैं। ध्वनि उच्चारण के समय वायु के स्पर्श के आधार पर क्लिक

ध्वनियों के कई भेद होते हैं–द्वयोष्ठ्य, दन्त्य, वर्त्सतालव्य, वर्त्स्य, प्रतिवेष्टित कठोर तालव्य, वर्त्स्य-पार्श्विक आदि। इनका उच्चारण सघोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण, अनुनासिक निरनुनासिक आदि प्रकार से भी हो सकता है। हिन्दी में च्, च्, च इसी प्रकार की क्लिक ध्वनि है।

श्रुति (Glide)–ध्वनि उच्चारण करते समय या बातचीत करने में जब एक ध्वनि के उच्चारण का प्रयत्न करते हैं तो उस बीच वायु निकलने के कारण कोई ध्वनि इस प्रकार की उच्चरित हो जाती है जो उस शब्द से सम्बन्धित नहीं होती है। इस प्रकार उच्चरित ध्वनि को श्रुति कहते हैं। इस प्रकार प्रधान ध्वनियों के बीच बीच उच्चरित होने वाली अस्पष्ट सी (गौण) ध्वनि को श्रुति कहते हैं। इनकी उत्पत्ति निकलती हुई श्वास वायु के एक स्थान से दूसरे स्थान जाते समय होने वाले ध्वनि परिवर्तन से होती है। कभी-कभी श्रुति किसी ध्वनि के पहिले भी सुनाई देती है। अतः श्रुति के दो भेद होते हैं–(१) पूर्व-श्रुति या अग्र श्रुति (On Glide), (२) पर-श्रुति पश्चात् श्रुति या पश्च श्रुति (off glide)।

किसी स्वर या व्यञ्जन के पूर्व आने वाली परिवर्तन ध्वनि (श्रुति) को पूर्व श्रुति कहते हैं–जैसे स्कूल (इस्कूल), स्टेशन (उच्चारण-इस्टेशन), स्नान (उ०-इस्नान या अस्नान) आदि। यहाँ पूर्वश्रुति में पूर्व स्वरागम हो गया है। (अर्थात् पूर्व में स्वर आ गया है।) पूर्व श्रुति में पहले व्यञ्जन भी आ जाता है जैसे उल्लास के स्थान पर 'हुलास' में 'ह' पूर्व व्यञ्जन है। आलस्यपूर्वक, असावधानी से अथवा ढिलाई से किए गए उच्चारण में पूर्व श्रुति अच्छी तरह सुनी जा सकती है।

जब किसी स्वर या व्यञ्जन के बाद परिवर्तन ध्वनि (श्रुति) आती है तो उसे परश्रुति कहते हैं। जैसे जेल से जेहल, इन्द्र से इन्दर, प्रचार से परचार शब्द बनते हैं। इन शब्दों में क्रमशः 'ह' आना एवं 'द्' तथा 'प्' के बाद 'अ' का आगम परश्रुति के उदाहरण है। परन्तु डा० भोलानाथ तिवारी इसे मध्य श्रुति कहते हैं उन्होंने लिखा है–'इस प्रकार दोनों ओर की ध्वनियों का इस श्रुति में हाथ है, अतः इसे 'मध्यश्रुति' ही कहना चाहिए।' हिन्दी में संयुक्त व्यञ्जनांत शब्दों के अन्त में धीमी या क्षीण स्वर में सुनाई पड़ने वाली ध्वनि को परश्रुति कहते हैं। यही मत डा० भोलानाथ तिवारी भी स्वीकार करते हैं। स्वास्थ्य तथा ब्रह्म शब्दों के अन्त में सुनाई देने वाली ध्वनि 'अ' को परश्रुति कहेंगे। इस प्रकार श्रुति के तीन भेद किए जा सकते है, पूर्व श्रुति, मध्यश्रुति एवं परश्रुति।

अपश्रुति (Apophony or Ablaut or Vowel-gradation)–जब स्वरों के हेर-फेर (स्वरों के परिवर्तन) से किसी शब्द के व्यञ्जनों के यथावत् रहने पर भी, शब्द रूप तथा अर्थ में परिवर्तन हो जाता है तो उसे अपश्रुति कहते हैं; जैसे–कृष्ण से कृष्णा, राम से रमा, काल से काला, आदि। अंग्रेजी में–फुट (पैर) का फीट

टूथ (दांत) का टीथ, अरबी में–किताब (पुस्तक) का कुतुब (पुस्तकें) आदि इसी प्रकार के अपश्रुति के उदाहरण हैं। इसके दो भेद हो सकते हैं–(१) परिमाणीय (मात्रिक) अपश्रुति तथा (२) गुणीय अपश्रुति। किसी शब्द में प्रयुक्त स्वर को ह्रस्व या दीर्घ करने से शब्द के रूप तथा अर्थ में जो परिवर्तन होता है उसे परिमाणीय या मात्रिक अपश्रुति कहते हैं जैसे खेल से खेला, हंसना से हंसाना, मेल से मेला, मिलना से मिलाना। शब्दों में स्वर के ह्रस्व या दीर्घ होने से रूप तथा अर्थ में परिवर्तन हो गया है। जब किसी शब्द में प्रयुक्त स्वर के स्थान पर नया स्वर प्रयोग किया जाय एवं शब्द के रूप एवं अर्थ में परिवर्तन हो जाये तो उसे गुणीय अपश्रुति कहते हैं जैसे–खिला से खिली, मिला से मिली, हंसा से हंसी आदि।

अपिनिहित या समस्वरागम (Epenthesis)––जब किसी शब्द के प्रारम्भ या मध्य में शब्द में प्रयुक्त किसी स्वर के समान अन्य स्वर और आ जाये तो उसे अपनिहित कहते हैं। हिन्दी में 'स्त्री' से 'इस्त्री' रूप बनने में आरम्भिक 'इ' का आगम 'अपिनिहित' है। संस्कृत के 'भवति' का रूप अवेस्ती में बवइति' बनता है। यहाँ 'ति' की 'इ' के पूर्व अन्य 'इ' आ गई है। अपिनिहित के दो भेद किए जा सकते हैं–(१) आदि स्वरागम एवं (२) मध्य स्वरागम। शब्द में अपिनिहित तभी होती है जब आने वाला स्वर का सम स्वर (उसी के समान स्वर) पूर्व विद्यमान हो।

अभिश्रुति (Umlaut or Vowel Mutation)––जब किसी शब्द में अपिनिहित के कारण स्वर का आगम हो जाता है एवं वह स्वर भाषा की प्रकृति के अनुसार बदल जाता है तो उसको अभिश्रुति कहते हैं। अपनिहित के कारण आए स्वर के स्वरूप परिवर्तन को अभिश्रुति कहते हैं। इस प्रकार की अभिश्रुति भारोपीय भाषा परिवार एवं यूराल-अल्टाई भाषा परिवार में पाई जाती हैं। उदाहरणस्वरूप मनि (mani) शब्द से 'इ' स्वर के आगम होने पर अपिनिहित रूप बना मइनि (maini) आगम स्वर 'इ' परिर्वतित होकर 'ए' बन गया तथा शब्द रूप हुआ मैन (men)। यहाँ अपिनिहित रूप से आगम 'इ' स्वर का 'ए' हो जाना ही अभिश्रुति कहलाता है।

समीकरण (Assimilation)––जब दो ध्वनियाँ या वर्ण पास पास होते है तथा उनका एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है तो उनमें से एक वर्ण बदल कर दूसरे वर्ण का रूप ग्रहण कर लेता हैं। वर्ण में होने वाली इस परिवर्तन को 'समीकरण' कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं––(१) पुरोगामी Progressive एवं (२) पश्चगामी (Regrressive)। पुरोगामी समीकरण के उदाहरण है–पद्म से पद्द, चक्र से चक्क पिपीलिका से पिपिलिका आदि तथा पश्चगामी समीकरण के उदाहरण हैं–धर्म से धम्म, सर्प से सप्प, असूया से उसूया आदि।

विषमीकरण (Dissimilation)––जब दो पास पास की ध्वनियों में पारस्परिक प्रभाव के कारण एक ध्वनि अपना रूप बदल कर विषम ध्वनि बन जाती

है तो उसे विषमीकरण कहते हैं। विषमीकरण के भी दो भेद होते हैं-(१) पुरोगामी एवं (२) पश्चगामी। (१) पुरोगामी विषमीकरण में पहली ध्वनि (व्यञ्जन तथा स्वर) में कोई परिवर्तन नहीं होता है किन्तु दूसरी ध्वनि (व्यञ्जन या स्वर) परिवर्तित होकर विषम रूप ग्रहण कर लेती है जैसे--कंकण का कंगन, काक का काग, अङ्गण का आंगन आदि। पश्चगामी विषमीकरण में पहली ध्वनि (व्यञ्जन या स्वर) परिवर्तित होकर विषम वन जाती है तथा दूसरी ध्वनि में कोई रूप परिवर्तन नहीं होता है। जैसे-मुकुल से मउल, नूपुर से नेउर, मुकुट से मउर(मौर) आदि।

ध्वनि विज्ञान के क्षेत्र में प्रयुक्त प्रमुख उपकरण--ध्वनिविज्ञान में ध्वनियों के परीक्षण के लिए अनेक यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। ये यंत्र बहुत जटिल होते हैं तथा इनका प्रयोग कठिन होता है। ध्वनिविज्ञान में प्रयुक्त किये जाने वाले यंत्र इस प्रकार हैं--(१) मुख मापक (Mouth measurer), (२) कृत्रिम तालु (artificial Plate), (३) कायमोग्राफ (Kymograph), (४) एक्सरे (X-Ray), (५) लैरिंगोस्कोप (Laryngo scope), (६) एडोंस्कोप (Endoscope), (७) ऑसिलोग्राफ (Oscillograph), (८) पिचमीटर (Pitchmeter) (९) पैटर्न प्ले बैक (Pattern Play Back), (१०) इंटेंसिटीमीटर (Intensity-meter), (११) स्पेक्टोग्राफ (Spectograph), (१२) स्पीच स्ट्रेचर (Speech-stretcher), (१३) ब्रीदिंग फ्लास्क (Breathing Flask), (१४) ऑटोफोनोस्कोप (Autophonoscope), (१५) स्ट्रोबेलैरिंगोस्कोप (Strobolaryngoscope) आदि हैं। कुछ नवीन यंत्रों का भी निर्माण हुआ है जिनसे ध्वनि परीक्षण में सहायता ली जाती हैं।

ध्वनि-परिवर्तन

संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तन शील है। परिवर्तन का चक्र जीवन के हर क्षेत्र में सतत चलता रहता है। मनुष्य, जातियाँ तथा उनके स्थान, वेशभूषा, रहन-सहन बदल जाते हैं। परिवर्तन की गति का प्रभाव संसार की सब भाषाओं पर भी पड़ता है। भाषाओं का जो रूप आज से हजारों वर्ष पूर्व था वह अब नहीं है। संसार की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत, ग्रीक, लैटिन के रूप परिवर्तन होने से बाद में अनेक भाषाओं का जन्म हुआ जिनमें अधिकांश वर्तमान समय में विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती हैं। भषाओं में इस तरह होने वाले परिवर्तन को भाषाविज्ञानी 'विकार' अथवा 'विकास' कहते हैं। भाषा में यह परिवर्तन कई प्रकार से होता है -ध्वनि में, रूप में या अर्थ में। कभी कभी सिखाने-सीखने की प्रक्रिया में कुछ ध्वनियों का प्रयोग कम हो जाता है। धीरे-धीरे लुप्त भी हो जाती हैं। कुछ नवीन ध्वनियों का समावेश हो जाता है। उच्चारण सम्बन्धी अन्तर होने से भी परिवर्तन हो जाते हैं। कभी कभी सामाजिक

राजनैतिक, धार्मिक, भौगोलिक कारणों से भाषा में ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तन होते रहते हैं। ध्वनि परिवर्तनों को साधारणतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। जब ध्वनि-उच्चारण करने वालों के प्रभाव से ध्वनियों में अन्तर उत्पन्न हो जाता है तो उन्हें आभ्यन्तर कारण कहते हैं। परन्तु जब भाषा की ध्वनियाँ अन्य कारणों से प्रभावित होती है जैसे राजनैतिक, धार्मिक, भौगोलिक आदि तो इस तरह के परिवर्तन बाह्य कारण कहलाते हैं। इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन के कारण दो प्रकार के होते हैं — (१) आभ्यन्तर कारण और (२) बाह्यकारण। इन कारणों पर नीचे प्रकाश डाला रहा है—

आभ्यन्तर कारण–ध्वनि-परिवर्तन लाने वाले प्रमुख आभ्यन्तर कारण इस प्रकार हैं—

(१) मुख-सुख (प्रयत्न-लाघव) —मनुष्य ध्वनियों का उच्चारण अपनी सुविधा से करता है। बोलते समय उसकी इच्छा रहती है कि कम अथवा शीघ्र उच्चारण करके अपना अभिप्राय श्रोता पर प्रकट कर दे। इस प्रकार अधिक श्रम से बचने का प्रयास रहता है। जब किसी उच्चारण में कठिनाई होती है अथवा ठीक से उच्चारण नहीं किया जा सकता है तो व्यक्ति अपनी सुविधा के लिए उस उच्चारण को छोड़ अपने ढंग से उच्चारण करने लगता है, इसे मुख-सुख कहते हैं। अन्धकार को अंधेरा, स्कूल को इस्कूल, स्टेशन को इस्टेशन (सटेशन), ब्राह्मण को ब्राम्हण (या बामन), कृष्ण को क्रिस्न आदि उच्चारण करते हैं। अंग्रेजी के शब्दों की कुछ ध्वनियों का उच्चारण नहीं किया जाता है क्योंकि उनके उच्चारण में कठिनाई होती है, जैसे Half (हॉफ), Calm (कॉम), Walk (वॉक),Kniefe (नाइफ) जैसे कुछ शब्द देखे जा सकते हैं। दो भिन्न-भिन्न ध्वनियों को एक सा बना दिया जाता है जैसे धर्म का धम्म अथवा ध्वनि में पूर्ण परिवर्तन कर दिया जाता है जैसे 'काक' से 'काग' शब्द बनते हैं। यह प्रयत्न-लाघव के कारण होता है अर्थात् थोड़े में तथा सरलता पूर्ण उच्चारण करने की प्रवृत्ति काम करती है। ध्वनियों का विकास सरलता की ओर रहता है। अनेक प्राचीन ध्वनियों के उच्चारण में अब परिवर्तन हो गया है। वैदिक क्रिया-रूप, लिंग, वचन कारक रूपों की भिन्नता में सरलीकरण के कारण ही बहुत कमी आ गयी है। दीघ स्वरों को कभी कभी ह्रस्व स्वरों में बदल दिया गया है। आकाश से अकास, नारायण से नरायन, वार्ता से बात, दूर्वा से दूब आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। इसी तरह 'बज्राङ्ग' से 'बजरांग' एवं 'बजरंग रूप बन गया है जो अब बहुत प्रचलित हो गया है।

इसी प्रकार प्रयत्न-लाघव के प्रभाव से अनेक विदेशी शब्दों में भी परिवर्तन हुए हैं। अरबी शब्द–अमीर–उल् बहर (=समुद्र का शासक) आगे चलकर अंग्रेजी के 'एडमिरल' (Admiral) (=जलसेनापति) के रूप में परिवर्तित हो गया है। घरों में

परस्पर बातचीत में मनुष्य प्रयत्न लाघव के कारण शब्दों का परिवर्तित रूप प्रयोग करते हैं । जैसे रूपनारायण को रूपा, विष्णु को विशुन, आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है । इसी प्रकार अनेक शब्द हैं जो संक्षिप्त रूप में प्रयोग किये जाते हैं जैसे—माइक्रोफोन को माईक, टेलीविजन को टी०वी०, एरोप्लेन को प्लेन आदि । कभी-कभी लिखित रूप तथा उच्चरित रूप में अन्तर पड़ जाता है । अंग्रेजी भाषा में इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं Knight का उच्चारण 'नाइट' होता है जिसमें क तथा घ् (gh) ध्वनियाँ नहीं बोली जाती हैं । इसी प्रकार डॉटर (Daughter), थ्रू (Through) जैसे शब्दों का लिखित रूप कहे जाने वाले रूप से भिन्न होता है । संस्कृत की भी कई ध्वनियों के उच्चारण में आगे चल कर अन्तर आ गया । जैसे 'ष' तथा 'ऋ' ध्वनियों का उच्चारण ठीक प्रकार नहीं किया जाता है । कभी कभी कुछ नई ध्वनियों का भाषा में आगम हो जाता है । एंग्लो-सैक्सन (Anglo-Saxon) में 'च' ध्वनि बाद में आई है इससे चर्च' (Church), चीज (Cheese) जैसे शब्द बने हैं । इसी तरह संस्कृत में टवर्ग की ध्वनियाँ द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव से आई हैं अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि 'ध्वनि-परिवर्तन' या 'ध्वनि-विकार' में प्रयत्न-लाघ अथवा मुख-सुख का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है ।

(२) **बोलने में शीघ्रता**—शीघ्रता से बोलने के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है । प्रायः बातचीत में देखा जाता है कि शब्दों का उच्चारण शीघ्रता से होने के कारण ध्वनियों का रूप ठीक नहीं रहता है जैसे पंडित जी को पंडी जी, मास्टर साहब को मास्साब, मार डाला को मड्डाला आदि रूपों में उच्चारण किया जाता है अंग्रेजी में इसी प्रकार के शब्द रूप पाये जाते हैं जो बोलने के कारण संक्षिप्त हो जाते हैं जैसे Would not 'वुड-नॉट'को 'वो न्ट' (Won't) तथा डू नॉट (Do not) को डोन्ट (do not) आदि । अब ही को अभी, 'तब ही' को 'तभी' आदि रूपों में उच्चारित करते हैं ।

(३) **अशिक्षा तथा अज्ञान**—अशिक्षा एवं अज्ञान के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन होता रहता हैं । शिक्षित व्यक्ति भाषा को सही ढग से पढ़-लिख सकता है तथा शब्दों को शुद्ध रूप में ग्रहण कर सकता है किन्तु अशिक्षित व्यक्ति ध्वनि के वास्तविक रूप से अपरिचित रहता है तथा कथित रूप को सुनकर उसी का अपने अनुसार प्रयोग करने लगता है । इस प्रकार ध्वनियों के अनुचित प्रयोग से ध्वनियों में परिवर्तन आने लगता है। अज्ञान के कारण अनेक अपरिचित विदेशी शब्दों का उच्चारण ठीक से न समझने के कारण ध्वनि परिवर्तन हो जाता है । जैसे रिपोर्ट का रपट, कम्पाउन्डर का काम्पोडर, ओवरसियर का ओसियर, स्टेशन का टेशन, यूनिवर्सिटी का अनवर्सिटी आदि हो जाते हैं । अज्ञान तथा अशिक्षा के कारण ध्वनियों में ध्वनि विपर्यय, मात्रा भेद, घोषीकरण तथा अघोषीकरण, महाप्रणीकरण, अल्पप्राणी-करण जैसे परिवर्तन होते रहते हैं । अज्ञान के कारण जिन व्यक्तियों को ध्वनियों के

उचित रूप का पता नहीं रहता है वे त्रुटिपूर्ण ध्वनि-उच्चारण करते रहते हैं। सादृश्य के कारण भी ध्वनि परिवर्तन हो जाते हैं। स्वर्ग के सादृश्य पर नरक का नर्क बना लिया गया है। 'एकदश' द्वादश के सादृश्य पर 'एकादश' बना लिया गया है। इस प्रकार अज्ञान तथा अशिक्षा के कारण ध्वनियों के सही रूप से अपरिचित लोग ध्वनि-परिवर्तन करते रहते हैं।

(४) **अनुकरण की अपूर्णता**—जब कोई व्यक्ति किसी ध्वनि का उच्चारण करता है तो दूसरा व्यक्ति उसका अनुकरण करके उसे सीख लेता है। परन्तु अनुकरण में त्रुटियाँ हो जाती हैं। सही अनुकरण नहीं हो पाता या उच्चारण में कुछ न कुछ कमी रह जाती है। इस प्रकार अनुकरण अपूर्ण रह जाता है। अतः ध्वनियों में परिवर्तन आता जाता है जिनका शनैः शनैः समाज में प्रचलन हो जाता है। बन्द्योपाध्याय से बनर्जी, उपाध्याय से 'झा' 'ओम् नमः सिद्धम्' का 'ओनामासीधम' बनना अनुकरण की अपूर्णता के सूचक हैं। बच्चों की बोली में अनुकरण की अपूर्णता स्पष्ट दिखाई पड़ती है जैसे रोटी को 'लोटी', रुपया' को 'लुपया' सुना जा सकता है परन्तु बाद में ये दोष दूर हो जाते हैं। ब्राह्मण का 'ब्राह्मन' आदि अनुकरण की अपूर्णता से हो जाते हैं।

(५) **भ्रामक व्युत्पत्ति**—जब व्यक्ति किसी अपरिचित शब्द के संसर्ग में आते हैं तथा उस शब्द से साम्य रखता हुआ कोई शब्द भाषा में पहले से ही होता है तो अपरिचित शब्द के स्थान पर अपनी भाषा के पूर्व परिचित शब्द का प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन की क्रिया चलने लगती है। जैसे अंग्रेजी शब्द लाइब्रेरी' को आशिक्षित व्यक्ति भ्रमवश 'रायबरेली तथा अरबी शब्द 'इंतकाल' को 'अन्तकाल' कह दिया जाता है। इसी प्रकार 'चार्ज शीट' को 'चारसीट', 'क्वार्टर' को 'कातल' या 'काटर' 'गार्ड' को 'गारद' 'कोर्ट' को 'कोरट' 'कार्ड' का 'कारड' जैसे शब्द भ्रमवश प्रयोग किए जाने लगते हैं।

(६) **भावुकता**—भावुकतावश या प्रेमवश मनुष्य शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं करते हैं अतः ध्वनि परिवर्तन होता रहता है। व्यक्तियों के नामों के सम्बन्ध में देखा जाता है कि प्रेम के कारण व्यक्तियों के नाम बिगाड़ कर पुकारा जाता है जैसे 'धनीराम' का 'धनुआ' 'सुखराम' का सुक्खा, राजेन्द्र का रज्जो, दुलारी का दुल्लो, बच्चा का बचऊ, बेटी का बिट्टी, बहू का बहूरिया आदि इसी प्रकार के शब्द हैं।

(७) **वाग्यन्त्र की विभिन्नता**—हर व्यक्ति के वाग्यंत्र की बनावट पूर्णतः एक सी नहीं होती है अतः प्रत्येक व्यक्ति का ध्वनि उच्चारण भी समान नहीं होता है वाग्यन्त्र की भिन्नता के कारण ध्वनि उच्चारण में भिन्नता आ जाती है जैसे कि हर व्यक्ति अब श, ष, स इन तीनों ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं कर सकता है। संस्कृत की 'स' ध्वनि 'फारसी' में 'ह' बन जाती है जैसे 'सिन्धु' का 'हिन्दु', 'सप्त' का 'हफ्त'

आदि । 'ऋ' ध्वनि का उच्चारण भी अब 'रि' या 'रु' किया जाता है । सही उच्चारण सम्भव नहीं है ।

(८) **यदृच्छा शब्द**–बोलते समय व्यक्ति अपने आप शब्द बना कर बोलते हैं, उन्हें यदृच्छा शब्द कहते हैं । कभी-कभी एक शब्द की समानता पर जोड़ा शब्दों का निर्माण कर लिया जाता है । खाना-बाना, रोटी-ओटी, पानी-बानी आदि इसी प्रकार के शब्द हैं । युग्मक रूप बनाते समय ध्वनिपरिवर्तन कर लिया जाता है ।

(९) **आत्मप्रदर्शन**–आत्मप्रदर्शन के कारण भी व्यक्ति बोलते समय ध्वनि परिवर्तन कर लेते हैं । जैसे–'खालिस' (शुद्ध) को निखालिस (अशुद्ध), इच्छा को इक्षा, 'छात्र' को 'क्षात्र', क्षत्रिय को छत्रिय, 'सेवक' को 'शेवक' आदि प्रकार से परिवर्तित कर लिया जाता है । इसी प्रकार उपर्युक्त को उपरोक्त तथा अन्ताराष्ट्रिय को 'अन्तर्राष्ट्रीय' बनाकर प्रयोग किया जाता है । इन शब्दों का प्रचलन अत्यधिक हो चुका है तथा भाषा में ये रूप स्वीकृत हो चुके हैं ।

बाह्य कारण–

(१०) **भौगोलिक प्रभाव**–भौगोलिक प्रभाव के कारण ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है । अधिक ठंडे स्थानों पर व्यक्ति अधिक मुख नहीं खोल सकता है अतः विवृत ध्वनियों का विकास नहीं हो पाता है । गरम देश में इसके विपरीत विवृत्ति ध्वनियों का अधिक विकास होता है । पर्वतों से घिरे क्षेत्र के निवासी बाहरी सम्पर्क में कम आते हैं अतः उनका मानसिक, सामाजिक, धार्मिक विकास धीमा रहता है अतः भाषा पर भी इसका प्रभाव पड़ता है तथा परिवर्तन की गति मन्द होती है । पहाड़ी भाग के निवासी यातायात की कमी से थोड़े-थोड़े क्षेत्र से सम्पर्क रखते हैं अतः भाषा की अनेक बोलियाँ विकसित हो जाती हैं क्योंकि ध्वनि परिवर्तन थोड़ी-थोड़ी दूर के क्षेत्रों में पाया जाता है ।

(११) **सामाजिक तथा राजनैतिक प्रभाव**–समाज में जब शान्ति, स्थिरता रहती है तो मनुष्यों में विद्या का प्रचार होने से अधिक परिवर्तन नहीं होते हैं परन्तु बाहरी आक्रमणों से जब समाज में अव्यवस्था व्याप्त हो जाती है, युद्ध का वातावरण रहता है तब भाषा में ध्वनि परिवर्तन अधिक तीव्रता से होते हैं । विदेशी भाषा के प्रभाव से उच्चारण में भिन्नता आ जाती है । मुम्बई अंग्रेजी प्रभाव से बम्बई हो गया, कलिकाता भी कलकत्ता हो गया । राजनैतिक प्रभाव से अनेक नई ध्वनियों का समावेश हो जाता है । राजनैतिक प्रभाव से आर्यभाषाओं में अनेक विदेशी ध्वनियाँ आ गई हैं ।

(१२) **लेखनप्रभाव**–लिखने के द्वारा भी ध्वनि परिवर्तन होते रहते हैं अंग्रेजी के प्रभाव से हिन्दी के मिश्र, शुक्ल, गुप्त, मित्र, अशोक, राम जैसे शब्द क्रमशः मिश्रा, शुक्ला, गुप्ता, मित्रा, अशोका, रामा आदि के रूप में उच्चरित होते

हैं। उर्दू के प्रभाव से राजेन्द्र का राजेन्दर, प्रधान का परधान, स्कूल का सकूल उच्चारण किया जाता है। इस तरह लेखन-रीति ध्वनि परिवर्तन में सहायक होती है।

(१३) **लघु बनाने की प्रवृत्ति**–अधिक लम्बे शब्दों का उच्चारण व्यक्ति को भार स्वरूप लगता है अतः बोलचाल में संक्षिप्त करने या लघु रूप में प्रयोग करने की प्रवृत्ति काम करती है। व्यक्ति का अभिप्राय श्रोता द्वारा समझ लिया जाता है। यूनियन ऑफ सोवियत सोशिलिष्ट रिपब्लिक को यू० एस० एस० आर० या सोवियत रूस कह देते हैं। इसी प्रकार युनाइटेड स्टेट आव अमेरिका को यू० एस० ए०, 'पटियाला ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन' को 'पेप्सू' कहते हैं। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र सघ की अनेक संस्थाओं के नाम का संक्षिप्त रूप प्रयोग किया जाता है जैसे यूनेस्को। इसी प्रकार शुक्ल दिवस को संक्षिप्त करके 'सुदि' कहते हैं। इस प्रकार लम्बे-लम्बे शब्दों में ध्वनि परिवर्तन करके उनका छोटा रूप प्रयोग किया जाता है।

(१४) **काल का प्रभाव**–ध्वनि परिवर्तन में काल का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अधिक समय बीतने पर अनेक कारणों से जैसे बदलती राजनैतिक दशा, धार्मिक दशा, सामाजिक दशा के कारण अथवा भाषा के स्वाभाविक विकास के कारण ध्वनियों में परिवर्तन आता जाता है। लम्बे समय में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हजारों वर्ष पूर्व की वैदिक संस्कृत स्वाभाविक गति से काल-प्रभाव से परिवर्तित होकर आज भारतीय आर्य भाषाओं की जननी बन चुकी है। इसी प्रकार लैटिन, ग्रीक आदि प्राचीन भाषाओं से ध्वनि परिवर्तन होकर आधुनिक यूरोपीय भाषाओं का विकास हुआ है।

(१५) **सादृश्य**–सादृश्य के कारण भी ध्वनिपरिवर्तन होते हैं। किसी एक ध्वनि के सादृश्य पर दूसरी ध्वनि का प्रयोग किया जाने लगता है। द्वादश के सादृश्य पर 'एकदश' भी एकादश' बन गया है। स्वर्ग की समानता पर नरक का 'नर्क' प्रयोग किया जाने लगा है। इसी प्रकार देहाती की समानता पर 'शहराती' शब्द बना लिया गया है।

(१६) **कलात्मक स्वच्छन्दता**–कवियों द्वारा मात्रा अथवा तुक मिलाने के लिए या श्रुति माधुर्य के लिए ध्वनियों में परिवर्तन कर दिया जाता है। (संसार) के स्थान पर जहाना (जैसे–जे जड़ चेतन जीव जहाना), बैठाया के स्थान बैठाई (जैसे–आसिष देइ निकट बैठाई), नांदिया (नदी), हथ्यार (हथियार), बिकरार (विकराल), चक्का (चक्का), बादर (बादल), कारे (काले), काजर (काजल) आदि प्रयोग ध्वनि परिवर्तन के उदाहरण हैं। कमलु, बहुतु आदि प्रयोग भी मिलते हैं अनेक स्थानों पर 'ण' की अपेक्षा 'न' का प्रयोग किया गया है। जैसे कन (कण), बीना (बीणा), किरन (किरण) आदि। इस प्रकार तुक मिलाने, लय या मधुरता लाने के लिए ध्वनियों में परिवर्तन होते रहते हैं।

(१७) **लिपि की अपूर्णता**–किसी एक लिपि से विश्व की सब ध्वनियों को

प्रकट नहीं किया जा सकता है । क्योंकि देखा जाता है कि 'विश्व में कोई भी दो भाषायें पूर्ण रूप से एक ही प्रकार की ध्वनियों का प्रयोग नहीं करती हैं । अतः किसी एक भाषा के लिए पर्याप्त सिद्ध होने वाली लिपि किसी अन्य भाषा के लिए अपर्याप्त सिद्ध होती है ।'–Sturtevant । एक भाषा के शब्द दूसरी लिपि में अशुद्ध प्रयोग किए जाने लगते हैं । तमिल भाषा में देवनागरी के वर्गों के पहले तथा पांचवें वर्ण सूचक चिह्न मिलते हैं । प्रथम वर्ण शेष ३ वर्णों का भी बोध कराता है । अंग्रेजी शब्दों में रोमन लिपि की कमी (अपूर्णता) स्पष्ट प्रतीत होती है । 'O' (ओ) ध्वनि कहीं अ, कहीं आ तो कहीं ओ को बताती है, जैसे मदर (Mother) में 'अ', ऑवर (Our) में 'आ', मोर (More) में 'ओ' की तरह आई है । इसी प्रकार (a) ए ध्वनि भी बदलती रहती है । e (ई) ध्वनि भी कहीं 'इ' कहीं ऐ, तो कहीं 'अ' की तरह आती है, जैसे Mere (मियर) में 'इ', Hen (हैन) में ऐ, Mother (मदर), Father, More में 'अ' की भाँति आई है । इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखे जा सकते हैं । देवनागरी की अनेक ध्वनियाँ जैसे ण, ड़, ङ, श, ष रोमन में नहीं हैं । हिन्दी में भी टंकण में चन्द्र बिन्दु (ँ) के स्थान पर ं (अनुस्वार) का प्रचलन हो गया है । उर्दू लिपि तथा गुरुमुखी में स्कूल को सकूल, प्रधान को परधान, प्रेम को परेम राजेन्द्र को राजेन्दर जैसे रूपों में लिखा तथा पढ़ा जाता है । इस प्रकार लिपि की अपूर्णता का ध्वनि-परिवर्तन में प्रभाव पड़ता है ।

(१८) **बलाघात, सुर या मात्रा**–बलाघात से ध्वनि परिवर्तन हो जाते हैं । बलाघात युक्त ध्वनि सबल होकर समीपवर्ती ध्वनियों को निर्बल कर देती है बाद में निर्बल ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं । जैसे 'अभ्यन्तर' से 'भीतर', उपाध्याय से ओझा हो गया । सुर के प्रभाव से ध्वनि परिवर्तन हो जाता है, जैसे कुष्ठ का कोढ़, बिल्व का बेल । दो दीर्घ स्वर आने पर एक स्वर ह्रस्व हो जाता है जैसे नारायण का नरायण, आकाश का अकास आदि । इस प्रकार बलाघात, सुर आदि के कारण ध्वनि परिवर्तन हो जाते हैं ।

(१९) **विदेशी ध्वनियों का प्रभाव**–विदेशी ध्वनियों के प्रभाव से भी ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है । यही कारण है कि भारतीय भाषाओं में भी अरबी, फारसी आदि भाषाओं की ध्वनियाँ परिलक्षित होती हैं ।

ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ

ध्वनि परिवर्तन को दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया गया है-(१) बाह्य और (२) आन्तरिक । बाह्य प्रभावों के द्वारा हुए परिवर्तन को बाह्य परिवर्तन की संज्ञा दी गयी है तथा जो परिवर्तन बाह्य कारण की अपेक्षा न रखते हुए स्वयं ही हो जाते हैं उन्हें आन्तरिक कारण कहा गया है । संस्कृत के वैयाकरणों ने भी ध्वनि परिवर्तन प्रक्रिया को स्वीकार किया है । उनके विचार से ध्वनि या वर्ण परिवर्तन

के कारण वर्ण व्यत्यय, वर्णापाय, वर्णोपजन एवं वर्णविकार हैं–

वर्णव्यत्ययापायोपजनविकारेषु···।

वर्णव्यत्यये कृतेस्तर्क: कसे: सिकता, हिंसे: सिंह:···।

अपायो लोप: घ्नन्ति, घ्नन्तु, अघ्नन्···।

उपजन-आगम: लविता, लवितुम्···।

विकार: आदेश: घातयति, घातक···।

अर्थात् महाभाष्यकर पतञ्जलि ने वर्णव्यत्यय के उदाहरण कृत से तर्क, कस से सिकता, हिंस से सिंह; लोप के उदाहरण घ्नन्ति, घ्नन्तु और अघ्नन्, आगम के उदाहरण–लविता, लवितुम्, आदेश के उदाहरण–घातयति, घातक दिए हैं। काशिकाकार ने भी 'वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ' वर्णविकारनाशौ लिखकर वर्णपरिवर्तन के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है। आधुनिक भाषा विज्ञानविशारदों के विचार से सामान्यत: ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ इस प्रकार हैं–

लोप अभिनिधान (Elision)

कभी-कभी ध्वनियों के उच्चारण करते समय प्रयत्नलाघव, मुख-सुख या स्वराघ त के कारण कुछ ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं। यह लोप स्वर, व्यञ्जन, तथा अक्षर से सम्बन्धित होने से तीन प्रकार का माना गया है–(१)स्वरलोप, (२)व्यंजन-लोप और (३) अक्षरलोप।

उपर्युक्त तीनों के आदि, मध्य और अन्त ये तीन भेद किये गये हैं।

स्वरलोप (Syncope)–शब्दों में दो व्यञ्जनों के मध्य में आने वाले स्वर का प्राय: लोप हो जाता है। जैसे–राजन्+अस्=राज्ञ:।

आदि स्वर लोप–अपूर्व=पूप, अनाज=नाज, आभ्यन्तर=भीतर।

मध्य स्वर लोप

अरथी=अर्थी	बरतन=वर्तन
गलती =गल्ती	Do not=Don't
नरक=नर्क	उलटा=उल्टा

अन्त्य स्वर लोप–इसके कारण शब्द प्राय: व्यञ्जनान्त हो गये हैं। लेकिन लिखने में अभी इनका प्रयोग नहीं किया जाता है–

परीक्षा=परख (परख्)	बाहु=बाँह (बाँह्)
आम्र=आम (आम्)	भगिनी=बहन (बहन्)
दूर्वा=दूब (दूब्)	वार्ता=बात (बात्)

व्यञ्जन लोप–इसके भी तीन प्रकार बताये गये हैं–

(१) आदि व्यञ्जन लोप, (२)मध्य व्यञ्जन लोप और (३)अन्त्य व्यञ्जन लोप।

(१) **आदि व्यञ्जन लोप**–उच्चारण की कठिनाई के कारण अंग्रेजी आदि भाषाओं में आदि व्यञ्जनों का लोप हो जाता है। जैसे–

Write=Rite	प्रिय=पिय (हिन्दी)
Know=Now	श्मशान=मसान हिन्दी)
Knight=Night	स्थाली=थाली (हिन्दी)
Knife=Nife	स्थान=थान (हिन्दी)

(२) **मध्य व्यञ्जन लोप**–संस्कृत शब्दों के मध्य में आने वाले क, ग, च, ज, त, द, न, प, फ, य, र, ल, व, ष तथा विसर्ग (:) का प्राय: हिन्दी में लोप हो जाता है–

शृगाल=सियार	पिप्पल=पीपल
कुक्कुर=कूकर	शय्या=सेज
सूची=सूई	उत्पत्ति=उपज
उष्ट्र=ऊँट	अर्द्ध=आधा
कोकिल=कोईल	फाल्गुन=फागुन
लज्जा=लाज	दु:ख=दुख
दुग्ध=दूध	

प्राकृतभाषा में इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं–

सागर=साअरो (साअर)

भोजन=भोअण

प्रिय=पिय

हिन्दी की बोलियों में भी इस तरह की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है:–

ज्वार=जर	ब्राह्मण=बाम्हन
बुद्ध=बुध	कार्तिक=कातिक
कायस्थ=कायथ	उपवास=उपास

इसी तरह अंग्रेजी में तो उच्चारण का लोप हो गया है, लेकिन लिखित रूप में अभी मौजूद हैं–

Talk=टाक

Right=राइट

Walk=वाक

Daughter=डॉटर

(३) **अन्त्य व्यञ्जन लोप**–

सत्य=सत (सच)	पश्चात्=पश्चा (प्राकृत)
चरित्र=चरित (चरित्)	यावत्=जाव

कुंकुम=कुम्मो निम्ब=नीम

आम्र=आम

अक्षर लोप–इसके चार भेद किये गये हैं–

(क) आदि अक्षर लोप । (ख) मध्य-अक्षर लोप ।

(ग) अन्त्य अक्षर लोप । (घ) समाक्षर लोप ।

(क)आदि अक्षर लोप–(Apheresis)

University=Versity त्रिशूल=शूल

Defence=Fence अध्यापक=झा

Necktie=Tie व्याकुल=आकुल

(ख)मध्य अक्षर लोप–

वरुजीवी=वरई गोधूमचणा=गिहुँचना

भण्डागार=भण्डार गेहूँ जव=गोजई

राज्यकुल=राउर दस्तखत=दस्खत ।

(ग)अन्त्य अक्षर लोप–

मौक्तिक=मोती दीपवर्तिका=दीवट

माता=मां यज्ञोपवीत=जनेऊ

निम्बुक=नींबू जीव=जी

भ्रातृजाया=भावज सपाद=सवा

(३)समाक्षर लोप–(Haplology)जब किसी एक ही शब्द में अक्षर या अक्षर समूह साथ-साथ दो बार प्रयुक्त किये जाते हैं तो उच्चारण की सुविधा के कारण उनमें से एक का लोप हो जाता है तब उसे समाक्षर लोप कहा जाता है । जैसे:–

शष्पपिञ्जर=शष्पिञ्जर

खरीददार=खरीदार

नाककटा=नकटा

Part-time=Partime

कभी-कभी ध्वनि या अक्षर पूर्णत: एक ही न होकर उच्चारण में मिलते-जुलते हैं, तब भी एक का लोप हो जाता है–

आदत्त=अत्त

कृष्णनगर =कृष्णगर

इनके भी तीन उपभेद किये गये है–

(१)समव्यञ्जन लोप, (२)समस्वर लोप और(३)समाक्षर लोप ।

आगम-प्रागुपजन–(Prothesis-Coming)-उच्चारण करते समय कभी-कभी

मुख-सुख के लिए कुछ व्यञ्जनों, विशेषतया संयुक्त व्यज्जनों के आदि मध्य तथा अन्त में स्वरों तथा व्यञ्जनों का आगम हो जाता है। प्रारम्भ में आने वाले स्वर को प्रागुपजन कहा गया है। इसमें शब्द के प्रारम्भ में कोई स्वर प्रयुक्त हो जाता है। जैसे-

स्तुति = इस्तुति
स्नान = अस्नान
स्कूल = इस्कूल

मध्य-स्वरागमः-अज्ञानता अथवा बोलने की सुविधा के लिए कभी-कभी मध्य में स्वर का प्रयोग किया जाता है-

कर्म = करम
प्रकार = परकार
मर्म = मरम
प्रसाद = परसाद
ब्रह्मा = बरहमा (बरमा)
बक = बगुला
मिश्र = मिसुर
भ्रम = भरम

अन्त्य स्वरागमः-

गल = गला
स्वप्न = सपना
दवा = दवाई
निपुणता = निपुनाई (निपुणाई)
हरीतिमा = हरियाई
चतुरता = चतुराई

व्यञ्जनागम

आदि व्यञ्जनागम-

अस्थि = हड्डी
ओष्ठ = होठ
उल्लास = हुलास

मध्य व्यञ्जनागम-

शाप = श्राप
समुद्र = समुन्दर
सुख = सुक्ख
वानर = बन्दर
लाश = लहास
Panel = Pannel

अन्त्य व्यंजनागम

चील = चील्ह
रंग = रंगत (अरबी)
भौं = भौंह
परवा = परवाह
Cautio = Caution (अंग्रेजी)
देह = देहात (फारसी)

अक्षरागम

आदि-अक्षरागम

स्फोट = विस्फोट

गुञ्जा=घुंघुची

मध्य अक्षरागम–

खल=खरल

आलस=आलकस

गरीबनिवाज = गरीबुलनिवाज

अन्त्य अक्षरागम–

ढ़फ=ढ़फली

तावे=तावेदार

वधू=वधूटि

स्वरभक्ति या विप्रकर्ष –संयुक्त व्यञ्जनों के उच्चारण में होने वाली असुविधा को समाप्त करने के लिए उनके बीच में स्वर के आगम को स्वरभक्ति या विप्रकर्ष कहा गया है। यथा–

युक्ति=युगति (जुगति)

पंक्ति=पंगति

भक्ति=भगति

अपिनिहित-समस्वरागम–आदि स्वर तथा अपिनिहित में विद्वानों ने कुछ अन्तर दर्शाये हैं–(१) आदि स्वरागम में कोई भी स्वर आ सकता है लेकिन अपिनिहित में केवल उसी स्वर का आगम होता है जो या तो पहले से विद्यमान हो अथवा उसी प्रकृति का हो।(२)आदिस्वरागम में आने वाला स्वर हमेशा आदि में प्रयुक्त होता है जब कि अपिनिहित में ऐसा कोई बन्धन नहीं है।

समीकरण– समीप स्थित दो वर्ण जब परस्पर प्रभावित होकर वर्णों में से एक रूप परिवर्तित कर दूसरे का स्वरूप ग्रहण करता है तो उसे समीकरण कहते हैं। संस्कृत के वैयाकरणों ने इसे सवर्णीकरण नाम से पुकारा है। इसके दो भेद किये गये हैं–

(१)पुरोगामी और (२)पश्चगामी

स्वर तथा व्यञ्जन के आधार पर इनके उदाहरणों को प्रस्तुत किया जा रहा है:–

व्यञ्जन–१–पुरोगामी– दूरवर्ती-विलपना=विलबना। पार्श्ववर्ती–पद्म=पद्द, चक्र=चक्क, वक्र=वक्क।

(२)**पश्चगामी**-दूरवर्ती–नीला=लीला, नील=लील। पार्श्ववर्ती=धर्म=धम्म, कर्म=कम्म, सर्प=सप्प।

स्वर-(१) **पुरोगामी**- दूरवर्ती–जुल्म=जुलुम, पार्श्ववर्ती-आइए=आइइ

(२)**पश्चगामी**-दूरवर्ती–असुया=उसुया।

विषमीकरण–(Dissimilation) यह समीकरण का उल्टा है। इसमें दो

समान समीपस्थ ध्वनियों में से एक ध्वनि अपने स्वरूप का परित्याग कर विषम या असम बन जाती है, तब इसे विषमीकरण कहा जाता है। जब पहला वर्ण तो ज्यों का त्यों स्थित रहता है परन्तु दूसरे में परिवर्तन हो जाता है तो उसे पुरोगामी विषमीकरण कहा जाता है। जैसे–काक=काग, कंकण=कंगन, लांगूल=लंगूर। पश्चगामी विषमीकरण में प्रथम वर्ण में परिवर्तन होता है।

जैसे-नूपुर=नेउर, मुकुट=मउर (मौर), मुकुल=मउल।

विपर्यय–कभी-कभी शीघ्रता पूर्वक उच्चारण करते समय शब्द की ध्वनियों का स्थान परिवर्तित हो जाता है। ध्वनियों के स्थान परिवर्तन को विपर्यय कहते हैं। विपर्यय कई प्रकार का होता है–स्वर-विपर्यय, व्यञ्जन विपर्यय तथा अक्षर विपर्यय। समीप की ध्वनियों के परिवर्तन को पार्श्ववर्ती विपर्यय तथा दूरवर्ती ध्वनियों के परिवर्तन को दूरवर्ती विपर्यय कहते हैं।

स्वर विपर्यय–(क) पार्श्ववर्ती स्वर विपर्यय–फ़ा० में जानवर का हिन्दी में जनावर, अंगुली=उंगली, इंडो (अफ्रीकी भाषा) में Lie=Lei (बनाना) आदि।

(ख) दूरवर्ती स्वर विपर्यय– अनुमान=उनमान, पागल=पगला, खट्वा=खाट आदि।

व्यञ्जन विपर्यय–(क) पार्श्ववर्ती विपर्यय--चिह्न=चिन्ह, ब्रह्म = बम्ह, हनान=नहान, डूबना=बूड़ना, डेस्क=डेक्स आदि।

(ख) दूरवर्ती व्यञ्जन-विपर्यय -- तमगा=तगमा, अमरूद= अरमूद, सिगनल=सिंगल आदि।

अक्षर विपर्यय– (क)पार्श्ववर्ती अक्षर विपर्यय--अरबी–मतलब= मतबल, अज़रक (अरबी)=(उर्दू) अरज़क(नीला), खन=नख आदि।

(ख) दूरवर्ती विपर्यय --लखनऊ=नखलऊ, आदि।

आद्य शब्दांश--विपर्यय (Spoonerism)--जब दो शब्दों के प्रारम्भ के अंशों में विपर्यय हो जाता है तो उसे आद्य शब्दांश-विपर्यय कहते हैं। आक्सफोर्ड के विद्वान् डा० डब्ल्यू०ए० स्पूनर के नाम से इसे 'स्पूनरिज्म' (Spoonerism) कहते हैं क्योंकि उन्हें इस प्रकार के विपर्यय बोलने की लत थी। उन्हीं के द्वारा प्रयुक्त कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं–एक बार कुली से उन्होंने 'दो थैले तथा एक कम्बल' (Two bags and a rug) ले जाने के स्थान पर 'दो चिथड़े तथा एक खटमल' (Two rags and a bug) ले जाने को कह दिया। इसी प्रकार उन्होंने एक विद्यार्थी को डांटते समय कहा कि--'You have tasted a whole worm' जब कि कहना चाहते थे 'You have wasted a whole term'. इस प्रकार विपर्यय होना उनकी आदत में था। हिन्दी में ऐसे उदाहरण–'चाल दावल' (दाल चावल) नेन तूल (नून-तेल) जैसे बनाए जा सकते हैं।

अभिश्रुति–(Umlaut) स्वरों तथा व्यंजनों से प्रभावित होकर यदि अपिनिहित के कारण प्रयुक्त हुआ स्वर परिवर्तित हो जाता है तो उसे अभिश्रुति कहा जाता है – Mani=Maini=Men.

अपश्रुति (Ablaut)–जब किसी शब्द में व्यञ्जनों के यथावत् रहते हुए भी केवल स्वर परिवर्तन से रूप तथा अर्थ में अन्तर हो जाय तथा अनेक रूप निर्मित हो जायँ तो उसे अपश्रुति कहा जाता है । जैसे–

एकवचन	बहुवचन
अंग्रेजी–फुट (पैर)	फीट (पैर)
अरबी--किताब (पुस्तक)	कुतुब (पुस्तकें)
संस्कृत--अस्ति (है)	सन्ति (हैं)

लिङ्गभेद---

पुँल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
कृष्ण	कृष्णा
राम	रमा

अपश्रुति के अन्तर्गत ही भारतीय वैयाकरणों द्वारा बताये गये गुण, वृद्धि और सम्प्रसारण भी आ जाते हैं । सम्प्रसारण में य, व, र, ल क्रमशः इ, उ, ऋ, लृ में परिवर्तित हो जाते हैं । जैसे--

ग्रभे=गृभे, श्वन्=शुनः, वक्तवे=उक्त, चत्वारः=चतुरः ।

सादृश्य या मिथ्या सादृश्य (Analogy of False Analogy)–समानता के कारण भी ध्वनियाँ परिवर्तित हो जाती हैं । जब कुछ शब्दों में दूसरे शब्दों के सादृश्य से ध्वनि परिवर्तन हो जाता है तो इसे सादृश्य या मिथ्यासादृश्य कहा जाता है । इसे औपम्य या उपमान भी कहा जाता है । जैसे 'सर्प' शब्द नरक के सादृश्य से सरप । डाक्टर भोलानाथ तिवारी के शब्दों में 'संस्कृत में द्वादश के सादृश्य पर एकदश भी एकादश हो गया है ।'

अनुनासिकता--अनुनासिकता के कारण भी ध्वनियाँ परिवर्तित हो जाती हैं । इस परिवर्तन प्रकार में मुख-सुख ही प्रमुख कारण है । जैसे–सत्य=साँच, बक्र=बाँका, सर्प =साँप. कूप=कुआँ ।

ऊष्मीकरण–कभी-कभी ध्वनियाँ ऊष्म ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं । इसे ही उष्मीकरण कहा जाता है । उदाहरणस्वरूप केन्टुम् वर्ग की भाषाओं की 'क' ध्वनि 'शतम्' वर्ग में ऊष्मीभाव को प्राप्त हो गयी हैं ।

सन्धि-संस्कृत भाषा में सन्धियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । सन्धियों के नियम स्वर और व्यञ्जन दोनों के लिए हैं । संस्कृत के अलावा दूसरी भाषाओं में भी सन्धियों के नियमों का प्रयोग हुआ है । कभी-कभी तो सन्धियों के माध्यम से इतना परिवर्तन

हो जाता है कि सम्पूर्ण ध्वनियों को समझना ही कठिन हो जाता है। जैसे–तद् + श्लोकेन = तच्छ्लोकेन, वाक् + हरिः = वाग्घरिः।

हिन्दी--नयन = नइन = नैन, सपत्नी = सवत = सौत।

घोषीकरण-जब अघोष ध्वनियाँ घोष ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं तो उसे घोषीकरण कहा जाता है। जैसे--

मकर = मगर, सकल = सगल, काक = काग।

अघोषीकरण–इसमें सघोष ध्वनि अघोष के रूप में परिवर्तित हो जाती है, अतः इसे 'अघोषीकरण' कहा जाता है। जैसे–

नगर = नकर, अदद = अदत।

महाप्राणीकरण--अल्पप्राण ध्वनियाँ जब महाप्राण से परिवर्तित हो जाती है, तो उसे 'महाप्राणीकरण' कहा जाता है। जैसे--

बाष्प = भाप, गृह = घर, हस्त = हाथ।

अल्पप्राणीकरण–जब महाप्राणध्वनियाँ अल्पप्राण में बदल जाती हैं तो उसे अल्प-प्राणीकरण' कहा जाता है। जैसे–

धधामि = दधामि, सिन्धु = हिन्दू।

मात्राभेद--उच्चारण में कभी दीर्घ को ह्रस्व और कभी ह्रस्व को दीर्घ हो जाता है। जैसे–अक्षत = आखत, हस्त = हाथ, सत्य = साँच।

नासिका–नासिका विवर प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। यह श्वास प्रश्वास वायु का मुख्य स्थान व साधन है। अनुनासिक वर्णों का उच्चारण नासिका विवर की सहायता से किया जाता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि ध्वनियों के उच्चारण में शरीरावयवों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके विकृत हो जाने से ध्वनियों का उच्चारण करना सम्भव नहीं है।

ध्वनिनियम

आचार्य टकर के अनुसार--"किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में किसी विशिष्ट काल और कुछ विशिष्ट दशाओं में हुए नियमित परिवर्तन को उस भाषा का ध्वनि-नियम कहते हैं।"

"A Phonetic law of a language is a statement of the regular practice of that lauguage at a particular time in regard to the treatment of a particular sound or group or sounds in a particular setting"

इस परिभाषा में निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला गया है--

(१) ध्वनिनियम किसी भाषाविशेष का होता है। एक ध्वनिनियम ससार

की समस्त भाषाओं पर लागू नहीं होता है।

(२) यह नियम एक भाषा की समस्त ध्वनियों पर लागू न होकर कुछ विशिष्ट ध्वनियों पर लागू होता है।

(३) ध्वनिनियम सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नहीं होते हैं। वे निश्चित सीमा में ही सीमित रहते हैं।

(४) ध्वनिनियमों के लिए विशिष्ट अवस्था और परिस्थिति की अपेक्षा रहती है।

(५) ध्वनिनियम सर्वथा अपवाद रहित नहीं होते हैं।

ग्रिम नियम (Grimm's Law)

जर्मन भाषा के अप्रतिम पण्डित एवं प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक आचार्य ग्रिम ने जिस नियम का प्रतिपादन किया है उस नियम को 'ग्रिम-नियम' के नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि इस नियम के प्रथम विचारक इहरे और रेस्क थे परन्तु इसकी सम्यक् विवेचना ग्रिम महोदय ने की। अतएव यह 'ग्रिमनियम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ग्रिम नियम का सम्बन्ध नौ स्पर्श ध्वनियों से है। 'क' से लेकर 'म' पर्यन्त समस्त ध्वनियाँ स्पर्श कहलाती हैं। (कादयो मावसानाः स्पर्शाः) इसे जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन कहते हैं। जर्मन भाषा का यह वर्ण परिवर्तन दो बार हुआ है। प्रथम वर्ण परिवर्तन ईशा के कई सदी पूर्व में हुआ है तथा द्वितीय वर्ण परिवर्तन लगभग सातवीं शताब्दी में हुआ है।

प्रथम वर्ण परिवर्तन–प्रथम वर्ण परिवर्तन में भारोपीय मूलभाषा के घोष महाप्राण, घोष अल्पप्राण और अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ क्रमशः जर्मन में घोष अल्पप्राण, अघोष अल्पप्राण और अघोष महाप्राण में परिवर्तित हो जाते हैं। आचार्य ग्रिम का अभिमत है कि मूलभाषा के कुछ व्यञ्जन भारोपीय बोलियों में विशेषतया संस्कृत और ग्रीक में विद्यमान हैं। अतः मूलभाषा स्वरूप संस्कृत या ग्रीक से उदाहरण के लिए शब्द लिए गए हैं और परिवर्तन के लिए जर्मन श्रेणी की अंग्रेजी से शब्द लिए गये हैं। संक्षेप में हम इसे इस प्रकार देख सकते हैं--

भारोपीय मूलभाषा (संस्कृत, लैटिन, ग्रीक)	**जर्मन**
घ्, ध्, भ् (घोष महाप्राण) (GH, DH, BH)	ग्, द्, ब (घोष अल्पप्राण) G, D, B
ग्, द्, ब् (घोष अल्पप्राण) G, D, B	क्, त्, प्, (अघोष अल्पप्राण) K, T, P
क्, त्, प, (अघोष अल्पप्राण) K, T, P	ख्,(ह्), थ्, फ्(अघोष महाप्राण) KH, (H), TH, F, (घ्, ध्, भ्)

प्रथम वर्ग के आदिम भाषा के घ्, ध्, भ् गाथिक भाषा में क्रमशः ग्, द्, ब्, में परिवर्तित हो जाते हैं।

उदाहरण--

आदिम भाषा (संस्कृत)		गाथिक भाषा (अंग्रेजी	
घ् (ह्)	हंसः	ग्	Goose
	दुहिता		Daughter
ध्	विधवा	द्	Widow
	धा		Do
भ्	भ्रातृ	ब्	Brother
	भू		Be
	भरामि		Bear

द्वितीय वर्ग में आदिम भाषा के ग्, द्, ब्, गाथिक में क्रमशः क्, त्, प्, हो जाते हैं।

उदाहरण--

आदिम भाषा (संस्कृत)		गाथिक भाषा (अंग्रेजी)	
ग	गौ	क्	Cow
	युग		yoke
द्	द्वौ	त्	Tow
	दश		Ten
ब्	(संस्कृत में उदाहरण नहीं मिलता)	प्	
	स्लेउब (ग्रीक शब्द)		Slip

तृतीय वर्ग में आने वाले आदिम भाषा के क्, त्, प्, गाथिक में क्रमशः ख् थ् फ् में बदल जाते हैं।

आदिम भाषा (संस्कृत)		गाथिक भाषा (अंग्रेजी)	
क्	श्वन्	ख् (ह)	Haund
	शतम् = केन्टुम्		Hundred
त्	तृण	थ्	Thorn
	तद्		That
प	पितृ	फ्	Father
	पाद		Foot

द्वितीय वर्णपरिवर्तन :-प्रथम वर्णपरिवर्तन में मूल भारोपीय भाषा से जर्मन भाषा में परिवर्तन हुआ था। द्वितीय वर्ण परिवर्तन में जर्मन भाषा के ही उच्च जर्मन

और निम्न जर्मन ये दो भेद हो गये थे। निम्न जर्मन वर्ग में अंग्रेजी भाषा का समावेश होता है।

द्वितीय वर्णपरिवर्तन में निम्न जर्मन के घोष अल्पप्राण (ग्, द्, ब्,) अघोष अल्पप्राण (क्, त्, प्,) और अघोष महाप्राण (घ्, ध्, भ्) उच्च जर्मन में क्रमशः अघोष अल्पप्राण (क्, त्, प्,), अघोष महाप्राण (ख् (ह), थ्, फ्) या (घ् ध् भ्), और घोष अल्पप्राण (ग्, द्, ब्) में परिवर्तित हो जाते हैं। इस विषय को संक्षेप में देखें—

निम्न जर्मन (अंग्रेजी)	उच्च जर्मन
ग्, द्, ब्	क्, त्, प्
क्, त्, प्	ख् (ह्), थ्, फ्
ख् थ् फ्	ग्, द्, ब्,

प्रथम वर्ग में आने वाले गाथिक भाषा के ग्, द्, ब्, उच्च जर्मन में क्रमशः क्, त्, प्, हो जाते हैं।

उदाहरण--

निम्न जर्मन (अंग्रेजी)		उच्च जर्मन	
ग्	Daughter	क्	Tocher
द्	Day	त्	Tag
ब्		प्	

द्वितीय वर्ग में आने वाले गाथिक भाषा के क्, त्, प् उच्च जर्मन में क्रमशः ख् (ह्), थ्, फ् में परिवर्तित हो जाते हैं।

निम्न जर्मन अंग्रेजी			उच्च जर्मन
क्	Book	ख्	Buch
	yoke		Toch
त्	Water	थ्	Wasser
प्	Deep	फ्	Tief
	Sheep		Schaf

तृतीय वर्ग में आने वाले गाथिक भाषा के ख्, थ्, फ् उच्च जर्मन में क्रमशः ग् द्, ब्, में बदल जाते हैं।

उदाहरण—

निम्न जर्मन (अंग्रेजी)		उच्च जर्मन
ख्	(ख् से ग् में बदलने का उदाहरण—उपलब्ध नहीं है)	ग्

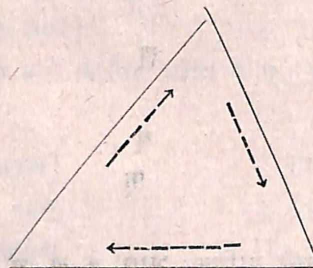
थ्	Three	द्	Drei
	Brother		Bruder
	North		Norden
फ्	Theif	ब्	Dieb

ग्रिम महोदय के द्वारा दी गयी प्रथम और द्वितीय वर्ण परिवर्तन की तालिका निम्नलिखित प्रकार की है–

मूलभाषा	आदिम जर्मनिक	उच्च जर्मन
घ्, ध्, भ् (घोषमहाप्राण)	ग्, द्, ब् (घोषअल्पप्राण)	क्, त्, प (अघोषअल्पप्राण)
(GH, DH, BH)	(G, D, B)	(K, T, P)
ग्, द्, ब् (घोष अल्पप्राण)	क्, त्, प् (अघोषअल्पप्राण)	ख्, (ह्), थ्, फ् (अघोषमहाप्राण)
G, D, B	K, T, P	(KH,) (H), TH, F
क्, त्, प् (अघोष अल्पप्राण)	ख् (ह्), थ्, फ् (अ० म०)	ग्,द्, ब (घोष अल्पप्राण)
K, T, P	KH (H), TH, F	G, D, B

इस परिवर्तन को निम्नलिखित त्रिकोण चक्र के द्वारा देखा जा सकता है। प्रथमतः ऊपर से नीचे की ओर तथा तीर की चाल के साथ देखते चले जायें तत्पश्चात् द्वितीय वर्णपरिवर्तन के लिए ऊपर से नीचे की ओर जाकर तीराङ्कित मार्ग से चले जायें। इस प्रकार दोनों वर्ण परिवर्तन समझे जा सकते हैं–

ख्, थ्, फ् (घ्, ध्, भ्)
महाप्राण अघोष सघोष



क्, त्, प्
अघोष अल्पप्राण

ग्, द्, ब्
सघोष अल्पप्राण

ग्रिम महोदय का यह ध्वनि नियम पर्याप्त स्पष्ट होते हुए भी दोषयुक्त है। प्रथम वर्ण परिवर्तन में भी यद्यपि अपवाद हैं परन्तु वह ठीक है। द्वितीय वर्ण परिवर्तन में एक निश्चित क्रम देखने को नहीं मिलता है। उदाहरण भी ठीक उसी रूप में नहीं मिलते हैं। इसमें अनेक अपवाद भी हैं। द्वितीय वर्ण परिवर्तन में ग्रिम को

वाञ्छित सफलता नहीं मिली है । प्रथम वर्ण परिवर्तन के साथ द्वितीय वर्ण परिवर्तन का शुद्ध रूप इस प्रकार हो सकता है–

मूल भाषा	निम्न जर्मन	उच्च जर्मन
GH, DH, BH	G, D, B	X, T, X
G, D, B	K, T, P	X, Z, ss, ss, F
K, T, P	KH, (H), TH, F	X, ST, X

ग्रासमन का नियम (Grassmann,s Law)

ग्रिम महोदय के नियम के सूक्ष्म परीक्षण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें अनेक अपवाद हैं । उन अपवादों की मीमांसा ग्रासमन ने की है । अतएव उस नियम को ग्रासमन नियम के नाम से पुकारा जाता है ।

ग्रिम नियम के अनुसार साधारणतया क्, त्, प् को ख् (ह्), थ्, फ् होता है, परन्तु ग्, द्, ब हो जाता हैं । जैसे–

मूल भाषा (ग्रीक)			अंग्रेजी
क्	Kigkho	ग्	Go
त्	Tuplus	द्	Dumb
प्	Pithos	ब्	Body

ग्रिम के अनुसार 'Kigkho' के स्थान पर 'Kho' अथवा 'Ho' होना चाहिए था परन्तु 'Go' होता है ।

अतएव ग्रासमन महोदय ने यह खोज की कि यदि भारोपीय मूलभाषा में शब्द या धातु के आदि और अन्त में महाप्राण ध्वनियाँ हों तो परिवर्तन होकर एक अल्पप्राण हो जाता है । जैसा कि ग्रीक के Kigkho, Tuplus और Pithos से Go, Dump और Body बनते हैं न कि Ho, Thumb, Fody । इसी प्रकार संस्कृत में 'हु' धातु से हुहोति, हुहुतः हुह्वति न बनकर जुहोति जुहुतः, जुह्वति रूप बनते हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भारोपीय मूलभाषा की दो अवस्थायें रही होंगी । प्रथम अवस्था में तो महाप्राण रहे होंगे और दूसरी अवस्था में नहीं । यही कारण है कि अपवाद-स्वरूप क्, त्, प् के स्थान पर ग्, द्, ब् मिलते हैं । प्राचीन मूलभाषा के समय में क्, त्, प् का पुराना रूप ख् (ह्), थ्, फ्, रहा होगा, जो कि परिवर्तित दशा में ग्, द्, ब् हो गया है और ख्, थ्, फ्, का पुनः ग्, द्, ब् हो जाना नियमानुकूल है ।

इस प्रकार यह फलित हुआ कि ग्रासमन के उपर्युक्त संशोधन के अनुसार, "भारोपीय मूलभाषा में यदि एक वर्ण या धातु आदि और अन्त दोनों में प्राणध्वनि अन्यत्र महाप्राण स्पर्श हो, तो संस्कृत, ग्रीक आदि में एक अल्पप्राण हो जाता है ।"

वर्नर का नियम (Law of Corl Verner)

ग्रासमन के संशोधन के पश्चात् भी ग्रिम नियम में कुछ अपवाद रह गये हैं। वर्नर ने यह खोज की कि ग्रिम नियम स्वराघात पर आधारित था। उनके अनुसार यदि भारोपीय मूलभाषा के क्, त्, प् के पहले स्वराघात होगा तो ग्रिम नियम के अनुसार परिवर्तन होता है और यदि स्वराघात क्, त्, प् के बाद वाले स्वर पर होगा तो परिवर्तन एक पग आगे कार्य करेगा और तब ग्रासमन के नियम की भाँति ग्, द्, ब् हो जाता है। जैसे–

संस्कृत	लेटिन	गाथिक	अंग्रेजी
शतम्	Centum	Hundra	Hundred
लिम्पामि	Lippus	Bileiba	Belife
सप्तन्	Septem	Sibum	Seven

ग्रिम ने यह भी कहा था कि 'स्' के लिए 'स्' ही मिलता है परन्तु कुछ उद्धरणों में 'स्' के स्थान पर 'र्' भी मिलता है। इसके लिए भी वर्नर ने स्वराघात को ही कारण बतलाया है। उनका कथन है कि यदि 'स्' के पूर्व स्वराघात हो तो 'स' ही रहेगा और यदि बाद में होगा तो 'स' को 'र' हो जायेगा।

वर्नर ने एक और महत्त्वपूर्ण बात बतलायी है कि यदि मूल भारोपीय के क्, त्, प् के पूर्व 'स' संयुक्त होगा। जैसे–स्क, स्त, स्प (SK, ST, SP) तो जर्मेनिक में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। जैसे–

लैटिन	अंग्रेजी	गाथिक
Piskis	—	Fisks
Aster	Stas	—

इस प्रकार विभिन्न ध्वनि-नियमों एवं संशोधनों के होने पर भी कुछ अपवाद शेष ही रह जाते हैं। जिनका मूल कारण समानता को ही मानना पड़ता है।

तालव्यभाव-नियम

तालव्यभाव नियम कब और किस प्रकार बना ? यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। इस विषय पर बिलहेन, थाम्सन, श्मिट, ऐशाम, तेगार एवं वर्नर इत्यादि विद्वानों ने कार्य किया है। इस नियम के अन्वेषण से पूर्व समस्त विद्वानों का यह अभिमत था कि संस्कृत की प्रायः समस्त ध्वनियाँ आदिम भारोपीय भाषा की मूल ध्वनियों के सबसे अधिक समीप हैं और ग्रीक तथा लैटिन अपेक्षाकृत बाद की विकसित दशा की भाषायें हैं। यह धारणा रहते हुये भी यह ज्ञान नहीं हो पाता था कि संस्कृत में जहाँ च, ज, आदि वर्ण है, वहाँ दूसरी भाषाओं में क, ग, क्यों हो गये। इस रहस्य का ज्ञान तालव्य नियम ने किया। तालव्य नियम के अन्वेषण करने वालों

का कथन है कि जिन संस्कृत शब्दों में 'अ', ग्रीक या लैटिन के 'ओ' (O) की तरह है। उनके पूर्व 'क' या 'ग' ही पाया जाता है। परन्तु यदि वही 'अ' ग्रीक या लैटिन के पूर्व 'ई' (E) की तरह है तो उसके पूर्व कण्ठ से उच्चरित 'क' या 'ग' न मिलकर तालु से उच्चरित 'च' और 'ज' मिलते हैं।

संस्कृत–	अस्ति	जन:	अ	अप:	ददर्श	अस्थि
ग्रीक––	Esti	Genos	इ–O		Dedorka	Osteon
लैटिन–	Aste	Genus	ई–U	Opus		Os

इसी प्रकार 'पचँति' और 'पकस' में भी यही बात है। अतः हम कह सकते हैं कि संस्कृत 'अ' ध्वनि के स्थान पर 'इ' या 'ओ' ध्वनियाँ मूल भाषा में थीं।

---

८ | लिपि का विकास

भाषा को लिखने का साधन 'लिपि' ही है। यदि भाषा में 'लिपि' नामक साधन न हो तो हम लोग अनेक भाषाओं एवं साहित्य से परिचित ही नहीं हो सकते हैं। लिपि ही एक ऐसा साधन है जो कि हमारी प्राचीन उपलब्धियों को सुरक्षित रखती है। प्रारम्भ में जादू-टोने के लिए खींची गई लकीरें, धार्मिक प्रतीक के चित्र, पहचान के लिये घड़ों इत्यादि पर बनाये गये चित्र, किसी वस्तु को अलंकृत करने के लिये बनाये गये चित्र आदि लिपि की मूल सामग्री कहे जा सकते हैं। लिपि के उद्भव के सन्दर्भ में कुछ भी निश्चित कह सकना कठिन है। आज तक के लिपि सम्बन्धी अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि चार हजार (४०००) ई० पूर्व तक लेखनकला की किसी भी व्यवस्थित प्रणाली का विकास विश्व में कहीं नहीं हुआ था। १००० ई० पूर्व से ४००० ई० पूर्व तक लिपि का विकास शनैः-शनैः होता रहा है। इस क्रमिक विकास का स्वरूप निम्नलिखित प्रकार है--

(१) चित्रलिपि, (२) सूत्रलिपि, (३) प्रतीकात्मक लिपि, (४) भावमूलकलिपि, (५) भावध्वनिमूलकलिपि, (६) ध्वनिमूलकलिपि।

१. **चित्रलिपि**-प्रारम्भकाल में मानव दैनिक व्यवहार में आने वाली विभिन्न वस्तुओं पर विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तुओं एवं प्रतीकों आदि के टेढ़े-मेढ़े अव्यवस्थित चित्र अंकित किया करता था। इस प्रकार के प्राचीन चित्र दक्षिणी फ्राँस, स्पेन, क्रीट मेसेपोटामिया, यूनान, इटली, पुर्तगाल, साइबेरिया, सीरिया, मिस्र, ग्रेटब्रिटेन आदि अनेक देशों में प्राप्त होते हैं। ये चित्र पत्थर, हड्डी, काष्ठ, सींग, जानवर की खाल एवं मिट्टी के बर्तनों पर निर्मित हैं। इस काल में ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रलिपि पर्याप्त व्यापक रही होगी, क्योंकि किसी भी विशेष वस्तु के लिये उसका विशिष्ट चित्र उस समय बना दिया जाता था। परन्तु इस लिपि में अनेक दोष विद्यमान हैं–

(१) व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को अभिव्यक्त करने का कोई साधन नहीं है। साधारणतया व्यक्ति के चित्र का निर्माण तो किया जा सकता था परन्तु–विशिष्ट व्यक्ति को किस प्रकार इंगित किया जाय, यह एक समस्या थी।

(२) स्थूल वस्तुओं का तो चित्रण किया जा सकता था, परन्तु सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति असम्भव थी।

(३) चित्र निर्माणकार्य में समय अधिक लगता था, अतः शीघ्रकारी कार्यों में इसका कोई विशेष उपयोग नहीं था।

(४) सभी लोग चित्रण कार्य नहीं कर सकते थे, साथ ही साथ विभिन्न पदार्थों के चित्र अंकित ही नहीं किये जा सकते थे।

(५) यह आवश्यक न था कि उन विभिन्न चित्रों से लोग उन भावों को समझ सकें जिस भाव से वे अंकित किये गये थे।

२. **सूत्रलिपि**–सूत्रों (तन्तुओं) में गाँठ लगाकर भाव को अभिव्यक्त करने की कला को 'सूत्रलिपि' कहते हैं। आजकल भी 'वर्षगांठ' आदि अनेक महोत्सवों पर ग्रंथि लगाने की प्रथा प्रचलित है। ये ग्रन्थियाँ विभिन्न प्रकार से लगाई जाती थीं। जैसे–

(१) धागे में रंग-विरंगे सूत्र बाँधकर।

(२) धागों को विभिन्न रंगों से रंगकर।

(३) रस्सी या जानवरों की खाल आदि में विभिन्न रंगों के मोती, घोंवें या मूंगें आदि बाँधकर।

(४) रस्सियों में तरह-तरह की ग्रन्थियाँ लगाकर।

(५) रस्सियों की अलग-अलग दूरियों पर गाँठे लगाकर।

(६) लकड़ियों में विभिन्न प्रकार की रस्सियाँ बाँधकर।

इस प्रकार की लिपि का प्रचलन चीन तथा तिब्बत में भी था। 'क्वीपू' लिपि इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

(३) **प्रतीकात्मक लिपि**–दूर देश में स्थित व्यक्ति के लिये कुछ कहने के लिये किसी प्रतीक का सहारा लेना पड़ता था। विवाह आदि कार्यों में हल्दी या सुपाड़ी का भेजना, झण्डियों द्वारा संकेत करना आज भी समाज में प्रचलित हैं। परन्तु इस प्रतीकात्मकता को 'लिपि' कहना दोषपूर्ण है।

४. **भावमूलक लिपि**–इस लिपि का विकास चित्र लिपि से ही हुआ है। चित्रलिपि में केवल स्थूल पदार्थों का ही अंकन किया जा सकता था, जबकि भावमूलक लिपि में भावनाओं की भी अभिव्यक्ति की जाती थी। उदाहरणार्थ हम कह सकते हैं कि चित्रलिपि के अन्तर्गत पैर केवल 'पैर' का ही सूचक था, जबकि भावमूलक लिपि में चलने का भी संकेत होता था। इस लिपि के उदाहरण उत्तरी अमेरिका, चीन और पश्चिमी अफ्रीका आदि में पाये जाते हैं।

५. **भावध्वनिमूलक लिपि**-इस भावमूलकध्वनिलिपि को भी हम चित्रलिपि का विकसित रूप कह सकते हैं। इस लिपि में चित्रात्मकता के साथ-साथ भावमूलक और ध्वनिमूलक (जैसा कि नाम से स्पष्ट है) दोनों तरह के संकेत एक ही स्थल पर

पर मिलते थे। इस लिपि के अन्तर्गत मिस्री, हित्ती एवं मसोपोटामियन लिपियाँ आती हैं।

६. **ध्वनिमूलक लिपि**–इसी लिपि के अन्तर्गत किसी वस्तु या भाव को अभिव्यक्त करने के लिये संकेत का सहारा न लेकर उसकी ध्वनि को प्रकट किया जाता है। इस लिपि के दो रूप मिलते हैं–

(अ) अक्षरात्मक लिपि और (ब) वर्णात्मक लिपि ।

अक्षरात्मक लिपि–इस लिपि में संकेत किसी 'अक्षर' को अभिव्यक्त करता है न कि 'वर्ण' को उदाहरण के लिये 'नागरी' लिपि अक्षरात्मक है। इसके व्यञ्जनों में दो ध्वनियाँ रहती हैं, एक तो स्वयं व्यञ्जन और दूसरे स्वर। जैसे–'क' इसमें क्+अ ये दो ध्वनियाँ हैं।

वर्णात्मक लिपि––इस लिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिये एक चिह्न होता है। इसका वैज्ञानिक विश्लेषण सरलतया किया जा सकता है। 'रोमन' लिपि को वर्णात्मक लिपि कहते हैं।

लिपियों के उद्‌भव एवं विकास की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करने के पश्चात् भारतीय लिपियों पर प्रकाश डालना अनुपयुक्त न होगा। संसार की प्राचीन लिपियों में 'फोनीसियन', दक्षिणसामी, ग्रीक, लैटिन, आर्मेइक, हिब्रू, अरबी, खरोष्ठी एवं ब्राह्मी प्रसिद्ध हैं।

प्राचीन भारतीय लिपियों के अन्तर्गत तीन लिपियों का व्यवहार प्रसिद्ध है–

(१) सिन्धुघाटी की लिपि, (२) खरोष्ठी, (३) ब्राह्मी ।

(१) **सिन्धुघाटी की लिपि**-सिन्धुघाटी की लिपि अत्यन्त प्राचीन है। इसकी उपलब्धि मोहनजोदड़ों और हड़प्पा की खुदाई से हुई है। इसका अभी तक विस्तृत अध्ययन नहीं हो सका है। इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसे 'द्रविड़' लिपि मानते हैं 'एच-हेरास' तथा 'जान मार्शल' के अनुसार सिन्धुघाटी की सभ्यता द्रविड़ सभ्यता थी। अतएव यह लिपि भी उन्हीं की है।

(२) ब्रेडेल एवं डा० प्राणनाथ के अनुसार यह लिपि 'सुमेरी' लिपि से उत्पन्न मानी गई है। इन विद्वानों का अभिमत है कि सिन्धुघाटी में ४००० ई० पूर्व में सुमेरी लोग रहते थे और उस समय उनकी भाषा और लिपि वहाँ व्यवहृत होती थी।

(३) अनेक विद्वानों का यह अभिमत है कि आर्य अथवा असुर लोग सिन्धुघाटी के निवासी थे और वे ही इस लिपि के आविष्कर्ता हैं।

यह लिपि भावध्वनिमूलकलिपि है। इसके संकेतों की सही गणना अभी तक नहीं हो सकी है। चिह्न संख्या के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

खरोष्ठी लिपि :–खरोष्ठी लिपि के प्राचीन अभिलेख चौथी शताब्दी ई० पूर्व से लेकर तीसरी शतादी ई० पूर्व तक मिलते हैं। इस लिपि को 'खरोष्टी' क्यों कहते हैं। इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है।

(क) प्राचीन चीनी विश्वकोष में 'खरोष्ट' नामक व्यक्ति के द्वारा आविष्कृत होने के कारण यह 'खरोष्ठी' कहलायी।

(ख) यह लिपि पश्चिमोत्तर भारत के अर्धसभ्य खरोष्ठजाति के लोगों की थी, अतः खरोष्ठी कहलायी।

(ग) कुछ लोगों का अभिमत है कि इस लिपि का सम्बन्ध मध्य एशिया के 'काशगर' नामक नगर से है। संस्कृत में काशगर को खरोष्ठ कहते हैं, अतः यह लिपि खरोष्ठी कहलायी।

(घ) अनेक विद्वानों का विचार है कि यह लिपि गधे की खाल पर लिखी जाती थी, अतः प्रारम्भ में इसे खरपृष्ठी कहा गया जो परिवर्तित होकर खरोष्ठी बन गई।

(ङ) कुछ लोगों के मतानुसार आर्मेइक शब्द खरोष्ठ संस्कृत में खरोष्ठ रूप को ग्रहण करके लिपि को खरोष्ठी कहा गया।

(च) डा० राजबली पाण्डेय का अभिमत है कि इस लिपि के अक्षर गधे के होठों के समान हैं, इसीलिए खर+ओष्ठी=खरोष्ठी संज्ञा से विभूषित किया गया।

(छ) डा० सुनीत कुमार चटर्जी के अनुसार हिब्रू में 'खरोशेथ' का अर्थ लिखावट है। इसी 'खरोशेथ' शब्द का विकृत रूप 'खरोष्ठ' है।

इस लिपि को कुछ विद्वान् भारतीय और कुछ अभारतीय भी मानते हैं। डा० मूलर, डा० डिरिंजर, डा० ओझा आदि ने इस लिपि का सम्बन्ध आर्मेइक लिपि से माना है। डा० राजवली पाण्डेय और उनके मतानुयायी इस लिपि की उत्पत्ति भारत में ही मानी है।

ब्राह्मी लिपि:–प्राचीन लिपियों में यह सर्वप्रमुख रही है। यह अन्य लिपियों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है। इसमें पुराने अभिलेख पंचम शताब्दी ई० पू० से लेकर ३५० ई० तक मिलते हैं। इनके नामकरण के विषय में भी विद्वानों में मतभेद हैं।

(१) प्राचीन चीनी विश्वकोष में ब्रह्म या ब्रह्मा नाम के आचार्य को इसका निर्माता बतलाकर उन्हीं के नाम पर इसे ब्राह्मी कहा गया है।

(२) डा० राजबली पाण्डेय के अनुसार ब्रह्म अर्थात् वेदकी रक्षा के लिये आचार्यों ने इसका आविष्कार किया। अतः यह ब्राह्मी लिपि कहलाई।

(३) ब्राह्मण समाज में प्रचलित होने के कारण इसे ब्राह्मी संज्ञा दी गयी।

(४) इस लिपि का सम्बन्ध वेद सृष्टा विधाता से है। अतएव यह ईश्वर प्रदत्त ब्राह्मी लिपि है। यही कारण है कि संकृत भाषा के पर्यायवाची शब्दों में यह नाम

भी मिलता है–"ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती"। (अमरकोष)

अनेक विद्वान् इस लिपि को भारतीय मानते हैं। तो उनसे भिन्न मत रखने वाले लोग इसे अभारतीय कहते हैं। डा० अलफ्रेड, मूलर, जेम्स, प्रिन्सेप और सेनार्ट आदि विद्वानों ने इस लिपि की उत्पत्ति यूनानी लिपि से मानी है। फ्रेन्च विद्वान् कुपेरी का विचार है कि ब्राह्मी लिपि का उद्भव चीनी लिपि से हुआ है. परन्तु यह अभिमत समीचीन नहीं है। कारण यह है कि इन लिपियों में थोड़ा भी साम्य नहीं है। अनेक विद्वान् इसे 'सामी' लिपि से उत्पन्न बतलाते हैं। इसके समर्थक डा० बूलर, वेबर, बेनके, जेन्सन आदि हैं। परन्तु डा० राजबली पाण्डेय ने इस लिपि के 'फोनेशीय' लिपि से उद्भव का खण्डन किया है। डा० पाण्डेय का कहना है कि फोनेशीय लोग भारत के ही निवासी थे उन्होंने बाहर जाने पर ब्राह्मी लिपि के आधार पर फोनेशीय लिपि की रचना की है।

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति भारत में हुयी है, इसमें भी मतभेद है। एडवर्ड टामस तथा अन्य विद्वानों का विचार है कि ब्राह्मी लिपि के आविष्कारक द्रविड़ थे और उनसे ही आर्यों ने इस लिपि को सीखा है। परन्तु यह मत प्रामाणिक नहीं है। क्योंकि द्रविड़ की प्राचीनतम लिपि 'तामिल' लिपि अपूर्ण लिपि है। उससे ब्राह्मी जैसी पूर्ण लिपि का विकास असम्भव है।

कनिङ्घम, डाउसन, लेसेन प्रभृति विद्वानों का विचार है कि ब्राह्मी का विकास पुरातन भारतीय चित्रलिपि से हुआ है। डा० डिरिंगर ने इस मत के विरुद्ध अनेक तर्क दिये हैं। पर वे प्रामाणिक नहीं हैं।

प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा ने लिखा है कि ब्राह्मीलिपि का सम्बन्ध किसी विदेशी लिपि से जोड़ना अमान्य ठहरता है।

ब्राह्मी लिपि की विशेषतायें–(१) इस लिपि की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके वर्ण जिस प्रकार लिखे जाते हैं उसी प्रकार उच्चरित भी होते हैं।

(२) सभी उच्चरित ध्वनियों के लिये निश्चित चिह्न हैं।

(३) ध्वनियों के उच्चारणस्थान के अनुसार वर्गीकृत किये गये हैं।

(४) स्वर एवं व्यञ्जनों की संख्या पूर्ण है।

(५) ह्रस्व एवं दीर्घ स्वरों के लिये चिह्न पृथक् हैं।

(६) स्वरों और व्यञ्जनों का सहयोग मात्राओं द्वारा होता है।

(७) अनुस्वार, अनुनासिक और विसर्ग के लिए भी चिह्न हैं।

लिपि विशेषज्ञ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखते हैं कि "मनुष्य की बुद्धि में सबसे बड़े महत्त्व के दो कार्य भारतीय ब्राह्मीलिपि और वर्तमान शैली के अंकों की कल्पना है।"

ब्राह्मी लिपि का विकास

इस लिपि से द्रविड़ लिपियों को छोड़कर भारत की समस्त लिपियाँ उद्भूत हुई हैं। यह लिपि मौर्यकाल तक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुकी थी। इस लिपि को दो शाखाओं में बाँटा जा सकता है :–(१) उत्तरी और (२) दक्षिणी उत्तरी शाखा के अन्तर्गत चार लिपियों की गणना की जाती है :–

(१) गुप्तलिपि, (२) कुटिललिपि, (३) शारदलिपि, (४) नागरीलिपि दक्षिणी शाखा के अन्तर्गत छः लिपियाँ आती हैं :–

(१) तमिललिपि, (२) तेलगू-कन्नड़लिपि, (३) ग्रन्थलिपि, (४) कलिङ्गलिपि (५) मध्यदेशीय, (६) पश्चिमीलिपि।

इन शाखाओं में उत्तरभारत में सातवीं शदी के आस-पास शारदा, नागरी एवं कुटिललिपि ही विशेषतया विकसित हुई हैं।

गुप्तलिपि–गुप्तलिपि का सम्बन्ध गुप्तवंशी राजाओं से था। इसका प्रयोग ईसा की चतुर्थ, पंचम शताब्दी तक मिलता है।

कुटिललिपि––इस लिपि का विकास गुप्तलिपि से ही हुआ है। इससे (क) कैथी, (ख) मैथिली, (ग) बंगला, (घ) असमियां, (ङ) उड़िया, (च) नेपाली (छ) मणिपुरी लिपियाँ विकसित हुई हैं। इनका क्षेत्र उत्तरीभारत रहा है।

शारदालिपि–इस लिपि का विकास कुटिललिपि से हुआ है। इसके उत्तरी-पश्चिमी भारत कश्मीर, पंजाब और सिन्धु के क्षेत्रों में प्रसार के कारण काश्मीरी, टक्करी, गुरुमुखी लेहदा लिपियाँ विकसित हुई हैं। काश्मीरी लिपि काश्मीर प्रदेश में प्रचलित है। लंहदा का प्रचलन सिंध और पंजाब के कुछ भागों में है। इसके दो विकसित रूप हैं––सिन्धी और मुल्तानीलिपि इसके संशोधित रूप को ही गुरुमुखी लिपि कहते हैं–

नागरीलिपि–इसी लिपि को देवनागरी भी कहते हैं। दक्षिण भारत में इसे 'नन्दिनागरी' के नाम से पुकारा जाता है। इसका विकास कुटिललिपि से हुआ है। यह लिपि भारत में सर्वाधिक प्रचलित है। गुजराती, बंगला, मराठी, राजस्थानी आदि लिपियाँ इसी के द्वारा उत्पन्न हुई हैं। प्राचीन नागरी का प्रचार सोलहवीं शताब्दी तक पाया जाता है। इसके विषय में डा० उदयनारायण तिवारी लिखते हैं कि 'प्राचीन काल में पश्चिमी उत्तरप्रदेश, गुजरात, राजस्थान एवं महाराष्ट्र में इसका प्रचार प्रसार था।······मध्यप्रदेश की लिपि होने के कारण देवनागरी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लिपि है। इसमें लिखित सबसे प्राचीन लेख सातवीं, आठवीं शताब्दी के हैं। ग्यारहवीं शताब्दी तक यह लिपि पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी, और उत्तरीभारत में सर्वत्र इसका बोलबाला था। गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में इसमें ताड़पत्र पर लिखे हुए अनेक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं।''

देवनागरी का नामकरण–देवभाषा संस्कृत से सम्बन्धित होने के कारण इस लिपि को देवनागरी कहते हैं। कुछ भाषाशास्त्रियों का विचार है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों में प्रचलित होने के कारण इसे नागरी' लिपि कहा गया है। दूसरे भाषा शास्त्री इसे नगरों में प्रचलित होने के कारण 'नागरीलिपि' कहते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि बौद्धग्रन्थ 'ललित विस्तार' की नागलिपि से नागरी का उद्भव हुआ है; परन्तु बार्नेट के मतानुसार इन लिपियों में कोई सम्बन्ध नहीं है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि तान्त्रिक यन्त्रों में बनने वाले चिह्न देवनगर से मिलते-जुलते अक्षरों के कारण इसे 'देवनागरी' कहा गया है। कुछ लोगों का विचार है कि देवनगर अर्थात् काशी में प्रचलित होने के कारण इसे 'देवनागरी' कहा गया है। इन समस्त मतों की समालोचना करते हुए डा० भोलानाथ तिवारी लिखते हैं कि ये "मत कोरे अनुमान पर आधारित हैं। अतएव किसी को भी अधिक प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। यों नगरों में प्रचलित होने के कारण यह नागरीलिपि कहीं जाने लगी, यह मत विद्वानों को अधिक मान्य है।"

देवनागरीलपि की सक्षिप्त विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(१) इस लिपि में अड़तालिस (४८) चिह्न हैं। चौदह (१४) स्वर तथा सन्धि अक्षर और ३४ (चौंतीस) मूल व्यंजन हैं।

(२) यह लिपि वर्ण, रूप एवं क्रम आदि दृष्टियों से पूर्णत: वैज्ञानिक है।

(३) इसमें आधे अक्षरों का भी प्रयोग किया जाता है।

(४) इसमें स्वर के ह्रस्व एवं दीर्घ चिह्न विद्यमान हैं, और स्वरों की मात्रा भी निश्चित है।

(५) समस्त अनुनासिक ध्वनियों के लिये अलग अलग चिह्न हैं।

(६) इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि जिस प्रकार इसका उच्चारण होता होता है, ठीक उसी प्रकार लिखी भी जाती है।

(७) भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त विश्व की अनेक भाषाओं में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(८) प्रत्येक ध्वनि के लिये अलग-अलग चिह्न हैं।

(९) किसी भी भाषा की समस्त ध्वनियों को अंकित किया जा सकता है।

(१०) समस्त अघोषों के सघोष तथा अल्पप्राणों के महाप्राण रूप पाये जाते हैं।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि देवनागरीलिपि अनेक विशेषताओं से युक्त है। आज इस लिपि में अनेक दोष भी दिखाये जा रहे हैं। उदाहरण के लिये ऋ, ॠ और ऌ का प्रयोग करके अब लोग 'रि' 'री' और 'लिर' आदि के रूप में करते हैं। इसी प्रकार मूर्धन्य 'ष' को भी 'ख' या 'श' के रूप में बोलते हैं। ङ और ञ

ध्वनियों का प्रयोग न करके अनुस्वार चिह्न लगाते हैं । टंकण की सुविधा के लिए बड़ी वर्णमाला का लोग विरोध करते हैं । ये सब कुछ होने पर भी वस्तुत: देवनागरी लिपि वैज्ञानिक एवं पूर्ण है । इस प्रकार की आदर्श लिपि अन्य कोई लिपि नहीं है । इसकी पूर्णता एवं महत्ता को सभी भाषाशास्त्री स्वीकार करते हैं ।

व्युत्पत्तिशास्त्र (Low of etymology)

वाक्य-विज्ञान के अन्तर्गत व्युत्पत्तिशास्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है । व्युत्पत्तिशास्त्र के माध्यम से शब्दों के मूल का अध्ययन किया जाता है । इसमें शब्द के प्रकृति प्रत्यय पर विचार कर मूलार्थ को बतलाया जाता है । 'व्यु:पत्ति' शब्द का अर्थ भी यही है– विशेष उत्पत्ति । भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से ही व्युत्पत्तिशास्त्र पर कार्य होता चला आ रहा है । सर्वप्रथम इस शास्त्र के सम्बन्ध में वैयाकरणों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । प्राचीन समय में व्युत्पत्तिशास्त्र को निरुक्त नाम से पुकारा जाता था । आचार्य 'यास्क' का निरुक्त व्युत्पत्तिशास्त्र का सर्वप्रथम ग्रन्थ है । निरुक्त में शब्दों की तीन प्रकार की प्रवृत्ति बतलाई गई है–'त्रिविधा, हि शब्दप्रवृत्तय: प्रत्यक्षकृता, परोक्ष-कृता, अतिपरोक्षकृता ।' अतिपरोक्ष शब्दों का ज्ञान व्युत्पत्ति से ही सम्भव है। पाश्चात्त्यदेशों में भी प्लेटों के समय में व्युत्पत्तिशास्त्र का अध्ययन प्रचलित था । आधुनिककाल में 'स्वीट', 'यूल', वर्नर, टर्नर आदि विद्वानों ने व्युत्पत्तिशास्त्र पर कार्य किया है ।

व्युत्पत्तिशास्त्र अत्यन्त ही मनोरञ्जक विषय है । विभिन्न शब्द अपने कमरे में विचित्र-विचित्र कहानियाँ रखते हैं । संस्कृत में 'पश्यक' शब्द का अर्थ देखने वाला है । यही पश्यक शब्द अपने में उलट-फेर करके 'कश्यप' बन जाता है जिसका अर्थ 'सूर्य' है । क्योंकि सूर्य भी सकल जगत् का दृष्टा है । व्युत्पत्तिशास्त्र का कार्य गहराई से अन्वे-षण करने का है। प्राय: ध्वनिसमानता को देखकर किसी दूसरे शब्द को कुछ और समझ लेने से भ्रामक व्युत्पत्ति हो जाती है। कुछ शब्द असमान होते हुये भी समान जैसे लगते हैं और कुछ समान होते हुए भी असमान से प्रतीत होते हैं । उदाहरण के लिये अंग्रेजी का Bishop और उसका समानार्थक फ्रेंच शब्द Evegue, इन शब्दों में एक भी वर्ण की समानता नहीं है, परन्तु मूलत: ये दोनों ही शब्द ग्रीकभाषा के Episkops से उत्पन्न हैं । इसी प्रकार संस्कृत का 'स्वसृ' शब्द और फारसी का 'खाहर' शब्द का एक ही मूल है । इसी प्रकार कुछ शब्द बाह्यरचना की दृष्टि से समान होते हुए भी मूलत: असमान होते हैं :–

अंस	=	भाग	अंस	=	कन्धा
संकर	=	शंकर	संकर	=	मिश्रित
सर	=	बाण	सर	=	तालाब
सुर	=	स्वर	सुर	=	देवता

सूर	=	सूर्य	सूर	=	शूर (वीर)
काम	=	इच्छा	काम	=	धन्धा

इसी प्रकार अंग्रेजी Sound=स्वस्थ, Sound=ध्वनि, और Sound=तंग समुद्र, ये तीनों ही शब्द समान होने पर भी भिन्न-भिन्न शब्दों से निकले हैं।

शब्द व्युत्पत्ति के नियम :-

(१) शब्दों की व्युत्पत्ति का निश्चय अनुसन्धान पर आश्रित होना चाहिए। कल्पित एवं मनमानी व्युत्पत्ति उचित नहीं है। जिस प्रकार उपन्यास की तरह इतिहास की कल्पना नहीं की जा सकती है, उसी प्रकार शब्दों की व्युत्पत्ति भी कल्पना से सम्भव नहीं। शब्दों की व्यत्पत्ति ऐतिहासिक परम्परा एवं ठोस प्रमाण के आधार पर करनी चाहिए।

(२) व्युत्पत्ति के समय शब्द के विकास का काल-क्रम के अनुसार विवेचन होना चाहिए। क्योंकि शब्द के इतिहास को समझकर भ्रम की सम्भावना नहीं रहती है। उदाहरण के लिये हिन्दी का 'आज' शब्द संस्कृत से 'अद्य' शब्द का परिवर्तित रूप है। प्राकृत और अपभ्रंश में वह 'अज' के रूप में था और सम्प्रति हिन्दी में संयुक्त व्यञ्जन के अभाव में वह 'आज' हो गया है।

(३) शब्दों की व्युत्पत्ति में केवल बाह्य समानता को ही महत्व नहीं देना चाहिए। यदि कहीं कोई विशिष्ट ध्वनि नियम लागू नहीं होता है तो वहाँ अपवाद की भी व्यवस्था करनी चाहिए उदाहरणार्थ हिन्दी में 'साँप' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सर्प' से मानी जाती है, परन्तु अनुनासिकता के लिए कोई निश्चित नियम नहीं है।

(४) किन्हीं दो भाषाओं में समान ध्वनि तथा समान अर्थवाले शब्दों को बिना किसी विशेष अध्ययन के सम्बद्ध नहीं मानना चाहिए। उदाहरण के लिए अवधी का 'नियर' और अंग्रेजी का 'Near' अर्थ और ध्वनि को दृष्टि से समान होते हुए भी मौलिक दूरी को रखते हैं।

(५) व्युत्पत्ति के लिए ध्वनिनियमों का अत्यधिक महत्त्व है। ध्वनि-नियम सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नहीं होते हैं। प्रत्येक भाषा में परिवर्तन और विकास अपनी परम्परानुसार होते हैं। अतः व्युत्पत्ति करते समय ध्वनि-नियमों का ध्यान रखना चाहिए। व्युत्पत्ति के समय शब्द का मौलिक रूप जानना अपेक्षित है। इसके बिना शब्द की व्युत्पत्ति अधूरी ही रह जायगी।

(६) शब्द की व्युत्पत्ति करते समय जिस प्रकार शब्द के रूप और ध्वनि पर विचार करते हैं उसी प्रकार हमें शब्द के अर्थ पर भी विचार करना चाहिए। अनेक ग्रन्थकारों का ऐसा अभिमत है-

रूपसामान्यादर्थसामान्यं नेदीयः। (गोपथब्राह्मण १।१।२६)

अर्थनित्यः परीक्षेत। (निरुक्त २।१)

अर्थ सामान्यं बलीय: शब्दसामान्यात् । (दुर्गाचार्य टीका २।१)

कहने का आशय यह है कि ठीक-ठीक व्युत्पत्ति के लिए केवल शब्दों के रूप के अध्ययनन से काम नहीं चलता, उनके मूलरूप के अर्थों को समझना भी आवश्यक है। यदि नियमों को ध्यान में न रखा जाय तो शब्दों की व्युत्पत्तियाँ विचित्र हो जायगीं। डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री ने एक संस्कृत के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान् की कुछ व्युत्पत्तियां प्रस्तुत की हैं—

अजायब = अजीत पूर्व:,

हाजिर = इहाजिर: । इहैव अजिरं निवासो यस्य सः उपस्थिते ।

जापान	=	जयप्राण,	स्वीडन	=	सुयोधन,
अरब	=	आर्यवाह,	मिस्टर	=	मित्र

शब्द व्युत्पत्ति से सम्बन्धित स्वेच्छाचारिता के उदाहरण प्राचीनग्रन्थों में भी मिलते हैं। मनुस्मृति में 'मांस' की व्युत्पत्ति दृष्टव्य है :-

मां स भक्षयितामुत्र यस्य मासमिहादम्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिण: ।।

अर्थात् मैं जिसका मांस खा रहा हूँ। वह भी मेरे मांस को खायेगा। इस आशय से प्रयुक्त 'मां स" से 'मांस' शब्द बना है। इस प्रकार की व्युत्पत्तियाँ उपहासास्पद हैं। संस्कृत वैयाकरणों का कथन है कि व्युत्पत्ति करने में संज्ञाओं में पहले धातुरूप तत्पश्चात् प्रत्यय के विषय में सोंचे। कार्यों से अनुबन्ध आदि का विचार कर व्युत्पत्ति करें।

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च तप: परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ।।

जैसे–

अन्त में व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में डॉ० मङ्गलदेव के निम्नलिखित अभिमत को प्रस्तुत करना अस्वाभाविक न होगा। डॉ० शास्त्री लिखते हैं कि–"किसी शब्द की व्युत्पत्ति करने में अनेक प्रमाणों की, विस्तृत तुलना की और अत्यन्त सावधानता की आवश्यकता समझी जाती है।"

९ | हिन्दी भाषा

हिन्दी भाषा की परिभाषा, उसका साहित्यिक रूप एवं प्रमुख ग्रामीण बोलियाँ

संस्कृत भाषा के 'सिन्धु', 'सिन्ध' और 'सिन्धी' शब्दों के फारसी रूप 'हिन्दु', 'हिन्द' और 'हिन्दी' हो जाते हैं क्योंकि भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि संस्कृत की 'स' ध्वनि फारसी में 'ह' रूप में बदल जाती है। वस्तुतः सिन्धु एक नदी का, सिन्ध एक देश का और सिन्धी उस प्रदेश की जाति का नाम है। उस प्रदेश की भाषा का नाम भी 'सिन्धी' ही है। परन्तु फारसी में आये हुए हिन्दू, हिन्द और हिन्दी भिन्न अर्थ को रखते हैं। 'हिन्दू' से एक विशिष्ट जाति या धर्म को मानने वाले व्यक्ति का बोध होता है, हिन्द से भारतवर्ष का अर्थ प्रकट होता है, और 'हिन्दी' एक भाषा का वाचक शब्द है।

प्रयोग और रूप की दृष्टि से 'हिन्दवी' या हिन्दी शब्द फारसी भाषा से सम्बन्धित है और इसका अर्थ 'हिन्द' से सम्बन्ध रखने वाला होता है, अतएव यह फारसी में हिन्द देश के वासी और हिन्द देश की भाषा इन दोनों ही अर्थों में आता है। शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बोली जाने वाली किसी आर्य अथवा अनार्य भाषा के लिए हो सकता है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी उस विस्तृत भू-भाग की भाषा मानी जाती है जिसकी सीमायें पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वीभाग के पहाड़ी प्रदेश तक, पूर्व में भागलपुर, दक्षिणपूर्व में 'रायपुर' तथा दक्षिण-पश्चिम में 'खण्डवा' तक पहुँचती है। इस विस्तृत भू-भाग के निवासियों की साहित्यिक, पत्र-पत्रिका एवं शिक्षा-दीक्षा से सम्बन्धित तथा बोल-चाल की भाषा 'हिन्दी' है। विहारी भोजपुरी, मगधी, मैथिली, राजस्थानी, मारवाड़ी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, पहाड़ी आदि विभाषायें हिन्दी के अन्तर्गत आती हैं।

भाषाशास्त्र की दृष्टि से इस विस्तृत भू-भाग की तीन-चार भाषायें मानी जाती हैं--(१) राजस्थान की राजस्थानी, (२) विहार तथा बनारस, गोरखपुर कमिश्नरी की विहारी, (३) उत्तर में पहाड़ों की पहाड़ी और (४) अवध तथा छत्तीस

गढ़ की पूर्वी हिन्दी आदि । इस प्रकार भाषा के वैज्ञानिक विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि हिन्दी उस खण्ड की भाषा को कह सकते हैं जिसको प्राचीनकाल में मध्य देश कहते थे । इस प्रकार यदि आगरा को हिन्दी का केन्द्रबिन्दु मान लिया जाय तो उत्तर में हिमालय की तराई तक, पश्चिम में दिल्ली से आगे तक, पूर्व में कानपुर तक और दक्षिण में नर्मदा की घाटी तक हिन्दी का क्षेत्र माना जाता है। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि हिन्दी के पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी ये दो उपभेद हैं। परन्तु आधुनिक विद्वानों के मतानुसार पश्चिमी हिंन्दी को वास्तव में हिन्दी की संज्ञा दी गयी है । यही कारण है ग्रियर्सन, चटर्जी आदि ने हिन्दी का पश्चिमी हिन्दी के ही अर्थ में व्यवहार किया है। ब्रज, कन्नौजी, बुन्देली, बांगरू और खड़ो बोली को ही हिन्दी की विमाता माना है । अवधी, छत्तीसगढ़ो आदि को नहीं ।

खड़ी बोली :–हिन्दी की पाँच प्रधान विभाषायें हैं–(१) खड़ी बोली, (२) ब्रज़भाषा, (३) कन्नौजी, (४) बांगरू, (५) बुन्देली । खड़ी बोली आज साहित्य और व्यवहार की भाषा है । अधिकांश लोग ब्रजभाषा, अवधी आदि प्राचीन साहित्यिक भाषाओं से भेद दिखाने के लिये आधुनिक साहित्यिक हिन्दी को खड़ी बोली कहते हैं । यही खड़ी बोली आज राष्ट्र की भाषा है । इस भाषा में संस्कृत के तत्सम और अर्ध-तत्सम शब्दों का विशेष व्यवहार होता है । पढ़े-लिखे सभ्यलोग इसी का व्यवहार करते हैं ।

उर्दू–जब खड़ी बोली फारसी अरबी के तत्सम शब्दों को इतना आत्मसात् कर लेती है कि उसकी वाक्यरचना पर विदेशी छाप चढ़ जाती है तो उसे उर्दू कहते हैं । यह उर्दू भारतीय मुसलमानो की साहित्यिक भाषा है । व्याकरणात्मक दृष्टि से यदि देखें तो हिन्दी और उर्दू में कोई विशेष अन्तर नहीं है । ये दोनों भाषाय खड़ी बोली के दो साहित्यिक रूप हैं । एक ढांचा भारतीय परम्परागत हैं, और दूसरा फारसी परम्परागत ।

हिन्दुस्तानी–खड़ी बोली का ही एक और विकृत रूप है जिसे न तो शुद्ध साहित्यिक ही कह सकते हैं और न ही ठेठ बोलचाल की बोली ही, जिसे हिन्दुस्तानी कहते हैं । यह विशाल हिन्दी प्रान्त के लोगों की परिमार्जित बोली है । इसमें संस्कृत, फारसी, अरबी के अतिरिक्त अंग्रेजी के भी शब्द पाये जाते हैं । हिन्दुस्तानी नाम के जन्मदाता अंग्रेज अफ़सर हैं । वे जिस साधारण लोगों से विचार विनिमय करते थे उसे हिन्दुस्तानी कहा जाने लगा । एक विद्वान् ने लिखा है कि "पुरानी हिन्दी उर्दू और अंग्रेजी के मिश्रण से जो एक नई जबान आप से आप बन गयी है वह हिन्दुस्तानी के नाम से मशहूर है ।" किस्से, गजल, भजन, आदि की भाषा को हिन्दुस्तानी का ही एक रूप कह सकते हैं । ये हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी तीनों ही खड़ी के रूपान्तर मात्र हैं ।

बांगरू–यह हिन्दी की दूसरी विभाषा बांगरू बोली हैं । यह 'बाँगर' अर्थात् पंजाब के दक्षिणपूर्व भाग में बोली जाती है । दिल्ली, कर्नाल, रोहतक, हिसार, पटि-

याला, नाभा और झींद आदि की ग्रामीण बोली है। यह पंजाबी, राजस्थानी और खड़ी बोली का मिश्रित रूप है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग २४ लाख है। पानीपत और कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध मैदान इसी बोली के अन्तर्गत हैं।

ब्रजभाषा–यह ब्रज मण्डल में बोली जाती है। इसका विशुद्ध रूप आज भी मथुरा, आगरा, अलीगढ़ और धौलपुर में पाया जाता है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ८१ लाख है। ब्रजभाषा में इतना सुन्दर और विस्तृत साहित्य लिखा गया कि उसे विभाषा से भाषा का पद मिल गया। यह भाषा अत्यन्त सुकुमार, मधुर, सरस एवं प्राञ्जल है। आज भी अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य रचना करते हैं।

कन्नौजी–कन्नौजी का क्षेत्र ब्रजभाषा और अवधी के मध्य का है। इसका क्षेत्र मुख्य तथा फरुर्खाबाद हैं। परन्तु उत्तर में हरदोई, शाहजहांपुर और पीलीभीत तक और दक्षिण में इटावा तथा कानपुर के पश्चिमी भाग में भी इसका प्रचलन है। कन्नौजी और ब्रजभाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। अतः इसे ब्रज का ही एक उपरूप कहते हैं।

बुन्देली–यह बुन्देलखण्ड की बोली है। शुद्ध रूप में इसका अधिकार क्षेत्र झांसी जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद तक है। इसके अनेक मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट और छिन्दबाड़ा के कुछ भू-भागों में पाये जाते हैं। इसे बोलने वाले लगभग ७१ लाख हैं। बुन्देली और ब्रजभाषा में काफी समानता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ब्रज, कन्नौजी और बुन्देली में एक ही बोली के तीन प्रादेशिक रूप हैं।

अवधी–हरदोई जिले को छोड़कर शेष अवध की बोली अवधी है। यह लखनऊ, रायबरेली, उन्नाव, सीतापुर, फैजाबाद, गोंडा, प्रतापगढ़ में बोली जाती है। इलाहाबाद, कानपुर, मिर्जापुर और जौनपुर के कुछ भूभागों में इसके बोलने वाले पाये जाते हैं। फतेहपुर के कुछ भाग में इसका प्रभाव दीखता है। अवधी भाषा-भाषियों की संख्या लगभग १ करोड़ ५६ लाख तक है। पद्मावत्, रामचरितमानस आदि सुप्रसिद्ध ग्रन्थ इसी भाषा में लिखे गये हैं।

बघेली—अवधी दक्षिण में बघेली का अधिकार क्षेत्र है। इसका मुख्य केन्द्र 'रींवा' राज्य है। मध्यप्रदेश के दमोह, माण्डला और बालाघाट के जिलों तक फैली हुई है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ४८ लाख है।

छत्तीसगढ़ी–यह बोली मध्य प्रान्त में रायपुर, विलासपुर तथा काँकेर, नन्दगाँव, रायगढ़, कोरिया, उदयपुर आदि राज्यों में भिन्न-भिन्न रूपों में बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ३५ लाख है। इसका कोई भी प्राचीन साहित्य उपलब्ध नहीं है।

परिणामस्वरूप हम कह सकते हैं कि मुख्य चार बोलियाँ हिन्दी भाषा के अन्त-

र्गत आती हैं–(१) मेरठ, बिजनौर की खड़ी बोली, (२) मथुरा, आगरा की ब्रजभाषा, (३)लखनऊ, फैजाबाद उन्नाव की अवधी और (४) बनारस, गोरखपुर की भोजपुरी। ब्रजभाषा और अवधी के मध्य की ही कन्नौजी एक बोली है। बांगरू बोली हिन्दी की सरहदी बोली है। हिन्दी का अधिकारक्षेत्र पश्चिम में राजस्थान तथा पूर्व में विहार तक है। अतः राजस्थान तथा विहार की भाषाओं को हिन्दी की उपभाषा माना जा सकता है। इस प्रकार इन भाषाओं की बोलियाँ भी हिन्दी के अन्तर्गत आ जाती हैं।

हिन्दी 'शब्द समूह' का उद्गम एवं उसका वर्गीकरण

भाषा में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। विभिन्न भाषा-भाषियों के एक दूसरे से विचारविनियमय करने पर एक भाषा के शब्दों का प्रभाव दूसरी भाषा पर पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार की प्रत्येक भाषा में विदेशी शब्दों का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य होता है। संसार की दूसरी भाषाओं के समान हिन्दी भाषा के शब्द समूह भी अन्याय भाषाओं के शब्द से मिलते हैं। हिन्दी के शब्दसमूह को सुविधा की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया गया है :–

(१) भारतीय आर्य-भाषाओं का शब्दसमूह।

(२) भारतीय अनार्य-भाषाओं से प्राप्त हुये शब्द।

(३) विदेशी भाषाओं के शब्द।

(१) **भारतीय आर्य-भाषाओं का शब्दसमूह**-हिन्दी भाषा का समूह तत्सम और तद्भव शब्दों से परिपूर्ण है। इन दोनों ही प्रकार के शब्दों का सम्बन्ध संस्कृत भाषा से है। जिन्हें सीधे संस्कृत से ले लिया गया है, उन शब्दों को तत्सम और जो सीधे संस्कृत से न आ करके परम्परया प्राकृत, पाली एवं अपभ्रंश के द्वारा आये हैं, उन्हें तद्भव कहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि तद्भव शब्दों का सम्बन्ध भी संस्कृत भाषा के शब्दों से है। परन्तु उनमें कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो प्राचीन आर्य-भाषा से आये हुए है। इस प्रकार के शब्द मध्यकालीन आर्य-भाषाओं से होकर हिन्दी में प्रविष्ट हुए हैं। साधारण लोगों की बोलचाल की भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिकांश मिलता है। उदाहरण के लिये कृष्ण को कान्ह, कान्हा, कन्हाई कन्हैया, किशन आदि शब्दों से व्यवहृत करते हैं। प्राचीनकाल की हिन्दी में भी तद्भव शब्दों का प्राचुर्य रहा है। परन्तु आधुनिककाल की साहित्यिक कृतियों एवं पढ़े लिखे लोगों की बोलियों में तत्सम रूपों का व्यवहार अधिक पाया जा रहा है। सम्भवतः इनके प्रयोग के मूल से वैदुष्य एवं अपने को अधिक सभ्य या बड़े परिवार से सम्बन्धित होना ही कारण रहा है। इन संस्कृत शब्दों में कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो कि विकृत तो हो गये हैं परन्तु उच्चारण की सरलता के कारण परिर्वातत नहीं हुए हैं। इस प्रकार के शब्दों को अर्थ तत्सम कहते हैं। उदाहरण से लिए 'लुनाई' संस्कृत का तद्भव रूप है और 'लौनता'

या 'लवनता' अर्ध तत्सम रूप हैं; क्योंकि ये संस्कृत के लवणता के ही कुछ विकृत रूप हैं।

(२) **भारतीय अनार्य-भाषाओं से प्राप्त शब्द**—हिन्दी में कुछ ऐसे भी शब्द मिलते हैं जो कि प्राचीनकाल में अनार्य भाषाओं से आये हैं। अनेक प्राकृत शब्द जो कि संस्कृत में नहीं उपलब्ध होते हैं, परन्तु द्रविड़, तमिल, तेलगू आदि अन्य भाषाओं में पाये जाते हैं। परन्तु इस प्रकार के शब्द हिन्दी में बहुत ही कम मिलते हैं। इन भाषाओं से प्राप्त शब्द हिन्दी में परिवर्तित अर्थों में प्रयुक्त होते है। उदाहरण के लिए द्रविड़ में 'पिले' का अर्थ 'पुत्र' होता है, वही शब्द हिन्दी में आकर 'पिल्ला' का रूप धारण कर लेता है जो कि कुत्ते के बच्चे का वाचक हो जाता है। हिन्दी शब्द समूह के मूर्घन्य वर्ण द्रविड़ भाषा से प्रभावित हैं। हिन्दी का 'कोड़ी' शब्द 'कोल' भाषाओं से प्राप्त हुआ है।

(३) **विदेशी भाषाओं के शब्द**--संस्कृत के तत्सम, तद्भव और भारतीय अनार्य भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में विदेशी भाषा के शब्दों की भी भरमार है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हिन्दी के उद्भव एवं विकास के अधिकांश समय में भारत की बागडोर विदेशियों के हाथ में रही है। यही कारण है कि हिन्दी भाषा पर विदेशी भाषाओं का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। मुसलमानों और अंग्रेजों के भारत में बहुत समय तक शासन के कारण इस देश की भाषा पर मुसलमानी और यूरोपीय प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। परन्तु ये विदेशी शब्द हिन्दी भाषा में इस प्रकार से घुल-मिल गये हैं कि देखने में सहसा विदेशी नहीं मालूम देते हैं। १००० ई० के लगभग फारसी भाषा बोलने वाले तुर्कों ने पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया था। शनैः-शनैः उनका प्रभाव और बढ़ता ही गया। परिणाम स्वरूप हिन्दी भी प्रभावित हो गयी थी। उस समय फारसी भाषा को ही दरबारी और साहित्यिक भाषा का पद मिला था, अतः ग्रामीण बोलियों में भी फारसी के शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग होने लग गया था। सूर, तुलसी जैसे विशुद्ध हिन्दी कवियों के काव्यों में भी फारसी शब्दों का प्रयोग मिलता है। हिन्दी भाषा में सर्वाधिक फारसी शब्द पाये जाते हैं। अरबी और तुर्की भाषा के जो शब्द हिन्दी में मिलते हैं, वे फारसी से होकर आये हैं। जैसे :-

(१) **फारसी**- आदमी, औरत, बच्चा, हवा, आसमान, जमीन इत्यादि।

(२) **अरबी**- अल्लाह, पैगम्बर, नमाज, रोजा आदि।

(३) **पस्तो**- रोहिला, पठान।

(४) **तुर्की**- उर्दू, कैंची, कुली, गलीचा, दरोगा, लाश, इत्यादि।

हिन्दी के विदेशी शब्दों में फारसी शब्दों के पश्चात् अंग्रेजी शब्दों की संख्या सबसे अधिक है। १५०० ई० से यूरोपीय लोगों का भारत में आना प्रारम्भ हो गया

था । सर्वप्रथम यहाँ पुर्तगाली आये थे जिनका प्रभाव सीमित क्षेत्र में रहा । इसके पश्चात् फ्रांसीसियों का शासन भी रहा है । इनके बाद अंग्रेजों ने तो लगभग भारत के सम्पूर्ण भू-भाग पर आधिपत्य जमा लिया था । उनका प्रभाव क्षेत्र और समय दोनों ही दृष्टियों से अधिक व्यापक रहा है । इस प्रकार यूरोपीय भाषाओं के अनेक शब्द हिन्दी में प्रविष्ट हो गये हैं । इन यूरोपियों के अतिरिक्त 'डच' लोग भी भारत में आये । अतः 'डच' भाषा के शब्द भी हिन्दी में मिलते हैं ।

(१) **पुर्तगाली**– आलमारी, अचार, आलपिन, कमीज, गोभी, तम्बाकू, चाभी इत्यादि ।

(२) **फ्रेञ्च**– कारतूस, अंग्रेज इत्यादि ।

(३) **डच**– चिड्डी या चिड़िया, तुरुप, बम इत्यादि ।

(४) **अंग्रेजी**– टाइम, टिकट, रेल, मोटर, रेडियो, मिनट, कोट, मशीन, सूटकेश, मास्टर, डाक्टर इत्यादि ।

इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा का शब्दसमूह आर्य, अनार्थ एवं विदेशी शब्दों से परिपूर्ण है । कहीं-कहीं विभिन्न भाषाओं के शब्द एक रूप में मिल गये हैं । जैसे– अंग्रेजी + हिन्दी = रेल + गाड़ी, संस्कृत + फारसी = दल + बन्दी = दलबन्दी, इत्यादि ।

हिन्दी भाषा का विकास

भाषाविज्ञान में आदिकाल की भाषा से लेकर आज तक की भाषाओं का अध्ययन होता है । भाषा की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में पर्याप्त कार्य हो चुका है तथापि उनके मूल पहलू निश्चित नहीं हुये हैं । कारण यह है कि मानवजीवन का प्रारम्भ ही अभी तक अनसुलझी पहेली बना हुआ है । प्रत्यक्ष और शब्दप्रमाण के अभाव में अनुमानप्रमाण के द्वारा ही भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषावैज्ञानिकों ने कुछ प्रयास किये हैं जो कि भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के मूल स्तम्भ हैं ।

भाषा समाज के साथ समवाय सम्बन्ध रखने वाली सापेक्ष वस्तु है । ऐसी दशा में किसी भी भाषा के आविर्भावकाल को एक निश्चित सीमा में नहीं रखा जा सकता है । यही नियम हिन्दी के पक्ष में भी लागू होगा ।

सामान्य तौर से हिन्दी का आविर्भावकाल ११०० ई० के आसपास माना जाता है । परन्तु कतिपय विद्वानों का मत है कि हिन्दी १००० ई० के पूर्व ही अपनी प्रारम्भिक स्थिति में आ चुकी थी । अध्ययन की दृष्टि से हम हिन्दी को तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं–

(१) प्राचीनकाल (११०० ई० से १५०० ई० तक)

(२) मध्यकाल (१५०० ई० से १८०० ई० तक)

(३) आधुनिककाल (१८०० ई० से अब तक)

प्राचीनकाल:– प्राचीनकाल की हिन्दी प्राकृतों तथा अपभ्रंश भाषाओं से पूर्णतया प्रभावित थी और हिन्दी की बोलियाँ निश्चित रूप से विकसित नहीं हो पाई थीं। कारण मह था कि बोलने वाले विभिन्न प्रकार की प्राकृतों या अपभ्रंशों का का उनमें भिन्न रूपों में प्रयोग करते थे।

मध्यकाल:– इस काल में हिन्दी भाषा से अपभ्रंश भाषाओं का प्रभाव बिल्कुल हट गया था, और हिन्दी की बोलियाँ विशेषतया ब्रज और अवधी अपने मौलिक स्वरूप को प्राप्त कर चुकी थीं। कारण यह है कि इस समय तक प्राकृत और अपभ्रंश भाषायें जनसाधारण की न रहकर पुस्तकों और पण्डितों तक ही सीमित रह गई थीं।

आधुनिककाल:– आधुनिककाल में तो हिन्दी की स्थिति ही परिवर्तित हो गई। मध्यकालीन हिन्दी संस्कृत के शब्दों को प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से लेती थीं, परन्तु जब से साहित्यक प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी में खड़ी बोली का बोलबाला हो गया था तब से हिन्दी बिना किसी हिचक के संस्कृत भाषा से सीधे ही शब्दों को ग्रहण करने लग गई। पुरानी हिन्दी और नई हिन्दी में यही मौलिक भेद है। मध्यकालीन हिन्दी में संस्कृत के तद्भव शब्दों का प्राचुर्य है, जबकि आधुनिककाल की हिन्दी में भाषा की प्रकृति तत्मम शब्दों की ओर झुकी हुई-सी है।

डा० श्यामसुन्दर दास का अभिमत है कि "हेमचन्द्र" के समय से हिन्दी का विकास होने लग गया था, और चन्द्र के समय तक उसका कुछ-कुछ रूप स्थिर हो गया था। अतएव हिन्दी का आदिकाल हम सम्बत् १०५० के आस-पास मान सकते हैं।

डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के अनुसार "सम्भवत: ई० सन् ७७८ के पहले से ही हिन्दी बोली जाती रही होगी।" उन्होंने अपने इस तर्क के समर्थन में लिखा है कि एक कुवलयमाला कथा नामक ग्रन्थ में यह वर्णन आया है कि देश-विदेश के अनेक व्यापारी अपनी-अपनी भाषा में बोलते थे, उनमें मध्यदेश का भी एक व्यापारी था जिसके मुख में तेरे, मेरे, आउ इत्यादि शब्दों का उच्चारण विद्यमान था। ये तेरे मेरे और आउ शब्द हिन्दी के ही हैं। इसके अतिरिक्त पुष्य नामक कवि (७२५ ई०) का अलंकार-शास्त्र, अब्दुल एराकी (८७० ई०) का (कुरान का हिन्दी अनुवाद), मशदुद– सादसालया (९०० ई०) का हिन्दी का एक दीवाना एवं कलिंजर के राजा नन्द (१०१३ ई०) का लिखा हुआ एक शेर आदि का उल्लेख किया जाता है। परन्तु इन रचनाओं के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं। चन्द्रवरदायी द्वारा प्रणीत 'पृथ्वीराज' रासो हिन्दी का सर्वप्रथम काव्य-ग्रन्थ कहा जाता है। परन्तु इसकी भाषा के सम्बन्ध में– विद्वानों में मतभेद है।

जिस समय हिन्दी भाषा अपने मौलिक स्वरूप को धारण कर रही थी उस समय हिन्दी प्रदेश तीन भागों में विभक्त था –

(१) दिल्ली (अजमेर का चौहानवंश)
(२) कन्नौज (राठौर वंश)
(३) महोबा (परमाल वंश)

प्राचीन हिन्दी कवि नरपति नाल्ह और चन्द्र अजमेर तथा दिल्ली से सम्बन्धित थे। कन्नौज के अन्तिम सम्राट् जयचन्द्र हुए हैं। इनके यहाँ हिन्दी भाषा की अपेक्षा संस्कृत और प्राकृत का विशेष महत्त्व था। संस्कृतभाषा के नैषधीयचरित महाकाव्य के लेखक श्रीहर्ष जयचन्द्र के दरबारी राजकवि थे। महोबा के राजकवि जगनिक का नाम आज भी प्रसिद्ध है। इन तीनों ही राज्यों के संरक्षण में हिन्दी पल्लवित एवं पुष्पित हुई है। इसी मध्य में भारत में यवन राज्य की स्थापना होती है, परिणामतः हिन्दी को प्रोत्साहन मिलना बन्द हो जाता है। एकमात्र अमीर खुशरो ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया था। पूर्वी भारत में धार्मिक आन्दोलनों के कारण ही कुछ हिन्दी रचनायें हुईं। इनमें गोरखनाथ, रामानन्द, कबीर जैसे महात्माओं का नाम उल्लेखनीय है।

प्रारम्भिक रचनाओं की भाषा प्रायः अपभ्रंश है। पं० चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका में 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक लेख में जो नमूने दिये हैं उनमें हिन्दी के प्राचीन रूप कम पाये जाते हैं। अधिकांश रूपों में प्राचीन राजस्थानी के नमूने मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें अपभ्रंश की इतनी गहरी छाप है कि उन्हें अपभ्रंश साहित्य में रखना अधिक उचित है। इस समय के प्रामाणिक ग्रन्थ हेमचन्द्र विरचित 'कुमारपालचरित' तथा 'सिद्धहेमव्याकरण' हैं। १३०४ई० में आचार्य मेरुतुंग ने 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक संस्कृत ग्रन्थ लिखा था जिसमें कुछ प्राचीन पद्य उद्धृत मिलते हैं, जो अपभ्रंश और हिन्दी के मध्य के हैं। शार्ङ्गधरपद्धति में साबरमन्त्र और चित्रकाव्य के कुछ ऐसे नमूने मिलते हैं जिनमें हिन्दीभाषा के कुछ शब्द पाये जाते हैं।

नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव रासो' के अजमेर में लिखे जाने के कारण उसकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव है। चन्द्रवरदायी का कविताकाल ई० ११६८ से ११९२ तक है। पृथ्वीराज रासो सम्पूर्णरूप में 'चन्द्र' द्वारा ही रचित हैं, इस मत में विद्वानों में मतैक्य नहीं हैं।

खुशरो का समय १२५५ से १३२५ ई० तक माना जाता है। इनके समस्त ग्रन्थ फारसी में ही मिलते हैं। इनके हिन्दी कविता के नमूने का आधार एकमात्र जनश्रुति है।

गोरखनाथ का समय १०वीं शताब्दी है। इनकी कृतियाँ 'गोरखबानी' नामक संग्रह में प्रकाशित हुई हैं।

विद्यापति का 'कीर्तिलता' नामक ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में है। इनके पदों का संग्रह किया गया है। इनकी भाषा मैथिल और बंगला है।

कबीरदास की कृति अधिक समय तक मौखिकरूप में ही चलती रही है।

परिणामत: उसमें नवीन शब्दों का भी समावेश हो गया है।

उपर्युक्त ग्रन्थों की भाषा से निर्धारण की समस्या पूर्णतया संदिग्ध है, क्योंकि इन ग्रन्थों की उस-उस काल की प्रामाणिक हस्तलिखित कृति प्राप्त नहीं है। अत: मौखिक रूप में रहने के कारण इनमें परिवर्तन-परिवर्धन स्वाभाविक है।

दक्षिण भारत में विकसित हिन्दवी अथवा दक्षिणी उर्दू का प्रारम्भ १३२६ ई० के बाद हुआ है। इसमें प्रारम्भिक कवि मुसलमान सूफी फ़कीर हैं।

१५०० से १८०० ई० तक हिन्दी के विकास का मध्यकाल माना जाता है। १५२६ ई० के लगभग देश का शासन तुर्की सम्राटों के हाथ से निकलकर मुगलों के अधिकार में आ गया था। इस काल में साहित्य-चर्चा विशेष रूप से हुई है। अवधी और ब्रज ये दो साहित्यिक रूप १६वीं शताब्दी में विकसित हुए हैं। इस समय में सूरदास तथा गोस्वामी तुलसीदास ने जो अनुपम निधि हिन्दी साहित्य को दी है। वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। शनै:-शनै: १७वीं शताब्दी में प्राय: समस्त हिन्दी साहित्य ब्रजभाषा में लिखा गया है और इसके पश्चात् हिन्दीभाषा का स्वरूप दिन-प्रतिदिन परिष्कृत, साहित्यिक और सुसंस्कृत होता चला गया है। बुन्देलखण्ड तथा राजस्थान जैसे देशी राज्यों के सम्पर्क में आने के कारण इस काल के अनेक कवियों की भाषा में बुन्देली तथा राजस्थानी बोलियों का प्रभाव आ गया है। उदाहरण के लिए केशवदास की भाषा में बुन्देली का प्रयोग अधिक मिलता है।

इस समय के सूर, तुलसी, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, कृष्णदास, बिहारी, देव, मतिराम, केशव, चिन्तामणि, घनानन्द, सेनापति आदि प्रसिद्ध कवि हैं।

इस काल की भाषा के प्रारम्भिक रूप जैसे क्रिया, सर्वनाम इत्यादि अपभ्रंश से अधिक प्रभावित हैं। इनमें विदेशी शब्दों का भी प्राचुर्य है।

अंग्रेजों के शासन-काल में हिन्दी अपने रूप को बदलती-बदलाती खड़ी बोली के रूप में आ गई थी। श्री लल्लू लाल जी, मुन्शी सदासुख लाल, सैयद इन्सा अल्ला खाँ और सदल मिश्र, इन व्यक्तियों का खड़ी बोली के विकास के सन्दर्भ में पर्याप्त योगदान रहा है। साहित्यिक क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से खड़ी बोली के विकास की परम्परा प्रारम्भ होती है। उसी समय से हिन्दी में गद्य-साहित्य का आविर्भाव होता है। आधुनिक खड़ी बोली को विशेषतया गद्य-भाषा को अधिक परिष्कृत, प्राञ्जल एवं प्रवाहपूर्ण बनाने का श्रेय आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, श्री जयशंकर 'प्रसाद' आदि उच्च श्रेणी के लेखकों को है। खड़ी बोली का विकास अब भी हो रहा है। गद्य और पद्य दोनों के माध्यम से निरन्तर साहित्य सृजन होता चला आ रहा है। इस प्रकार हिन्दी भाषा का क्रमिक विकास आज भी हो रहा है।

हिन्दी भाषा का क्षेत्र तथा पूर्वी एवं पश्चिमी हिन्दी का तात्त्विक अन्तर–

भाषावैज्ञानिकों में हिन्दी भाषा के क्षेत्र के सन्दर्भ में पर्याप्त मतभेद है। डॉ० ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया है उससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि राजस्थानी एवं बिहारी उपभाषायें हिन्दी के क्षेत्र से बाहर हैं। डॉ० चटर्जी ने भी इन्हें हिन्दी के क्षेत्र में स्वीकार नहीं किया है। इन्हीं के अनुकरण पर डॉ० उदयनारायण तिवारी ने राजस्थानी और बिहारी उपभाषाओं को हिन्दी क्षेत्र से बाहर ही माना है। इन लोगों के अनुसार पश्चिमी हिन्दी में खड़ी बोली, बांगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी और बुन्देलखण्डी तथा पूर्वी हिन्दी में अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी आती हैं।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी क्षेत्र निर्धारण के विषय में इस प्रकार कहा है कि "इस भूमि-भाग की सीमाएँ पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिणपूर्व में रायपुर और दक्षिण-पश्चिम में खण्डवा तक पहुँचती हैं।" वस्तुतः डॉ० वर्मा का यह मत उचित है। भारतीय संविधान में भी इस समस्त भू-भाग को हिन्दी भाषा-भाषी माना गया है। आशय यह है कि पूर्वी पंजाब, हिमांचल प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार, इन सातों राज्यों का सम्मिलित भू-भाग हिन्दी भाषा का क्षेत्र है। इस प्रकार राजस्थानी और बिहारी उपभाषाओं को हिन्दी क्षेत्र में सम्मिलित करना औचित्यमूलक है। पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत जिन उपभाषाओं की गणना होती है, उन्हीं के अन्तर्गत राजस्थानी को भी सम्मिलित करना चाहिए और इसी प्रकार पूर्वी हिन्दी की उपभाषाओं में बिहारी उपभाषाओं को सम्मिलित कर लेना चाहिए।

पश्चिमी एवं पूर्वी हिन्दी का तात्त्विक अन्तर

(१) उच्चारण तथा रूप-रचना की दृष्टि से भेद

(क) उच्चारण एवं रूप-रचना की दृष्टि से भी पूर्वी एवं पश्चिमी हिन्दी में भेद है। 'अ' स्वर का उच्चारण पश्चिमी हिन्दी में अधिक विवृत है जबकि पूर्वी हिन्दी में यह अधिक विवृत नहीं है। अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी और पश्चिमी भोजपुरी में भी 'अ' का उच्चारण विवृत हो जाता है। जबकि मगही, मैथिली और पूर्वी भोजपुरी में इसका उच्चारण कुछ विलम्बित रीति से किया जाता है। हम ज्यों-ज्यों पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ते हैं, त्यों-त्यों 'अ' का उच्चारण अविक विवृत होता जाता है।

(ख) पश्चिमी हिन्दी के 'ड' और 'ढ' वर्ण पूर्वी हिन्दी के अधिकांश शब्दों में 'र' और 'र्‌ह' वर्ण में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे :–

पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी
तोड़ना	तोरना
फोड़ना	फोरना
रगड़ना	रगरना
झगड़ना	झगरना
सड़ना	सरना
आषाढ़ (अषाढ़)	असार्ह
बाढ़	बार्ह
काढ़	कार्ह
टेढ़	टेर्ह

परन्तु कुछ शब्दों में परिवर्तन नहीं भी होता है। जैसे—किन्हीं-किन्हीं स्थानों में 'बाढ़' को बार्ह न बोलकर 'बाढ़ि' ही बोलते हैं।

(ग) पश्चिमी हिन्दी के अनेक शब्दों में 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग करते हैं। जैसे :–

पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी
फल	फर
फले	फरे
जले	जरे
हल	हर

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'ल' के स्थान पर 'र' का ही प्रयोग किया है। यथा--"सब तरु फरे राम हित लागी" और "तुलसी धरा को प्रमाण यही जो 'फरा' सो झरा औ 'जरा' सो बुतानो" इत्यादि।

(घ) पश्चिमी हिन्दी में शब्दों के मध्य में स्थित 'ह' का प्राय: लोप हो जाता है परन्तु पूर्वी हिन्दी में 'ह' विद्यमान रहता है। जैसे :--

पूर्वी हिन्दी	पश्चिमी हिन्दी
दिहिसि	दिया
लिहिसि	लिया
गहिसि	गहा
भहिसि	भया

(ङ) पश्चिमी हिन्दी में शब्द के प्रारम्भ में 'य' और 'व' का प्रयोग मिलता है। परन्तु पूर्वी हिन्दी में ये क्रमश: 'ए' और 'ओ' में बदल जाते हैं और कहीं-कहीं मध्य में 'ह' आ जाता है। जैसे :--

पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी
यामें	एमें (एहिमें) तथा (यहिमां)
वामें	वोमें (ओहिमें) तथा (वहिमां)

(च) पश्चिमी हिन्दी के ए-ऐ और ओ-औ पूर्वी हिन्दी में प्राय: क्रमशः 'अइ' और 'अउ' हो जाते हैं। जैसे--

पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी
कहे	कहइ
कहै	कहइ
मोर	मउर
मोर	मउर
और	अउर

(छ) पश्चिमी हिन्दी में दो स्वर एक साथ प्रयुक्त नहीं होते हैं जबकि पूर्वी हिन्दी में दो स्वर एक साथ ही प्रयुक्त हो जाते हैं। जैसे :--

पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी
भैया	भइया
गैया	गइया
मैया	मइया
दैया	दइया

(ज) पश्चिमी हिन्दी के 'आकारान्त' और 'ओकारान्त' पूर्वी हिन्दी में 'अकारान्त' हो जाते हैं। जैसे :--

पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी
बड़ा	बड़
बड़ो	बड़
बड़ौ	बड़
छड़ा	छड़
छड़ौ	छड़

(झ) पश्चिमी हिन्दी में कर्ता कारक में शब्द का अकारान्त रूप होता है और विकारी कारकों में ए' हो जाता है। किन्तु पूर्वी हिन्दी में दोनों प्रकार के कारक रूप एक से ही रहते हैं उनमें कोई भी परिवर्तन नहीं होता है। जैसे :--

पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी
कर्ताकारक--घोड़ा, बकरा	घोड़ा, बकरा
विकारी कारक–घोड़े, बकरे	घोड़ा, बकरा

(२) सर्वनाम शब्दों की दृष्टि से भेद

(क) पश्चिमी हिन्दी के सम्बन्धसूचक सर्वनाम 'जो', 'सो' और प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कौन' का परिवर्तन पूर्वी हिन्दी में क्रमशः जे=जवन, ते=तवन, के=कवन में हो जाता है।

(ख) उत्तम पुरुष सम्बन्धकारक एकवचन का पश्चिमी हिन्दी का 'मेरा' शब्द पूर्वी हिन्दी में 'मोर' हो जाता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि अधिकार-वाची सर्वनामों में पश्चिमी हिन्दी का 'ए' पूर्वी हिन्दी में 'ओ' में बदल जाता है। जैसे :--

पश्चिमी हिन्दी	**पूर्वी हिन्दी**
तेरा	तोर

(ग) पश्चिमी हिन्दी में उत्तम पुरुष का एकवचन 'मैं' तथा बहुवचन 'हम' का प्रयोग होता है। परन्तु पूर्वी हिन्दी में 'मैं' और 'हम' दोनों के स्थान पर 'हम' का ही प्रयोग होता है। जैसे :--

पश्चिमी हिन्दी (खड़ी बोली)	**पूर्वी हिन्दी**
मैं नहीं जानता हूँ।	हम नहीं जानति।
हम जा रहे हैं।	हम लोग जाइत हैं।

(३) परसर्गों के प्रयोग की दृष्टि से भेद

पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी में परसर्गों के प्रयोगों में भी अन्तर मिलता है। 'क' एवं 'म' परसर्गों का प्रयोग पूर्वी हिन्दी की अपनी विशेषता है। इसमें 'कँ' 'मँ' 'के' 'में' आदि भी प्रयुक्त होते हैं। पश्चिमी हिन्दी में 'ने' परसर्ग का प्रयोग होता है। जिसका कि पूर्वी हिन्दी में सर्वथा अभाव है। जैसे :--

पश्चिमी हिन्दी (खड़ी बोली)	**पूर्वी हिन्दी (अवधी)**
उसने किया	उ किहिसि
उसने खाया	उ खाइसि

(४) क्रिया रूपों के प्रयोग की दृष्टि से भेद

पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी के क्रिया रूपों के प्रयोग में भी पर्याप्त पार्थक्य मिलता है। जैसे :--

पश्चिमी हिन्दी	**पूर्वी हिन्दी**
किया	किहिसि
खाया	खाइसि
हूँ	अहेउँ

काल-रचना की दृष्टि से वर्तमान, भूत और भविष्यत् काल के रूपों में पूर्वी

और पश्चिमी हिन्दी में अन्तर नहीं है । परन्तु क्रिया शब्दों की रचना में अन्तर है । जैसे :–

	पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी
'अ' (वर्तमानकाल)	जाता है ।	जात या जाति है ।
'ब' (भूतकाल)	मारा, मार्‍यो ।	मार्‍यो ।
'स' (भविष्यत् काल)	मारूँगा, मारिहौं ।	मारबूं या मारिबै (मरिबै)

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूपात्मकदृष्टि से पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी में पर्याप्त अन्तर है । इसके अतिरिक्त भी अनुसंधान के द्वारा गूढ़ान्तर का अन्वेषण किया जा सकता है ।

हिन्दी भाषा के परसर्गों (कारक चिह्नों) का उद्भव और विकास

संसार की समस्त भाषाओं के विकास के पर्यवेक्षण से यह ज्ञात होता है कि यूरोपीय भाषा में उपसर्गों के द्वारा संज्ञा सम्बन्ध को प्रकट करने की प्रणाली थी । परन्तु भारतीय आर्यभाषाओं में उपसर्गों का प्रयोग क्रिया के साथ होने लगा था । परिणामत: उपसर्गों के द्वारा संज्ञा के शब्दों को अभिव्यक्त करना कठिन हो गया । अतएव शब्दों में ही विभक्ति सूचक प्रत्यय लगाकर कारक सम्बन्धों को अभिव्यक्त किया जाने लगा ।

वैदिक और लौकिक संस्कृत में कारकों की संख्या आठ और वचनों की संख्या तीन थी । इस प्रकार प्रत्येक शब्द के कारक और वचनों के अनुसार ८ × ३ = २४ रूप होते हैं । मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में जब भाषा की प्रकृति संयोग से वियोग की ओर उन्मुख हुई तब शब्दों के कारक रूपों में भी समीकरण होने लगा । इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय आर्यभाषाओं में अनेक रूपों की हानि हो गई । एक ही विभक्ति युक्त शब्द से कई एक कारकों को व्यवहृत किया जाने लगा । फलस्वरूप उपर्युक्त २४ रूपों के स्थान पर पाँच या छ: रूप ही शेष रह गये । अपभ्रंशकाल में तो केवल तीन ही कारक प्राप्त होते हैं ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में आते-आते विभक्ति, प्रत्ययों में और न्यूनता आ गई । केवल कर्ता बहुवचन, करण कारक सम्बन्ध-बहुवचन तथा अधिकरण एक-वचन के ही प्रत्यय शेष रह गये । हिन्दी में करण कारक बहुवचन तथा सम्बन्ध कारक बहुवचन के रूपों से कर्ता बहुवचन का काम लिया जाने लगा । जैसे :–घोटकैः > घोड़हि, घोड़इ > घोड़े ।

अधिकरण एकवचन विकारी कारकों के रूपों का आविर्भाव हुआ । जैसे :-- घोड़े के 'ए' प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'स्मिन्' से है ।

संक्षेप में कारक रूपों का विवरण इस प्रकार है–

(१) **कर्ता या करणकारक**--हिन्दी में कर्ता के आगे कोई भी कारक चिह्न नहीं लगता है । संस्कृत और प्राकृत में भी संज्ञा के प्रथमा के रूपों में कोई विशेष

विकार नहीं होता है। हिन्दी में कर्ताकारक चिह्न 'ने' पश्चिमी हिन्दी की विशेषता है। कहना, समझना, जानना इत्यादि सकर्मक क्रियाओं के अतिरिक्त शेष सकर्मक क्रियाओं के और नहाना, छींकना, बैठना, उठना आदि अकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदन्त से बने कालों के साथ प्रत्यय के सहित कर्ताकारक आता है।

'ने' कारक चिह्न के उद्‌भव एवं विकास के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। आचार्य बीम्स के अनुसार यह करण कारक से आया है और कर्म तथा भाव अर्थ का बोधक है। उनका अभिमत है कि गुजराती जैसी प्राचीन भाषा में भी करण और सम्प्रदानकारकों का एक दूसरे के लिए प्रयोग होता रहता है। नेपाली में भी सम्प्रदान में 'लाई' और करण में 'ले' के प्रयोग हैं। प्राचीन हिन्दी में कर्मकारक के चिह्न 'नै' तथा आधुनिक हिन्दी के कारक चिह्न 'ने' में पर्याप्त समानता है। मराठी में 'ने' करण का प्रतीक है और गुजराती में कर्म तथा सम्प्रदान का। बीम्स का अभिमत है है वस्तुतः सम्प्रदान और करण के चिह्न व्युत्पत्ति की दृष्टि से समान थे।

ट्रम्प तथा अन्य विद्वानों का विचार है कि 'ने' का सम्बन्ध संस्कृत के अकारान्त शब्दों के कारक चिह्न 'एन' से है। उनका विचार है कि 'एन' के 'न' का शनैः-शनैः लोप हो गया। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि 'एन' का 'ने' किस प्रकार हो गया? यदि संस्कृत में 'एन' के स्थान पर 'नेन' होता तब तो 'ने' का विकास 'एन' से मान लिया जाता। आचार्य बीम्स ने इस मत की आलोचना करते हुए कहा है कि यदि 'ने' 'एन' का रूपान्तर होता तो इसका प्रयोग प्राचीन हिन्दी में अधिक हुआ होता परन्तु ऐसा नहीं हुआ है। बीम्स का विचार है कि १६ वीं–१७ वीं शताब्दी के लगभग सम्प्रदान कारक के लिए प्रयुक्त 'ने' का प्रयोग करण कारक की कुछ क्रियाओं के साथ होने लगा था। हार्नली के अनुसार सम्प्रदान के लिए ब्रज में 'कौ', 'को' और मारवाड़ी में 'नैं', 'ने' का प्रयोग होता था। हो सकता है कि 'नैं' और 'ने' को वहीं से कर्ता या करण कारक के लिए उपयुक्त समझ कर ले लिया गया हो। परन्तु 'ने' की व्युत्पत्ति अभी भी सन्देहास्पद ही है।

(२) **कर्म तथा सम्प्रदान**–हिन्दी में कर्म और सम्प्रदान दोनों ही के लिये एक एक प्रकार के चिह्न लगते हैं। खड़ी बोली में 'को' कर्म तथा सम्प्रदान दोनो विभक्तियों में आता है और इसके अतिरिक्त 'के लिये' रूप सम्प्रदान में विशेष रूप से आता है। आचार्य ट्रम्प 'को' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कृत' से मानते हैं। उनका कहना है कि यह 'कृत' प्राकृत के 'कितो' और 'कियो' से होकर हिन्दी में 'को' का रूप धारण कर लेती है। परन्तु इनकी यह मान्यता अधिकांश विद्वानों को स्वीकार नहीं है।

हार्नली और बीम्स की मान्यता है कि 'को' का सम्बन्ध संस्कृत के 'कक्ष' से है। चटर्जी आदि विद्वान् भी इसी का समर्थन करते हैं। संस्कृत के कक्ष से 'कक्ख', कक्ख से 'कांख', कांख से 'काहम', से कहम, कौ, कौ से 'को' रूप बना है।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि "प्राकृत में वास्तव में 'कतऊँ' और 'कटऊँ' रूप मिलते हैं। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई हिन्दी के प्राचीन रूप 'कतु' के सम्बन्ध में है। ट्रम्प का अनुमान है कि 'कृत' के जब 'ऋ' का लोप हुआ होगा तब 'त' महाप्राण हो गया होगा। यह विचारशैली बहुत अधिक मान्य नहीं दिखाई पड़ती।"

हिन्दी के 'के लिये' का सम्बन्ध संस्कृत के 'कृते' से है। श्री सत्यजीवन वर्मा 'के' को सम्बन्ध कारक के प्राचीन चिह्न 'करेक' का विकृत रूप मानते हैं। इसी प्रकार वे कहते हैं कि 'कौ' भी 'केही' का रूपान्तर मात्र है जिसमें 'के' अंश 'करेक' का परिवर्तित रूप है, और 'ही' अंश अपभ्रंश की सप्तमी विभक्ति का चिह्न है।" परन्तु इनकी यह मीमांसा भी प्रामाणिक साबित नहीं हुई। 'को' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में हमें प्रथम सिद्धान्त ही अधिक समीचीन लगता है।

'के लिये' के 'लिये' का सम्बन्ध संस्कृत 'लग्ने' से माना जाता है। हार्नली के अनुसार लिये की व्युत्पत्ति संस्कृत 'लब्वे' से हुई है। परन्तु यह मत प्रामाणिक नहीं माना गया। सम्भव है कि प्राकृत के 'लं' से इसका सम्बन्ध हो। 'लगे' 'लाग' आदि शब्दों की व्युत्पत्ति भी 'लिए' के समान ही मानी जाती है। संस्कृत के 'लग्ने' प्राकृत में लग्ने या 'लाग्नि' और हिन्दी बोलियों में 'लागि' या 'लगे' परिवर्तन सम्भव है।

(३) **अपादान**–हिन्दी में अपादान के लिए 'से' का प्रयोग होता है। आचार्य बीम्स के अनुसार 'से' का अर्थ 'साथ' भी है और 'अलग होना' भी है। उन्होंने इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सम्' से मानी है। परन्तु हार्नली इसकी व्युत्पत्ति 'अस' से मानते हैं। उनका कहना है कि प्राकृत में प्रयुक्त 'सुन्तो', 'सुतो' शब्द ही हिन्दी में 'से' का रूप धारण कर लेते हैं। केलाग के मतानुसार 'से' का सम्बन्ध संस्कृत के 'संगे' से है। परन्तु बीम्स का मत ही प्रामाणिक माना जाता है। परन्तु डॉ० उदय नारायण तिवारी का विचार है कि "......'से' का मूल रूप 'सम् एन' है जिससे इसकी उत्पत्ति निम्न प्रकार से हुई है–

सम् एन > सएँ, सई > से।"

'से' परसर्ग का प्रयोग हिन्दी में अपादान के अतिरिक्त 'करण में भी होता है। अवधी में इसका रूप 'से', 'सन', ब्रजभाषा में 'सो' सौ' और बुन्देली में 'सैं' मिलता है।

(४) **सम्बन्ध**–सम्बन्ध के परसर्ग 'का' 'के' 'की' हैं। इनमें का' का प्रयोग एकवचन पुँल्लिग में, के' का प्रयोग बहुवचन पुँल्लिग में तथा 'की' का प्रयोग स्त्री-लिंग एकवचन तथा बहुवचन में होता है। ब्रजभाषा में 'कों', 'कौ', अवधी में 'केर', 'कर और बिहारी में 'क' आदि का प्रयोग होता है। आचार्य बीम्स एवं आचार्य हार्नली इन रूपों की व्युत्पत्ति संस्कृत 'कृतः' तथा प्राकृत 'केरो' या 'केरक' से मानते

हैं। हार्नली के अनुसार इनका परिवर्तन इस प्रकार है–

संस्कृत–'कृतः' > करितो, करियो, करेको > करेओ, केरो > केर, का।

आचार्य पिशेल तथा अन्य कतिपय विद्वान् करे का सम्बन्ध संस्कृत के 'कार्य' से मानते हैं। केलाग का अभिमत है कि 'का' का विकास इस प्रकार हुआ है–

संस्कृत–'कृतः' > किदः, कदः > कअ > का।

डॉ० चटर्जी का अभिमत है कि 'का' का सम्बन्ध प्राकृत 'क्क' से है। क्योंकि 'कृतः' के प्राकृत रूप 'कअ' में 'क' का आजतक सम्भव नहीं है। डॉ० उदयनारायण तिवारी ने 'का' का सम्बन्ध संस्कृत के 'कृतः' शब्द से माना है। हम यह कह सकते है कि उक्त समस्त रूप संस्कृत की 'कृ' धातु से सम्बन्धित हैं। 'के' 'का' का बहुवचन का रूप है और 'की' में स्त्री प्रत्यय 'ई' लगा है।

(५) **अधिकरण**–'में' 'पर' हिन्दी भाषा के अधिकरण परसर्ग है। ब्रजभाषा में 'मैं', 'वै', का भी प्रयोग होता है। अवधी में 'मैं' और मुँह' का भी प्रयोग होता है। वैसे सामान्य रूप में 'में' का व्यवहार होता है। 'में' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'मध्ये' से मानी गई है–

मध्ये > मज्झे, मज्झ, मज्झहि > मांहि, > में।

पर की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'उपरि' से मानी गई है। परन्तु डॉ० उदयनारायण तिवारी ने इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'परे' शब्द से मानी है--

परे > परि > पर।

हिन्दी में निम्नलिखित स्वतन्त्र शब्द भी परसर्गों की भाँति प्रयुक्त होते हैं–

(क) कर्म कारक में–प्रति (सं०), विना (सं०)।

(ख) करण कारक में–द्वारा (सं०), कारण (सं०), मारे (सं०), जरिये (अरबी शब्द)।

(ग) सम्प्रदान कारक में–हेतु, निमित्त, अर्थ (तीनों सं०), खातिर, वास्ते (दोनों ही अरबी)।

(घ) अपादान कारक में–अपेक्षा (सं०), आगे, सामने (सं०), निस्व (फारसी)।

(ङ) अधिकरण कारक में-मध्य (सं०), बीच (सं०), भीतर ऊपर, नीचे इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के परसर्गों के उद्भव के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। प्रामाणिक पहलुओं के अभाव में हम अनुमान के ही आधार पर किसी मत को उचित मान सकते हैं। आज भी इस क्षेत्र में अध्ययन एवं अनुसन्धान की आवश्यकता है।

हिन्दी सर्वनाम शब्दों का उदभव एवं विकास

हिन्दी भाषा के सर्वनामों का विकास प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से प्रारम्भ

होता है । यद्यपि इनकी उत्पत्ति प्राचीन आर्यभाषा के सर्वनाम शब्दों से हुई है, तथापि प्राकृत, पालि, अपभ्रंश आदि भाषाओं के माध्यम से हिन्दी भाषा में पहुँचते-पहुँचते इनके रूपों में पर्याप्त परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है । हिन्दी भाषा में प्रयुक्त शब्दों को आठ प्रमुख भेदों में बाँटा गया है । कतिपय सर्वनामों का प्रयोग विशेषणों के समान भी होता है । अध्ययन की सुविधा के लिये हम इन्हें इस प्रकार से विभक्त कर देखेंगे–

(१) **पुरुषवाचक सर्वनाम**–पुरुषवाचक सर्वनाम के तीन भेद होते हैं– (अ) उत्तम पुरुष, (ब) मध्यम पुरुष और (स) अन्य पुरुष । इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद है । उत्तम एवं मध्यम पुरुष के रूपों को अधिकांश विद्वान् सर्वनाम के अन्तर्गत मानते हैं । अन्य पुरुष के रूपों को दूरवर्ती निश्चय वाचक मानते हैं । अतएव यहां उत्तम तथा मध्यम पुरुष वाचक सर्वनाम शब्दों का विश्लेषण किया जा रहा है–

उत्तम पुरुष–उत्तम पुरुष के निम्नलिखित रूप हमें हिन्दी भाषा में प्राप्त होते हैं ।

उत्तम पुरुष	**एकवचन**	**बहुवचन**
मूल रूप	मैं	हम
कर्म (विकारी रूप)	मुझको, मुझे	हमको, हमें
करण (")	मेरे से, मुझसे	हमसे, हमारे द्वारा
सम्प्रदान (")	मेरे लिये, मुझको	हमसे, हमारे द्वारा
अपादान (")	मेरे से, मुझसे (अलग होने पर)	हमसे
सम्बन्ध (")	मेरा, मेरी	हमारा, हमारी
अधिकरण (")	मुझमें, मुझ पर	हममें, हम पर

मैं शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'अस्मद्' शब्द के तृतीया विभक्ति के एकवचन 'मया' रूप से माना जाता है । संस्कृत का मया रूप प्राकृत में 'मइ' और 'मए', तथा अपभ्रंश में 'मइ' और 'मई' के रूप में प्रयुक्त होता है । यही विकसित होता हुआ हिन्दी में 'मैं' हो जाता है । संस्कृत के 'अहं' शब्द से हिन्दी के 'मैं' का सम्बन्ध नहीं है । ब्रजभाषा मे 'मैं' के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले हाँ' शब्द की व्युत्पत्ति 'अहं' शब्द से की जाती है ।

'हम' शब्द का सम्बन्ध प्राकृत के 'अम्हे' से माना जाता है । प्राकृत के इस शब्द का सम्बन्ध भी वैदिक संस्कृत 'अस्मे' से माना गया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 'अस्मे' को 'अम्हें' में बदलते हैं और 'अम्हें' हम में बदल जाता है । परन्तु डा० उदयनारायण तिवारी 'अस्म'→'अम्ह'→'हम्ब'→हम्म→हम, इस प्रकार से 'हम' शब्द की व्युत्पत्ति करते हैं । डा० भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'हमें' शब्द में 'ए' की स्थिति संस्कृत के 'एन' से हुई है । परन्तु डा० धीरेन्द्र वर्मा आचार्य बीम्स के मत

को मानते हुये लिखते हैं कि "हिन्दी 'हमें' का सम्बन्ध प्राचीन अपभ्रंश 'अम्हंइ' से किया जाता है।"

'मुझ' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'मह्यम' शब्द से है। 'मह्यम्' शब्द प्राकृत' भाषाओं में 'मज्झ' के रूप में प्रयुक्त होता है जो हिन्दी में आते-आते 'मुझ' का रूप धारण कर लेता है। ब्रजभाषा में प्रयुक्त होने वाले 'मों' और 'मौं' शब्द संस्कृत के 'मम' से सम्बन्धित हैं। अपभ्रंश भाषाओं में 'मम' 'हम' के रूप में प्रयुक्त होता है और ब्रजभाषा में पहुँचते-पहुँचते 'मह', 'महुँ' तथा 'मौं' और 'मों' के रूप को धारण कर लेते हैं। 'मुझे' में 'हमें' की तरह 'ए' का प्रयोग हुआ है और मुझको में कर्म तथा सम्प्रदान कारक का 'को' परसर्ग जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार 'हमें' और 'हमको' समझना चाहिए।

'मेरा' शब्द की व्युत्पत्ति डा० उदयनारायण तिवारी के अनुसार 'ममकेर' शब्द से है। 'हमारा' शब्द का सम्बन्ध भी 'अस्मकर' शब्द से है। स्त्रीलिङ्ग 'मेरी' और 'हमारी' में 'ई' प्रत्यय का प्रयोग होता है।

(२) **मध्यम पुरुष**—मध्यम पुरुष के निम्नलिखित रूप हमें हिन्दी में मिलते हैं।

मध्यम पुरुष	**एकवचन**	**बहुवचन**
मूलरूप	तू, तुम	तुम (लोग)
कर्म (विकारी रूप)	तुझे, तुमको	तुम्हें
करण (,,)	तू से, तेरे से,	तुम से
सम्प्रदान (")	तुझको	तुम्हें, तुम्हारे लिये
अपादान (")	तेरे से	तुम्हारे से
सम्बन्ध (")	तेरा, तेरी	तुम्हारा, तुम्हारी
अधिकरण (")	तुझ पर	तुम पर, तुम में

'तू' शब्द की व्युत्पत्ति डा० उदयनारायण तिवारी के अनुसार 'त्वम्' से हुई है। परन्तु डा० धीरेन्द्र वर्मा 'तू' का सम्बन्ध 'त्वयां से मानते हैं। आचार्य हार्नली 'तुम' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'तुष्मे' से मानते हैं। उनका विचार है कि 'तुष्मे' शब्द से 'तुम्हें', 'तुम्हें' से 'तुम्ह' और 'तुम्ह' से तुम शब्द बनता है। परन्तु डा० उदयनारायण तिवारी का मत इनसे भिन्न है। उनका अभिमत है कि तुम शब्द संस्कृत के 'युष्म' शब्द से बनता है जो कि प्राकृत में 'तुम्ह' का रूप धारण कर लेता है।

'तुम्हें' शब्द की व्युत्पत्ति प्राकृत और अपभ्रंश के 'तुम्हई' से हुई है। 'तुझ' का सम्बन्ध संस्कृत के 'तुभ्यं' शब्द से माना जाता है। 'तुभ्यं' 'तुज्झ' रूप को धारण करता हुआ हिन्दी में 'तुझ' बन जाता है। 'तुझे' में 'ए' विकृत रूप का प्रयोग होता है 'तेरा' शब्द का सम्बन्ध 'तक्केर' और 'तुम्हारा' का सम्बन्ध 'युष्मकेर' के साथ माना गया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा 'तुम्हारा' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानते हैं—

तुण्ह करको→तुम्ह अरओ→तुम्हारौ--तुम्हारा । 'तुम्हारी' शब्द में 'ई' स्त्री-प्रत्यय का प्रयोग होता है ।

(२) **निश्चयवाचक सर्वनाम** :-निश्चयवाचक सर्वनाम हिन्दी में 'अन्य पुरुष' के रूप में आते हैं । यह, ये, इन सर्वनामों की व्युत्पत्ति संस्कृत के एषः, एते, एतानि आदि रूपों से मानी जाती है । डा० चटर्जी के अनुसार इस शब्द का सम्बन्ध 'एतस्य' से है । परन्तु इसका सम्बन्ध संस्कृत के 'अस्य' शब्द से समीचीन लगता है । 'वह' का सम्बन्ध संस्कृत के 'तद्' से नहीं माना जाता है । वस्तुतः इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना कठिन है । यों चटर्जी साहब 'वह' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के कल्पित 'अव' रूप से तथा 'उस' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'अवस्य' से मानते हैं । इसी प्रकार वे 'उन' तथा 'वे' शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कल्पित विचार प्रस्तुत करते हैं । चटर्जी साहब के ये विचार कल्पित होने के कारण हमारी कल्पना से तो परे ही रह जाते हैं ।

(३) **सम्बन्धवाचक सर्वनाम**-हिन्दी के सम्बन्धवाचक सर्वनाम संस्कृत के मूल शब्दों से विकसित माने जाते हैं । 'जिस' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'यस्य' तथा प्राकृत के 'जिस्स' से माना जाता है । 'जो' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'यः' शब्द से मानी गयी है । इसी प्रकार अन्य रूपों के विषय में भी धारणा है ।

(४) **नित्य सम्बन्धी सर्वनाम**-नित्य सम्बन्धी सर्वनामों का हिन्दी में प्रयोग बहुत ही कम है । 'सो' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'सः' तथा प्राकृत के 'सो' से माना गया है । 'तिस' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'तस्य', प्राकृत 'तस्स' और हिन्दी 'तिस' इस प्रकार मानी गई है ।

(५) **प्रश्नवाचक सर्वनाम**-प्रश्नवाचक हिन्दी 'कौन' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कः' शब्द से मानी जाती है । कः -कवन--कवण--कोउण--कौन । 'क्या' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है । 'किस' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'कस्य' से है । 'किन' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'केषाम्' से मानी जाती है ।

(६) **अनिश्चयवाचक सर्वनाम**-'किसी' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'कस्यापि' शब्द से मानते हैं । 'कोई' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कोऽपि' शब्द से मानी गई है :-कोऽपि--कोवि--कोई ।

'किन्हीं' शब्द के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयपूर्वक कहना कठिन है ।

(७) **निजवाचक सर्वनाम**-निजवाचक सर्वनाम 'आप' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'आत्मन्' शब्द से मानी गई है ।

आत्मन्--आप्पा--आपा--आप । 'अपना' शब्द आप का सम्बन्ध कारक के रूप में है । आदर वाचक सर्वनाम 'आप' शब्द निजवाचक 'आप' शब्द के समान ही है ।

(८) **विशेषण के तुल्य प्रयुक्त सर्वनाम शब्द**-परिमाणवाचक विशेषण के तुल्य प्रयुक्त सर्वनाम 'इतना', 'उतना', 'कितना', इत्यादि शब्दों का सम्बन्ध संस्कृत के

'इयत्', 'कियत्' और प्राकृत के 'एत्तिम', 'केत्तिम' आदि शब्दों से है। गुणवाचक 'ऐसा', 'वैसा', 'तैसा', जैसा' आदि शब्दों का संबन्ध संस्कृत के 'यादृश्', 'तादृश्' आदि शब्दों से माना जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी सर्वनामों का सम्बन्ध प्रायः संस्कृत के सर्वनामों के साथ पाया जाता है। यद्यपि कतिपय शब्दों की व्युत्पत्ति अनिश्चित एवं सन्दिग्ध है, तथापि अधिकतर शब्दों की व्युत्पत्ति संगत प्रतीत होती है। जिन शब्दों की व्युत्पत्ति अनिश्चित है उनके अध्ययन एवं अनुसंधान की आवश्यकता है।

हिन्दी क्रियाओं का उद्‌भव एवं विकास

हिन्दी क्रियाओं के विकास को समझने के लिये हमें प्राचीन भारतीय संस्कृत, पालि तथा प्राकृत भाषाओं की ओर दृष्टिविक्षेप करना आवश्यक है। क्योंकि हिन्दी क्रियाओं का विकास इन्हीं भाषाओं से हुआ है।

संस्कृत के क्रियारूप कुछ रूपों को छोड़कर प्रायः संयोगात्मक हैं। संस्कृत की दो हजार से भी अधिक धातुयें दस श्रेणियों में बैठी हुई हैं जो कि 'लकार' के नाम से प्रसिद्ध है। ये दस लकारें तीन पुरुषों और तीन वचनों से गुणित होकर अनेक रूपों को धारण कर लेती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत का क्रिया रूप अत्यन्त ही जटिल है। परन्तु यह जटिलता मध्यकालीन आर्यभाषाओं में कम होने लग गई थी। श्री राजनाथ शर्मा के शब्दों में "संस्कृत गणों की संख्या में लगभग आधे ही रह गये। वचनों में से द्विवचन का लोप हो गया। छः प्रयोगों में से केवल पांच रह गये। लकारों की संख्या भी कम रह गई। इस तरह 'पालि' भाषा में एक धातु के लगभग २४० रूप रह गये। इस प्रकार 'पालि भाषा' से प्राकृतों तक आते-आते क्रिया रूप और अधिक सरल हुये हैं। हिन्दी तक आते-आते तो ये क्रियारूप बिल्कुल ही सरल हो गये। हिन्दी में एकवचन और बहुवचन दो ही रूप बचे हैं। इनके तीन पुरुषों में तीन-तीन रूप होते हैं। हिन्दी क्रियाओं की सर्वाधिक विशेषता यह है कि उनमें वियोगात्मकता की बहुलता हो गई है। शुद्ध संयोगात्मक रूपों का तो एकदम अभाव जैसा हो गया है।" हार्नली के अनुसार हिन्दी की धातुयें लगभग ५०० हैं। इन धातुओं को मूल-धातु और यौगिक धातु के भेद से दो भागों में बांटा जा सकता है। हार्नली ने मूल धातुओं को चार वर्गों में विभक्त किया है :—

(१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से आने वाली मूल धातुयें।

(२) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की धातुओं की प्रेरणा रूपों से आने वाली मूल धातुयें।

(३) आधुनिक काल में संस्कृत से ली गई मूल धातुयें।

(४) संदिग्ध व्युत्पत्ति वाली मूल धातुयें।

जो संस्कृत से न आकर किसी न किसी रूप में संस्कृत से सम्बन्धित हैं; इस

प्रकार आधुनिक काल में निर्मित धातुयें यौगिक धातुयें हैं। इनकी संख्या लगभग १८९ है।

संस्कृत से पालि तथा प्राकृतों के द्वारा आने वाली क्रियाओं में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। इनमें उस वृत्ति का अभाव हो गया है जो कि संस्कृत में है। जैसेः–संस्कृत की 'खाद्' धातु हिन्दी में 'खा' का रूप धारण कर लेती है तथा खाना, खाता, खाया, खायेगा इत्यादि क्रिया रूपों को बनाती है। हिन्दी में एकाक्षरीय धातु के अधिक दर्शन होते हैं। जैसेः–खाना, पीना, रोना, देना, जाना, पाना, लाना इत्यादि। इन क्रियाओं में 'ना' अंश के हटा देने से धातु का मूल शेष रह जाता है।

प्रेरणात्मक धातुयें:–हिन्दी की प्रेरणात्मक धातुयें संस्कृत से प्रभावित हैं। सामान्यतः धातु के बीच में 'वा' या 'या' जोड़ देने से प्रेरणात्मक क्रियायें बनती हैं। जैसेः–डरवाना, भरवाना, लिखवाना, पढ़वाना इत्यादि।

नामधातुयें–कभी-कभी संज्ञा या विशेषण में क्रिया की तरह प्रत्यय लगाकर उन्हें धातु बना दिया जाता हैं। जैसेः–लात से लतियाना, बात से बतियाना इत्यादि।

सहायक क्रिया–हिन्दी में सहायक क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हैं, हूँ आदि क्रियाओं का सम्बन्ध संस्कृत की 'अस्' धातु से माना जाता है। जैसेः–संस्कृत 'अस्मि', प्राकृत 'अम्हि' और हिन्दी 'हूँ'। संस्कृत 'अस्ति', प्राकृत 'अत्थि' और हिन्दी 'है'। था, थी, थे इत्यादि भूतकालिक क्रियाओं का सम्बन्ध 'स्था' से माना जाता है। जैसेः–संस्कृत 'स्थित', प्राकृत 'थाइ' और हिन्दी 'था'। इसी प्रकार होना, होते, होती इत्यादि क्रियाओं का सम्बन्ध संस्कृत की 'भू' धातु से माना जाता है। जैसेः–संस्कृत 'भवति', प्राकृत 'होदि', हिन्दी में होति, होता, होते इत्यादि।

कृदन्त :–हिन्दी में अनेक क्रियायें कृदन्त के रूप में प्रयुक्त होती हैं। कृदन्त को वर्तमानकालिक कृदन्त तथा भूतकालिक कृदन्त इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। वर्तमानकालिक कृदन्त रूपों को बनाने के लिये धातु से 'त' प्रत्यय के प्रयोग का विधान है जैसेः–'गा' धातु से 'गाता', गाती', 'गाते', इसी प्रकार 'पढ़' धातु से पढ़ता, पढ़ती, पढ़ते इत्यादि।

भूतकालिक कृदन्त की क्रियाओं को बनाने के लिये–धातुओं से 'या' या 'आ' जोड़ देते हैं। जैसेः–'गा' धातु से 'गाया', 'पढ़' धातु से 'पढ़ा', 'खा' धातु से 'खाया' इत्यादि।

क्रियार्थक संज्ञा बनाने के लिये धातु के अन्त में 'ना' का प्रयोग करते हैं। आचार्य बीम्स के अनुसार 'ना' का सम्बन्ध संस्कृत के कृदन्त (अनीय) से है। जैसेः–संस्कृत––'करणीयम्', प्राकृत––'करणीअम्', 'हिन्दी',––करना इत्यादि। तात्कालिक कृदन्त रूप बनाने में वर्तमानकालिक कृदन्तों से ही 'ही' का प्रयोग करते हैं। जैसेः–लाते ही, जाते ही, आदि।

वाच्य:–हिन्दी में वाच्यरचना सर्वथा आधुनिक है। मूलभूत क्रिया के भूतकालिक कृदन्तों को जाना क्रिया के विविध रूपों का प्रयोग करके वाच्य में परिवर्तन कर लेते हैं। जैसे:–उसने खाना खाया (कर्तृवाच्य), उसके द्वारा खाना खाया गया (कर्मवाच्य), उसने पत्र लिखा (कर्तृवाच्य), उसके द्वारा पत्र लिखा गया (कर्मवाच्य)।

क्रिया:–हिन्दी में तीन प्रकार कि क्रियाओं का प्रयोग है–(१) कर्ता में, (२) कर्म में और (३) भाव में।

(१) **कर्ता में**:–इसमें कर्ता की प्रधानता रहती है। वह क्रिया का शासक होता है। अतः क्रिया के लिङ्ग, वचन आदि कर्ता के अनुसार होते हैं। **जैसे**:–रमेश गांव गया, शीला गांव गयी, वे शहर गये इत्यादि।

(२) **कर्म में** :–इसमें कर्म की प्रधानता होती है। अतएव कर्म के अनुसार ही क्रिया का प्रयोग होता है।जैसे :–उसने बेटी व्याही।

(३) **भाव में** :-जब कर्म में ही कर्म के प्रयोग के साथ 'को' परसर्ग लग जाता है तो क्रिया स्वतंत्र हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह प्रयोग कर्म में न रहकर भाव में हो जाता है। जैसे:–उसने मोहन को मारा।

काल :–हिन्दी की क्रियायों के कालों में दृष्टि निक्षेप करने से यह ज्ञात होता है कि हिन्दी में इनकी संख्या लगभग पन्द्रह या सोलह है। परन्तु प्रधानतया तीन ही काल हैं :–भूत, भविष्यत् और वर्तमान। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी के कालों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :–

(१) **संस्कृत कालों के अवशेष** :–इस वर्ग में वर्तमान, सम्भावनार्थ और आज्ञादि आते हैं। जैसे :–संस्कृत––'चलामि', प्राकृत––'चलामि', अपभ्रंश––'चलउ', हिन्दी––'चलूं'।

(२) **संस्कृत कृदन्तों से बने काल** :–इस वर्ग में निश्चयार्थक और सम्भावनार्थक भूत तथा आज्ञापरक भविष्य आदि आते हैं। इनके लिये क्रमशः भूतकालीन कृदन्त, वर्तमानकालिक कृदन्त और क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग किया जाता है।

(३) **आधुनिक संयुक्त काल** :–इस श्रेणी के अन्तर्गत कृदन्त तथा सहायक क्रियाओं के सहयोग से आधुनिक काल में बने हुये सभी काल आ जाते हैं। इन कालों का सम्बन्ध संस्कृत के कालों से नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी क्रियाओं का विकास प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से हुआ है। ये क्रियायें संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर उन्मुख हुई हैं; जो कि हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुकूल हैं।

हिन्दीभाषा के संख्यावाचक विशेषणों का उद्भव एवं विकास

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले संख्यावाचक विशेषणों का आविर्भाव प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से माना जाता है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से हिन्दी भाषा

के संख्यावाची शब्दों में जो परिवर्तन हुआ है, वह अत्यन्त ही आश्चर्यजनक है। संख्यावाचक विशेषणों को हम पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं–

(१) पूर्ण संख्यावाचक विशेषण, (२) अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण, (३) क्रमसंख्यावाचक विशेषण, (४) आवृत्ति संख्यावाचक विशेषण और (५) समुदाय संख्यावाचक विशेषण।

इन संख्यावाचक विशेषणों का आविर्भाव सीधे ही संस्कृत और पालि से नहीं हुआ है। ये शब्द पालिभाषा तथा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के समान उस समय में प्रचलित किसी भाषा से सम्बन्ध रखते हैं। संख्यावाची शब्दों के विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि ये शब्द संस्कृत, प्राकृत, पालिभाषा एवं तत्कालीन प्रचलित भाषाओं से सम्बद्ध हैं।

संख्यावाची 'एक' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'एक' शब्द से है। संस्कृत का एक शब्द प्राकृत में एक्क' के रूप में परिवर्तित हो जाता है और हिन्दी में उसका 'एक' के रूप में ही ग्रहण होता है। उर्दू से प्रभावित हिन्दी में एक शब्द इक' का रूप धारण करता है, जो कि आगे की संख्यायों को और अधिक प्रभावित क़रता है। जैसे–छब्बीस, इकत्तीस, इकतालीस आदि। 'ग्यारह' में 'ग्या' भाग प्राकृत के 'एगा' से प्रभावित है।

हिन्दी का 'दो' शब्द प्राकृत के 'दो'से लिया गया प्रतीत होता है। संस्कृत में दो के लिये 'द्वौ' शब्द का प्रयोग होता है। संस्कृत के 'द्वौ' शब्द का 'व' प्राकृत में 'ब' का रूप धारण कर लेता है, जिसकी स्थिति हिन्दी की संयुक्त संख्याओं में मिलती है। जैसे–बारह, बाइस, बत्तीस, बयालीस, बावन इत्यादि। समास होने पर 'दो' शब्द कहीं-कहीं 'दु' का रूप धारण कर लेता है जैसे–'दुपट्टा', 'दुमुहाँ', 'दुधारी' इत्यादि।

'तीन' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'त्रीन्' या 'त्रीणि' से है। 'त्रीणि' शब्द प्राकृत में आकर 'तीणि' के रूप को धारण करता है और हिन्दी में आते-आते 'तीन' हो जाता है। संयुक्त संख्यावाची शब्दों में जो 'ते' 'ती' या 'तिर' रूप मिलते हैं वे संस्कृत के 'त्रयः' शब्द से प्रभावित हैं।

जैसे– तेरह, तेतीस, तिरपन इत्यादि।

हिन्दी का 'चार' शब्द प्राकृत के 'चत्तारि' तथा संस्कृत के 'चत्वारि' से मिलता-जुलता है। संस्कृत– चत्वारि→प्राकृत चत्तारि→चारि→चार। संयुक्त संख्यावाची शब्दों में संस्कृत 'चतुर' तथा प्राकृत 'चौरो' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। जिससे कि हिन्दी में 'चौ' तथा 'चौर' रूप मिलते हैं। जैसे– चौदह, चौंतीस, चौरासी, 'चौरानबे' इत्यादि।

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाला 'पाँच' शब्द संस्कृत के 'पञ्च' और प्राकृत के 'पञ्च' से प्रभावित है। संयुक्त संख्यावाची शब्दों में प्राकृत के 'पन' का प्रभाव स्पष्टतया दिखता है। जैसे– पन्द्रह, पैंतालिस, इत्यादि। कहीं-कहीं 'पन' के स्थान पर

'बन' भी हो जाता है । जैसे– 'इक्यावन' 'बावन', इत्यादि । कहीं-कहीं संयुक्त संख्या-वाची शब्दों में 'पच' का प्रयोग मिलता है । जैसे– पचपन, पचीस, पचास, इत्यादि ।

हिन्दी का 'छः' शब्द संस्कृत के 'षट्' तथा प्राकृत 'छह' या 'छअ' से प्रभावित है । यहाँ यह विचारणीय है कि संस्कृत का 'षट्' प्राकृत में 'छह' कैसे हो गया ? जबकि यह परिवर्तन 'सोलह' में नहीं मिलता है । अन्यत्र तो मिल ही जाता है । जैसे छब्बीस, छत्तीस, छप्पन, इत्यादि । मूर्धन्य 'ष' का परिवर्तन तालव्य 'छ' में परिवर्तित हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

हिन्दी भाषा का 'सात' शब्द प्राकृत में 'सत्त' तथा संस्कृत में 'सप्त' के रूप में स्थित है । कतिपय संयुक्त संख्याओं में प्राकृत का 'सत्त' या 'सत' शब्द उसी रूप में प्रयुक्त होता है । जैसेः– 'सत्तरह' 'सत्ताइस', सत्तासी, 'सत्तानबे' इत्यादि । इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग 'सैं' के रूप में भी होता है। जैसे– 'सैंतीस', सैंतालिस इत्यादि।

'आठ' शब्द संस्कृत के 'अष्ट' और प्राकृत 'अठ्ठ' शब्द से प्रभावित है । संयुक्त संख्याओं में इसका प्रयोग 'अट्ठा' 'अठ' आदि के रूप में भी मिलता है । जैसे– अठ्ठाइस, अठ्ठारह या अठारह, 'अठहत्तर' आदि । कभी-कभी 'अठ' 'अड़' का रूप भी धारण कर लेता है । जैसे– 'अड़तालिस', अड़सठ आदि ।

'नौ' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत के 'नव' शब्द से है । प्राकृत में इसका प्रयोग 'नअ' के रूप में होता है । संयुक्त संख्याओं की रचना संस्कृत के 'उन' प्राकृत के 'ऊण' और हिन्दी के 'उन' लगाकर होती है; जैसे– उन्नीस, उन्तीस इत्यादि । परन्तु 'नवासी' और 'निन्यानबे' में 'नव' का ही प्रयोग होता है ।

हिन्दी का (दस) 'दश' शब्द प्राकृत में 'दस' और संस्कृत 'दश' में मिलता है । संयुक्त संख्याओं में यह 'दह', 'रह', 'लह' आदि के रूप में प्राप्त होता है, जैसे– ग्यारह, बारह, चौदह, सोलह इत्यदि ।

हिन्दी भाषा का 'बीस' शब्द संस्कृत 'विंशति' तथा प्राकृत के 'बीसई' से प्रभावित है । संयुक्त संख्याओं में 'बीस' रूप अपने स्वरूप में ही रहता है । जैसे– चौबीस, छब्बीस, इत्यादि । कभी-कभी यह अपने पार्श्ववर्ती व्यञ्जन से प्रभावित दिखाई पड़ता है । जैसे– पच्चीस, इक्कीस इत्यादि ।

'तीस' शब्द प्राकृत में 'तीसा' और संस्कृत में 'त्रिंशत्' के रूप में–विद्यमान है । संयुक्त संख्यायों में यह 'तीस' के ही रूप में रहता है । जैसे–इकतीस, चौंतीस, अड़तीस इत्यादि ।

'चालीस' शब्द प्राकृत में 'चत्तालिस' और संस्कृत में 'चत्वारिंशत्' के रूप में स्थित है । संयुक्त संख्याओं में 'च' का लोप हो जाता है । जैसे–बयालिस 'चवालीस' इत्यादि ।

'पचास' शब्द संस्कृत में 'पंचाशत्' और प्राकृत में 'पचासा' के रूप में प्रयुक्त

हुआ है। संयुक्त संख्याओं में 'पञ्च' के स्थान पर 'पन', 'वन' रूप मिलते हैं। जो कि प्राकृत 'पन' और 'पण' से प्रादुर्भूत हुए हैं। जैसे—इक्यावन, तिरपन, अट्टावन इत्यादि।

हिन्दी का 'साठ' शब्द प्राकृत भाषा में 'सट्ठि' और संस्कृत में 'षष्ठि' के रूप में रहता है। संयुक्त संख्याओं में यह 'सठ' के रूप को धारण कर लेता है। जैसे—इकसठ, तिरसठ, सरसठ इत्यादि।

हिन्दी में प्रयुक्त 'सत्तर' शब्द प्राकृत के 'अत्तरि' और संस्कृत के 'सप्तति' शब्द से प्रभावित है। डॉ० चटर्जी के अनुसार 'सप्तति' रूप 'सत्तति' और 'सत्तटि', 'सत्तडि', 'सत्तरि' इस प्रकार से विकसित हुआ है। संयुक्त संख्याओं में 'सत्तर' का 'स' 'ह' में बदल जाता है। जैसे—इकहत्तर, बहत्तर, इत्यादि।

हिन्दी का 'अस्सी' शब्द प्राकृत के 'असीइ' और संस्कृत के 'अशीति' से प्रभावित है। संयुक्त संख्यावाची शब्दों में 'अस्सी' शब्द 'आसी' या 'यासी' के रूप में प्रकट होता है। जैसे—इक्यासी, बयासी, चौरासी, अट्ठासी इत्यादि।

संस्कृत का 'नवति' शब्द प्राकृत में 'नब्बए' के रूप को धारण कर लेता है। और इसी 'नब्बए' से हिन्दी का 'नब्बे' रूप विकसित होता है। संयुक्त संख्यावाची शब्दों में यह 'नवे' के रूप में मिलता है। जैसे—बानवे, तिरानवे, सत्तानवे इत्यादि।

हिन्दी का 'सौ' शब्द प्राकृत में 'सअ' तथा संस्कृत मैं 'शत' के रूप में मिलता है। संयुक्त संख्यावाची शब्दों में यह 'से' के रूप में बदल जाता है। जैसे—सैकड़ा, एक सै एक, इत्यादि।

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाला 'हजार' शब्द फारसी का तत्सम है। यद्यपि संस्कृत के 'सहस्र' रूप के दर्शन हमें हिन्दी तत्सम तथा तद्भव क्रमशः 'सहस्र', 'सहस' रूप में मिलते हैं परन्तु इनका प्रयोग सीमित है।

हिन्दी का 'लाख' शब्द संस्कृत के 'लक्ष' तथा प्राकृत के 'लक्ख' से प्रभावित है। कहीं-कहीं यह 'लख' तथा 'लखा' के रूप में भी प्रयुक्त होता है। जैसे—लखपती, नौलखा आदि।

'करोड़' शब्द की व्युत्पत्ति यद्यपि संस्कृत के 'कोटि' शब्द से मानी जाती है; परन्तु अनेक विद्वान् इससे सहमत नहीं है।

'अरब' और 'खरब' शब्द संस्कृत के 'अरबुद' तथा 'खर्व' शब्द से प्रभावित हैं।

क्रमवाचक संख्यावाची शब्दों में पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ, नवाँ, दशवाँ (दसवाँ) इत्यादि शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम एवं 'दशम' शब्दों से प्राकृत के द्वारा मानी गई है।

हिन्दी का 'बार' शब्द संस्कृत के 'बारम्' से प्रादुर्भूत माना जाता है। दुक्का

दुकिया, दूनी, दूना संस्कृत के द्विगुण: शब्द से, तिक्का, तिकिया, तियाँ संस्कृत के तृतीयक शब्द से, चौका, चौके, आदि शब्द संस्कृत के 'चतुष्क' शब्द से, पंचा, पंजे, पंचे इत्यादि संस्कृत के 'पंचक' शब्द से छका, छक्का, छक्के संस्कृत के 'षट्क' शब्द से, सत्ता, सत्ते, संस्कृत के सप्तक शब्द से, अठ्ठा, अट्ठे इत्यादि संस्कृत के अष्टक शब्द से, नवाँ, नवा इत्यादि संस्कृत के 'नवम' शब्द से, तथा दहाम् संस्कृत के 'दशम' शब्द से व्युत्पन्न माना जाता है।

'सैकड़ा' शब्द की व्युत्पत्ति 'सतकृत' से मानी जाती है। पौवा, पाव आदि शब्द संस्कृत के 'पाद' शब्द से प्रादुर्भूत हैं। संस्कृत का 'पादोन' प्राकृत का 'पाउण' हिन्दी में 'पौन' के रूप में प्रयुक्त होता है। संस्कृत का अर्द्ध तृतीय प्राकृत में 'अढ़ती' हिन्दी 'ढाई', या 'अढ़ाई' के रूप में प्रयुक्त होता है। संस्कृत का 'सपाद' प्राकृत का 'सवाअ' हिन्दी में 'सवाया' हो जाता है। संस्कृत का द्विअर्द्ध प्राकृत का 'डिअढ्ढ' हिन्दी में ड्योढ़ा, ढेड़ा, डेढ़ का रूप धारण कर लेता है। संस्कृत का 'सार्ध' प्राकृत में 'सड्ढ' तथा हिन्दी में 'साढ़े' का रूप धारण करता है। संस्कृत का 'त्रिभागिक' हिन्दी में 'तिहाई' हो जाता है। संस्कृत का 'अर्ध' प्राकृत में 'अद्धअ' हिन्दी में 'आधा' और 'अद्धा' हो जाता है। संस्कृत का 'द्विगुण' हिन्दी में 'दुगुना' हो जाता है। संस्कृत का 'हर' हिन्दी मे 'हरा' रूप में प्रयुक्त होता है। जैसे--दोहरा, तेहरा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के संख्यावाचक शब्द प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से प्रभावित हैं। इनके परिवर्तन के समझने के लिये गहन अध्ययन एवं अनुशीलन की आवश्यकता है।

हिन्दी भाषा के अव्यय शब्द

हिन्दीभाषा में आये हुये अव्यय शब्दों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं-(१) क्रियाविशेषण, (२) समुच्चयबोधक, (३) सम्बन्धबोधक और (४) विस्मयादिबोधक।

क्रियाविशेषण--हिन्दी भाषा के क्रियाविशेषण अव्ययों का आविर्भाव सर्वनाम संज्ञा और क्रिया शब्दों से हुआ है, अतः इसे तीन वर्गों में रखा जा सकता है--(क) संज्ञामूलक, (ख) सर्वनाममूलक तथा (ग) क्रियामूलक।

(क) **संज्ञामूलक**--संज्ञामूलक क्रियाविशेषण अव्ययों को भी हम तीन भागों में बाँट सकते हैं--(अ) कालवाचक, (आ) स्थानयाचक और (इ) रीतिवाचक।

(अ) **कालवाचक**--कालवाचक शब्दों में निम्नलिखित शब्द आते हैं-आज, कल, परसों, प्रातः, शीघ्र, भोर, सायं, फौरन, झट, मध्याह्न इत्यादि।

यहाँ हम देखते हैं कि उपर्युक्त शब्दों की उत्पत्ति संस्कृत से या तो सीधे ही

होती है या फिर प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के द्वारा । कतिपय शब्दों की व्युत्पत्ति अरबी एवं फारसी से भी हुई हैं । जैसे–

संस्कृत-मध्याह्न = हिन्दी मध्याह्न ।

संस्कृत→अद्य, प्राकृत→अज्ज, हिन्दी→आज ।

फौरन, सुबह आदि अरबी फरसी के शब्द हैं ।

(आ) **स्थानवाचक**–स्थानवाचक शब्दों में निम्नलिखित प्रमुख हैं । जैसे–भींतर बाहर, ऊँचे, नीचे इत्यादि । ये शब्द आभ्यन्तर, बाह्य, उच्चैः, नीचैः इत्यादि संस्कृत शब्दों के विकृत रूप हैं ।

(इ) **रीतिवाचक**–जैसे, तैसे, वस्तुतः, हाँ नहीं, इत्यादि ।

(ख) **सर्वनाममूलक**–सर्वनाममूलक क्रियाविशेषणों को भी चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–(अ) कालवाचक, (आ) स्थानवाचक, (इ) दिशावाचक और (ई) रीतिवाचक ।

(अ) **कालवाचक**–सर्वनाम से सम्बन्धित क्रियाविशेषण अव्ययों के द्वारा समय का बोध होता है । जैसे–जब, कब, तब । इन्हीं के विकृत रूप जभी, कभी, तभी हैं । ये शब्द संस्कृत के यदा, कदा, तदा रूपों से विकसित हुए हैं ।

(आ) **स्थानवाचक**–जहाँ, तहाँ, यहाँ, वहाँ इत्यादि स्थानसूचक सर्वनाममूलक क्रियाविशेषण हैं । आचार्य बीम्स इनकी उत्पत्ति 'स्थाने' (संस्कृत) से करते हैं । जबकि डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी इनका सम्बन्ध, 'यत्र'-'तत्र' से मानते हैं, जिससे हम भी सहमत हैं ।

(इ) **दिशावाचक**–इधर, उधर, जिधर, किधर इत्यादि दिशाओं की ओर संकेत करने वाले सर्वनाममूलक क्रियाविशेषण अव्यय हैं । आचार्य बीम्स इनका संबन्ध 'धर' शब्द से मानते हैं; परन्तु इनके विषय में कुछ भी कहना कठिन है ।

(ई) **रीतिवाचक**–ज्यों, त्यों, यों, क्यों इत्यादि रीतिवाचक सर्वनाम से सम्बन्धित क्रियाविशेषण अव्यय हैं । इनके सम्बन्ध में लोगों ने तरह-तरह के विचार प्रस्तुत किये हैं । परन्तु डा० धीरेन्द्र वर्मा इन शब्दों की व्युत्पत्ति को संदिग्ध बतलाते हैं ।

(ग) **क्रियामूलक**–क्रियामूलक अव्ययों में निम्नलिखित प्रमुख हैं–बस, समीचीन स्वस्ति (आर्शीवाद), पर्याप्त, सहसा इत्यादि ।

(२) **समुच्चयबोधक**–और, तो, भी, जो, अपितु, परन्तु, पर आदि समुच्चय-बोधक अव्यय हैं ।

(३) **सम्बन्धबोधक**–द्वारा, निमित्त, वास्ते, अपेक्षा, बीच, साथ, कारण, प्रति इत्यादि सम्बन्धबोधक अव्यय हैं ।

(४) विस्मयादिबोधक अव्यय–ओह, हा, काश, रे, हाय, शाबास आदि शब्द विस्मयादिबोधक हैं ।

इन अव्यय शब्दों की उत्पत्ति संस्कृत से तत्सम एवं तद्भव के रूप में होती है । कोई-कोई शब्द अरबी और फारसी के हैं तो कोई अरबी-फारसी से प्रभावित दीखते हैं । हिन्दी के अव्यय शब्दों में भी वियोगात्मकता की भावना है ।